मुग़ल साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण
१५०
इन्द्र विद्यावाचस्पति

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ७८ वाँ ग्रन्थ

मुग़ल-साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण

लेखक—
प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

फाल्गुन, १९८८ वि०

मार्च, १९३२

प्रथमावृत्ति]

प्रकाशक,

नाथूराम प्रेमी,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव-बम्बई

मुद्रक,

रघुनाथ दिपाजी देसाई,

न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,

गिरगांव, बम्बई

प्रस्तावना

१

मनुष्य-जातिके विस्तृत इतिहासमें ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई जाति चिरकाल तक एक ही स्थितिमें विद्यमान रहे। मनुष्य-शरीरकी भाँति मनुष्य-समाजके शरीरमें भी उत्पत्ति, विकास, सम्पूर्णता और क्षयका चक्र पाया जाता है। कई जातियोंका तो सर्वथा क्षय हो जाता है, परन्तु कई जातियोंका रूपान्तर ही होता है। वह रूपान्तर पुनर्जन्मके समान है। जिन जातियोंको हम भूतलपरसे सर्वथा अदृश्य होता हुआ पाते हैं, वह परिवर्तित रूपमें तो विद्यमान रहती ही है। बीजनाश किसी भी जातिका नहीं होता और न कोई जाति बिल्कुल नई पैदा होती है। जातियोंके उदयास्तसे जैसे राजनीतिक इतिहास बनता है—वैसे ही जातियोंके अन्तर्मिश्रणसे उनके सामाजिक इतिहासका क्रम चलता है। यदि जातियोंकी स्थितिमें परिवर्तन न होता रहे, तो इतिहास बनना एकदम बन्द हो जाय। परन्तु इसे विधाताकी क्रीड़ा कहिए या कुदरतका करिश्मा कहिए, कोई जाति न सदा उन्नत दशामें रह सकती है, और न अवनत दशामें। विधाताने उन्नत जातियोंको अभिमान करनेका अवसर नहीं दिया, और दीन पराधीन जातियोंको निराशासे बचा

लिया है। हरेक विजयिनी जातिके सामने पराजयकी खाई मुँह बाये खड़ी है, और प्रत्येक दास-जातिके सम्मुख स्वाधीन सत्ताके स्वर्गका आशारूप स्वप्न बना हुआ है।

२

मनुष्य-जातिके इतिहासपर सरसरी नजर दौड़ाकर देखिए, कविकी यही उक्ति चरितार्थ होती प्रतीत होती है—

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण

मिश्र और बेबीलोनियाके साम्राज्य बनकर बिगड़ गये। फारिसकी धाक किसी दिन एशिया और योरपकी छातीपर जमी हुई थी, आज उसकी गिनती तीसरे दर्जेकी शक्तियोंमें है। यूनानके सैनिक योरपसे चलकर व्यास नदीके किनारे तक अपने विजयस्तम्भ गाड़ गये, पर किसी दिन उसी यूनानपर विधर्मी और विदेशी राजाओंकी सत्ता थी। जिस रोमने एक समय पृथ्वी और समुद्रकी समस्त शक्तियोंके सिरपर पाँव रख दिया था, उसकी राजधानी सदियों तक विदेशी शक्तियोंकी क्रीडा-स्थली बनी रही। होली रोमन-साम्राज्य भी चार दिनकी चाँदनीकी तरह अन्धेरी रात छोड़कर चला गया। अकेले भारतवर्षने ही कितने साम्राज्य-सूर्योंके उदयास्त देखे हैं। अयोध्यानरेशकी विजयदुन्दुभि लंका तक बज चुकी है, भारतके व्यापारी जावा तकको आबाद कर चुके है, मौर्य-साम्राज्य, गुप्त-साम्राज्य, और हर्षके साम्राज्य बने और बिगड़ गये। उनके पीछे मुसलमानोंने भारतको जीतनेका उपक्रम किया। उनका प्रयत्न लगभग ७०० वर्ष तक जारी रहा। कभी वह हारे और कभी जीते। कभी उनका प्रभाव उत्तरीय भारतके अधिकांश तक फैल गया, और कभी आगरे और दिल्लीतक ही परिमित रह गया। कई सदियोंतक संघर्ष बराबर जारी रहा। मुगलोंके राज्यकालमें मुसलमानोंकी भारत-विजयकी कामना पूर्ण होती दिखाई दी, परन्तु उसी समय दक्षिणकी पर्वतमालासे साम्राज्यकी दावेदार एक और शक्ति उठी। साम्राज्यका स्वप्न पूरा होते होते रह गया। मुगल-साम्राज्यका क्षय, और मराठा-साम्राज्यका उदय साथ ही साथ प्रारम्भ हुए। मुगल-साम्राज्यके खण्डरातपर मराठा-साम्राज्यकी दीवारें खड़ी की गईं, परन्तु मराठा-साम्राज्य भी देरतक स्थायी न रह सका। समुद्र-पारसे एक और अन्धड़ उठा, जो मुगल, मराठा और सिख सभी शक्तियोंको तहस नहस करके भारत भरपर व्याप्त हो गया। न ईश्वरके नियम बदले-

हैं, और न मनुष्य-प्रकृतिमें भेद आया है। इतिहासका क्रम जैसा अब तक चलता रहा है, आगे भी चलता रहेगा। जैसे इतिहासके प्रसिद्ध साम्राज्य नष्ट होते रहे हैं, वैसे ही वर्तमान साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट होंगे।

३

शरीरकी वृद्धिके पीछे क्षीणता अवश्यंभावी है, परन्तु क्या इसका यह तात्पर्य है कि अवश्यभाविताके अतिरिक्त क्षीणताका दूसरा कोई संगत कारण नहीं है? प्रत्येक घटनाका संगत कारण विद्यमान रहता है। संगत कारणके विना कोई कार्य नहीं हो सकता। साम्राज्योंकी क्षीणताके भी संगत कारण दिखाई देते हैं। वह कारण मनुष्य-प्रकृतिके साथ बँधे हुए हैं। उन्हें यदि मनुष्य-प्रकृतिका आवश्यक परिणाम कहें, तो अनुचित न होगा। वही जाति साम्राज्यकी स्थापना कर सकती है, जिसमें कुछ विशेष गुण हों। साम्राज्यकी स्थापना हो जानेपर सफलता और समृद्धिके कारण प्रायः वह गुण लुप्त हो जाते हैं, जिन्होंने साम्राज्यको बनाया था। उनके स्थानपर विलासिता, प्रमाद, उग्रता आदि दोषोंका समावेश हो जाता है। यह दोष अत्यधिक सत्ता और ऐश्वर्यके अवश्यंभावी परिणाम हैं। इन दोषोंके आ जानेपर साम्राज्यका नाश केवल समयका प्रश्न रह जाता है। उसका नाश निश्चित हो जाता है—वह देरमें हो या शीघ्र, यह परिस्थितिपर अवलम्बित है। यह आश्चर्यकी बात है कि जैसे साम्राज्योंका बनकर बिगड़ना नियमोंसे बंधा हुआ है, उसी प्रकार उनका समय भी प्रायः बँधा हुआ है। उनकी उन्नति, स्थिरता और क्षीणताके समयका परिमाण लगाना कठिन नहीं है।

४

इतिहासमें दो प्रकारकी घटनायें ऐसी हैं, जो गम्भीरतामें, मनोरंजकतामें, और शानमें अपना सानी नहीं रखतीं। एक महापुरुषोंका अधःपात, और दूसरी साम्राज्योंका नाश। गगनस्पर्शी अट्टालिकाओंका भूडोलसे झूमकर गिर जाना किसी शहरके इतिहासमें एक असाधारण घटना समझी जाती है। उसे लोग सहजमें नहीं भुला सकते। बूढ़ी नानियाँ अपने बच्चोंको गोदमें बिठाकर, और बूढ़े दादा चौपालमें बैठे हुए श्रोता जनोंको सम्बोधित कर उस विनाशकी कहानी जिस चावसे सुनाते हैं, उसी चावसे एक इतिहासलेखक नैपोलियनके पराजय और रोमन-साम्राज्यके

विनाशकी कहानी संसारको सुनाता है। उस कहानीसे संसारकी अस्थिरता, लक्ष्मीकी चंचलता और सौभाग्यकी क्षणभंगुरताका पाठ मिलता है। उससे दलित जातियोंको आशाका सन्देश और विजेता जातियोंको नम्रताकी शिक्षा मिलती है। साथ ही यदि वह कहानी अच्छी भाषामें सुनाई जाय, तो उपन्याससे अधिक मनोरंजक होती है। उपन्यासकी कथाको मनोरंजक बनानेके लिए जिस प्रकारकी घटनाओंकी कल्पना करनी पड़ती है, महापुरुषोंके उदयास्त और साम्राज्योंके निर्माण-क्षयमें इस प्रकारकी घटनाओंकी बहुतायत रहती है। इस कारण महापुरुषोंके चरित्र और जातियोंके उत्थान तथा पतनका इतिहास धर्म-शिक्षाकी पुस्तकोंसे अधिक शिक्षा-दायक और उपन्यासोंसे अधिक मनोरंजक बन सकता है।

५

भारतमें कई साम्राज्य बने और नष्ट हो गये। उन सबमेंसे मुग़ल-साम्राज्यका विशेष महत्त्व है। बहुतसे साम्राज्य तो स्वदेशी राजाओंके थे। कभी मगधके शासकने भारतके अधिकांशको स्वायत्त कर लिया, तो कभी कन्नौजके राजाने काश्मीर तक जीतकर चक्रवर्तीपद प्राप्त किया। उन साम्राज्योंके उदयास्त भारतकी घरू घटनायें समझी जा सकती हैं। मुग़लोंसे पूर्व मुसलमानोंके कई वंशोंने भारतको जीतनेका प्रयत्न किया, परन्तु उनके प्रयत्न बीचमें ही रह गये। मुग़ल-वंशके बादशाह दूर देशके रहनेवाले थे; वह विजयकी कामनासे यहाँ आये थे, उन्होंने संग्राम किया, और विजय प्राप्त की। बढ़ते बढ़ते उनका राज्य यहाँतक बढ़ा कि दक्षिणका केवल थोड़ासा कोना शेष रह गया। कुछ देरके लिए प्रतीत हुआ कि काश्मीरसे कन्याकुमारीतक सम्पूर्ण देश मुग़लोंके चरणोंमें लोट जायगा, परन्तु शीघ्र ही भवितव्यताने अपने मज़बूत हाथोंसे उस विस्तृत और देखनेमें दृढ़ साम्राज्यको एक ऐसा झकझोरा दिया कि वह विशाल स्तम्भ रेतके ढेरकी तरह बिखर गया। मुग़ल-साम्राज्यका उदय प्रचण्ड वीरता और असाधारण सफलताके लिए, तथा उसका क्षय साम्पत्तिक उपभोगसे उत्पन्न होनेवाली घोर विलासिता और सफलताके मदसे जन्म लेनेवाली घृणायोग्य असहिष्णुताके लिए अपना सानी नहीं रखते। शायद रोमन-साम्राज्यके उदयास्त ही परस्पर-विरोधी गुण-अवगुणोंकी तीव्रतामें उसकी थोड़ी बहुत समता कर सकते हैं।

६

इस पुस्तकमें केवल मुग़ल-साम्राज्यके क्षयकी ही कहानी सुनाई गई है। यही कारण है कि यह इतिहास मुहम्मद ग़ौरी या बाबरसे आरम्भ न होकर अकबरके राज्यारोहणके साथ आरम्भ होता है। अकबरने मुग़ल-साम्राज्यको वैभवकी उस कोटितक पहुँचाया, जहाँसे उसका अधःपात शुरू हुआ। अकबरकी मृत्युसे पूर्व ही उस विशाल साम्राज्यके फेंफड़ोंमें क्षयरोगका प्रवेश हो चुका था। उस विशाल-कायमें धीरे धीरे क्षीणता आती गई, यहाँ तक कि पहले वह साहसिक वज़ीरोंकी चंचल वृत्तियोंका शिकार हुआ, मराठा सरदारोंके हाथकी कठपुतली बना और अन्तमें अंग्रेज़ सिपाहियोंके हाथों कुत्तेकी मौत मारा गया। अकबरके राज्यारोहणसे आरम्भ होकर यह कहानी सन् ५७ के ग़दरके उस परिच्छेदके साथ समाप्त होगी, जिसमे अकबरके उत्तराधिकारी राजकुमारोंको एक साधारण अंग्रेज़ अफसरने अकबरके पिता हुमायूँके मकबरेकी छायामे गोलियोंसे मारकर खाईमें फेंक दिया था।

७

यह पुस्तक सम्भवतः चार भागोंमे समाप्त होगी। मेरा विचार इसे निम्नलिखित भागोमे बाँटनेका है—

प्रथम भाग—यौवनकाल। अकबरके राज्यारोहणसे औरंगजेबके राज्यारोहण तक।

द्वितीय भाग—प्रौढ़ावस्था तथा क्षयका प्रारम्भ। औरंगजेबके राज्यारोहणसे शिवाजीकी मृत्युतक।

तृतीय भाग—क्षीणता और विनाश। औरंगजेबके उत्तराधिकारियोंके साम्राज्य-रक्षाके लिए व्यर्थ प्रयत्न।

चतुर्थ भाग—अन्तिम झलक और समाप्ति।

मैं जानता हूँ कि कार्य बड़ा परिश्रमसाध्य और कठिन है, परन्तु यदि किसी आकस्मिक दुर्घटनाने रुकावट न डाली, तो मेरा संकल्प है कि इसे पूर्ण कर ही डालूँगा।

८

मैंने सन् १९२५ में इस पुस्तकके लिखनेका संकल्प किया। विषयका अनुशीलन करने और पहले भागका खाका तैयार करनेमें लगभग दो वर्ष लगे। १९२७ के आरम्भमें मैं प्रथम भागकी तय्यारी कर चुका था। उसी वर्ष लेखका कार्य प्रारम्भ कर दिया, परन्तु अन्य बीसियों तरहकी फसावटोंके कारण वह बहुत ही सुस्तीसे चला। वर्ष भरमें केवल तीन परिच्छेद लिखे गये। मैं दिलमें डरने लगा कि यदि लेखकी गति ऐसी ही रही, तो पहले भागको समाप्त करनेमें ही छः सात वर्ष लग जायँगे; परन्तु चिन्ताओंको काटनेवाला भगवान् है। १३ दिसम्बर १९२८ के दिन दिल्लीकी अदालतने मुझे साढे तीन सालकी कठोर जेलका दण्ड दिया। वह दण्ड सेशनकी अपीलपर केवल ६ मास महज़ कैदका ही रह गया, परन्तु इस पुस्तकके प्रथम भागको समाप्त करनेके लिए छह मास भी बहुत थे। दिल्ली-जेलके अंग्रेज सुपरिंटेंडेंटने मेरी इस प्रार्थनाको सहर्ष स्वीकार कर लिया कि मुझे इतिहास लिखनेकी सामग्री दे दी जाय। इस अनुग्रहके लिए मैं उस भले आदमीका कृतज्ञ हूँ। जेलमें कोई दूसरा कार्य तो था नहीं, मैं था और मेरी कोठरी थी। पढ़ना और लिखना—दो ही काम थे। खूब पढा और खूब लिखा। जिस कार्यको सालोंमें समाप्त करनेकी आशका थी, वह पहला भाग लगभग तीन मासमें समाप्त हो गया। मैं १३ दिसम्बर १९२८ को दिल्ली-जेलमें गया, और १५ मार्च १९२९ को फीरोजपुर-जेलकी कोठरी नं० १३ में दिनके ११ बजेके लगभग मैंने पहला भाग लिखकर समाप्त कर दिया।

९

पहला भाग पाठकोंकी सेवामें समर्पित है। पाठक इसे यह समझकर न पढ़ें कि किसी लेखककी कलममें खुजली पैदा हुई, या कोई दूसरी आजीविका न थी, इस लिए किताब ही लिख डाली। यह पुस्तक हृदयमें उत्पन्न हुए एक वलवलेका परिणाम है। यह गहरे प्रेम और प्रयत्नका फल है। सम्भवतः इसकी समाप्तिमें चार पाँच वर्ष लगेंगे। जब तक लेखक इसे समाप्त न कर लेगा, तबतक उसे रातको चैनसे नींद न आयगी। इसे लिखनेके लिए पर्याप्त समय न मिलना असम्भव प्रतीत हुआ, तो शायद लेखक फिर एक दो बार सरकारका मेहमान बननेको भी तय्यार हो जायगा, परन्तु इस संकल्पको तो पूरा करेगा ही।

१०

ऊपरकी पंक्तियाँ आजसे ३ वर्ष पूर्व लिखी गई थीं। उस समय यह विदित नहीं था कि मेरी भविष्यवाणी इतने शीघ्र सच्ची होगी। १९३० मे फिर भारतवर्ष सत्याग्रह आन्दोलनके तूफ़ानसे कम्पायमान हो उठा। इस पुस्तकका लेखक भी उस तूफ़ानसे न बच सका। उसे फिर एक बार भारत-सरकारका मेहमान बनकर उस होटलमें रहनेका सुअवसर मिला, जिसका नाम दिल्ली-जेल है। इस पुस्तकके दूसरे भागका अधिकांश दूसरी जेल-यात्राका फल है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

प्रतीत होता है, तीसरा भाग महाप्रभुओंकी तीसरी कृपासे लिखा जायगा। तथास्तु।

१८ अगस्त १९३१ —इन्द्र

इस पुस्तकके शुरूके ही कुछ फार्म छप पाये थे कि महाप्रभुओंकी कृपा हो ही गई और लेखक महाशय छह महीनेके लिए फिर सरकारके मेहमान बन गये। इस समय वे मुलतान-जेलमें हैं। आशा है कि इस यात्रामें पुस्तकका कमसे कम तीसरा भाग अवश्य लिख जायगा। २०-२-३२

—प्रकाशक

हमारे ऐतिहासिक ग्रन्थ

आयर्लेण्डका इतिहास

यह ग्रन्थ दो खंडोंमे विभक्त है। पहले भागमे इतिहास और दूसरे भागमे प्रसिद्ध प्रसिद्ध आयरिश देशभक्तोंके जीवन-चरित है। इतिहास भारतवासियोंको दृष्टिमें रखकर लिखा गया है और इस कारण कई अध्यायोंमें भारतके इतिहासके साथ आयर्लेण्डके इतिहासकी तुलनात्मक आलोचना की गई है, जो हम लोगोंके लिए बहुत ही शिक्षाप्रद है। इसमे पराधीन आयरिश नेताओंके सैकड़ों वर्षोंतक चालू रहनेवाले अदम्य उत्साह और उनके आन्दोलनोंको दवानेके लिए जो राक्षसी प्रयत्न किये गये उनका ज्ञान यहाँके प्रत्येक देशभक्तको होना चाहिए। मूल्य सजिल्द ग्रन्थका २।)

भारतके प्राचीन राजवंश

इस ग्रन्थके तीन भाग प्रकाशित हुए है। **पहले भागमें** क्षत्रप, हैहय, परमार, पाल, सेन और चौहान वंशोंके इतिहास है। इस भागकी अब एक भी कापी नहीं है।

दूसरे भागमें शिशुनाग, नन्द, ग्रीक, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, आन्ध्र, शक पल्हव, कुशान, गुप्त, हूण, वैस, मौखरी, लिच्छवि राजवंशोंका सिलसिलेवार इतिहास है, साथ ही यशोधर्म, विक्रमादित्य, कालिदासके विषयमे बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है। भारतीय लिपि और प्रत्येक वंशके सिक्कोंका विवरण भी इसमे है। मूल्य ३)

तीसरे भागमें शुरूसे लेकर अबतकके राष्ट्रकूटो अर्थात् राठोड़ों और गहरवालोका विस्तृत इतिहास है। अर्थात् जिस समय पहले पहल राष्ट्रकूटोंने दक्षिणमें अपना राज्य कायम किया था, उस समयसे लेकर कन्नौज होते हुए मारवाड़में

आकर राजस्थान, मालवा और महीकांठा आदिमें उनके वंशजोद्वारा स्थापित किये राज्योंका—मान्यखेट, लाट, सौंदत्ति हस्तिकुंडी, धनोप, कन्नौज, जोधपुर, बीकानेर, ईडर, सैलाना, रतलाम, सीतामऊ, अमझारा, किशनगढ़, अहमदनगर, झाबुआ, आदिका—अबतकका पूरा इतिहास। मूल्य ३)

तीनों भाग स्वतंत्र जुदा जुदा ग्रन्थ है। एकका दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, इससे पाठक चाहे जिस भागको मँगा सकते है। **पहले भागके न होनेपर भी दूसरे तीसरे भाग** खरीदे जा सकते है।

तीनो भागोंके लेखक साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ हैं जो इतिहासके गण्यमान्य पण्डित है। इन ग्रन्थोंपर उन्हें काशी नागरीप्रचारिणी सभा और अनेक दरबारोंसे बड़े बड़े पुरस्कार मिले है।

मध्यप्रदेशका इतिहास और नागपुरके भोंसले

मध्यप्रदेश (सी० पी०) पर राज्य करनेवाले मौर्य, आन्ध्र, गुप्त, परिव्राजक, उच्छकल्प, राजर्षितुल्यकुल, सोम-वंश, वाकाटक, हैहय, राठौर, सोलंकी, शैल, परमार, चन्देल, गोंड, मुसलमान आदि राजवंशोंका संक्षिप्त तथा भोंसलोंका विस्तृत इतिहास अबतककी उपलब्ध इतिहास-सामग्रीका पूरा उपयोग करके इस ग्रन्थमें संकलित किया गया है। भोंसलोंका इस प्रकारका क्रमबद्ध इतिहास अबतक प्रकाशित नहीं हुआ। भोंसला राजवंशके अनेक ऐतिहासिक और दुर्लभ चित्र इसमें दिये गये है। मूल्य १॥), सजिल्दका २)

१५०

विषय-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

अध्याय — पृष्ठांक

प्रथम भाग

मुग़ल-साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण

१—अकबरका राज्यारोहण

पानीपतकी दूसरी लड़ाईके अन्तकी घटना है। बंगालका सेनापति हेमू 'हवा' नामके हाथीपर सवार होकर मुग़ल-सेनाओंके मध्य-भागपर धावा कर रहा था। इतनेमें दुश्मनका एक तीर आकर उसकी आँखमें लगा। हेमू हौदेमें गिर पड़ा। सेनापतिसे विहीन सेना भाग खड़ी हुई और 'हवा' और 'हवाके सवार' मुग़ल-सेनापति बैरमख़ाँके बन्दी हुए। बैरमख़ाँ बदमाश काफिरको घसीटकर १३ वर्षके नाबालिग़ बादशाह अकबरके सामने ले गया, और उससे बोला कि 'तलवार लेकर मरते हुए काफिरके जिस्ममें भोंक दो'। बैरमख़ाँ केवल सेनापति ही नहीं

था, वह एक प्रकारसे युवक-बादशाहका संरक्षक भी था। अकबरने उसके प्रस्तावका जो उत्तर दिया, वह मुसलमान राज्यके इतिहासमें अनूठा है। उसने कहा कि 'मैं अर्धमृत शरीरपर हथियार कैसे चला सकता हूँ।' बात छोटीसी थी, पर उसने आनेवाले अकबरकी सूचना दे दी। वह वीर था-आखिर वह बाबरका पोता था। वह सभ्य था-हुमायूँका रुधिर उसके शरीरमें बहता था। यह दोनों गुण पैतृक हो सकते थे, पर एक तीसरा गुण था, जो उसका अपना था। वह गुण था—मनुष्यता।

१५५६ ई० में राजगद्दीपर बैठकर अकबरने एक नये युगको जन्म दिया। भारतके मुसलमानी राज्यमें उसने एक नये गुणका प्रवेश किया। उससे पूर्व वीर और चमकदार मुसलमान राजा हो गये थे, परन्तु उनमेंसे कोई भी मनुष्यतामें अकबरके समीप नहीं पहुँचता था। वीरका आदर, दीनपर दया, हृदयमें उदारता, शत्रुसे संग्राम और मित्रपर विश्वास यह मनुष्यताके चिह्न हैं। केवल वीरतासे राज्योंकी स्थापना हो सकती है, पर साम्राज्योंकी रक्षा नहीं हो सकती। जहाँ वीरताकी पक्की ईंटोंको मनुष्यताके मज़बूत सीमेण्टसे जोड़ा जाता है, वहाँ साम्राज्यकी अभेद्य दीवारें खड़ी हो जाती हैं। अकबरमें वीरता और मनुष्यताका मेल था। यही उसकी सफलताका मूल मन्त्र था।

हुमायूँके भाग्य खोटे थे। उसमें बाबरकी वीरता तो थी, पर अपने पिताका-सा सितारा नहीं था। जीवनभरमें उसने फिसलनेका कोई मौका नहीं छोड़ा। यदि फिसलनेका मौका हो, तो हुमायूँ उसे छोड़नेवाला नहीं था। जीवनभर वह सौभाग्यकी सीढ़ियोंपरसे फिसलता रहा। अन्तमें भी वह फिसलकर मरा। वह ईदके चाँदको देखता हुआ महलकी सीढ़ियोंसे उतर रहा था कि उसका पाँव फिसल गया। १३ वर्षके पुत्रको आपत्तियोंके अपार समुद्रमें तैरता हुआ छोड़कर अभागा हुमायूँ संसारसे चल दिया। उस समय मुगल-राज्यकी सीमा पंजाबसे आगे नहीं बढ़ी थी। नामको दिल्ली उसकी राजधानी

थी, परन्तु कुछ दिनोंमें वह भी बंगालके शासक हेमूकी अधीनतामें आ गई। हुमायूँकी मृत्युका समाचार सुनकर देशभरके साहसिक पुरुषोंके हृदयमें एक उमंगसी उठ खड़ी हुई। सबने शेरशाह सूरके चरण-चिह्नोंपर चलकर राज्य-स्थापनाका मन्सूबा बाँधा। उन सबमेंसे हेमू बनियेको ही कुछ क्षणिक सफलता प्राप्त हुई। वह जातका बनिया था, पर अपने गुणोंसे बंगालका सेनापति और शासक बन गया था। मुगल राज्यकी मृत्युका संवाद सुनकर उसने भारतके सम्राट् बननेकी दिलमें ठानी और एक ही झपटेमें बंगालसे दिल्ली तकका मैदान सर कर लिया। आगरेमें उसे किसीने न रोका, दिल्लीके शासक तार्दी बेगको उसने मार भगाया, और मुगल-सेनाके शेष भागको समाप्त करनेके लिए पंजाबकी ओर प्रयाण किया। दिल्लीमें अपना झण्डा गाड़कर हेमूने उचित समझा कि पदके योग्य ही नाम भी धारण किया जाय। जब पानीपतके मैदानमें 'हवा' पर उड़ा जा रहा था, तब वह हेमू नहीं था, राजा विक्रमादित्य था।

अकबर हेमूको परास्त करके दिल्लीमें प्रविष्ट हुआ। पुंश्चली दिल्लीने जैसे उससे पूर्व अनेक राजाओंका भुजायें फैलाकर स्वागत किया था, वैसे ही अकबरका भी किया। आगरेने दिल्लीका अनुकरण किया। कुछ समय पीछे बनारस ग्वालियर आदि नगर जीतकर अकबरके राज्यमें सम्मिलित कर लिये गये। सिकन्दरको पहाड़ोंमें ढूँढ़कर समाप्त किया गया। इस प्रकार चार वर्ष तक बैरमखाँने नाबालिग राजाके नामपर राज्यकी बागडोरको सँभाले रखा। १५६० में अकबरने स्वयं राजा बननेका निश्चय किया। बैरमखाँ परिवारका पुराना हितैषी सेवक था, अकबरका संरक्षक था, शासनका मुखिया था। एकसत्तात्मक राज्यमें ऐसे शासककी स्थिति बड़ी प्रबल परन्तु साथ ही खतरोंसे घिरी होती है। प्रबल इसलिए कि शासनके अधिकारके साथ राजाके प्रति उपकारका भाव भी मिला हुआ होता है। साधारण अहलकार राजासे उतना नहीं डरते, जितना उसके मंजूरे नज़रसे डरते हैं।

वह बादशाहसे दण्ड और दया दोनोंकी आशा रखते हैं, परन्तु उसके कृपापात्रसे केवल दण्डकी, क्योंकि बादशाहको जो सम्मानित पद जन्माधिकारसे प्राप्त होता है, उसके एजेण्टको वह भयद्वारा प्राप्त करना पड़ता है। लोग उससे डरते हैं, परन्तु वह कभी यह अनुभव नहीं कर सकता कि वह ज्वालामुखीपर नहीं बैठा है। उसका आसन सदा कम्पायमान रहता है। उसका पद राजाकी कृपा या लाचारीका परिणाम होता है। एक हवाका झोंका, एक मनकी मौज, एक छोटासा गुप्त तीर, कृपापात्रके भाग्योंका अन्त कर सकता है। बैरमखाँके साथ भी यही हुआ। ऊँचे पदके प्रति ईर्ष्या मनुष्यके स्वभावमें पाई जाती है। असमानता और डाह जौड़ी बेटियाँ हैं। दोनों इकट्ठी ही उत्पन्न होती हैं। बैरमसे ईर्ष्या करनेवालोंकी कमी नहीं थी। अकबरको जिस धायने पाला था, उसका नाम माहम अनगह था। हुमायूँकी मृत्युके पीछे अकबरने उसे माताके स्थानपर बिठाया। यदि मुल्कमें बैरमका राज्य था, तो महलमें माहम अनगहका सिक्का चलता था। दोनोंके राज्य अलग अलग थे, परन्तु दोनों एक दूसरेसे जलते थे। बैरम अकबरपर अद्वितीय राज्य चाहता था, और माहम अनगह अपने औरस पुत्र आधमखाँके लिए रास्ता साफ़ करना चाहती थी। वह पुत्र-स्नेहसे अन्धी औरत अकबरके हृदयमें बैरमके विरुद्ध ज़हर भरती रहती थी। बैरम यह जानता था। उसे यह भी मालूम था कि दरबारके अधिकांश सरदार उससे डाह रखते हैं। खतरेके समय अधिकार-सम्पन्न लोग अधिकार-रक्षाके लिए उतावले हो उठते हैं, प्रायः उतावलीमें नर्मसे नर्म प्रकृतिके मनुष्य भी कठोर हो जाते हैं। ज्यों ज्यों बैरमका खतरा बढ़ता गया, उसकी तबीयतमें कठोरता आती गई। वह सन्देह-शील, उग्र और प्रतीकार-प्रिय होता गया। एक शाही हाथीने खानखानानके हाथीको लँगड़ा कर दिया, इसपर शाही हाथीके महावतको मृत्युदण्ड दिया गया। अपने असली और कल्पित दुश्मनोंको नष्ट करनेके लिए उसने पीर मुहम्मद नामके मुल्लाको

कारिन्दा बना लिया था। उसके द्वारा बैरमने कई अत्याचार और अनाचार किये; परन्तु अन्तमें सन्देहशील मालिकके कोपसे मुल्ला भी न बच सका। जो लोग अत्याचारियोंके औज़ार बनते हैं, उनकी यही गति होती है। पीर मुहम्मद भी आखिर बेइज्ज़ती- से निकाला गया। उसे बैरमने मक्के जानेका आदेश किया, मानों अकबरको अपने खानखानानसे छूटनेका मार्ग दिखलाया। जब पीर मुहम्मद गुजरातके पास पड़ा था, तब बैरमके आदमियोंने उसे लूटकर बिल्कुल नंगा कर दिया। उस अत्याचारके औज़ारने हाथों हाथ कर्मोंका फल पा लिया।

अब बैरमखाँके गिरनेके लिए रास्ता साफ़ हो गया। शीघ्र ही वह नीचेकी ओर जाने लगा। यह कहना कि अकबरने केवल माहम अनगहकी बहकावटमें आकर बैरमको निकाल दिया, ठीक नहीं है। अकबरके हृदयमें उमंग थी। उसकी आत्मा बैरमकी जंजीरोंमें देर तक बँधी नहीं रह सकती थी। अवश्य ही बैरमखाँके अत्याचारोंको अकबर नापसन्द करता होगा। शिकारके बहा- नेसे वह अपने चचेरे भाई मिर्ज़ा अबुल कासिमको साथ लेकर दिल्ली पहुँचा और राज्यकी बागडोर अपने हाथोंमें ले ली। बैरम- खाँको अपने उस्ताद अबुल लतीफ द्वारा कहला भेजा कि 'मुझे तुम्हारी ईमान्दारी और सचाईका विश्वास था, इसलिए मैंने राज्यके सब आवश्यक कार्य तुम्हें सौंप छोड़े थे और अपनी खुशीमें मस्त था। परन्तु अब मैंने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें लेनेका निश्चय कर लिया है। उचित है कि अब तुम मक्केकी तीर्थयात्रापर चले जाओ, क्योंकि तुम बहुत समयसे उसकी इच्छा प्रकट करते आये हो। हिन्दुस्तानके परगनोंमेंसे एक काफी लम्बी चौड़ी जागीर तुम्हारे गुजारेके लिए दे दी जायगी, जिसकी आमदनी तुम्हारे एजेण्ट तुम्हें भेज देंगे।'

बैरम इस आज्ञाका अभिप्राय समझ गया। अधिकारके चिह्न बादशाहके पास भेज दिये और स्वयं मक्केके रास्तेपर रवाना हुआ; परन्तु शीघ्र ही उसका विचार बदल गया। मार्गमें विद्रोहका भूत

उसके सिरपर सवार हो गया। परन्तु अकबर हुमायूँ नहीं था। अकबरकी भेजी हुई सेनाने उसे मार-मारकर शिवालककी तलैटियोंमें खदेड़ दिया। बैरमने हार मान ली और आत्म-समर्पण कर दिया। उस समय अकबरकी मनुष्यता जाग उठी। राजनीतिके कोषमें राजविद्रोहसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। भारतवर्षके मुसलमान राजाओंकी साधारण राजनीतिके अनुसार अकबरको चाहिए था कि बैरमको मृत्यु-दण्ड देता; परन्तु हुमायूँका पुत्र किसी दूसरी ही मिट्टीका बना हुआ था। अकबरने बैरमको दरबारमें बुलवाया। दरबारके सब अमीर और खान उसके स्वागतके लिए द्वारतक गये। बैरम नंगे सिर नंगे पाँव गलेमें दुपट्टा लपेटकर अकबरके सामने हाज़िर हुआ और दण्डवत् लेट गया। अकबरने अपने सिंहासनपरसे उतरकर बैरमको उठाया, और प्रधान मन्त्रीके आसनपर बिठाते हुए कहा—"यदि बैरमखाँको फौजी जीवन पसन्द है, तो काल्पी और चन्देरीका शासन उसे दिया जाता है। यदि वह दरबारमें रहना चाहे, तो भी हमें कोई आपत्ति नहीं, पर यदि वह मक्केकी यात्राको ही पसन्द करे, तो उसके साथ यथोचित गार्ड भेजनेमें हमें कोई एतराज़ नहीं।" यह अकबरकी अन्तरात्माका शब्द था। बैरमखाँने आखिरी प्रस्तावको ही पसन्द किया; क्यों कि उसने कहा कि 'जब एक बार बादशाहका विश्वास उड़ चुका है, तो मै अब उसके सामने कैसे आ सकता हूँ?' वह मक्केकी यात्राके लिए रवाना हुआ; परन्तु अभी वह हिन्दुस्तानकी सीमासे पार नही हुआ था कि एक पठानने पुरानी दुश्मनीके कारण उसे मार डाला।

इस प्रकार अकबर एक बन्धनसे छुटकारा पा गया, परन्तु एक और बन्धन था, जिसे तोड़ना बाकी था। वह बन्धन था धर्म-माताका। अभी तक महलोंमें माहम अनगहका अखण्ड राज्य था। बैरमके मरनेपर उसने बाहिर भी अपने असरको फैलाना आरम्भ किया। औरत होनेसे वह स्वयं बाहिरके काममें दखल नही दे सकती थी, इस कारण अपने औरस पुत्र आधमखाँको सिफारिशोंके सहारे बहुत दूरतक पहुँचा दिया। वह मालवेका हाकिम

बना दिया गया। एक अयोग्य पुरुष केवल सिफारिशके सहारे ऊँचा पहुँचकर कितनी नीचता दिखा सकता है, यह आधमखाँने अपने व्यवहारसे सिद्ध कर दिया। मालवेमें बाजबहादुर नामका पठान हुकूमत करता था। उसे परास्त करके आधमखाँने उसके हरमपर कब्जा कर लिया। बाजबहादुरके हरममें एक रूपमती नामकी हिन्दू महिला थी, जो अपनी सुन्दरता और कविताके लिए भारतभरमें मशहूर थी। आधमखाँ उसपर आसक्त हो गया, और उससे प्रेमकी भिक्षा माँगने लगा। रूपमतीने भिक्षा देनेके लिए रातका समय निश्चित किया, और निश्चित समयपर बढ़िया कपड़ों और कीमती हीरोंसे सजकर मुँह ढाँपकर लेट गई। आशा और उमंगसे भरे हुए आधमखाँने बड़ी उत्सुकतासे रूपमतीके मुँहपरसे पर्दा उठाया, तो वहाँसे केवल लाशको पड़ा पाया। हिन्दू रमणीने ज़हर खाकर अपने सतीत्वकी रक्षा कर ली थी। यह खबर शीघ्र ही अकबरके पास पहुँच गई। आधमखाँने एक और भी अपराध किया। उसने बाजबहादुरसे जो खजाना लूटा था, उसे अपने पास रख लिया। पराजित शत्रुके हरम और खजानेपर उस बादशाहतमें बादशाहका ही अधिकार समझा जाता था। अकबर अपने अधिकारके बलपूर्वक समर्थनके लिए बाज़की गतिसे मालवेपर चढ़ आया। गगराँवके पास अकबरने आधमको जा दबोचा, और खजानें और हरमकी औरतोंको अपने कब्जेमें कर लिया। आधमके लिए सिर झुकानेके सिवा कोई चारा नहीं था, परन्तु सिर झुकाकर भी उसने नीचताका परित्याग नहीं किया। रातके समय वह बाजबहादुरसे छीनी हुई दो औरतोंको अकबरके हरममेंसे ले भागा। अकबरने भगोड़ेको पकड़नेके लिए सिपाही भेजे, जो उसे पकड़कर ले आये। उस समय माहम अनगहने उस क्रूरताका परिचय दिया, जो एक स्वार्थसे अन्धी स्त्रीमें ही सम्भव है। उसने उन दोनों औरतोंको इस लिए मरवा डाला कि वह अकबरके सामने आधमके विरुद्ध गवाही न दे दें। अकबरने इन दो खूनोंको कितना अनुभव किया होगा, यह कहना अनावश्यक है।

कुछ समय पीछे माँ और बेटेके अपराधोंका प्याला लबालब भर गया। दरबारमें आनेके पश्चात् आधमखाँकी महत्त्वाकांक्षा यह हुई कि वह वज़ीरे आज़म बने। उस समय वज़ीरे आज़मके पदपर शम्सुद्दीन नामका सरदार प्रतिष्ठित था। इसी शम्सुद्दीनने बैरमखाँको परास्त किया था। अकबरने उसे पंजाबकी हुकूमतसे बुलाकर वज़ीरका काम सौंपा था। दरबारको उसकी ज़रूरत भी थी। जिन लोगोंको बैरमखाँ जैसे वीरकी हुकूमत पसन्द नहीं थी, वह एक पुत्र-प्रेमसे अन्धी चालाक औरत, और एक स्वार्थान्ध क्रूर नवयुवककी हुकूमतको कैसे सह सकते थे। दरबारमें बड़ा असन्तोष था। शम्सुद्दीनके आनेसे कुछ सन्तोष हुआ। आधमखाँके हाथसे तो मानों भोजनका ग्रास छिन गया। वह तड़प उठा। रातके समय, जब शम्सुद्दीन अपने मित्रोंके साथ बैठा हुआ था, आधमखाँ हाथमें नंगी तलवार लिये हुए आया और उसने शम्सुद्दीनपर वार किया। वह बेचारा उठकर भागा; परन्तु षड्यन्त्रकारियोंने उसे घेरकर जानसे मार डाला। महलमें हाहाकार मच गया। खबर अकबर तक पहुँची। उसके धैर्यका भी बाँध टूट गया। वह क्रोधमें भरा हुआ अपने शयनागारसे निकलकर खाली हाथ ही बाहिरकी ओर लपका। आधमने जब अकबरकी शेरकीसी आँखें देखीं, तब उसकी सारी हिम्मत जाती रही। पैरोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगा। उस समय अकबरके हृदयसे दया भाग चुकी थी। आधमके हाथमें तलवार थी। अकबर खाली हाथ था। इससे अकबर घबराया नहीं। उसने इस ज़ोरसे आधमके मुँहपर घूँसा दिया कि वह अचेत होकर भूमिपर लोट गया। पास खड़े हुए आदमियोंको अकबरने हुक्म दिया कि आधमको बाँधकर किलेकी दीवारपरसे नीचे फेंक दो। उसी समय आज्ञाका पालन हुआ और आधमको दमके दममें कियेका फल मिल गया। हाहाकार सुनकर माहम अनगह भागी हुई अकबरसे आदमके लिए दया याचना करने आई, पर उस समय दयाके लिए कोई जगह बाकी नहीं रही थी। आधमकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी थी।

इस प्रकार अकबर हिन्दुस्तानका बादशाह बना।

२—चित्तौड़ गढ़

उत्कृष्ट मनुष्य ही उत्कृष्ट शासक वन सकता है। जिसमें मनुष्यताका अभाव है, वह सेना और शस्त्रकी सहायतासे विजय तो प्राप्त कर सकता है, परन्तु राज्यकी बुनियादको पाताल-तक नहीं पहुँचा सकता। साम्राज्यकी जो बुनियाद प्रजाके हृदयोंमें चुनी जाती है, वह मज़बूत और स्थिर होती है। वलके प्रयोगसे राज्यकी स्थापना की जाती है, और सहानुभूति, हितकामना और प्रेमके प्रयोगसे उसे दृढ़ किया जाता है। जो राजा वलहीन है, वह सीमाप्रान्तकी रेखासे आगे नहीं वढ़ सकता, और जो सहानुभूतिसे शून्य है, वह समयकी रेखाको पार नहीं कर सकता। अकवरने मुग़ल-राज्यको वलसे वढ़ाया, और सहानुभूतिसे स्थिर किया। वल और सहानुभूति यह दोनों मनुष्यताके चिह्न हैं। जिसमें वल नहीं, वह नपुंसक है, और जिसमें सहानुभूति नही, वह राक्षस है। साम्राज्योंकी स्थापना और स्थिरता मनुष्योंसे हो सकती है, नपुंसकों या राक्षसोंसे नहीं। अकवरकी सफलताका रहस्य उसकी मनुष्यतामें तलाश किया जा सकता है। वह आधमखाँको माफ़ कर सकता था, तो समय पड़नेपर उसे किलेकी दीवारपरसे गिरवा भी सकता था। उसने वैरमको मार-मारकर शिवालककी तलैटियोंमें खदेड़ दिया, तो नम्र होनेपर क्षमा भी कर दिया। यही अकवरकी नीतिका सूत्र था।

अकवरके जिन गुणोंने उसे क्रियात्मक राजनीतिमें आदर-णीय वनाया है, उनमेंसे मुख्य उसका हिन्दू प्रजाके साथ उत्तम व्यवहार था। अकवर मुसलमान था, परन्तु उसके अंतरंगसे अन्तरंग मित्रोंकी सूचीको पढ़िए, तो हिन्दू नामोंसे पूर्ण मिलेगी। राजा वीरवल सवसे अधिक समीपस्थ सखा था, राजा टोडरमल राज्यका प्रधान अर्थ-सचिव था, राजा भगवानदास और राजा मानसिंहसे अधिक आदर अकवरके दरवारमें शायद ही किसी

सेनापतिको प्राप्त हो। अन्तःपुरमें जोधाबाई पटरानी थी, उसके आगे किसीकी न चलती थी। इस प्रकार अकबरने अपने चारों ओर देशके असली निवासियोंको इकट्ठा कर लिया था। यह देखकर पहला विचार यही उत्पन्न होगा कि केवल नीति और सहानुभूतिके प्रयोगसे उसने हिन्दुओंको काबूमें किया, जिससे उसका साम्राज्य फैला, और मज़बूत हुआ; परन्तु जब हम इतिहासके पृष्ठोंको पलटते हैं, तब हमें दूसरा ही किस्सा सुनाई देता है। अकबरने हिन्दुओंके साथ जो लड़ाई लड़ी, उसके सामने कई अंशोंमें शेष सब लड़ाइयाँ मात हो जाती हैं। अकबरने हिन्दू शरीरके अन्य सब अंशोंको छोड़, उसके हृदयपर आघात किया। उसने देशकी लम्बाई चौड़ाईकी पर्वा न करके हिन्दू ध्वजापर ही आक्रमण कर दिया। वह यदि मानसिंह और टोडरमलकी मित्रताके कारण ख्यात है, तो इस बातको भी भुलाना नहीं चाहिए कि मेवाड़का मान-मर्दन करनेवाला भी अकबर ही था। राजपूतोंको अकबरने केवल अधिकारके लोभसे ही वशमें नहीं किया, उसने चितौड़गढ़पर इस्लामका झण्डा गाड़कर यह भी सिद्ध कर दिया कि उसमें राजपूतोंसे लड़नेकी शक्ति भी है। हमारा मत है कि चित्तौड़गढ़की फ़तहके बिना अकबरके भारतव्यापी राज्यकी स्थापना असम्भव थी। यदि वह हिन्दूपतिको परास्त न कर देता, तो राजपूतोंके प्रेमको भी न जीत सकता। अकबरके साम्राज्य-विस्तारकी पहली मंज़िल चित्तौड़की लड़ाई है। उसने असली अकबरको प्रकाशित किया। उसके शत्रु दहल गये, मित्रोंके हृदयमें ढारस बँध गया, और वीर राजपूतोंने उसे अपने प्रेमके लायक समझा। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उसका राजपूतोंसे सम्बन्ध उसी दिनसे प्रारम्भ होता है। अम्बरके राजा बिहारीमलने १५६२ में ही अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। राजा बिहारीमलके पुत्र राजा भगवानदास और पौत्र राजा मानसिंहने इस पनको खूब निभाया। अकबरने भी उन्हें आदर देनेमें कोई कसर बाकी नहीं रक्खी। विश्वासके

ऊँचेसे ऊँचे पद उन्हें प्रदान किये। राजा भगवानदासकी बहिन मुगल-सम्राट्की पटरानी बनी। इस प्रकार राजपूतोंसे अकबरके प्रेम-सम्बन्ध तो प्रारम्भसे अंकुरित होने लगे थे; परन्तु वह एक परिवारके साथ ही निजू सम्बन्ध रहते, यदि वह चित्तौड़गढ़को न जीत लेता। चित्तौड़गढ़का मान-मर्दन करके वह वीर राजपूतोंको जानी दुश्मन बना लेता, यदि उसमें वह सहानुभूति और उदारताकी मात्रा न होती, जिसके बिना शरीरको तो जीता जा सकता है, परन्तु हृदयको नहीं जीता जा सकता।

मुगल बादशाह अकबर और चित्तौड़के उस समयके राणा उदयसिंहके जीवन समानताओं और विषमताओंके बहुत ही बढ़िया नमूने हैं। घटनाओंके क्रममें एकसे, परन्तु परिणाममें भिन्न दो ऐसे समकालिक जीवनोंका मिलना कठिन है। उदयसिंह प्रसिद्ध महाराणा साँगाके सबसे छोटे पुत्र थे। उस नरकेसरीकी मृत्युके पीछे थोड़ेसे ही वर्षोंमें मेवाड़को अनेक आपत्तियोंका सामना करना पड़ा। उदयसिंहके पुत्र राणा प्रतापसिंह प्रायः कहा करते थे कि 'यदि दादा (महाराणा साँगा) के पीछे मैं राजगद्दीपर बैठता, तो मेवाड़का सर्वनाश न होता'। संग्रामसिंहकी मृत्यु १५३० में हुई और प्रतापसिंह १५७२ में सिंहासनारूढ़ हुए। बीचके ४२ वर्ष अजेय चित्तौड़गढ़के इतिहासमें पराजय और अपमानके वर्ष हैं। साँगाजीका उत्तराधिकारी रत्नसिंह बहादुर था, परन्तु क्रोधी था। वह केवल पाँच वर्ष तक राज्य करके बूँदीके राव सूरजमलके साथ द्वन्द्व युद्धमें मारा गया। रत्नसिंहके पीछे विक्रमादित्य गद्दीपर बैठा। वह राणा साँगाका पुत्र होनेका और भी कम अधिकारी था। वह क्रोधी था, आचारभ्रष्ट था, विवेकहीन था। राजपूत सरदार राजाका आदर करना जानते थे, परन्तु दुराचारीद्वारा अपमानको नहीं सह सकते थे। विक्रमादित्य वीरतासे शून्य क्रूर था, और उदारतासे शून्य दुराचारी था। परिणामतः सारे सरदार उससे बिगड़ गये। राजपूतानेके हृदयकी इस निर्बलताके समाचार चारों ओर फैल गये। महत्त्वा-

-कांक्षियोंके मुँहमें पानी आने लगा। गुजरातका बादशाह बहादुर-शाह मालवेके बादशाहको साथ लेकर चित्तौड़गढ़पर चढ़ आया। युद्धके आरम्भमें ही विक्रमादित्य परास्त हो गया, और युद्ध-क्षेत्र दूसरोंके हाथमें चला गया। कायर विक्रमादित्य चित्तौड़-की रक्षाका बोझ दूसरोंपर डालकर नपुंसकोंकी भाँति अलग बैठ गया, परन्तु राजपूतोंने अपने झण्डेको सहजहीमें नीचा नहीं होने दिया। राजपूत शेरोंकी तरह लड़े, और राजपूतनियाँ शेर माताओंकी तरह आनपर मर मिटीं। इस दूसरे साकेका वृत्तान्त राजपूतोंके इतिहासमें स्वर्णीय अक्षरोंमें लिखा जाने योग्य है; परन्तु उसके सुनानेका यह स्थान नहीं है। वीर-गाथा सुनाने-का आनन्द प्राप्त करने और उस निष्फल परन्तु संसारकी वीर-ताके इतिहासमें अमिट अक्षरोंसे लिखने योग्य जीवन-संग्राम-का संगीत गाकर श्रेय उपलब्ध करनेके लिए हृदयमें जो गुदगुदी पैदा हो रही है, उसे रोककर लेखकको इतना लिखकर ही सन्तोष करना पड़ता है कि प्रतापगढ़के सरदार बाघसिंह, चूँडा-वत राव दुर्गादास और कई अन्य वीरोंकी अपूर्व वीरता, और राठौरकुलकी यशस्विनी राजमाता जवाहर बाईकी ओजभरी ललकार भी बहादुर शाहके योरपियन तोपखाने और अनगिनत सैन्योंका सामना न कर सकी। ३२ हजार राजपूत चित्तौड़-गढ़की रक्षाके निमित्त बलिदान हुए, १२ सहस्र राजपूतनियाँ सतीत्व-की रक्षाके लिए अग्निदेवके अर्पण हुईं। चित्तौड़गढ़पर बहादुर शाहका झण्डा लहराने लगा।

परन्तु बहादुरशाह देरतक विजयका आनन्द न भोग सका। उसे समाचार मिला कि हुमायूँ बंगालकी ओरसे बढ़ता आ रहा है। चित्तौ-ड़को छोड़कर वह मालवेकी ओर रवाना हुआ। बरबाद चित्तौड़-गढ़को खाली पाकर विक्रमादित्य फिर राजगद्दीपर आ विराजा, परन्तु राणाकी आब उड़ चुकी थी। जो गद्दीकी मानरक्षा न कर सके, वह उसपर बैठने योग्य भी नहीं हो सकता। राजपूत सरदा-रोंने राणा साँगाके भाई पृथ्वीराजके खवास पुत्र बनबीरको-

आमन्त्रित करके बुला लिया। विक्रमादित्यके पक्षमें एक भी शब्द या एक भी हथियार न उठा। दुराचारी कायरोंकी प्रायः यही गति होती है।

राजपूत सरदारोंने वनवीरको इस आशयसे राजगद्दीपर बिठाया था कि वह राणा साँगाके छोटे पुत्र उदयसिंहका, जो उस समय पन्ना नामकी धायकी गोदमें पल रहा था, संरक्षक बनकर राज्य करे, और जब उदयसिंह बालिग हो, तब उसे राज्य सौंप दे। राज्यलक्ष्मी बड़ों बड़ोंको अन्धा कर देती है। वनवीरने राज्य-लक्ष्मीका निर्विघ्न पाणिग्रहण करनेके लिए असली उम्मेद-वारको मार्गसे हटा देनेका संकल्प किया। आधी रातके समय नंगी तलवार हाथमें लेकर वनवीर उस घरमें पहुँचा, जहाँ पलंग-पर बालक उदयसिंह सो रहा था। पन्नाको पहलेसे ही पापीके पाप-संकल्पकी खबर लग चुकी थी। उसने अपने कर्त्तव्यका भी निश्चय कर लिया था। उस स्वामिभक्त धायने वह काम किया, जो मानवीसे तो नहीं हो सकता। उसने स्वामिप्रेमपर पुत्रप्रेमको कुर्बान कर दिया, उसने अपने औरस पुत्रकी बलि चढ़ाकर चित्तौड़के न्यायसिद्ध राजाकी प्राणरक्षा कर ली। उदयसिंहको तो एक टोकरीमें डालकर दूसरी जगह भेज दिया, और उसके पलंगपर अपने दिलके टुकड़ेको डाल दिया। स्वार्थके पुतलेने मकानमें आकर पन्नासे पूछा कि उदयसिंह कहाँ सो रहा है। पन्ना बोल न सकी, उसने केवल हाथसे पलंगकी ओर इशारा कर दिया। उस कमरेमें यदि कोई चित्रकार होता, तो वह भलाई और बुराईके चित्रोंके लिए नमूने ले सकता था। एक ओर बुराई, हाथमें नंगी तलवार लिये अपने भाईका लहू माँग रही थी, दूसरी ओर भलाई दूधके प्यार और स्वामिकी भक्तिसे प्रेरित होकर अपने दिलके टुकड़ेको तलवारकी धारपर रख रही थी। वनवीरने आगे बढ़कर एक ही हाथमें पन्नाके लालका काम तमाम कर दिया। पन्नाने उस राक्षसी कृत्यको अपनी आँखोंसे देखा, पर इस डरसे कि कहीं भेद न खुल जाय उस चीखको भी रोक

लिया, जो दुःखी हृदयका आखिरी सन्तोष है। पन्ना राजपूत इतिहासमें अपना नाम अमर कर गई। जब तक संसारमें राणा प्रतापका यशोगान होता है, तबतक उसके पिता उदयसिंहपर अपने पुत्रको न्योछावर कर देनेवाली पन्नाकी कीर्ति भी गाई जायगी। जबतक भूमण्डलपर स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायणता और स्वार्थत्यागकी महिमाका आदर होगा, तबतक पन्नाका आसन भी आदरणीय आत्माओंकी श्रेणीमें बना रहेगा। ऐसे दृष्टान्त उपन्यासोंमें बहुत हैं, पर इतिहासमें कम।

उदयसिंहको बनवीरकी तलवारसे बचाकर कुम्भलमेरमें आशासाह नामके वैश्यके घर पहुँचाया गया, जहाँ उसका प्रेमपूर्वक लालन-पालन हुआ। ७ वर्ष तक चित्तौड़का भावी महाराणा एक वैश्यके पुत्रकी भाँति पला, परन्तु आगकी चिनगारी देरतक राखके नीचे छुपी न रही। ख़बर चारों ओर फैल गई। उधर उग्र बनवीर यह समझ कर कि मार्ग निष्कंटक हो गया, और भी अधिक उग्र हो उठा था। उसने अपने कठोर व्यवहारसे राजपूत सरदारोंको बिगाड़ लिया था। असली महाराणाके जीवित रहनेका समाचार पाकर प्यासे चातकोंको पानीकी फुआर मिली। राज्यके मुखिया सरदार कुम्भलमेरसे उदयसिंहको लिवा लाये और बनवीरको कह दिया कि अब आप अपने घरको तशरीफ़ ले जाइए। १२ वर्षकी आयुमें उदयसिंह राजगद्दीपर बैठा।

जिस वर्ष उदयसिंहका राजतिलक हुआ, उसी वर्ष अकबरका जन्म हुआ। उस समय अभागा हुमायूँ शहरसे शहर, और गाँवसे गाँवमें भागा फिरता था। अकबरका जन्म एक हिन्दू छतके नीचे हुआ था। उसका बचपन हुमायूँके दुर्भाग्य और भागदौड़में ही व्यतीत हुआ। वह भी एक प्रकारसे चित्तौड़से दूर कुम्भलमेरमें ही पला था, क्यों कि हुमायूँ दिल्ली और आगरेको दूरसे ही तरसती हुई आँखोंसे देख रहा था। जब उस अभागे परन्तु उदार

राजाका भाग्यचक्र फिरा और वह दिल्लीका अधीश्वर बना, तभी फिर भाग्यकी सीढ़ीपर उसका पाँव फिसल गया, और उदय-सिंहका प्रतिद्वन्द्वी १३ वर्षकी अवस्थामें दिल्लीके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ। बस, यही उदयसिंह और अकबरके जीवनकी समान-तायें समाप्त होती है। एकसत्तात्मक राज्यमें राजाके गुण-अवगुण, देश और जातिको किस प्रकार, बना या बिगाड़ सकते हैं; यह देखना हो, तो इन दोनों बाल-राजाओंके जीवनोंका अनुशीलन करो। एकने शून्यको साम्राज्यके रूपमें परिणत कर दिया, और दूसरेने सदियोंकी राजपूती शानको मिट्टीमें मिला दिया।

३—तीसरा साका

बहुतसे लेखक अकबरकी न्यायपरायणता और दयालुतापर इतना विश्वास करने लगे हैं कि वह उसके उग्र रूपको भूल गये हैं। अकबर समझदार था, और दयालु था, पर समझ और दया उसके स्वभावका केवल एक भाग था। उसके शरीरमें चंगेज़ख़ाँ और तैमूरके वंशोंका रुधिर बहता था। अन्दरकी तहमें वही क्रूर मुग़ल बैठा हुआ था, जो लड़ाई और हत्याको लड़ाई और हत्या-की ख़ातिर पसन्द करता था। वह हाथियोंकी लड़ाईमें खास मज़ा लेता था। केवल खूनी तमाशा देखनेके लिए हिन्दू फकीरोंकी पार्टियोंको आँखोंके सामने लड़ाता था, जब क्रोधसे उन्मत्त होता तब आपेसे बाहिर हो जाता था। लड़ाईके पीछे एक बार कत्ले आम बुलवा देना, या मरे हुए शत्रुओंके मस्तकोंका पहाड़ चुनवाकर उससे आँखोंको तृप्त करना केवल दयाके भावसे प्रेरित नहीं हो सकता।

अकबरकी महत्त्वाकांक्षा भी बहुत ज़बर्दस्त थी। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' के सिद्धान्तका वह माननेवाला था। काबुलसे लेकर समुद्रतक फैले हुए भारतको अपनी छत्रछायाके नीचे लाना

उसका दिनका विचार और रातका स्वप्न था। उस विचारकी पूर्तिमें जो काँटा दिखाई देता था, उसे उखाड़कर फेंक देनेमें अकबरको कोई भी संकोच न होता था। उसके शासनसम्बन्धी और मज़हबी सुधारोंका वृत्तान्त पढ़कर बहुतसे लेखक भूल जाते हैं कि अकबर एक बहुत ज़बर्दस्त लड़ाकू था। उसके शान्त साम्राज्यका आधार वह भयानक युद्ध थे, जिनमें उसे विजय ही विजय प्राप्त होती रही। केवल एक चट्टानपर उसका पौरुष टकराकर रह गया। एक बार सफलता भी दिखाई दी, परन्तु अन्तमें विफलता ही रही। एक मेवाड़के कठोर फौलादको छोड़कर शेष रियासतों या राज्योंकी दीवारें अकबरके तेजसे शीघ्र ही मोम बन गईं। यह समझना कि अकबर लड़ाईके लिए लड़ाई नहीं लड़ता था या उसके हृदयमें महत्त्वाकांक्षाकी कमी थी, मुगल-सम्राटके जीवनसे अनभिज्ञताके कारण ही हो सकता है। बाबर, अकबर और औरंगज़ेबमें केवल इतना ही भेद है कि बाबर कवि योद्धा था, अकबर राजनीतिज्ञ योद्धा था, और औरंगज़ेब धर्मान्ध योद्धा था। शेष बातोंमें वह तीनों मिलते हैं। तीनोंमें अत्यन्त महत्त्वाकांक्षा थी, बहादुरी थी, युद्धमें प्रवीणता थी, रुधिरमें गर्मी थी, और व्यक्त या छुपी हुई क्रूरता थी। बाबरमें कवियोंकीसी उपेक्षा-वृत्ति थी, अकबरमें राजनीतिज्ञोंकीसी मनुष्यता और उग्र भावोंको दबाकर सोच समझसे कार्य करनेकी शक्ति थी, औरंग-ज़ेबके वीरता, सादगी, दृढ़ता आदि सब गुणोंको एक धर्मान्धता दबा देती थी।

कई लेखकोंने चितौड़पर अकबरके आक्रमणोंके कारणोंकी तलाशमें बहुत सा दिमाग़ खर्च किया है। राणाने विद्रोही बाज़ बहादुरको आश्रय दिया था, मारवाड़का सरदार भी मुग़ल बाद-शाहसे डरकर मेवाड़में घुस गया था, राणाका लड़का शक्तसिंह पितासे बिगड़कर बादशाहके पास रहने लगा था, और उसीने बादशाहको भड़काया, इस प्रकारकी बहुतसी समूल या निर्मूल कल्पनायें की गई हैं, जिनका एक मात्र कारण यह प्रतीत होता

है कि लेखक लोग अकबरको केवल विजय-कामनासे आक्रमण करनेके अयोग्य समझते हैं। यदि अकबरके चरित्रको पढ़ा जाय, तो उसमें ५० फी सदी आक्रमण केवल इस आधारपर किये गये हैं कि मुगल बादशाह हिन्दुस्तानका जन्मसिद्ध मालिक है, जो कोई भी व्यक्ति हिन्दुस्तानकी सीमाके अन्दर रहता हुआ, स्वतन्त्र रहनेका दुःसाहस करता है, वह मृत्युके योग्य है। राणाका यही दोष था कि उसने अकबरकी सेवामें हाजिर होकर अधीनता स्वीकार नही की थी। अम्बरके राजा बिहारीमल, उनके पुत्र भगवानदास, और उनके गोद लिए पुत्र राजा मानसिंहने अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, और विवाहसम्बन्ध जोड़ लिया था। उससे अकबरके हृदयमें एक अपूर्व महत्त्वाकांक्षा पैदा हुई थी, जो चित्तौड़गढ़की दीवारोंसे जाकर टकराती थी। पूर्व या दक्षिणमें पाँव पसारनेसे पूर्व अकबरने इस दिलके काँटेको निकाल डालनेका निश्चय किया और १५६७ ई० के दिसम्बर मासमें चित्तौड़-विजयके लिए सेना-सन्नाहका हुक्म दिया।

जैसे अकबरके पितामह बाबरने मेवाड़के महाराणा संग्रामसिंहको सीकरीके पास पराजित कर दिया, परन्तु उसे झुकाया नही था, उसी प्रकार मेवाड़का प्रसिद्ध किला चित्तौड़गढ़ अलाउद्दीन और बहादुरशाहकी सेनाओंसे परास्त होकर भी झुका नहीं था। वह उसी प्रकार आकाशमें सिर उठाये बहादुरों और अत्याचारियोंको चुनौती दे रहा था। अखिल भारत-विजयका स्वप्न देखनेवाले अकबरको यह सह्य न हुआ। प्रतीत होता है कि उसका पहला आक्रमण असफल हुआ। पहले आक्रमणके बारेमें राजपूतानेमें यह प्रसिद्ध है कि जब मुसलमान सेनाने आक्रमण किया, तब राणाजीकी प्रेमपात्र एक साधारण स्त्रीने हथियार बाँधकर शत्रुओंपर धावा किया और बादशाहके तम्बूतक मार-काट करती चली गई। मुसलमान सेनामें खलबली पड़ गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि अकबरको लौट जाना पड़ा। स्त्रीकी सहायतासे राज्य रक्षा करके उदयसिंह सरदार लोगोंको ताना देने लगा कि जहाँ तुम लोगोंके

करते कुछ न बन पड़ा, वहाँ एक स्त्रीने विजय प्राप्त की। सरदारोंने इस तानेसे नाराज़ होकर उस स्त्रीको मरवा डाला। इससे राणामें और सरदारोंमें तनातनी हो गई। अकबरको जब इस घर-विरोधका पता चला, तब उसने दूसरी बार चढ़ाई की। इस कथामें कोई आश्चर्य नहीं। उदयसिंहके चरित्रके साथ इसका मेल मिलता है। वह आलसी था, विषयासक्त था। वह कुम्भ और साँगाके वंशके योग्य नहीं था, उसने राजपूत सरदारोंको खिजानेके लिए राणाके अयोग्य ताना दिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

अक्टूबरके महीनेमें अकबरकी सेनाओंने चित्तौड़गढ़को चारों ओरसे घेर लिया। किलेसे वाहिर लड़ना तो दूर रहा, उदयसिंहने तो भागकर जान बचाना ही ग़नीमत समझा। अभागा है वह देश, जिसकी आपत्तिके समयमें मुखिया भाग जाते हैं। बारूदसे शून्य किला बच सकता है, पर किलेदारसे शून्य किला नहीं बच सकता। राणा संग्रामसिंह तो अपनी राजधानीसे बहुत आगे जाकर सीकरीके मैदानमें शत्रुसे भिड़ते हैं, परन्तु उनका पुत्र अभेद्य दुर्गको छोड़कर भाग जाता है—जब भाग्य फूटते हैं, तब ऐसे ही संयोग मिला करते हैं। राजपूतानेके कुछ इतिहास-लेखकोंने उदयसिंहके इस कायरतापूर्ण कार्यके परिमार्जनमें लिखा है कि केवल चित्तौड़ गढ़के भीतर बैठ कर लड़नेसे उन्होंने यह अच्छा समझा था कि बाहिर रहकर मेवाड़के अन्यान्य गढ़ोंको भी शस्त्र वा सामानसे दृढ़ करें। जब एक बड़ी सेनासे किला घिर जाता है, तो लड़कर मारे जाने या अधीनता स्वीकार करनेके सिवाय कुछ बन नहीं पड़ता। कदाचित् इसी विचारसे राणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़कर चले गये हों; परन्तु मेवाड़के अन्य गढ़ोंको दृढ़ करनेके सिवाय और उसके भीतरकी सेनाको शस्त्रोंसे सुसज्जित कर देने और रसद इकट्ठी कर देनेके सिवाय वाहिरसे कुछ सहायता न दी। इसका कलंक जो उनके सिर मढ़ा जाता है, सो इस कलंकका निवारण यों हो

सकता है कि अकबरकी असीम सेनाका थोड़ेसे आदमियोंसे सामना करना मृत्युके मुँहमें प्रवेश करना था। इतिहासका लेखक इस लँगड़े बहानेको पढ़कर भी उदयसिंहको क्षमा नहीं कर सकता। उदयसिंहका भागना केवल एक ही दशामें क्षन्तव्य हो सकता था। यदि वह चित्तौड़ गढ़से बाहिर जाकर अकबरकी सेनाओंके रास्ते बन्द कर देता, या उन्हें इतना तंग करता कि भागना पड़ता, तो राणाका चित्तौड़को छोड़ जाना समझमें आ सकता था, परन्तु उदयसिंहने बाहिर जाकर जो कुछ किया, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि राणा साँगाके पुत्रने रणसे भागकर अपने पिताके नामको भी कलंकित किया। जिस चित्तौड़ गढ़से मेवाड़का ही नहीं राजपूतानेका मान था, देशके अनमोल मोतियोंका लहू जिसकी रक्षामें पानीकी तरह बहा था, और बह रहा था, उदयसिंहने उसके ध्वंसको देखा, और केवल अपनी चमड़ी बचानेपर सन्तोष किया। इससे अच्छा होता कि स्वनामधन्य जयमल और पत्ताकी तरह वह भी चित्तौड़की मान-रक्षाके लिए बलिदान हो जाता। यह भी असम्भव नहीं कि वह गढ़में रहकर उसकी रक्षा कर सकता। राणाकी उपस्थिति राजपूतोंके बलको सौ गुना कर देती। यह ठीक है कि वह यदि चाहता, तो बाहिरसे चित्तौड़की बहुत सहायता कर सकता था, परन्तु उसने जो कुछ किया, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि उदयसिंह बाप्पा रावलके वंशके उज्ज्वल मस्तकपर कलंक-के समान था।

अकबरकी अक्षौहिणी सेनाओंने मस्तकविहीन चित्तौड़को घेर लिया। राणा भाग गया, परन्तु राजपूतोंका खून ठण्डा नहीं हुआ था। प्रायः लिखा जाता है कि उस समयकी सेनायें राजा-के मरनेपर दमभर भी नहीं खड़ी होती थीं। चित्तौड़का तीसरा साका इस नियमका अपवाद है। राजा गीदड़की तरह भाग गया, इससे राजपूत सरदार घबराये नहीं। वह शेरोंकी तरह लड़े, और राजपूतोंकी तरह काम आये। वह वीरतापूर्ण रक्षाद्वारा

केवल राजपूतानेका ही नहीं, सारे देशका मुख उज्ज्वल कर गये। जबतक संसारमें वीरताका आदर होगा, तबतक उन बहादुरोंका यश गाया जायगा, जिन्होंने राजाके भाग जानेपर भी हिम्मत न हारी और अकबरकी अगणित सेनाओं और अपरिमित साधनोंकी पर्वा न करके जानकी बाजी लगा दी। वह हार गये तो क्या हुआ, लड़ाईमें हार और जीत तो होती ही है। असली चीज़ है मर्दानगी। इतिहासकी गवाही है कि हरेक राजपूत दस गुना होकर लड़ा, और सौ दुश्मनोंको यमलोक पहुँचाकर शान्त हुआ। अमरताके खातेमें नाम लिखानेके लिए यह पर्याप्त है।

चित्तौड़का किला उसी नामके पर्वतकी चोटीपर बना हुआ है। चित्तौड़ नामका पर्वत खुले मैदानमेंसे ऊँचे वृक्षकी भाँति सिर उठाये खड़ा है। उसकी लम्बाई सवा तीन मीलके लगभग है, और मध्यमें १२ गजके लगभग चौड़ाई है। आधारका घेरा आठ मीलसे कुछ अधिक है, और ऊँचाई कहीं भी पाँच सौ फीटसे अधिक नहीं है। अकबरके आक्रमणके समय उस पर्वतकी चोटीपर किला था, जिसकी चार-दीवारीके अन्दर महल, बाज़ार आदि भी बसे हुए थे। चारों ओर बहुतसे तालाब थे, जिनमें पानी भरा रहता था, और पीनेके काम आता था। किलेमें प्रवेश करनेके लिए बड़ा रास्ता एक ही था, जो खूब ढालू था। वह टेढ़ा मेढ़ा होकर ऊपरको चढ़ता था। मुख्य द्वार राम दरवाज़ा कहलाता था। अन्य छः दरवाज़ोंके नाम लखौताबाड़ी सूरजपौल आदि थे। रास्ते बहुत विकट थे, दरवाजे खूब मज़बूत थे, इस कारण एकाएक किसी दुश्मनका आ जाना असम्भव था। हिन्दुस्तानकी बादशाहतकी पूरी ताकत लेकर अकबर इस विकट दुर्गको फतह करनेके लिए धौलपुरसे रवाना हुआ। उसके पास बीस पच्चीस हजारसे कम सेना न थी। दीवारोंको तोड़नेके लिए ३०० मस्त हाथी थे, तीन तोपखाने थे, और कई मशहूर सेनापति थे। राजा टोडरमलका नाम उस समयके सेनापतियोंमें विशेष आदरसे

लिया जाता था। वह अकवरकी वगलमें विद्यमान था। इधर यह ताकत थी, और उधर राणासे विहीन केवल ५ हजार वीर राजपूत थे, जिनके पास न हाथी थे, और न तोपखाने थे, था केवल न मिटनेवाला स्वाधीनतासे प्रेम और न डरनेवाला वहादुर दिल। वस इन्हीं दोका सहारा लेकर मुट्ठीभर राजपूत देशभरकी शक्तिसे भिड़नेके लिए कटिवद्ध हो गये। छः मास तक अकवरने चित्तौड़ गढ़ घेरे रखा। इस वीचमें उसने उस समय प्रचलित सव रीतियोंका प्रयोग करके किलेको सर करनेका यत्न किया, परन्तु राजपूतोंकी वीरताके सामने कुछ वस न चला। सुरक्षित कूँचे वनाये गये, सुरंगें उड़ाई गईं, और सामनेकी पहाड़ियोंपर मोरचे जमाये गये। इधरसे जो उपाय होता था, वीर जयमलके सेनापतित्वमें राजपूत सेना उसीको निष्फल कर देती थी। एक वार वहुत मेहनतके वाद मुग़ल-सेनाने एक सुरंग उड़ाकर दीवार तोड़ दी। राजपूतोंने चमत्कार कर दिखाया कि एक ओर शत्रुसे लड़ते जाते थे और दूसरी ओर दीवार वनाते जाते थे। लड़ाईके वीचमें ही उन्होंने लम्वी चौड़ी पहलेकीसी दीवार वना ली। इस वहादुरीको देखकर दुश्मन भी दाँतों तले अंगुली दवाते थे।

अकवरने ६ मास तक मेवाड़को घेरे रखा। राणाके भाग जानेपर मेवाड़की सेनाओंके नेतृत्वका वोझ वदनौरके राठौर सरदार जयमलके कन्धोंपर पड़ा। जयमलने अपनी वीरता, परिश्रम और दूरदर्शितासे राणाको राजपूतोंके हृदयोंमेंसे निकाल डाला। वह हर मोर्चेपर, हर द्वारपर दिखाई देता था। सेनापतिके दृष्टान्तसे उत्साहित होकर एक एक राजपूत पाँच पाँचके वरावर वलसे लड़ा। अकवरकी सेना वड़े सावान और सुरंगें तैयार करके किलेकी दीवालोंको उड़ानेका यत्न कर रही थी। राजपूत सेनाके निशानची किलेकी दीवारोंपरसे गोली चलाकर काम करनेवालोंको यमलोक पहुँचा रहे थे। उनके जवावमें मुग़ल-सेनाके निशानची भी निशाना लगाये वैठे रहते थे, ज्यों ही मौका पाते थे, गोली दाग देते थे। स्वयं अकवर वड़ा भारी निशानची था। वह भी

दिनमें कई राजपूतोंको निशानेका शिकार बनाया करता था। एक दिन उसने एक सूराखमेंसे एक तेजस्वी राजपूतकी सूरत देखी और निशाना जमाकर गोली छोड़ दी। गोली लक्ष्यपर लगी। राजपूत सेनापति जयमल अपने देशकी रक्षा करते हुए स्वर्गलोकको सिधारे। जयमलके मर जानेपर राजपूत सेनाका सेनापतित्त्व एक ऐसे युवाको सौंपा गया, जिसकी कहानी राजपूतानेके घरोंघर गाई जाती है। उस वीर युवाका नाम प्रताप-सिंह या पत्ता था। केलवाका युवा सरदार माँका लाड़ला बेटा था। पिताके मर जानेपर माताने ही उसका पालन-पोषण किया था। सेनापतिका स्थान रिक्त होनेपर राजपूतोंने पत्ताजीको अपना मुखिया चुना। पत्ताजीके मुँहपर अभी अच्छी तरह मूँछें भी नहीं आई थीं। पराजय और उसके साथ मृत्यु निश्चित थी, तो भी वह वीर-माताके कोखसे जनमा हुआ वीर-पुत्र पीछे नहीं हटा, वीर-पनके निभानेके लिए खाईमें कूदनेको तैयार हो गया। विजय या वीर-मृत्युमेंसे एकको प्राप्त करनेका आशीर्वाद लेनेके लिए पत्ता अपनी माताके पास पहुँचा। माताका हृदय हर्षसे उछल उठा। वह जानती थी कि बेटा मरेगा, परंतु वह यह भी जानती थी कि क्षत्राणी युद्धमें वीर-मृत्यु प्राप्त करनेके लिए ही सन्तान पैदा किया करती है। उसके हृदयने कहा कि—

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः

अपने हाथसे पुत्रके शरीरपर केसरिया बाना पहिनाया, कमरमें तलवार बाँधी, सिरपर राजपूती फेंटा बाँधा और युद्धके लिए रवाना कर दिया। कहीं माता और उस राजपूत-बालाके स्नेहके कारण, जिसका कुछ समय पूर्व उसने पाणिग्रहण किया था, पुत्रका हृदय न डोल जाय, इस लिए वीर-जननीने अपने शरीरको भी शस्त्रोंसे सुसज्जित किया, अपनी पुत्र-वधूके शरीरपर अपने हाथोंसे शस्त्रोंका शृंगार किया और दोनों वीरांगनायें घोड़ीपर सवार होकर उसी मैदानमें खेत हुईं जिसमें पत्ताजी काम आये। आश्चर्य और अभिमानके साथ मेवाड़की रक्षामें

सन्नद्ध राजपूतोंने उन वीरांगनाओंको शत्रुकी गोलियोंसे आहत होकर गिरते देखा। पत्ताजी अकबरके आखिरी धावेमें मस्त हाथियोंसे लड़ते हुए काम आये। उदयसिंहका कलंक मेवाड़के मुखपरसे जयमल और पत्ताके रुधिरने धो दिया। वह युद्धमें काम आये, परन्तु उनका नाम मेवाड़के ही नहीं, अपि तु भारतके इतिहासमें अमिट अक्षरोंमें लिखा जाकर अमर हो गया है। जादू वह है, जो सिरपर चढ़के बोले। वीरता वह है, जिसे शत्रु भी सराहे। मेवाड़की रक्षामें राजपूतोंने जो वीरता दिखाई, उसकी प्रशंसा मुसलमान लेखकोंने भी की है। अकबर तो उससे इतना प्रभावित हुआ कि जयमल और पत्ताकी मूर्तियाँ बनवाकर उसने अपने किलेके द्वारपर स्थापित कीं। वीर ही वीरका आदर कर सकता है। अकबरने वीर-युगलका आदर करके सिद्ध कर दिया कि वह सच्चा वीर है।

मेवाड़-विजयके अन्तिम दृश्य रोमांचकारी हैं। जब राजपूतोंको निश्चय हो गया कि किलेकी रक्षा असाध्य है, तब उन्होंने संसारका मोह त्यागनेके लिए अपनी स्त्रियोंको अग्निदेवताके अर्पण कर दिया। वह तीसरे साकेका जौहर बड़ा भयंकर था। कई सौ राजपूतनियाँ राखके ढेरमें शामिल हो गईं। इधरसे निश्चिन्त होकर राजपूतोंने केसरिया बाना पहिना, विजया चढ़ाई और नंगी तलवारें हाथमें लेकर शहरमें डट गये। किलेका दरवाजा खोल दिया गया ताकि शत्रु बे-रोक-टोक अन्दर आ सके। पौह फटते ही मुग़ल-सेना चित्तौड़ दुर्गमें प्रवेश करने लगी। दरवाजा खुला पाकर समझा कि बे-रोक-टोक अन्दर तक चले जायँगे, परन्तु अन्दर घुसकर देखा तो सामने राजपूतोंकी छातियाँ दीवारकी तरह रास्ता रोके हुए हैं। शाही फौजकी गति रुक गई। जानपर खेलनेवाले सूरमोंकी छातियोंको लाँघकर जाना असम्भव प्रतीत होने लगा। तब अकबरने दूसरे शस्त्रका प्रयोग किया। लगभग डेढ़ सौ मस्त हाथी राजपूतोंमें छोड़ दिये गये। उन पर्वतोंके साथ पैदल राजपूत जिस वीरतासे लड़े, उसकी प्रशंसा मुसलमान लेखकोंने भी शतमुखसे की

है। यदि एक एक मस्त हाथीने कई कई राजपूतोंको कुचला, तो एक एक राजपूतने भी कई कई हाथियोंके सूंड काट डाले। मधुकर नाम-का हाथी बेतरह हत्याकाण्ड मचा रहा था। ईश्वरदास चौहान हाथमें नंगी तलवार लिये लपककर आगे बढ़ा और महावतसे हाथीका नाम पूछा। महावतके नाम बतलानेपर एक हाथसे हाथीका दाँत पकड़ लिया और दूसरे हाथसे भरपूर वार करते हुए कहा कि 'गजराजजी! हमारी मुठभेड़का हाल कद्रदान बादशाहको ज़रूर सुनाना।' एक हाथीने १५ राजपूतोंको मारा, और २० को घायल किया था। एक निडर राजपूतको यह देखकर क्रोध आया। उसने एक ही हाथमें उसका सूँड काट डाला। इस तरहकी अमानुषिक वीरता देखकर अकबर भी चकरा गया, और उसने ३०० और मस्त हाथियोंको छोड़नेका हुक्म दिया। यह काले बादल राजपूतोंपर बुरी तरह उमड़ पड़े। राजपूत पीछे नहीं हटे, परन्तु क्षीण हो गये। आखिर वह इन अन्धे पहाड़ोंसे कहाँ तक लड़ते। राजपूत सेनापति पत्ताने जब देखा कि हाथियोंके मारे सर्वनाश हुआ चाहता है, तब वह अपने आपको न रोक सका। कुछ चुने हुए सरदारोंको साथ लेकर उनपर टूट पड़ा। वह अमानुषिक बहादुरीसे लड़ा, परन्तु हाथियोंका पार न पा सका। थकानसे चूर होकर गिर पड़ा। उसे महावतने हाथीके सूंडमें लपेटकर बादशाहके सामने हाज़िर किया। बहादुर पत्ता थोड़ी देर पीछे मर गया। सेनापतिके मारे जानेपर राजपूत और अधिक जोशमें आये और भूखे बाघोंकी तरह शाही सेनापर टूट पड़े। अब तो अकबर भी घबरा गया; और उसने अपनी सेनाओंको कत्ले आमका हुक्म दे दिया। वह कत्ले आम अकबरके यशपर काला धव्वा बनकर बैठा है। उस घोर हत्याकाण्डमें ३० हज़ार आदमी काम आये, जिनमें लड़ाकू राजपूतोंके अतिरिक्त साधारण प्रजा भी बहुत थी। कहते हैं कि उस दिनके संग्राममें जो हिन्दू मारे गये, उनके जनेउओंका तौल साढ़े सत्तावन मन था! उसी दिनसे राजपूतानेमें साढ़े सत्तावनका अंक अनिष्ट हो

गया है। यदि किसी लिफाफेपर यह निशान कर दिया जाय, तो उसे कोई दूसरा नहीं खोल सकता; समझा जाता है कि यदि खोलेगा, तो उसे तीसरे साकेका पाप लगेगा। धीरे धीरे चित्तौड़का किला जनविहीन हो गया। उसमें लाशों ही लाशें दिखाई देती थीं। एक ओर राजपूतनियोंकी राखके ढेर पड़े थे; दूसरी ओर राजपूतोंका लहू नदीकी तरह वह रहा था। सारे किलेमें एक भी ऐसा राजपूत जीवित नहीं था, जो हाथमें तलवार ले सकता। सब धर्म और देशकी रक्षामें काम आ चुके थे। उस समय अकबरका चित्तौड़ गढ़पर अधिकार हुआ। संसारके इतिहासमें वीरताके दृष्टान्त तो बहुत हैं, परन्तु चित्तौड़ गढ़के रक्षक राजपूतोंकी वीरताकी समानता उनमेंसे शायद ही कोई कर सके। वह हार गये तो क्या हुआ, पर इतिहासमें वही विजयी समझे जायँगे, क्यों कि उन्होंने अपने घरबारकी रक्षामें बहादुरीसे आत्मसमर्पण कर दिया। जिन्हें प्रत्यक्षमें विजय प्राप्त हुआ, इतिहास उन्हें हारे हुए मानेगा, क्योंकि उन्होंने हाथियोंकी दीवारके पीछे खड़े होकर दूसरोंके अधिकारोंको कुचला, और निरपराध वीरों और वीरांगनाओंकी हत्याका पाप सिरपर लिया। अनन्त इतिहासमें इस दिनके शहीद राजपूत ही जीवित रहेंगे।

४—साम्राज्यके आधार

(१)

अकबरने अपने साम्राज्यकी स्थापना बहादुरीसे की, और उसकी स्थिरता और रक्षाका प्रबन्ध दूरदर्शितापूर्ण नीतिसे किया। उसके जीवनमें एक भी ऐसा युद्ध नहीं है, जिसमें आन्तिम विजय उसे प्राप्त न हुआ हो। हम देख आये हैं कि उस समयके सबसे बढ़िया वीर राजपूतोंको उसने किस धैर्य और वीरतासे परास्त किया। अन्य सब युद्धोंमें भी उसे सफलता ही प्राप्त होती रही। वह भाग्यका लाड़ला बेटा था। मेवाड़को छोड़कर और कहीं उसे

विजयमें सन्देह भी नहीं हुआ, और राणा प्रतापको छोड़कर और कोई ऐसा शत्रु उससे अपराजित नहीं रहा, जिसे उसने जीतनेका उद्योग किया। वह स्वयं वीर था, दूसरोंमें वीरता भर सकता था और इतना दिमाग रखता था कि बड़ीसे बड़ी सेनाका संचालन कर सके। यही कारण था कि वह प्रान्तके पीछे प्रान्तको जीतता गया, और जो प्रान्त एक वार हाथमें आ गया, उसे वापिस नहीं छोड़ा।

जिस समय वह राजगद्दीपर बैठा, उसका राज्य शून्यके बरावर था। सरहदकी लड़ाईने उसे नाम मात्रको दिल्ली और पंजावका हाकिम बना दिया था। परन्तु जबतक आसपासके प्रदेशोंपर शत्रुओंका राज्य था, तबतक इस छोटीसी हुकूमतको सुरक्षित नहीं समझा जा सकता था। १५५८ में ग्वालियर जीता गया, १५६१ में अफगानोंके हाथसे लखनऊ और जौनपुर छीन लिये गये। १५६२ में मालवा साम्राज्यमें शामिल हो गया, और १५६७ में चित्तौड़ फतह किया गया। १५७२ में गुजरात और १५७५ में बंगालको जीतकर मुग़ल-साम्राज्यमें मिला लिया गया। गुजरातमें फिर विद्रोह हो गया, १५८४ में दूसरी बार उसे जीतकर अकवरने कई वर्षोंके लिए शान्त कर दिया। १५८७ में काश्मीर, १५९० में उड़ीसा, १५९२ में कन्दहार और १६०० में खान्देश मुग़ल-साम्राज्यके अंग बन गये। इस प्रकार मृत्युके समय भारतके दक्षिण भागको और मेवाड़के कुछ जंगली हिस्सोंको छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारतवर्ष अकबरके राजदण्डके सामने सिर झुकाता था। अकबरकी सब लड़ाइयोंका मनोरंजक वृत्तान्त सुनाना इस ग्रन्थका उद्देश्य नहीं है। हमें अकबरके जीवनकी घटनाओंसे उतना ही सम्बन्ध है, जितना एक साम्राज्यके उदय और अस्तके इतिहास लेखकका साम्राज्यकी स्थापना करनेवालेके जीवनकी घटनाओंसे होना चाहिए। हमारे लिए इतना जान लेना पर्याप्त है कि अकबर बड़ा बहादुर और प्रतिभासम्पन्न सेनापति था। वह अपने समयका सबसे अधिक बहादुर तो नहीं, परन्तु सबसे अधिक युद्ध-कुशल

योद्धा अवश्य था। वह हारको जीतमें परिणत कर सकता था, दसको सौसे लड़ा सकता था और अपने धैर्यसे, घबराये हुए शत्रुको, विना हथियारके मार सकता था। मुगल-साम्राज्यकी स्थापना अकबरकी वीरताके विना असम्भव थी।

जो राज्य वीरतासे स्थापित किया गया, उसकी रक्षा और स्थिरता दूरदर्शितापूर्ण नीतिसे की गई। अकबर युद्धोंके कारण उतना ख्यात नहीं है, जितना विचार और नीतिके कारण। राजकार्यमें वह संसारके साम्राज्य स्थापित करनेवालोंके लिए हमेशा आदर्श बना रहेगा। अंग्रेज़ जातिने साम्राज्य चलानेका पहला पाठ यदि रोमसे सीखा था, तो दूसरा पाठ अकबरसे ही लिया है। यदि अकबर इतना उदार और गहरा राजनीतिज्ञ न होता, तो इतिहासके लेखक अलाउद्दीन खिल्जीकी तरह उसके युद्धोंका वृत्तान्त लिखकर इतिहासका एक पृष्ठ अवश्य भर देते, परन्तु आज जलालुद्दीन अकबरके नामका जो पुस्तकालय भरा पड़ा है, वह न दिखाई देता।

अकबरके साम्राज्यकी स्थापना युद्धोंसे हुई, परन्तु उसकी संगीन दीवारें निम्नलिखित आधारोंपर खड़ी की गई थीं—

(१) अकबरकी धार्मिक उदारता,
(२) हिन्दुओंको अपनानेका यत्न,
(३) लगान तथा अन्य शासनसम्बन्धी सुधार,
(४) साम्राज्यके कार्योंकी कड़ी देख-रेख।

अकबर भारतवर्षके मुसलमान राजाओंमेंसे सबसे बड़ा था। इस बड़प्पनका कारण यह था कि उसके दिमाग और दिल उन कड़े और संकुचित बन्धनोंसे आज़ाद थे, जिनके कारण भारतके मुसलमान शासक प्रजाके हृदयमें गहरा स्थान नहीं प्राप्त कर सकते थे। अकबरके दिमाग़की उत्कृष्टता और दिलकी विशालता का सबसे बढ़िया नमूना और प्रमाण उसके धार्मिक विचारोंका विकास था। यद्यपि धार्मिक विचार शासनसे सीधा कोई

सम्बन्ध नहीं रखते, पर भारतमें मुसलमान राजाओंका शासन धार्मिक रंगसे रँगा हुआ था। महमूद गज़नवी और मुहम्मद गौरी भारतको लूटने और मजा उड़ाने आये, या यहाँ इस्लामका विस्तार करने आये, यह प्रश्न अब विवादग्रस्त नहीं रहा। वह लोग भारतरूपी सोनेकी चिड़ियाके अंडोंको बलात्कारसे लेने आये थे, और धार्मिक विचार केवल एक युद्धकी क्रन्दना थी। उस क्रन्दनासे मुसलमान बादशाहोंने पूरा लाभ उठाया। उनकी सम्पूर्ण नीति इस्लामके प्रचाररूपी केन्द्रके चारों ओर घूमती थी। इस्लामकी यह खासीयत है कि साधारण दशाओंमें वह मनुष्यके दृष्टिकोणको बहुत संकुचित कर देता है। हिन्दुस्तानका जो बादशाह जितना ही अधिक मुसलमान होता था, वह उतना ही अधिक हिन्दू प्रजाकी ओरसे उदासीन होता था। जरासा विरोध होनेपर जिहादका फतवा सादिर कर दिया जाता था। यदि मुसलमान हिन्दुओंको किसी तरह एकदम मुसलमान बना लेते, तो बात दूसरी हो जाती, परन्तु उस समयकी विद्यमान दशाओंमें भारी अधिकांश हिन्दुओंका था। कड़े इस्लामी शासनसे हिन्दू प्रजाको डराया जा सकता था; परन्तु उसपर राज्य नहीं किया जा सकता था। अकबरका हृदय स्वभावसे ही विशाल था। वह किसी एक संकुचित मजहबके घेरेके अन्दर नहीं रह सकता था। 'मेरी बात सर्वांशमें सत्य है, और दूसरेकी बात सर्वांशमें झूठी है' ऐसा समझनेके लिए जो मूढ़तापूर्ण आत्मविश्वास चाहिए, अकबरमें उसका अभाव था। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उसमें धार्मिक पुरुषोंके प्रति श्रद्धा नहीं थी। उसे विश्वास था कि उसका बड़ा पुत्र सलीम एक औलियाके आशीर्वादसे पैदा हुआ है, उसने उस औलियाकी कुटियाकी कीर्ति फतहपुर सीकरीका महल और किला बनाकर अमर कर दी। अजमेरमें चिश्तीकी दरगाहपर सैकड़ों मीलकी दूरीसे जाकर प्रति वर्ष नहीं तो दूसरे तीसरे वर्ष सिर नवाना उसने अपने

कर्तव्योंमें समझ रखा था। उसे फलित ज्योतिषपर विश्वास था, वह कभी कभी जादू-टोनोंकी ओर भी झुकता था; परन्तु इन बातोंसे केवल यह साबित होता है कि उसके हृदयकी प्रवृत्ति धार्मिक थी, और कि वह अन्य सब महापुरुषोंकी भाँति समयका पिता होनेके साथ साथ समयका पुत्र भी था। जो बातें उसमें और अन्य मुसलमान राजाओंमें समान थीं; वह समय, कुल और मज़हबकी दी हुई थीं; जो बातें उसमें विशेष थीं; वह उसकी थी। अकबर उन्हींके कारण महान् था।

अकबर भारतवर्षके मुसलमान बादशाहोंमेंसे पहला बादशाह था, जिसने देशके असली निवासियोंके सहयोगको अंगीकार किया। राजा बिहारीमल और राजा भगवानदास और पीछेसे राजा मानसिंहने अकबरकी तन-मनसे सेवा की। अकबरने अनुभव किया कि जहाँ बैरमखाँ और आधमखाँ जैसे कृतघ्न मुसल्मान भी हो सकते हैं, वहाँ राजा भगवानदास और राजा मानसिंह जैसे स्वामिभक्त हिन्दू भी विद्यमान हैं। उसके हृदयने कहा कि भलाई और सचाई किसी एक मज़हबी दायरेके अन्दर सीमित नहीं है, वह सब जगह पाई जाती है। यहाँसे अकबरके धार्मिक विचारोंमें-क्रान्तिका बीज बोया गया। उस बीजको फैज़ी और अबुल फज़लने सूफी विचारोंके जलसे सींचकर अंकुरित और पल्लवित किया। यह दोनों भाई वेदान्ती मुसलमान थे। दोनों ही मालिकके खुशामदी परन्तु और सब प्रकारसे उदार थे। यह दोनों अकबरके सलाहकार, वज़ीर और लेखक थे। इनके विचारोंकी उदारताने अकबरकी धार्मिक विचार-क्रान्तिपर बहुत बड़ा असर डाला।

विचार-क्रान्तिका पहला अध्याय जिज्ञासासे आरम्भ हुआ। फतहपुर सीकरीके मशहूर इबादतखानेमें हर सातवें रोज़ भिन्न भिन्न धर्मोंके पण्डित इकट्ठे किये जाते थे। मुसलमान मौलवी, हिन्दू पण्डित, ईसाई पादरी, बौद्ध भिक्षु और पारसी गुरु अपने अपने पक्षका समर्थन करते थे। बादशाहकी ओरसे अबुल फज़ल

अन्त्रीका कार्य करता था। वह बहसके लिए सवाल सामने रखता था, और मौका पाकर ऐसे शोशे छोड़ देता था कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी अपना पक्षका समर्थन छोड़कर परस्पर गाली गलौजपर उतर आते थे। अकबर मज़हबी गुरुओंकी मूर्खताओंका तमाशा देखता था। जब बादशाह फतहपुर सीकरीमें होता था, तब सातवें दिनके शास्त्रार्थ अवश्य होते थे। कई वर्षों तक जिज्ञासु बादशाह धर्मोंके पण्डितोंकी युक्तियोंको ध्यानपूवक सुनता रहा। वह अनपढ़ था, कान ही उसकी आँखें थीं, और इतिहासकी गवाहीसे मालूम होता है कि किसी आँखसे किताबें पढ़नेवालेने इतना गहरा और विस्तृत अध्ययन नहीं किया जितना गहरा और विस्तृत अध्ययन अकबरने किया था। भिन्न भिन्न धर्मोंके वाद-विवादमेंसे उसने यह सार निकाला कि हरेक धर्ममें सचाईका अंश विद्यमान है; हरेक धर्ममें सचाईको रूढि, ढोंग और कल्पनाके खोलमें ढकनेका यत्न किया गया है। आँखों-वाला आदमी उन ढकनोंके अन्दर छुपी हुई सचाईको सब जगह देख सकता है। परन्तु ना-समझ लोग सचाईको छोड़ रूढि ढोंग और कल्पनाके जालमें ही उलझ जाते हैं। वाद-विवादने अकबरकी धार्मिक उदारताको और भी अधिक पुष्ट कर दिया। इस्लाम उसे बहुत ही संकुचित और अधूरा प्रतीत होने लगा। हिन्दूधर्म, जैनधर्म और ईसाइयतके धार्मिक विचारोंमेंसे उसने बहुतसी कामकी बातें चुन लीं। वेदान्तके उपदेश उसे बहुत भाते थे। जैसुइट सम्प्रदायके पादरियोंको उसने कई बार निमन्त्रण दिया। कभी कभी तो लम्बी युद्ध-यात्राओंमें भी भिन्न भिन्न धर्मोंके विद्वान् पूरे लावलश्करके साथ घसीटे जाते थे।

विचारोंका असर व्यवहारपर भी पड़ने लगा। मुसलमान बादशाहोंकी कट्टर इस्लामभक्ति उन्हें मनुष्योंके चित्रोंका विरोधी बनाती थी, परन्तु अकबरकी ख्वाबगाहमें चित्रोंकी भरमार थी। अकबर चित्रकलाका प्रेमी था। बड़े बड़े कई चित्रकार उसके दरबारके साथ हमेशा रहा करते थे। उस समयके मुसलमान इति-

हास-लेखकोंने स्वीकार किया है कि हिन्दू चित्रकार अन्य सब चित्रकारोंसे उत्कृष्ट थे। वह दाढ़ी मुँड़ाकर रखता था, जो इस्लामकी दृष्टिमें एक अपराध है। वह सूर्यकी पूजा करने लगा था। जब दरबारमें दिया जलाया जाता था, तब वह सब दरबारियोंके साथ खड़ा हो जाता था। विशेष अवसरोंपर वह माथेपर टीका लगाकर और हाथमें ब्राह्मणोंसे जनेऊ बँधवाकर दरबारमें आया करता था। मुसलमान फकीर उसके यहाँ जितना आदर पाते थे, हिन्दू योगी उससे कम आदर नहीं पाते थे। धीरे धीरे उसने गायका वध कानूनसे बन्द कर दिया, पवित्र अग्निके जलाये रखनेकी आज्ञा दे दी, और महलमें होम करवाने लगा। मुसलमानोंके प्रचलित संवत् और तौलको रद्द कर दिया, और सबसे बढ़कर 'दीने इलाही' नामके नये सार्वजनिक धर्मकी बुनियाद डाली, जो यद्यपि अकबरके साथ ही दफ़न हो गया, तो भी कुछ समयके लिए धार्मिक मतभेदकी आगसे जलते हुए हिन्दुस्तानपर पानीके छींटे फेंक गया।

दीने इलाही धर्मका सारांश यह था। परमात्मा एक है। मसजिद, मन्दिर और गिर्जेमें उसीकी पूजा होती है। समयका बादशाह (अकबर) मज़हबके बारेमें अन्तिम प्रमाण है। नये धर्मके अभिवादनकी शैली भी नई थी। एक ओरसे कहा जाता था, 'अल्लाहो अकबर।' दूसरी ओरसे कहा जाता था, 'जल्ला जलाल हू'। इन दोनोंका शब्दार्थ इतना ही है कि 'परमात्मा महान् है' 'उसकी शान दिनों दिन चमके' परन्तु विशेषता यह है कि बादशाहका 'जलालुद्दीन अकबर' यह नाम एक ढंगसे उसमें प्रविष्ट हो गया है। इस नये धर्मका खलीफ़ा स्वयं अकबर ही बना। १५८० ई० के फरवरी मासमें वह नया खुतबा, जो खास मौकेके लिए तैयार हुआ था, पढ़ा जाता था। उस रोज़ सरकारी तौरसे नये धर्मकी बुनियाद डाली जानेको थी। हजारों आदमी बादशाहके मुँहसे नये खुतबेको सुननेको इकट्ठे हुए थे। अकबर मिम्बरपर आरूढ़ हुआ और खुतबा पढ़ने लगा। परन्तु रास्तेमें ही डगमगा गया।

भीड़का असर हुआ, या नये मज़हबकी जिम्मेदारीका, यह कहना कठिन है, परन्तु सदा विजयी बादशाह हार गया, और खुतवा दूसरे आदमीको पढ़नेके लिए देकर बैठ गया।

नये धर्ममें सब तरहके लोगोंको निमन्त्रण दिया गया था। हिन्दू मुसलमान ईसाई किसीके लिए रास्ता बन्द नहीं था। यद्यपि अकबरने नये धर्मके लिए बलात्कारका प्रयोग नहीं किया, तो भी प्रतीत होता है कि ऊँचे स्थानपर पहुँचनेके लिए नया धर्म एक सीढ़ी अवश्य समझा जाता था। सब लोग जानते थे कि दीने इलाहीको अंगीकार कर लेनेसे बादशाह प्रसन्न होगा। इतना होते हुए भी आश्चर्य है कि बहुत कम लोगोंने नया धार्मिक चोला पहिनना स्वीकार किया। मुसलमान दरबारियोंमेंसे कुछ थोड़ेसे लोग दीने इलाहीमें प्रविष्ट हो गये, परन्तु हिन्दुओंमेंसे केवल एक राजा बीरबलने ही अकबरको खलीफा स्वीकार किया। उस समयके हिन्दुओंकी धार्मिक दृढ़ताका यह भी एक प्रमाण है।

दीने इलाहीका अधिक प्रचार नहीं हुआ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने उस समयकी राजनीतिक परिस्थितिपर बड़ा भारी असर डाला। अबुलफज़ल और कई अन्य इतिहास-लेखकोंने सिद्ध करनेका यत्न किया है कि दीने इलाही मज़हब इस्लामकी ही शाखा थी, परन्तु इस नये मज़हबका भली प्रकार निरीक्षण किया जाता है, तो यही परिणाम निकलता है कि वह इस्लामके साथ बहुत ही कच्चे तागेसे बँधा हुआ था। नये मज़हबमें आनेके समय जिज्ञासुको यह लिखकर देना पड़ता था कि वह इस्लाम-का त्याग करके दीने इलाहीका स्वीकार करता है। वह एक नया मज़हब था, जिसका रसूल अकबर था। मालूम होता है कि अक-बरने बाधित होकर ही अपने रसूल होनेका दावा किया था। वह इस्लाममें सुधार चाहता था, पर उस मज़हबके चारों ओर कुरान हदीस और मुज़ताहिदके ऐसे घेरे पड़े हुए थे, कि किसीका बाहिर कदम रखना ही मुश्किल था। तब इसने घेरोंको तोड़ गिरानेका ही निश्चय किया। रसूलके स्थानपर अपने आपको रख

दिया। हदीस और मुज़ताहिदके ढकोसलोंको तोड़ डाला। इसके दो नतीजे हुए। प्रथम तो कट्टर मुसलमान अकबरसे असन्तुष्ट हो गये, और दूसरे अन्यधर्मावलम्बी लोग बादशाहके समर्थक बन गये। यह इसीका परिणाम था कि जहाँ अकबरको हिन्दुओंके साथ जीवन भरमें चित्तौड़-गढ़को छोड़कर और कहीं बड़ी लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी, वहाँ मुसलमान विद्रोहियोंके साथ, जिनमें उसके अपने भाई भी शामिल थे, जन्मभर लड़ना पड़ा। यदि वह अकबर न होता, तो कभी तख्तपर बैठा न रह सकता, धर्मान्ध मुसलमान उसे गद्दीसे उतार फेंकते; परन्तु वह भाग्यका धनी था। उसने जिधर अपने घोड़ेका मुँह किया, उधर ही विजयश्री हाथ बाँधकर खड़ी हो गई। जिसने सिर उठाया, वही कुचला गया। फल यह हुआ कि धर्मान्ध मुल्ला या उनके शागिर्द विद्रोही अकबरका बाल भी बाँका न कर सके। मुसलमानोंके निरन्तर विद्रोहका यह परिणाम हुआ कि अन्तमें अकबर मुसलमानोंसे बहुत खिझ गया। कई लेखकोंकी तो सम्मति है कि अन्तिम दिनोंमें वह उन मुसलमानोंपर जो दीने इलाहीमें शामिल नहीं हुए थे, अत्याचार करने लग गया था। जिसे मज़हबी अत्याचार कहते हैं, वह अकबरने कभी नहीं किया, परन्तु यह असन्दिग्ध है कि मुसलमानोंकी धर्मान्धतासे वह इतना तंग आ गया था कि साम्राज्यकी रक्षाकी खातिर कट्टर धर्मियोंको ऊँचे पदोंसे अलग करनेपर बाधित हो गया।

मुसलमानोंके विरोधने अकबरको हिन्दुओंकी गोदमें फेंक दिया। वह स्वभावसे ही उदार था। दीने इलाहीके जन्मसे बहुत पूर्व ही राजा भगवानदास और राजा मानसिंहसे उसकी दोस्ती हो चुकी थी। चितौड़-गढ़पर आक्रमण करनेसे पूर्व ही वह भावी जीवनके मार्गका निर्माण कर चुका था। उसकी आयु २० वर्षकी थी, जब वह माहम अनगहकी बेड़ियोंसे स्वतन्त्र हुआ। उसका पहला काम यह था कि लड़ाईमें पकड़े हुए कैदियोंको गुलाम बनानेकी जो प्रथा प्रचलित थी, उसे बन्द कर दिया। कुछ

समय पीछे अम्बरकी राजकुमारीसे उसका विवाह हो गया। १५६३ में बादशाह शिकारके लिए मथुरा गया। वहाँ उसे बतलाया गया कि जितने यात्री स्नानके लिए हिन्दू तीर्थोंपर जाते हैं, उनसे विशेष कर वसूल किया जाता है। अकबरको ऐसा कानून बिल्कुल वाहियात प्रतीत हुआ। उसने अपने वज़ीरको हुक्म दिया कि हरेक आदमीको अपने ढँगपर भगवानकी पूजा करनेका अधिकार है, इस कारण केवल पूजाका तरीका भिन्न होनेसे कोई दण्डका अधिकारी नहीं है। सारी सल्तनतमें हिन्दू यात्रियोंपर जो कर लगाया जाता था, वह उसी दिनसे मंसूख़ कर दिया गया। इस करके मंसूख़ हो जानेसे ख़ज़ानेमें करोड़ों रुपयेकी आमदनी कम हो गई। एक वर्ष पीछे अकबर एक कदम और आगे बढ़ गया। हिन्दुस्तानमें मुसलमान बादशाहोंने सब ग़ैर मुस्लिमोंपर जज़िया कर लगा रखा था। यह कर खलीफ़ा उमरके दिमाग़से उपजा था। फीरोज़शाह तुग़लकने कर लगानेके लिए ४०, २०, और १० टंकोंकी तीन श्रेणियाँ बना छोड़ी थीं। ब्राह्मणोंको गरीब समझकर उनसे केवल १० टंक और ५० जीतल वसूल किये जाते थे। इस करसे खजानेको बेतहाशा आमदनी थी। अकबरको यह एक धर्मान्धताका अत्याचार ही प्रतीत हुआ। उसने एक ही हुक्मसे सारे देशसे जज़िया कर हटा दिया। यह याद रखने योग्य बात है कि उस समय अकबरकी आयु केवल २१ वर्षकी थी। २१ वर्षके अनपढ़ युवकका सदियोंकी इस्लामी रूढ़िको एकदम तोड़ डालना सचमुच चमत्कार था। उस आदमीकी इच्छाशक्ति फ़ौलादसे भी अधिक मजबूत होनी चाहिए, जो चारों ओरसे कट्टर मुसलमानोंसे घिरा रहकर भी ग़ैर मुस्लिमोंपर लगाये हुए करको हटा सके। जिस प्रजाके क्षेमका श्रीगणेश ऐसा उत्तम हुआ, वह यदि दिनोंदिन बढ़ता गया तो कोई आश्चर्य नहीं। अकबरसे पूर्व किसी मुसलमान बादशाहने देशके असली निवासी—हिन्दुओं—को सल्तनतमें ऊँचा

ओहदा देनेका विचार नहीं किया था। उन्हें यह प्रस्ताव ही बेहूदा प्रतीत होता, परन्तु युवा अकबरने २१ वर्षकी आयुमें ही समझ लिया था कि किसी देशपर तबतक स्थायी रूपसे शासन नहीं हो सकता, जबतक उसके निवासियोंको शासनमें सम्मिलित न किया जाय। जो जाति हमेशा युद्धके शिविरमें बैठकर दूसरी जातिपर शासन करना चाहती है, वह सदा नाकामयाब होती है। अकबरने शासनमें ऊँचेसे ऊँचे ओहदे देते हुए कभी यह विचार नहीं किया कि जिसे वह ओहदा दे रहा है, वह हिन्दू है या मुसलमान। अकबरके राज्यमें सूबोंकी गवर्नरी, या फौजकी कमानका ऊँचेसे ऊँचा पद हिन्दुओंके लिए बिल्कुल खुला था। हिन्दूका मस्तक यह सुनकर अवनत हो जायगा कि चित्तौड़-गढ़के जीतनेमें बादशाहको जितनी मदद राजा भगवानदाससे मिली, उतनी किसी दूसरे सेनापतिसे नहीं मिली; परन्तु इससे उस उदार बादशाहकी नीतिकी सफलता अवश्य ही द्योतित होती है।

राजा भगवानदास, राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, राजा बीरबल, और तानसेनने अपने अपने ढंगपर अकबरको जो सेवा की और सहायता पहुँचाई, वह इतिहासके पृष्ठोंमें सूर्यकी रोशनीकी तरह चमक रही है। जिस समय मुसलमानोंके मजहबी जोशका तूफ़ान अधिकसे अधिक उमड़ जाता था, उस समय बादशाह जिन लोगोंपर भरोसा रखता था, उनमें हिन्दू सरदारोंके नाम मुख्य हैं। ज्यों ज्यों कट्टर मुसलमान अकबरसे बिगड़ते गये, त्यों त्यों वह अपनी नीतिपर मज़बूत होता गया। राज्यकालमें एक क्षणके लिए ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अकबर पछताया या देशके असली निवासियोंपर विश्वास करनेमें शिथिल हुआ हो।

कई हिन्दू लेखकोंने अकबरकी नीतिको 'हिन्दूकुश' नीति लिखा है। वह औरंगज़ेबकी अपेक्षा अकबरको अधिक खतरनाक समझते हैं। उस समय भारतवर्षकी असली प्रजा हिन्दू ही थे। मुसलमान विजेता बनकर राज्य करते थे, इस कारण इसमें तो

सन्देह नहीं कि जो नीति मुसलमानोंके राज्यको मज़बूत करनेवाली होगी, वह हिन्दुओंके लिए बुरी और जो मुसलमानोंके राज्यको निर्बल करनेवाली हो, वह हिन्दुओंके लिए अच्छी समझी जायगी। एक अपमान यदि अपमान समझा जाय, तो हट सकता है, परन्तु यदि वह मान समझा जाने लगे तो उसके हटनेकी आशा नहीं रहती। सिरपर नंगा जूता लगनेसे मूर्ख भी समझ सकता है कि मेरे सिरपर जूता लग रहा है, परन्तु रेशममें लपेटकर जूता लगनेपर राणा प्रताप जैसे तेजस्वी पुरुष ही अपमानका अनुभव कर सकते हैं। इस कारण कहा जा सकता है कि अकबरकी नीति हिन्दुओंके लिए अधिक हानिकारक थी, परन्तु एक इतिहास-लेखकको केवल एक पक्षके हानि-लाभसे गुण-दोषका फैसला नहीं करना है। यदि एक शासककी दृष्टिसे देखें, तो अकबर आदर्शके समीप पहुँच जाता है। एक ऐसी जातिपर राज्य करनेका, जो सभ्यता, धर्म और इतिहास सभीमें भिन्न हो, जो रास्ता अकबरने दिखलाया है, उससे दुनिया भरके शासक उपदेश ले रहे हैं। सुदीर्घकालतक वह एक आदर्श साम्राज्य-संस्थापक माना जायगा। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उसमें दोष नहीं थे, परन्तु साम्राज्यकी स्थापना और दृढ़ताके लिए प्रजाके साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए, अकबरने उसका आदर्श स्थापित कर दिया है। इतिहास-लेखक हिन्दुत्वका अभिमान रखता हुआ भी यह कहनेके लिए बाधित है कि भारतवर्षके इतिहासमेंसे यदि छह या सात महान् शासकोंके नाम चुने जायँ, तो अपनी सफल नीतिके कारण अकबरका नाम उनमें रखना पड़ेगा। अपने समयमें एक राणा प्रतापको छोड़कर कोई दूसरा व्यक्ति उसकी कमर तक भी नहीं पहुँचता था।

५—साम्राज्यके आधार

(२)

अकवरके शासन-सम्बन्धी सुधार साम्राज्यके स्तम्भ थे। वह सुधार दो हिस्सोंमें वाँटे जा सकते हैं। प्रथम वह सुधार जिन्होंने हिन्दुओंको मुसलमान-राज्यके कट्टर शत्रुसे हितैषी मित्र बना दिया, और दूसरे वह सुधार जिन्होंने राज्यको सुसंगठित और मज़बूत आधारपर खड़ा कर दिया। पहले प्रकारके सुधारोंके विषयमें हम चौथे परिच्छेदमें लिख चुके है, इस परिच्छेदमें हम उन सुधारोंकी चर्चा करेंगे, जिन्होंने सिद्ध कर दिया था कि अकबरकी प्रतिभा शासनमें भी उसी तीव्रता और आत्मविश्वाससे चलती थी, जिससे युद्धमें। सदियाँ वीत गई, और अवस्थाओंमें पूरा उलट-फेर हो गया, पर आज भी शासननीतिके वह करिश्मे, जिन्हें अकवर दिखा गया है, भारतके विदेशी राज्यमें जीवित हैं।

अकवरसे पहले मुसलमान राजा इन उसूलोंपर राज्य करते थे कि हिन्दुस्तान मुसलमान विजेताओंकी ज़ायदाद है, हिन्दू रियाया रहकर केवल मुसलमान विजेताओंकी कृपापर जी सकते है। उन्हें जीवित रहनेके लिए जज़िया नामका कर देना पड़ता था। मुसलमान वादशाह और मुसलमान लड़ाकू हिन्दुस्तानके मैदानमें फौजके कैम्पकी तरह रहते थे। वादशाहोंको मुसलमान सरदारों तथा सिपाहियोंपर भरोसा रखना पड़ता था। हरेक मुसलमान सिपाही, अपने आपको राज्यका स्तम्भ समझता था। जो दस सिपाहियोंको इकट्ठा कर सकता था, वह नवाव वन जाता था। विजयकी इच्छा रखनेवाले वादशाह इसी मसालेको एकत्र करके फौज वना लेते थे, और महत्त्वाकांक्षाको पूरा करते थे। वादशाह या सुल्तानकी इच्छा ही कानून थी। शेरशाह सूरको छोड़कर अकबरसे पहले किसी मुसलमान वादशाहने देशके लगान या अन्य

कानूनको नियममें लानेका यत्न नहीं किया। तलवार ही कानून था, और लड़ाकू सिपाही ही उसके चलानेवाले थे। काज़ी और अमीर अद्ल भी नियुक्त किये जाते थे, पर उनकी किताब और जिह्वा प्रायः तलवारकी दासी ही रहती थी।

अकबरके सुधारोंको हम तीन शीर्षकोंके नीचे ला सकते हैं—

(१) व्यक्तिगत निरीक्षण

(२) मशीनरीका सुधार

(३) लगान-पद्धतिका सुधार

(१) जहाँ कहीं भी एकसत्तात्मक ढंगपर राज्य चलेगा, वहाँ शासकका गुण या अवगुण राज्यकी अच्छाई या बुराईका कारण होगा। यदि शासक उदार है, तो शासन भी उदार होगा, परन्तु यदि शासककी दृष्टि संकुचित है, तो राज्यका संचालन भी अनुदार सिद्धान्तोंके अनुसार ही होगा। राजा मेहनत करेगा तो राज्य सुरक्षित रह सकेगा, राजा सुस्त हो जायगा तो राज्य बरबाद हो जायगा। अकबरकी सत्ता अबाधित थी। उसके राज्य-कालके यश या अपयशके लिए वह स्वयं उत्तरदाता है। मुसलमानोंके राज्य-कालके उतार चढ़ाव शासकोंके अवगुण या गुणके साथ जुड़े हुए हैं। बाबर बहादुर और साहसी था, उसने हिन्दुस्तानमें बादशाहत कायम कर दी, हुमायूँ था बहादुर परन्तु अस्थिरमति था, उसे पीठ दिखाकर भागना पड़ा। अकबर बहादुर था, साहसी था, परिश्रमी था और दूरदर्शी था। उसने मुग़ल-साम्राज्यकी फिरसे स्थापना की और उसकी जड़ोंको गहराई तक पहुँचा दिया। गहराई तक पहुँचने और परिश्रमसे समस्याको हल करनेकी जो शक्ति अकबरमें थी, वह कम लोगोंमें मिलेगी। उसने जितने विजय प्राप्त किये, वह अपने बाहुबलसे। उसने जितने शासन-सुधार किये, वह अपने मस्तिष्क-बलसे। वह कहा करता था कि 'यह सौभाग्यकी बात थी कि मुझे कोई योग्य वज़ीर नहीं मिले, यदि मिल जाते तो लोग यही कहते कि सब सुधार वज़ीरोंने ही किये हैं।' शासनके जितने महकमे थे, उन सबपर अकबरकी दृष्टि थी,

उनके चलानेमें उसका हाथ था। अकबरके समयमें शासन उत्तमतासे चला, और एकसत्तात्मक राज्यमें जहाँतक दोष कम हो सकते हैं, कम हो गये। इसका प्रथम कारण यह था कि अकबरकी दृष्टि शासनके हरेक महकमेपर रहती थी, और प्रतिभा तथा मेहनतकी कृपासे वह जिस काममें हाथ डालता था, उसे पूरा कर देता था। राज्यके हरेक महकमेपर उसकी कड़ी नजर रहती थी, और प्रतिभाका चमत्कार देखिए कि वह प्रायः हरेक प्रश्नके ठीक उत्तर तक पहुँचनेमें सफल हो जाता था।

(२) शासनके कारखानेको ठीक ढँगपर चलानेके लिए यह भी आवश्यक होता है कि मशीनको धो-माँजकर ठीक किया जाय। जो शासक मशीनका सुधार नहीं करता, वह अपना सारा बुद्धि-बल लगाकर भी राज्य-संस्थाको ठीक ढँगसे नहीं चला सकता। अकबरने सुल्तानी राज्यकी अनघड़ मशीनको सुघड़ बनानेके लिए बहुतसे सुधार किये, जिन्होंने यद्यपि प्रणालीको नहीं बदला, परन्तु उस समय राज्य चलानेवाले संगठनको अवश्य मजबूत बना दिया। राज्यका फौजी स्वरूप जैसाका तैसा बना रहा, परन्तु उसके दोषोंको यथाशक्ति दूर करनेके लिए अकबरने भरसक यत्न किया। वह गवर्नरोंपर कड़ी नजर रखता था। अपने जीवन-कालमें उसे जितने युद्ध करने पड़े, उनमेंसे अधिकांश अपने सूबेदारोंके विरुद्ध ही थे। जहाँ सुना कि सूबेदार बिगड़ने लगा है कि स्वयं पहुँचकर गर्दन दबा दी, जिससे या तो वह सीधे रास्तेपर आ गया या पदच्युत किया गया।

सूबों या अन्य अधिकारोंके बँटवारेमें अकबर सबसे ऊँचा स्थान योग्यता और कार्य-शक्तिको देता था। कोई हिन्दू है या मुसलमान, वह इस ओर ध्यान नहीं देता था। इसमें सन्देह है कि यदि राजा टोडरमलको केवल हिन्दू होनेसे शासनके काममें दखल देनेसे रोका जाता, तो अकबरके राज्यकालकी आधी चमक जाती रहती। जिस राज्यमें अधिकारियोंकी नियुक्ति योग्यतासे नहीं, रंग या जातिको देखकर की जाती है, उसमें कई तरहके दोष

आ जाते हैं। योग्यताका स्थान चापलूसी, रियायत और रिश्वतको मिल जाता है। अकबरने यथाशक्ति योग्यताको उचित स्थानपर बिठाया, और ऐसा करनेमें हिन्दू और मुसलमानके भेदको मिटा दिया। इससे अधिकारके लिए योग्यताका होना आवश्यक समझकर कार्यकर्त्ता अधिक मेहनत करने लगे।

सेना-विभागमें अकबरने यह रीति प्रचलित की कि रईसों और सेनापतियोंको ज़मीनें बाँट दीं। उन ज़मीनोंकी वही रक्षा करें, और वही उनसे लगान वसूल करें। ज़मीनके बदलेमें वह युद्धके समय सिपाहियोंकी परिमित संख्या लेकर राज्यकी सहायताके लिए उपस्थित हों। यह रीति आदर्शसे कितनी ही गिरी हुई हो, उससे पूर्ववर्ती रीतिसे अवश्य ही सुधरी हुई थी। पठान बादशाहोंके समयमें सिपाहियों या सिपहसालारोंको शान्तिकी दशामें अपना भोजन और निर्वाह स्वयं ढूंढ़ना पड़ता था, जिसे वह प्रायः गरीब रियायाके झोपड़ोंमें लूटद्वारा तलाश करते थे। अकबरने उनके लिए जायदादें निश्चित कर दीं, जिससे बहुत से अत्याचार और लूट खसोट कम होनेके अतिरिक्त सैनिक नौकरीमें कुछ स्थिरता भी आ गई।

(३) राज्य-प्रबन्धमें सबसे बड़ा सुधार, जिसके लिए अकबर विख्यात है, वह भूमि-करके सम्बन्धमें था। ज़मीनपर भारतवासी जीते हैं। खेती इस देशका पेशा है। भारतकी उर्वरा भूमि सोनेकी चिड़िया है। जो शासक इस चिड़ियाको खिला-पिलाकर सोनेके अण्डे देनेके योग्य दशामें रख सकता है, वह दौलतके ढेरमें लोट सकता है, परन्तु जो चिड़ियाका गला घोंटकर या पेट चीरकर अण्डे निकालना चाहता है, वह भूखा मर जाता है। अकबरसे पूर्वके मुसलमान बादशाहोंमें, एक शेरशाह सूरको छोड़कर अन्य किसीने भी उपर्युक्त सचाईको नहीं समझा था। वह चिड़ियाका पेट चीरकर अण्डे निकालना चाहते थे। अकबरने चिड़ियाको पालनेका निश्चय किया, और भूमिके लगानका ऐसा प्रबन्ध

किया कि आजतकके शासक उसपर 'वाह वाह' कहे विना नहीं रह सकते। भारतका राज्य पलट गया है, परन्तु राजा टोडरमलने जो लगानकी नीति प्रचलित की थी, सिद्धान्त रूपमें आज भी वही मानी जाती है। अकवरके वज़ीर राजा टोडरमलका नाम भारतके इतिहासमें अमर हो गया है। उस राजभक्त रजपूत क्षत्रियने भूमि-करको संगठित और नियमित करके अकवरके साम्राज्यकी जड़ोंको पाताल तक पहुंचा दिया, और आगे आनेवाले शासकोंको सुमार्ग दिखला दिया। अकवरको इस वातका श्रेय है कि उसने भूमि और भूमि-करके प्रजा और राजापर पड़नेवाले प्रभावको समझा, और राजा टोडरमल जैसे योग्य अर्थनीतिज्ञको खुले हाथसे कार्य करने दिया।

अकवरसे पूर्व मुसलमान वादशाह भूमि-करका एक ही उसूल मानते थे। जो कुछ जमीनसे मिले, ले लो, किसानके पास अगले साल वोनेके लिए अनाज नहीं वचा तो न सही, अगर वह भूखों मर गया तो वादशाहकी वलासे। भूमिकी उपजका अधिकसे अधिक भाग विजेताके कोषमें जाना चाहिए। परिणाम यह होता था कि उपजाऊ जमीनें वंजर होती जाती थीं, और ग्रामके ग्राम उजाड़ हो गये थे। मुसलमान शासकोंमेंसे शेरशाह सूरने पहले पहल इस उसूलको समझा कि ज़मीनकी उपज और सरकारकी माँगके वीचमें एक ऐसा हिस्सा भी रहना चाहिए, जो जमीनको सरसब्ज और किसानको जीवित रख सके, तभी वादशाहकी आय स्थिर हो सकती है। शेरशाहको समय न मिला, उसकी शक्ति भी कम थी। अकवरने इस उसूलको समझ लिया। समझानेवालेका नाम राजा टोडरमल था। यह वही राजा टोडरमल था, जिसने उस समयके हिन्दुओंको राजभाषा फारसी पढ़नेके लिए तैयार करके उन्हें राजकार्योंमें मुसलमानोंके समान अधिकार दिलानेका भी यत्न किया था। मुसलमानकालीन राजनीतिज्ञोंमें राजा टोडरमलका नाम सवसे ऊपर है।

राजा टोडरमलके किये हुए सुधारोंका उद्देश्य जमीनके परिमाण, उसकी उपज, और भूमि-करको निश्चित कर देना था। सबसे प्रथम भूमिका नपैना स्थिर किया गया। फिर सारी ज़मीनको नापा और उसकी उपजका हिसाब लगाया गया। ज़मीनको निम्न-लिखित चार हिस्सोंमें बाँटा गया—

(१) पूलाज—निरन्तर बोई जानेवाली जमीन,

(२) परौती—खाली छोड़ी हुई जमीन जो साल दो सालमें कामकी बन सकती है,

(३) चचर—तीन चार सालसे खाली छुटी हुई जमीन,

(४) बंजर—पाँच या उससे अधिक वर्षसे खाली छुटी हुई जमीन।

इन चारों प्रकारकी भूमियोंपर लगानकी भिन्न भिन्न मात्रायें लगाई गईं। किसी भूमिसे भी उपजका एक-तृतीयांशसे अधिक भाग लगानके रूपमें नहीं लिया जाता। यद्यपि प्राचीन हिन्दू नियमके अनुसार छठा या पाँचवाँ भाग ही लगानके रूपमें लिया जा सकता है, और इस दृष्टिसे अकबरका लगानसम्बन्धी निश्चय कठोर प्रतीत होता है, परन्तु मुसलमान शासन-कालमें सौ फी-सदी लगान भी असम्भव नहीं समझा जाता था, सारी भूमिका स्वामी बादशाह समझा जाता था, उसकी इच्छा थी कि वह किसानके पास एक समयका भोजन छोड़े या नहीं। इस अव्यवस्थाकी दशामें अकबरका लगानसम्बन्धी कानून रात्रिके घोर अन्धकारमें दीपकके प्रकाशके समान प्रतीत होता है।

जमीनकी उपज, और रियासतकी माँगके बीचमें किसानके भरण-पोषणके साधन छोड़नेके अतिरिक्त एक बहुत लाभदायक नियम यह बनाया गया था कि यदि किसी किसानको ज़मीनके बोनेके लिए आर्थिक सहायताकी ज़रूरत हो, तो राजकोषसे कर्ज़ दिया जाय और धीरे धीरे वसूल किया जाय।

लगानसम्बन्धी नियम केवल कागजपर ही नहीं रहे, उन्हें कार्यमें भी परिणत किया गया। जमीन नापी गई, और उसे

उपजाऊ बंजर आदि हिस्सोंमें बाँटा गया। लगानके वसूल करनेके लिए अफसर नियत किये गये। यह सोचकर कि वसूल करनेमें अन्याय न हो, अपील सुननेके लिए अलग अफसर नियुक्त किये गये। हर महीने या तीसरे महीने लगान वसूल करके खजानेमें भेजा जाता था। हरेक आदमीकी जायदाद और ज़मीनका चिट्ठा तैयार किया गया और हिसाब-किताब तथा जायदादसम्बन्धी सब कागज़ सरकारी दफ्तरमें प्रति मास भेज दिये जाते थे। लगानकी मात्राका निश्चय १९ वर्षके लिए किया जाता था ताकि किसान लोग सुरक्षित रहकर भूमिको बो सकें, उसकी उपजका आनन्द भोग सकें, और उसे अपनी समझकर उपज बढ़ानेके लिए यत्नवान् हों।

लगानसम्बन्धी सुधारोंने जहाँ एक ओर किसानोंको सुखी और रियायाको सन्तुष्ट कर दिया, वहाँ राज्यकी आमदनीको बढ़ा दिया, और स्थिर कर दिया। अब शासक सालभरकी आनुमानिक आयकी कल्पना करके वार्षिक व्ययका चिट्ठा तैयार कर सकता था। आय निश्चित और स्थिर हो गई, जिससे राजाके कर्मचारियोंके हृदयमें यह विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि उन्हें उनका वेतन मिल जायगा, और प्रजाको लूट-खसोटकर पेट-पालना करनेकी आवश्यकता न होगी।

राजा टोडरमलके इन सुधारोंने अकबरके राज्यकी नींवको पाताल तक पहुँचा दिया। प्रजा सन्तुष्ट हो गई, राज्यकर्मचारी स्थिरतासे कार्य करने लगे, और बादशाहको आमोद-प्रमोद करनेके लिए रियायाका लूटना अनावश्यक प्रतीत होने लगा। अकबरकी उदार और दूरदर्शितापूर्ण नीतिने उसे राजा टोडरमल जैसा योग्य मन्त्री दिया, और राजा टोडरमलने मुग़ल-साम्राज्यको स्थिरता प्रदान की। आजकल ब्रिटिश राज्यकी जो लगान-नीति है, वह उस लगान-नीतिका रूपान्तर मात्र है।

६—प्रताप और अकबर

तूफ़ान और चट्टानमेंसे कौन बड़ा है? तूफ़ान मकानोंको गिरा देता है, वृक्षोंको उखाड़ देता है, स्थलको जलमय बना देता है और पशु-पक्षियोंको बे-घर-बारका कर देता है। उस समय उसके प्रवाहको रोकना असम्भव सा हो जाता है। वह पानीमें तेलकी तरह आकाशमें फैल जाता है, उसकी गति आगे ही आगे चलती है, यहाँ तक कि सैकड़ों कोसों तक हाहाकार मच जाता है। आकाश और पृथ्वी जलमय दिखाई देने लगते हैं।

चट्टान अपने स्थानपर खड़ी है। वह न हिलती है न डोलती है। वह न फैलती है और न आगे बढ़ती है। तूफ़ान आया—आज नहीं आजसे सदियों पहले भी तूफ़ान आया—थोड़ी देरके लिए चट्टानको ढक लिया, उसपर चोटें कीं, उससे कुस्ती की, दो चार वृक्ष गिरा दिये, दो चार शिलायें लुढ़का दीं—सिर पीटा, हाथ-पाँव मारे, और थककर आगे चला गया। सैकड़ों तूफ़ान आये और चले गये, पर चट्टान अपनी जगह खड़ी है।

कहिए तूफ़ान बड़ा है या चट्टान? तूफ़ान संसारकी गतिका उदाहरण है, तो चट्टान स्थितिका। तूफ़ान क्षणका सूचक है, तो चट्टान सदियोंकी। तूफ़ान एक मनका उबाल है, परन्तु चट्टान मनुष्यकी स्थिर प्रकृति है। दोनोंमें बड़ा कौन है, और छोटा कौन, इसका उत्तर देना कठिन है।

अकबर तूफ़ान था, तो प्रताप चट्टान। वह तूफ़ान जब उमड़ा, तो बड़े बड़े महलों और अटारियोंके सिर झुक गये। उसकी सेनायें पानीकी बौछाड़की तरह आकाशमें फैल गई। उसकी वीरताने नदीकी भाँति उमड़कर जंगलोंको बहा दिया, और ग्रामोंको बरबाद कर दिया। उसकी प्रतिभा बिजलीकी तरह कड़ककर जिसपर पड़ी, उसे चकनाचूर कर गई। केवल वही बच रहे, जिन्होंने तूफ़ानको देखकर सिर झुका लिया, और साष्टांग प्रणाम करके

अधीनता स्वीकार कर ली, या बच रही वह चट्टान, जिसपर तूफ़ानने ठोकरपर ठोकर मारी, बिजली फेंकी, और गर्ज कर डराया, पर एक न चली। अन्तमें तूफ़ान उड़ गया, आकाश साफ़ हो गया, न वह गर्जन रहा, और न वह चमक, पर वह चट्टान जहाँकी तहाँ सिर उठाये खड़ी रह गई। अकबरकी प्रतिभा, और उसकी सैन्य-शक्तिने तूफ़ानकी तरह भारतको आच्छादित कर लिया—देशके शासकरूपी वृक्ष या तो झुक गये, या उखड़ गये, एक राणा प्रताप था जो न झुका और न उखड़ा। वह अपने मान-पर और अपनी आनपर डटा रहा। तूफ़ान उड़ गया, अकबर और अकबरके वंशज राजा आये और चले गये, आज उनके कई वंशज दिल्लीके कूचोंमें दर दरके भिखारी फिरते हैं, परन्तु राणा प्रतापकी सन्तान अब भी राजगद्दीपर विद्यमान है।

राजपूतानेके इतिहास-लेखक कर्नल टाडने अकबर और प्रताप-के संघर्षके सम्बन्धमें लिखा है कि अदम्य साहस, अटूट धैर्य, मानकी रक्षाका भाव, सहिष्णुता, और वह स्वामिभक्ति जिसकी बराबरी दुनियामें नहीं है, बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षा, चमकदार गुण, अनन्त साधन, और मज़हबी जोशके साथ टक्कर खा रहे थे, परन्तु उनमेंसे कोई भी उस अजेय आत्मा (प्रताप) का सामना नहीं कर सकता था। अकबरके इतिहास-लेखक विन्सेण्ट स्मिथने लिखा है कि अकबरके इतिहास-लेखक, जिन चमकदार गुणों या अनन्त साधनोंकी सहायतासे वह अपनी बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षा-को पूर्ण कर सका, उनसे ऐसे चौंधिया जाते हैं कि उन बहादुर शत्रुओंके लिए उनके पास सहानुभूतिका एक शब्द भी नहीं रहता जिनकी बरबादीपर अकबरका महल खड़ा हुआ था। वह पुरुष और स्त्रियाँ भी स्मरणके योग्य हैं। शायद वह पराजित स्त्री-पुरुष विजेताकी अपेक्षा अधिक महान् थे।

उदयसिंहकी मृत्युपर १५७२ ई० में प्रतापसिंह गद्दीपर बैठे। उस समय मेवाड़का राज्य हरतरह खोखला हो रहा था। खज़ाने-में पैसेका, सेनामें सिपाहियोंका, और दिलोंमें उत्साहका अभाव

था। चित्तौड़के अनमोल वीरोंके हृदय निराशाके पालेसे कुम्हला चुके थे। प्रतापने सिंहासनारूढ़ होकर चारों ओर दृष्टि उठाई, तो उसे वाप्पा रावलकी कीर्तिके खंडहर मात्र दिखाई दिये। वीरका हृदय उस विनाशके हाथको देखकर मुरझाया नहीं, प्रत्युत उसने दृढ़ संकल्प किया कि वह अपनी माके दूधकी लाज रखेगा, और चित्तौड़की गगनचुम्बिनी चोटीपर राजपूती ध्वजा-को फिरसे गाड़ कर दम लेगा। कार्य बड़ा भारी था। एक ओर अकबर जैसा शक्तिशाली सम्राट् जिसके बढ़ते हुए छत्रके सामने वीर राजपूत राजा भी सिर झुका रहे थे, सारे हिन्दुस्तानका खज़ाना, जिसमें करोड़ों रुपये थे, अनगिनत सिपाही, जो मुग़ल बादशाहकी आवाज़पर उमड़ पड़ते थे; और दूसरी ओर राज-धानीसे विहीन राज्य, ऊजड़ इलाका, खाली खजाना, और मुट्ठी-भर सिपाही। ऐसी दशामें वही वीर लड़नेकी ठान सकता था, जिसकी आत्मा प्रबल हो, जो भय किस चिड़ियाका नाम है, यह न जानता हो, जिसके लिए सांसारिक विघ्न कोई सत्ता न रखते हों और जिसका धैर्य अटूट हो। भाग्यवश महाराणा साँगाके नातीमें वह गुण विद्यमान थे। प्रतापने माके दूधकी शपथ खा-कर प्रण किया कि वह मेवाड़को स्वाधीन करायगा और सिसो-दिया वंशकी लाज रखेगा। वीरकी ओर वीर खिंचते हैं। बहादुर सेनापतिको पाकर गुफ़ाओंमें सोये हुए राजपूत शेर भी जाग उठे, और मेवाड़पतिके झण्डेके नीचे इकट्ठा होने लगे।

परीक्षाका समय शीघ्र ही आ गया। उस समय अकबर राजपूत कन्याओंसे विवाह करके राज्यकी नींवको सामाजिक सम्बन्धोंके वज्रलेप समान मसालेसे भर रहा था। जब महाराणा प्रतापके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि वह भी अपनी लड़कीका डोला मुग़लोंके हरममें भेज दे, तो उसने प्रस्तावको अपमानजनक समझा और घोषणा कर दी कि वाप्पा रावलके वंशका रुधिर पवित्र रहेगा। इस एक घोषणाद्वारा मेवाड़पतिने अपने आपको मुग़ल-सम्राट्का विरोधी बना लिया।

प्रतापका पहला कार्य राज्यकी सुव्यवस्था करना था। उस समय कुम्भलमेरका किला राजधानीका कार्य दे रहा था। राणाने उसे सुरक्षित करनेके लिए कई प्रकारके यत्न किये। अन्य दुर्गोंका भी पुनःसंस्कार किया गया। राज्यके कारखानेको यथा-सम्भव माँजा गया। मेवाड़के जो प्रान्त राणाके हाथसे निकल चुके थे, उन्हें शत्रुके लिए भी निकम्मा बना देनेकी चेष्टा की गई। इस चेष्टामें प्रतापको बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। यह आज्ञा प्रचारित की गई कि चित्तौड़के नीचेके मैदानोंमें कोई किसान खेती न करे, कोई ग्वाला जानवरोंको न चराये, और कोई गृहस्थ दिया न जलाये। इस प्रदेशको बिल्कुल उजाड़ कर दिया ताकि वहाँ शत्रु पैर न जमा सके। इस प्रबन्धसे राणाने अपने शत्रुओं-को पास आनेसे रोके रखा।

परन्तु बहुत देरतक यह पैतरेंबाजी जारी न रह सकी। राजा मानसिंहकी नासमझीने संघर्षका अवसर शीघ्र ही उपस्थित कर दिया। राजा मानसिंह अकबरके लिए शोलापुरको जीतकर हिन्दु-स्तानको वापिस आते हुए कमलमीरके किलेमें राणा प्रतापसे मिलनेके लिए ठहरा। राणाने स्वेच्छासे आये हुए मेहमानका विधिवत् सत्कार किया; परन्तु भोजनके समय स्वयं उप-स्थित न होकर राजकुँअरको भेज दिया। राजा मानसिंहने थोड़ी देरतक तो राणाकी प्रतीक्षा की, जब देखा कि विलम्ब अधिक होता है, तो कुमारसे पूछा। कुमारने उत्तर दिया कि राणाकी तबी-यत अच्छी नहीं है। राजा मानसिंह ताड़ गये कि राणा ऐसे आदमीके साथ भोजन नहीं करना चाहते, जिसके परिवारने मुसलमानोंके घरमें डोला भेजकर राजपूती शानपर बट्टा लगाया हो। शर्मानेकी जगह क्रोधित होकर उठ खड़ा हुआ, और चाव-लके कुछ दाने पगड़ीपर रखता हुआ बोला कि "तुम्हारी मान-रक्षाकी ख़ातिर हमने अपनी इज्जतको ख़ाकमें मिलाया, और अपनी बेटियें और बहनें तुर्कोंको दीं। लेकिन अगर तुम्हारा यही इच्छा है, तो ऐसा ही सही—अब इस देशमें तुम न रह सकोगे। अगर मैं

तुम्हारे अभिमानको चूर-चूर न कर दूँ, तो मेरा नाम नहीं।" इसी समय राणा प्रताप दरवाजेसे निकल आये, और शान्तिसे बोले कि 'मैं तुमसे भेट करनेको बिल्कुल तैयार रहूँगा।' इसी समय किसी मजाकियेने फवती उड़ाई कि 'अपने फूफाको साथ लाना न भूलिएगा।' क्रोधसे अंगार बना हुआ मानसिंह वहाँसे चला गया, और राणाकी आज्ञासे वह स्थान खोद और धोकर पवित्र किया गया।

इस प्रकार हल्दीघाटीकी प्रसिद्ध लड़ाईका सूत्रपात हुआ। मानसिंहने अपना वचन पूरा किया। थोड़े ही महीने बाद राणाने सुना कि प्रसिद्ध सेनापति महाबतखाँ आसफ़खाँ और अपने फूफेके लड़के सलीम * (भावी जहाँगीर) को साथ लेकर मानसिंह अरावली पर्वतकी घाटियोंमें उतर रहा है। शाही सेनाओंमें मुग़ल, राजपूत और पठान योद्धाओंके साथ ज़बर्दस्त तोपख़ाना था। इस शानदार समारोहका सामना करनेके लिए राणा प्रतापके पास २० हजार बहादुर राजपूत थे, और निडर हृदय था। उसी हृदय और धर्मके बलपर खोखले ख़जानेका स्वामी प्रताप असंख्य धनके मालिक अकबरकी विजयिनी सेनासे टक्कर लेनेके लिए उद्यत हो गया।

मुग़ल-सेनायें अरावलीके दक्षिण भागमें सिर उठाकर खड़े हुए गोगुण्डा नाम किलेको लेनेके उद्देश्यसे आगे बढ़ीं। गोगुण्डेको जो रास्ता जाता है, वह हल्दीघाट नामकी घाटीमेंसे होकर गुज़रता है। राणा प्रतापने अपनी सेनाओंका उसी स्थानपर सन्नाह किया था। घाटीके सामने चुने हुए राजपूत घुड़सवारोंके साथ स्वयं राणा विराजमान थे। पहाड़ोंकी चोटियों और रास्तोंपर भील लोग तीर कमान और पत्थर लेकर खड़े हुए थे। मुग़ल-सेना आगे बढ़ी, राजपूतोंने रास्ता रोका। भीषण संग्राम छिड़ गया। दोनों

* कई इतिहास-लेखकोंने लिखा है कि सलीम इस समय केवल ७ वर्षका था, इस कारण उसका लड़ाईमें जाना असम्भव है।

राणा प्रतापसिंह

अकबर (हिन्दू वेषमें)
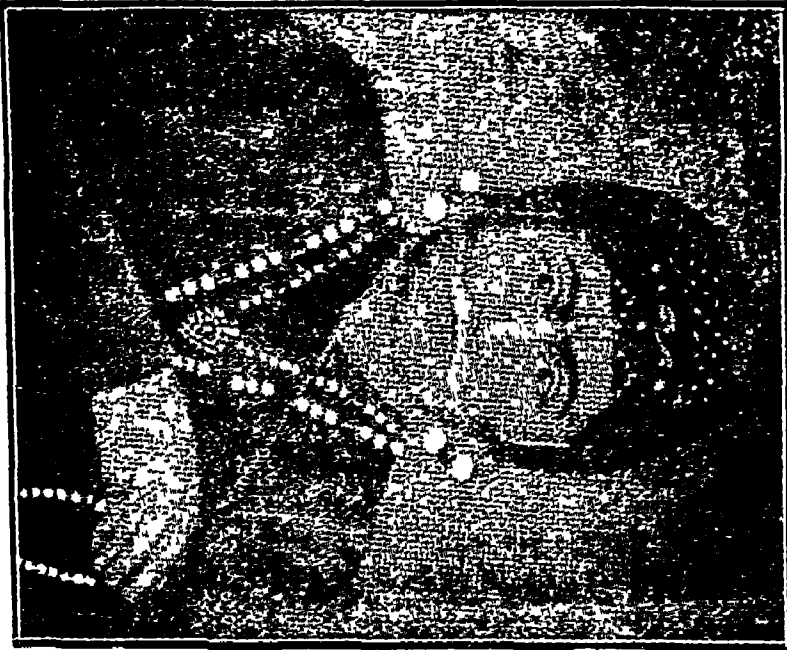
ओर जन-संहार होने लगा। राजपूत सरदार अपने कुल-गौरव और धर्मके नामपर आगे बढ़-बढ़कर वार करने लगे। राजपूतोंकी वीरता देखकर दुश्मन दंग रह गये। राजपूत जी तोड़कर लड़े, परन्तु तोपखाने और कई गुना सिपाहियोंके सामने उनकी क्या चलती?

राणा प्रताप इस दशाको सहन न कर सके। उस वीरने एक ही हाथमें संग्राम जीत लेनेका निश्चय किया, और स्वामिभक्त चेतकके एड़ी लगाई। चेतक अपने वीर सवारको लिए मुग़लोंकी सेनाको चीरता हुआ आगे बढ़ने लगा। राणाका लक्ष्य मानसिंहके हाथी तक पहुँचकर राजपुत्रको यमलोक पहुँचाना था। दायें और बायें नेजेका वार करते हुए राणा आगे ही आगे बढ़ते जाते थे। मुग़ल-सेना अपने सेनापतिकी रक्षाके लिए टूट पड़ी। उधर राजपूत सरदार राजपूतानेकी शानको शत्रुओंके घेरेमें घिरता हुआ देखकर प्राणोंकी ममता छोड़ आगे बढ़ने लगे। शत्रु और मित्रमें पहचान करना कठिन हो गया। मुसलमान इतिहास-लेखक बदायूनी भी दर्शकरूपसे मुग़ल-सेनाके साथ आया था। उसने अपने सेनापति आसफ़ख़ाँसे जाकर पूछा कि 'शत्रु और मित्रकी पहिचान कठिन हो रही है। ऐसे समयमें यह कैसे जाना जाय कि अपना राजपूत कौनसा है, और पराया कौनसा?' आसफ़ख़ाँने उत्तर दिया कि 'तुम राजपूतोंके गोली मारे जाओ, वह अपना हो या पराया। काफ़िर किसी ओरका मरे, इस्लामके लिए अच्छा है।' इस प्रकार जहाँ राणाके राजपूतोंका नाश मुसलमानों और मानसिंहके राजपूतोंने मिलकर किया, वहाँ मुसलमान सिपाहियोंने दोनों ही ओरका नाश करके जन्नतका रास्ता साफ़ किया।

राणाका घोड़ा शत्रुओंके समुद्रको चीरता हुआ आगे ही आगे बढ़ता गया, यहाँतक कि वह मानसिंहके हाथीके सामने जा पहुँचा। सवारका इशारा पाकर चेतक कूदकर हाथीके सामने जा खड़ा हुआ, और उसने अपने अगले पाँव उसके मस्तकपर रख

दिये। राणा प्रतापने समय अनुकूल देखकर नेज़ेका भरपूर वार किया। अगर भाग्य अनुकूल होता, तो नेज़ा मानसिंहकी छातीमें लगता, परन्तु भारतका भाग्य-चन्द्रमा चिरकालसे डूब चुका था, हाथी डरकर पीछे हट गया, और नेज़ा हाथीवानपर ही रह गया। हाथीवानके गिरनेपर हाथी जी तोड़कर भागा। मैदान राणाके हाथ रहा, परन्तु शिकार भाग निकला। इस प्रकार फिर एक बार भारतके इतिहासका निर्माण वीरताने नहीं, भाग्यों-ने किया।

राणाका घोड़ा चारों ओरसे घिर गया। मुग़लसेनायें सूर्यकी ध्वजाका निशाना ताककर वार करने लगीं। अपने सरदारकी प्राण-रक्षाके लिए राजपूत भी दोनों हाथसे तलवार चलाने लगे, परन्तु उस टिड्डीदलमेंसे निकल जाना सरल नहीं था। राणा प्रतापका जीवन ख़तरेमें पड़ गया। उस आड़े समयमें राजपूतोंकी वही स्वामिभक्ति फिर काममें आई, जो कई परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो चुकी थी। झाला सरदार मानसिंहने मेवाड़का राज्य-छत्र अपने ऊपर तान लिया, और मुट्ठीभर सिपाहियोंको साथ ले राणासे दूर शत्रुओंको ले चले जानेमें सफलता प्राप्त की। राज्य-छत्रको देखकर मुग़ल-सेनायें झाला सरदारपर टूट पड़ीं। वह स्वामिभक्त बहादुर प्राणोंकी ममता छोड़कर अन्ततक लड़ा। कहते हैं कि जिस जगह झाला सरदारकी लाश गिरी, वहाँ सौसे अधिक शत्रु-ओंकी लाशें पड़ी थीं, और वीरके दोनों हाथोंमें तलवारें थीं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने बान्धवोंसहित स्वामीके लिए बलि देकर झाला सरदारने उन अमर बहादुरोंमें नाम लिखा लिया, जिनके कारण राजपूतानेका इतिहास उज्ज्वल हो रहा है। शत्रुका झुकाव दूसरी ओर होते देखकर राणा भीड़मेंसे निकल-कर सुरक्षित स्थानमें चले गये।

यद्यपि इस युद्धमें मुग़लोंको सफलता न हुई, और उनपर राज-पूतोंकी वीरताका त्रास बैठ गया, फिर भी मेवाड़की युद्ध-शक्ति

इस लड़ाईमें बहुत कुछ कम हो गई। राणाने उसे बहुत सँभालनेका यत्न किया, परन्तु शीघ्र सफलता न हुई। किलेके पीछे किला हाथसे निकलता गया, यहाँतक कि बड़े बड़े सभी दुर्ग मुगलोंके हाथमें चले गये। राणाको महलों और किलोंसे धकेला जाकर पहाड़ों और जंगलोंका निवासी बनना पड़ा। जाओ, और राजपूतानेके गायकों और भाटोंके मुँहसे उस क्षत्राणीके पुत्रकी वीर-कथाओंका श्रवण करो। जिस समय भारतके ताजधारी वीर दिल्लीके बाज़ारोंमें अपनी बहू-बेटियोंकी इज्ज़तको बेच रहे थे, जिस समय राजपूतानेके कुलीन छत्रपति अपनी कुलमर्यादाको अकबरकी भेट चढ़ा रहे थे, जिस समय भारतका सौभाग्य-सूर्य काले काले बादलोंसे आच्छादित हो रहा था, और अकबरकी गति अनिवार्य प्रतीत होती थी, खाली खज़ाने और मुट्ठीभर सिपाहियोंका स्वामी प्रतापसिंह बाप्पा रावलके नाम, सीसोदियाके राज्य-छत्र, और कुल-मर्यादाकी ध्वजाको हाथमें लिए कटीले जंगलों और भीषण घाटियोंमें अपने परिवार और थोड़ेसे साथियोंको घसीटता फिरता था। पाँच पाँच समय बिना खाये निकल जाते थे, पूरी रात सोना नहीं मिलता था; गुफ़ाओंमें छुपकर प्राण-रक्षा करनी पड़ती थी, परन्तु दिलमें यही संकल्प था कि क्षत्राणीके दूधका मान न घटे, समरसिंहके कुलकी ध्वजा नीची न हो, और हिन्दू धर्मकी शानपर धब्बा न लगे। प्रतापसिंह! तुम सच्चे राजपूत थे, उस समयके शेष राजपूत तो राजपूतानीकी कोखको लजानेके लिए ही पैदा हुए थे। तुमने मनुष्यजातिके सामने वीरता, आत्म-सम्मान और धैर्यका ऐसा दृष्टान्त रखा है कि यदि मुर्दा जातियाँ उसका थोड़ासा भी अनुकरण करें, तो उनका बेड़ा पार हो सकता है। शत्रुको भी तुम्हारे गुणोंका गान करना पड़ेगा।

राणाकी भाग्य-नदी कुछ समयके लिए सर्वथा सूखती हुई प्रतीत होने लगी, और उसके शत्रु जीतते गये; परन्तु सद्गुणोंका

विजय शस्त्रके विजयसे कहीं ऊँचा होता है। जो धर्मपर जमा रहता है, उसे आशातीत स्थानोंसे सहायता मिल जाती है। प्रतापसिंहको भी ऐसी सहायता मिली। जब परिवारकी विपत्तिको देखकर राणाका जी घबरा उठा, तो अकबर-दरबारके कवि राठौर राजकुमार पृथ्वीराजने उसे एक काव्यमयी चिट्ठी लिखी, जिसने टूटा हुआ साहस बँधा दिया। जब खजानेके बिलकुल खाली हो जानेसे सेनाका सँभालना मुश्किल देखकर राणाने निश्चय किया कि राज्यकी आशा छोड़ स्वाधीनताकी रक्षाके लिए पहाड़ी गुफाओं या जंगलोंका रास्ता लिया जाय, उस समय वंशके प्राचीन खज़ांची भामाशाहने बाप-दादोंकी सब कमाई स्वामीके चरणोंमें रख दी। इस प्रकार दैवी इच्छासे सहायता पाकर प्रतापसिंहने फिर सेनाओंको इकट्ठा किया, और किले जीतने प्रारम्भ किये। थोड़े ही समयमें उदयपुरका बड़ा भाग राणाके हाथमें आ गया। किलोंमें जो मुसलमान छावनियाँ पड़ी हुई थी, वह या तो काट डाली गईं, या पीठ दिखाकर भाग गईं। अजमेर, चित्तौड़ और मंडलगढ़के किलोंको छोड़कर शेष समस्त मेवाड़ धीरे धीरे राणाके हाथोंमें आ गया।

अन्तिम दिनोंमें अकबरने प्रतापसिंहकी बढ़ती हुई शक्तिको रोकनेका कोई यत्न नहीं किया। यह सुनकर भी कि बहुतसे किले राजपूत सरदारके हाथ पड़ गये हैं, न कोई सेना भेजी और न छावनियोंको ही मज़बूत किया। कई इतिहास-लेखकोंका विचार है कि अकबरके हृदयमें प्रतापसिंहकी वीरताके लिए आदर और दुर्भाग्यके लिए दयाका भाव उत्पन्न हो गया था, इस कारण उसने छेड़छाड़ करनेका विचार छोड़ दिया। यह भी लिखा गया है कि जो राजपूत सरदार अकबरकी गाड़ीके पहियेके साथ अपने भाग्योंको बाँध चुके थे, वह भी अन्तरात्मामें राणाकी वीरताका आदर करते थे, उसे राजपूतानेकी नाक समझते थे, और अकबरसे सिफारिशें करते रहते थे, जिसमें मुग़ल बादशाहका रोष ठण्डा

होता रहे। इन सब कल्पनाओंकी अपेक्षा अधिक सम्भव कल्पना यह भी है कि उस समय अकबरकी सेनायें दूसरे सूबोंके विद्रोहको दवानेमें लगी रहीं, इस कारण मेवाड़पर आक्रमण करनेके लिए जितनी शक्तिका एकत्र होना आवश्यक था उतनी एकत्र नहीं हो सकती थी। अकवर यह देख चुका था कि मेवाड़को जीतना दाल-भातका खाना नहीं, लोहेके चने चवाना है। जिस ढालको मानसिंह, महावतखाँ और आसफखाँ मिलकर न तोड़ सके, उसे छोटी मोटी शक्ति कैसे तोड़ सकती थी?

उदयपुरकी रियासतका अधिकांश राणाके हाथमें आ गया, परन्तु राणाको सन्तोष नहीं था, सन्तोष होता भी कैसे, जव कि मेवाड़का हृदय—चित्तौड़-गढ़—शत्रुके कब्जेमें था। महाराणा प्रतापने प्रण किया था कि चित्तौड़-गढ़को स्वाधीन न कर लेंगे, तव तक खाटपर न सोयेंगे, सोने चाँदीके वर्तनोंमें भोजन न करेंगे, और फौजकी शहनाई आगे न बजकर पीछे वजा करेगी। चित्तौड़-गढ़की चिन्ता राणाके शरीरको खा रही थी। मानसिक चिन्ताओं और शारीरिक कष्टोंने राणाके मज़बूत शरीरको थका दिया था। परिणाम यह हुआ कि जवानीके यौवनमें स्वतन्त्रताके पुजारी 'पत्तो' (प्रतापसिंह) को मृत्यु-शय्यापर लेटना पड़ा। जो जीवनका विचार था, वह मृत्यु-कालकी भावना हुई। प्राण छोड़ते हुए राणाने अपने सरदारोंसे यह शपथ ले ली कि वह न स्वयं मेवाड़को स्वाधीन करानेके कार्यको भुलायेंगे, और न राजकुमार अमरसिंहको कर्तव्यसे विमुख होने देंगे। इस प्रकार मातृभूमि और कुल-मर्यादाका चिन्तन करते हुए राजस्थानके वन-केसरी प्रतापसिंहने प्राण विसर्जन किया। आज प्रतापसिंह नहीं है, परन्तु उसकी वीरताका विमल यश राजपूतानेके ही नहीं, भारतके ही नहीं, प्रत्युत संसारके मुखको उज्ज्वल करता हुआ विद्यमान है।

७—मुग़ल-साम्राज्यका मध्याह्न

यह मुग़ल-साम्राज्यका यौवन-काल था। बाबरके समय उसका जन्म हुआ, हुमायूँने अपनी निर्बलताओंसे नवजात बच्चेको बीमार और कमज़ोर हालतमें फेंक दिया, अकबरने उस बच्चेको चारपाई परसे उठाकर दवा-दारू और पुष्टिकारक भोजनों-द्वारा हृष्टपुष्ट अवस्था तक पहुँचाया। बालकने अच्छे संरक्षककी छत्र-छायामें पलकर युवावस्थामें प्रवेश किया। अकबरके अन्तिम दिनोंमें मुग़ल-साम्राज्य अपने भरे हुए यौवनमें प्रवेश कर रहा था। मुग़ल-साम्राज्यका मध्याह्न-काल समीप आ रहा था।

इस समय अकबरका राज्य काबुलसे लेकर मध्यप्रदेश तक फैल चुका था। १५५५ में अकबरने विजयका पर्व आरम्भ किया, और १५९४ तक बराबर वह राज्यकी सीमाओंको आगे ही आगे बढ़ाता गया। १५५५ में सरहिन्दकी लड़ाईमें पंजाब और दिल्ली मुग़ल-राज्यमें शामिल हुए, १५५८ में ग्वालियर और अजमेरके किले जीत लिये गये, १५६१ में लखनऊ और जौनपुरपर मुग़लोंका झण्डा फहराने लगा। उसी वर्ष मालवापर अकबरका अधिकार हो गया, बुर-हानपुर १५६२ में फतह किया गया, १५६७ में चित्तौड़-गढ़पर इस्लामकी ध्वजा गाड़ी गई, गुजरात १५७२ में और बंगाल १५७५ में मुग़ल-साम्राज्यमें प्रविष्ट किये गये। काश्मीरकी सुन्दर घाटी १५८७ में अकबरके हाथ आई। तीन वर्ष पीछे उड़ीसा, और पाँच वर्ष पीछे सिन्धका प्रान्त अकबरके राज्यमें शामिल हुए, और कन्दहार १५९४ में सर किया गया। इस प्रकार काबुलसे अहमदनगर तक मुग़लोंका राजदण्ड प्रचलित होने लगा। अकबर इतने राज्यसे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। अन्तिम वर्षोंमें उसने नर्मदासे दक्षिणकी ओर भी दृष्टि उठाई, और विजयका प्रयत्न किया। परन्तु कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इतने बड़े राज्यमें कहीं झगड़ा या विद्रोह नहीं था, यह कहना तो कठिन है, क्यों कि भारतमें मुसलमानोंके राज्यकालके ७००

वर्षोंमें शायद ही कोई ऐसा वर्ष हो, जिसमें देशके किसी न किसी भागमें विद्रोहकी चिनगारी न दिखाई दी हो, परन्तु उस समय शान्तिका जो आदर्श था, उसे दृष्टिमें रखकर अकबरके राज्यका अन्तिम समय शान्तिमय ही कहा जा सकता है। धार्मिक संघर्ष मिटा तो नहीं था, परन्तु सो अवश्य गया था। जज़िया-कर हट चुका था, हिन्दू सरदार सल्तनतके बड़ेसे बड़े ओहदोंपर नियुक्त थे, मुसलमान सूबोंके हिन्दू गवर्नर नियत किये जा रहे थे। मुग़लोंके अन्तःपुरमें राजपूत रमणियाँ विराजमान थीं। मुसलमान सरदारोंको हिन्दू प्रजापर अत्याचार करते डर मालूम होता था। अकबरकी कभी न हारनेवाली तलवारके डरसे बलवाइयोंकी दंगा करनेकी अभिलाषा दब रही थी। भूमि-करका न्यायपूर्ण प्रबन्ध हो जानेसे किसान लोग पहलेकी अपेक्षा अधिक सुखी थे।

प्रजाको तीन हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है। रईस, मध्यम वृत्तिके लोग, और सर्वसाधारण जनता। उस समय भी प्रजामें यह तीन श्रेणियाँ थीं। इन तीनोंके ऊपर राजवंशको समझना चाहिए। उस समयके लिखित ग्रन्थों और विदेशी यात्रियोंके यात्रा-वृत्तान्तोंसे राजा और प्रजाकी दशाका जो कुछ परिचय प्राप्त होता है, उससे विदित होता है कि सामान्यतया मुसलमान-कालमें जो अनवस्था रहती थी अकबरके अन्तिम दिनोंमें उसका बहुत कुछ अभाव हो गया था। राजकोषमें धनकी राशि जल-प्रवाहकी तरह प्रवेश कर रही थी। विदेशी यात्रियोंकी सम्मति है कि इतने युद्धोंका व्यय कर चुकनेपर भी १६०५ में मुग़ल बादशाहके खज़ानेमें लगभग ६० करोड़ रुपया विद्यमान था। केवल भूमि-करसे जो आय होती थी, वह प्रतिवर्ष १७॥ करोड़से अधिक थी। विना किसी आपत्तिके कहा जा सकता है कि अकबर और उसके वंशज रुपयोंमें लोटते थे।

रईस श्रेणीके लोगोंमें उस समय अधिकतर मुसलमान ही ऐसे थे, जो अपनी धन-सम्पत्तिको ज़ाहिर कर सकते थे। हिन्दू रईस तो ऐश्वर्यको छुपानेमें ही भला समझते थे। उन्हें डर था कि

उनके धनको हवा लगी कि उनपर कर लगा। जिन रईसोंको लुटनेका या बलात्कारपूर्ण करका भय नहीं था, वह आनन्द और विलासमें स्नान करते थे। विदेशी यात्री उनके एश्वर्यको देखकर चौंधिया जाते थे। उनके ऐश्वर्यसे सम्राट्के ऐश्वर्यका अनुमान लगाया जा सकता है। विलियम हॉकिन्स नामका अंग्रेज़ यात्री, जो बादशाह जहाँगीरके समयमें भारतवर्षमें आया था, लिखता है कि राज्यकी वार्षिक आय ५० करोड़ रुपये थी। सरकारी ख़ज़ानेमें नकद सिक्कोंके अतिरिक्त अनगिनत जवाहिरात सोने और चाँदीके बर्तन भरे हुए हैं, जो विशेष अवसरोंपर निकाले जाते है। बादशाहके महलों और दरबारसे सम्बन्ध रखनेवाले नौकरोंकी संख्या ३६००० से कम नहीं थी। दरबारके साथ १२ हज़ार हाथी थे, जिनमेंसे ३०० केवल बादशाहके काम आते थे। दरबारका रोज़ाना ख़र्च ५० हज़ार रुपया और हरम (अन्तःपुर) का रोज़ाना खर्च ३० हज़ार रुपया था।

बादशाहकी देखादेखी रईस लोग भी पैसेको पानीकी तरह बहाते थे। रईसोंका एक प्रधान हिस्सा सूबोंके शासन-कार्यमें लगा हुआ था। सूबोंके शासक स्वतन्त्र राजाओंकी हैसीयत रखते थे। आगरेके प्रति उनका यही कर्तव्य था कि वह वर्षभर-में एक निश्चित राशि धनकी और युद्धके अवसरपर एक निश्चित संख्या युद्ध-सामग्रीकी उपस्थित करें। युद्ध-सामग्रीमें सिपाही घोड़े और शस्त्र सभी कुछ सम्मिलित था। बादशाहके हिस्सेके अतिरिक्त वह जो कुछ कमा सकते थे, अपने पास रखते थे। उनके दरबार और हरम सम्राट्के दरबार और हरमकी प्रतिमूर्ति होते थे। रईसोंके घरोंमें भी बीसियों बीबियाँ और सैकड़ों लौंडि-योंकी भीड़ रहती थी। उनके अस्तबलमें भी बीसियों हाथी, और सैकड़ों घोड़े बँधे रहते थे। उनके डेरोंमें भी मख़मलकी छतरी और रेशमके रस्सोंकी बहार रहती थी। उनके रसोईघर-में भी हररोज बीसियों तरहके व्यंजन बनते थे। उनके यहाँ भी बदख़शानके ख़रबूज़ों, ढाकेकी मलमल और योरपके कीमती हीरों

की माँग रहती थी। उस समयके मुसलमान उमरा भी छोटे बादशाह थे। वह प्रजासे खूब खींचते थे, और खूब खर्चते थे। कुछ हिन्दू रईस तो मुसलमान रईसोंका अनुकरण करते थे, परन्तु कुछ ऐसे भी थे, जो अपने जीवन-कालमें ही अपनी सम्पत्ति लड़की लड़कोंमें या धर्मके खातेमें बाँट जाते थे। अधिकाँश रईस ऐसे थे, जो प्रजासे खूब लेते थे, और खूब खर्चते थे। ऐसे ही उमराके सम्बन्धमें डी लेट (De Laet) ने १६३१ में लिखा था कि 'रईसोंके ऐश्वर्योपभोगका वर्णन नहीं किया जा सकता। क्यों कि जीवनमें उनका केवल एक यही लक्ष्य है कि विषय-भोगकी सामग्री कैसे एकत्र की जाय।' सर टामस रोने १६१५ में लिखा था कि 'ऐश्वर्य और विषय-लोलुपताको मिला देनेसे उस समयका रईस बन जाता है।'

कारीगरी और व्यापारका पेशा करनेवालोंकी मध्यम दर्जेमें गिन्ती है। इस समय मध्यम दर्जेके लोगोंकी संख्या कुछ कम नहीं थी। नौकरोंके अतिरिक्त बादशाह तथा रईसोंके कारिन्दे भी काफी बड़ी बड़ी तनख्वाहें पाते थे। कारीगर लोग केवल दरबार-में ही नहीं, अन्यत्र भी आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। विदेशी यात्रियोंके लेखोंसे विदित होता है कि कारीगरीकी वस्तुओंका बड़ा मान होता था। राज-दरबारमें शिल्पी लोग इज्ज़त पाते थे। व्यापार भी कुछ कम नहीं था। नगरों और प्रान्तोंके व्यापारके अतिरिक्त समुद्र-तटका व्यापार भी दिनों दिन बढ़ रहा था। पुर्त-गाल तथा इँग्लैण्डके व्यापारी तथा राजदूत अकबरके अन्तिम दिनोंमें भारतके कोनोंपर व्यापारका जाल बिछानेकी चेष्टा कर रहे थे। इस प्रकार नौकर, शिल्पी, और व्यापारी काफी संख्यामें विद्यमान् थे। उन लोगोंकी दशा किसी प्रकारसे भी बुरी नहीं कही जा सकती। वह अच्छी तरह खाते पीते और पहिरते थे। यह ठीक है कि कहीं कहीं बदमाश और लोभी हाकिमको देखकर मध्यम वृत्तिके लोग अपनी सम्पत्तिको छुपानेकी चेष्टा करते थे।

वह रुपयेको गाड़ देते थे, मैला पहिनते और रूखा सूखा खाने लगते थे। पर यह दशा अपवादरूपमें थी, नियम रूपमें नहीं।

शेष समस्त प्रजा, जिसमें किसान और सेवावृत्तिके लोग शामिल थे, साधारणतया सुखी दशामें थी। प्रजाके न कोई राजनीतिक अधिकार थे, और न साधारण रैयतको पूरा न्याय पानेके खुले मार्ग मिल सकते थे। इस कारण वह लुटते हों, और उन्हें चूसा जाता हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। सर टामस रो ने सतरहवीं सदीके आरम्भमें लिखा था कि 'हिन्दुस्तानके लोग वैसा जीवन व्यतीत करते हैं, जैसा जलमें मछलियोंको व्यतीत करना पड़ता है। बड़े छोटोंको खा जाते है। किसानको जमीन-मालिक खा जाता है, जमीनके मालिकको महाजन खा जाता है, छोटेको बड़ा खा जाता है, और बादशाह सबको लूट खाता है। जब बादशाह ही लूटनेवाला हो, तो राज्यके शेष कर्मचारियोंका क्या कहना है?' साधारण प्रजा लुटती थी; परन्तु वह लूट प्रत्यक्ष थी, इस कारण उससे बचावके उपाय भी थे। बहुतसे अँग्रेज़ लेखक यह दिखानेका यत्न करते हैं कि उस समय प्रजाकी दशा बहुत हीन थी, आज कलकी दशा उससे कहीं अच्छी है। ऐतिहासिक प्रमाण उन लेखकोंके दावेको सिद्ध नहीं करते। यह प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा सकता है, और किया जा चुका है कि उस समयकी साधारण प्रजा आज कलकी अपेक्षा अधिक सुखी थी। क्षणिक आँधियाँ अधिक आती थीं; परन्तु इस समयकी गुप्त और नियमबद्ध लूटकी अपेक्षा वह आँधियाँ कहीं कम भयानक थीं। जमीनपर लेटकर क्षणिक आँधीसे प्राण बचाये जा सकते हैं; परन्तु दिनरात खानेवाले क्षयरोगसे बचनेका कोई उपाय नहीं है।

साधारण प्रजाकी सबसे बड़ी आवश्यकता, जिसके पूरा होने या न पूरा होनेपर उनका सुख-दुःख अवलम्बित है, अन्न है। पेट भर गया तो सब कुछ मिल गया, पेट न भरा तो जीना दूभर है। उस समय साधारण प्रजा कितना सुख भोग सकती थी, इसका

हिसाब लगाना हो, तो हमें यह देखना चाहिए कि (१) उनकी आय कितनी थी (२) और उस आयसे वह कितना अन्न खरीद सकते थे। अधिक विस्तारमें न जाकर हम विन्सेण्ट ए० स्मिथ लिखित अकबरकी जीवनीसे निम्नलिखित अंक उद्धृत करते हैं, जिनसे उस समयकी आर्थिक दशाका अनुमान लगाया जा सकता है।

योरपियन यात्रियों और अबुलफ़ज़ल आदि सामयिक लेखकोंके वर्णनोंसे जो सारांश निकलता है, वह यह है कि उस समय मज़दूरकी दैनिक मजदूरी पैसेसे कुछ कम थी, और अच्छे कारीगरकी दैनिक मज़दूरी तीन आना थी। यह मज़दूरी देखनेमें बहुत कम मालूम होती है; परन्तु जब हम वस्तुओंके दामोंकी निम्नलिखित तालिकापर दृष्टि डालते हैं, तो हमारी आँखें खुल जाती हैं और हम किसी सही नतीजेपर पहुँच सकते हैं। हम नीचे तीन मुख्य अनाजोंके मूल्यकी तालिका देते हैं।

एक रुपयेकी लगभग खरीद

अनाज	अकबरके समय १६०० ई०	१८६६ ई०	१९०१ ई०	१९३१
गेहूँ	९७ सेर	२० सेर	१४ सेर	१६ सेर
जौ	१३९ सेर	२९ सेर	२१ सेर	२३ सेर
जवार	१११ सेर	२७ सेर	२१ सेर	२२ सेर
चना	६७ सेर	२४ सेर	१७ सेर	१७ सेर

इन संख्याओंके मिलानसे विदित होता है कि १९०१ में गेहूँके जो दाम थे, वह १६०० के दामोंकी अपेक्षा ७ गुनासे भी अधिक थे। इसी तरह सब अनाजोंकी दशा है। महँगी कमसे कम छह गुना बढ़ गई है। जो सामग्री उस समय एक रुपयेमें प्राप्त हो सकती थी, वह कठिनतासे आज छह रुपयोंमें प्राप्त हो सकती है। सभी वस्तुओंके मूल्योंकी यही दशा है। उस समयकी अल्पमूल्यताका अनुमान नीचे दी हुई मूल्योंकी तालिकासे किया जा सकता है।

१६०० ईसवीके समयकी मूल्योंकी तालिका
एक रुपयेकी लगभग खरीद

वस्तु	तोल
मांस	१७ सेर
दूध	४४॥ सेर
चावल अच्छा	१०। सेर
चावल घटिया	५२। सेर
मूँग	१८॥ सेर
उड़द	६९ सेर
मोठ	९७ सेर
बूरा	९ सेर
शक्कर	१९॥ सेर
घी	७ सेर
तेल	१४ सेर
नमक	६९ सेर

इस तालिकाका महत्त्व हम उस समय समझ सकते हैं, जब हम यह देखें कि जो मज़दूर १ आनेसे कम दैनिक तलब पाता था, वह उतनेमें क्या कुछ खरीद सकता था। वह अपनी दैनिक मज़दूरीमें ५॥ सेरके लगभग गेहूँ, या ३ सेरके लगभग चावल, या ३ सेरके लगभग मूँगकी दाल, या १ आनेसे लगभग शक्कर या आध सेरके लगभग घी, या ३॥ सेरके लगभग नमक खरीद सकता था। आजके दामोंको देखें तो इतनी वस्तु खरीदनेके लिए बारह आने या रुपयेकी आवश्यकता है। जो खाद्य वस्तु आज बारह आनेमें मिलती है, वह उस समय एक आनेसे कममें मिल जाती थी।

कहा जा सकता है कि यदि १६०० ई० और १९०० ईसवीके दामोंमें भेद है, तो मज़दूरी और तनख्वाहोंमें भी भेद है। मज़दूरी भी बहुत बढ़ गई है। परन्तु दोनोंका मिलान करके देखें, तो प्रतीत होगा कि जहाँ वस्तुओंके दाम कई अंशोंमें चौदह या पन्द्रह गुना

हो गये हैं, वहाँ मज़दूरीकी मात्रा आठ या नौ गुनासे अधिक नहीं बढ़ी। स्पष्ट है कि साधारण प्रजाकी आमदनीके सिक्केके रूपसे बढ़ जानेपर भी उनकी असली आमदनी बहुत कम हो गई है। उन्हें प्राणरक्षाकी सामग्री न्यूनतासे प्राप्त होती है।

उस समयकी निर्धनताको सूचित करनेके लिए विदेशी यात्रियोंके वह लेख उद्धृत किये जाते हैं, जिनमें लिखा है कि ग्रामणि लोग प्रायः नंगे रहते थे। केवल एक लंगोटी उनके शरीरपर रहती थी। शरीरपर कपड़ोंका अधिक रखना धनिकताका चिह्न नहीं है। यह किसी देशके जल-वायु और रहन-सहनके रिवाज-पर अवलम्बित है कि कितने कपड़े पहिने जायँ। विदेशी यात्री सर्द देशसे आये थे। हिन्दुस्तान एक गर्म देश है। विशेषतया दक्षिणमें, जहाँ अब भी कपड़ा बहुत कम पहिना जाता है, उष्णता-की प्रधानता है। हम उन विदेशी यात्रियोंकी बुद्धिकी प्रशंसा नही कर सकते, जो कपड़े पहिननेका सम्बन्ध सर्दी या गर्मीके साथ न समझकर अमीरी या ग़रीबीके साथ समझते हैं। वह तो शायद आज भी केवल दो वस्त्र धारण करनेवाले मद्रासके जजों, वकीलों या रईसोंको निर्धन ही कहेंगे।

उस समयकी आर्थिक स्थितिकी हीनताको सिद्ध करनेके लिए दुर्भिक्षोंकी बहुतायत और उनकी गम्भीरताको प्रमाणरूपमें पेश किया गया है। उस समय भारतमें दुर्भिक्ष होते थे, आज भी होते हैं। जो देश कृषि-प्रधान होगा, वहाँ आकाशके रूठ जानेपर दुर्भिक्षका आना अवश्यंभावी है। आकाश रूठता ही रहता है, और दुर्भिक्ष होते ही रहते हैं। भेद केवल इतना है कि वर्तमान सरकार रेल तथा अन्य वाहनोंद्वारा अनाजको दुर्भिक्षपीडित प्रान्तोंमें आसानीसे फैला सकती है। उस समय वाहन-कला इतनी बढ़ी हुई नहीं थी। अनाजको दुर्भिक्षके स्थानपर, और भूखोंको सुभिक्षके स्थानपर सुलभतासे नहीं पहुँचाया जा सकता था। इस लिए इच्छा होनेपर भी राजाकी ओरसे प्रजाको पर्याप्त सहायता नहीं दी जा सकती थी। दैवका दण्ड प्रजापर ज़ोरसे

पड़ता था। यह नहीं कि अकबर प्रजाके दुःखकी ओरसे सर्वथा उदासीन था। १५९५ से १५९८ तक देशमें घोर दुर्भिक्ष रहा। अकबरने बुखाराके शेख़ फरीदको प्रजाकी सहायताके लिए नियुक्त किया। इतिहाससे हमें यह विदित नहीं होता कि उसने किन किन उपायोंसे दुर्भिक्षपीड़ितोंकी सहायता की; परन्तु अकबरने प्रजाके दुःखको मिटानेका यत्न किया, यह असन्दिग्ध है।

देशके साहित्य और अन्य ललितकलाओंकी वृद्धिके लिए जिस वातावरणकी आवश्यकता होती है, वह उस समय उपस्थित था। राजगद्दीपर एक उदार और बलवान् राजा स्थिरताके साथ विराजमान था। धार्मिक विद्वेषकी ज्वालायें प्रायः दब चुकी थीं। जज़िया-करके हट जाने और धार्मिक स्वतन्त्रताकी नीतिके उद्घोषित हो जानेसे हिन्दू प्रजा सापेक्षरूपसे सन्तुष्ट थी। किसी विदेशी विजेताको भारतकी ओर आँख उठानेकी हिम्मत नहीं होती थी। सूबोंके शासक भी विद्रोहका झण्डा खड़ा करनेसे डरते थे। अकबरकी प्रतिभाने विप्लवके काँटोंको तोड़ डाला था। उनकी नोक जाती रही थी। ऐसी ही ऋतुमें साहित्यकी लता हरी-भरी होकर लहराया करती है। अकबरका समय रोमके सम्राट् ऑगस्टस और इंग्लैण्डकी रानी एलिज़बेथके समयके समान कलाओंका वसन्तकाल कहा जा सकता है।

अकबरके समयमें ही गुसाईं तुलसीदासने अपने अमर गीत रामचरित-मानसका गान किया था। रामचरित-मानसके सम्बन्धमें एक अंग्रेज़ लेखकने लिखा है कि 'वह (तुलसीदास) हिन्दू भारतमें अपने समयका सबसे बड़ा आदमी था। वह अकबरसे भी बड़ा था, क्यों कि उस कविने लाखों नरनारियोंके हृदयों और मनोंपर जो विजय प्राप्त की, वह बादशाहकी सांसारिक विजयोंकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थी। अकबरके समयमें ही भगत सूरदासने अपनी मनमोहनी बंसी बजाई थी। अकबर स्वयं हिन्दीका कवि था। उसके बनाये कई पद्य मिलते हैं। उनकी सादगी देखिए। अकबर कहता है—

जाको जस है जगतमें, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि॥

अकबरने अपने बेटे जहाँगीरको हिन्दी सिखाई, और अपने पोते खुसरोको हिन्दी और संस्कृत सीखनेके लिए गूहन भट्टाचार्यके सपुर्द कर दिया।

अकबरके दरबारमें फारसीके कवियों और लेखकोंकी कमी नहीं थी। अकबरनामेका लेखक अबुलफज़ल अकबरका मित्र, मन्त्री, सलाहकार और इतिहास-लेखक था। वह अपने समयका सबसे बड़ा फारसी लेखक था। उसका लिखा हुआ 'आईने अकबरी' नामका ग्रन्थ अपने समयका बिलकुल सच्चा तो नहीं, परन्तु उज्ज्वल चित्र अवश्य है। अबुलफज़लका भाई फ़ैज़ी दरबारका कवि था। यदि अबुलफज़लके लेखपर विश्वास करें, तो अकबरके दरबारमें हजारों कवि आते थे, यद्यपि उसे इतना समय नहीं मिलता था कि वह उनकी कवितासे लाभ उठाये। उनमेंसे बहुतसे तुक्कड़ भी होते होंगे। अबुलफज़लकी रायमें उनमेंसे ५९ प्रतिष्ठाके योग्य थे।

राजा टोडरमल और राजा बीरबल अकबरके दरबारके नव रत्नोंमेंसे थे। वह दोनों हिन्दीके कवि थे। राजा टोडरमलका एक पद्य देखिए—

गुन बिन धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे,
मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है।
कण्ठ बिन गीत जैसे, हित बिन मीत जैसे,
वेश्या रस रीत जैसे, फल बिन तर है।
तार बिन जन्त्र जैसे, स्याने बिन मन्त्र जैसे,
पुरुष बिन नारि जैसे, पुत्र बिन घर है।
टोडर सुकवि तैसे, मनमें विचारि देखो,
धन बिन धर्म जैसे, पंछी बिना पर है।

राजा वीरबलकी कविताका एक नमूना लीजिए—

पूत कपूत, कुलच्छनि नारि, लराक परोस, लजायन सारो।
बन्धु कुबुद्धि, पुरोहित लम्पट, चाकर चोर, अतीथ धुतारो॥
साहब सूम, अराक तुरंग, किसान कठोर, दिवानल कारो।
'ब्रह्म' भनै सुनु शाह अकब्बर, बारहौं बाँधि समुद्रमें डारो॥

वीरबलका उपनाम 'ब्रह्म' था। ब्रह्म महाराज १२ प्रकारके व्यक्तियोंको बाँधकर समुद्रमें डालनेकी अकबरशाहसे सिफारिश कर रहे हैं।

साहित्य और संगीत जौड़े भाई हैं। एकके विना दूसरेका फलना फूलना असम्भव है। अकबरके राज्य-कालमें संगीतकी भी खूब उन्नति हुई। इस्लाममें संगीत निषिद्ध है, परन्तु अकबरका विशाल हृदय इस संकुचित और युक्तिविरुद्ध नियमको माननेके लिए उद्यत नहीं था। वह रूढ़िकी साँकलोंको तोड़ चुका था, वह बुद्धिविरुद्ध ढकोसलोंको 'मज़हब' का अंग नहीं समझता था। अकबरके बारेमें अबुलफ़ज़लने लिखा है—"(अकबर) संगीतकी ओर बहुत रुचि रखता है, और अच्छे गायकोंका संरक्षक है। दरबारमें हिन्दू, ईरानी, तूरानी, काश्मीरी, पुरुष और स्त्री दोनों ही प्रकारके गायक बहुतायतसे रहते हैं। यह गायक ७ हिस्सोंमें बाँटे गये हैं, और सप्ताहमें एक दिन एक जत्थेकी बारी आती है।"

संगीतमें अकबरका गुरु लाल कलावन्त नामका हिन्दू गवय्या था। ऐसे संगीतप्रेमी महाराजके राज्यमें संगीत विद्याका आदर और विस्तार हो, तो आश्चर्य ही क्या है? भारतका प्रसिद्ध गवय्या तानसेन अकबरके दरबारकी शोभाको बढ़ाता था। राजा मान-सिंहने ग्वालियरमें एक संगीतका शिक्षणालय खोला था, जिसमें स्वयं तानसेन शिक्षा देता था। ग्वालियरमें मियाँ तानसेनका जो मकबरा है, वह उस कलाप्रेमी शासकके गुणोंका एक स्मारक है।

८—अकबरका अन्त

अकबरका हँसता हुआ सौभाग्य-चन्द्रमा अन्तिम समयमें मेघाच्छन्न हो गया था। यह मुग़ल-वंशका स्थायी रोग था। एक हुमायूँको छोड़कर बाबरसे लेकर औरंगज़ेब तक जितने मुग़ल बादशाह हुए, उनमें कई गुण थे। वह शारीरिक बल, साहस, युद्ध-कला, और शासन करनेकी स्वाभाविक शक्तिमें अपने समकालीन लोगोंमें अद्वितीय समझे जाते थे। साथ ही उनकी आयु भी बड़ी होती थी। मुग़ल-बादशाहोंकी सफलता उनकी व्यक्तिगत सफलता थी। वह अपने बाहु-बल और बुद्धि-बलसे राज्य करते थे। अकबरके गुण और हुमायूँके दोष ही उनकी सफलता और असफलताके कारण थे। जहाँ एकसत्तात्मक राज्य हो, वहाँ यह परिणाम आवश्यक है।

अकबरके राज्यके अन्तिम भागमें उसका बड़ा पुत्र सलीम विद्रोही हो गया। पहले इसके कि हम उस विद्रोहकी कहानी सुनायें, हमें दो प्रश्नोंका उत्तर देना आवश्यक प्रतीत होता है। सलीमको अकबर जैसे स्नेही और समझदार पिताके विरुद्ध विद्रोह करनेकी आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई? और एक मध्यम दर्जेके सेनापतिको अपने समयके शिरोमणि सिपाहीका सामना करनेका साहस कैसे हुआ? विद्रोहकी आवश्यकता समझनेके लिए हमें उस समयके शासन और राज्यके आदर्शको देखना होगा। उस समयके शासन और राज्यका आदर्श था—विषय-भोग, विलासिता, और उन्माद। किसानोंको जागीरदार खाते थे, जागीरदारोंको उमरा खाते थे, उमराको सूबोंके गवर्नर खाते थे, और गवर्नरोंको बादशाह चूसता था। युद्धकी दशाको छोड़कर शेष समयमें बादशाहकी यही विशेषता थी कि वह अपनी सारी रियायाकी अपेक्षा अधिक राशिमें भोगकी सामग्रीको प्राप्त कर सके। भोग-भोग-भोग-यह उनका मूलमन्त्र था।

बादशाहका हरेक बेटा अपने बापको विलासकी सामग्रीमें लोटता देखकर ईर्ष्या करता था। युवावस्थाके चढ़ते ही उसके दिमाग़पर यह भूत सवार हो जाता था कि यदि मेरे बापको सुख भोगनेका अधिकार है, तो मुझे क्यों नहीं है? ज्यों ज्यों आयु बढ़ती थी उसकी घबराहट बढ़ती थी। वह सोचता था कि भोगकी आयु व्यतीत हो रही है। बाप मरनेमें नहीं आता। क्या मेरे भाग्योंमें बादशाहतका मज़ा लिखा ही नहीं। लूट और विषय-भोगमें हिस्सा चाहनेवालोंकी संसारमें कमी नहीं है। जहाँ शाहज़ादेके हृदयमें असन्तोषका भाव पैदा हुआ कि बहकानेवाले यारोंकी मंडली इकट्ठी हुई। इसी क्रमसे विद्रोहका भाव उत्पन्न होता और बढ़ता था। सलीमके हृदयमें भी इसी प्रकार विक्षोभ उत्पन्न हुआ। १६०० ई० में उसकी आयु ३१ वर्षकी हो गई थी। जवानी अपने यौवनपर थी। विषय-भावनाका दरिया उमड़ रहा था। अब उसे रातदिन सूबोंके प्रबन्धमें गुज़ारना कठिन प्रतीत होता था, और मृत्यु कहीं आसपास दिखाई नहीं देती थी। सलीमका विषय-लोलुप हृदय ऐश्वर्यके सागरमें लोटनेके लिए अधीर हो उठा।

दूसरा प्रश्न यह है कि सलीमको अकबर जैसे विजेताका सामना करनेका साहस कैसे हुआ? प्रश्नका समाधान स्पष्ट है। वह राज्य न प्राचीन रूढ़िपर अवलम्बित था, और न प्रजाकी इच्छापर। मुसलमानोंके राज्य-कालमें कोई राजवंश इतने काल तक स्थायी न रहा कि उसे रूढ़िपर कायम समझ सकें। केवल एक मुग़ल-वंश शाहजहाँके समय कुछ स्थिर रूपसे खड़ा हुआ दिखाई दिया—परन्तु अगले ही शासनमें दक्षिणसे धक्का लगते ही वह खम्बे जो फौलादके प्रतीत होते थे, लड़खड़ाकर गिर पड़े, और तब मालूम हुआ कि जिसे फौलाद समझा गया था, वह असलमें कच्ची धात थी। अकबरके समयमें तो मुग़ल-राज्यकी जड़ें ज़मीनमें भी नहीं दिखाई देती थीं। वह विशाल वृक्ष अकबरके विशाल कन्धेके सहारे ज़मीनपर ही खड़ा हुआ था। सलीमने देखा कि

बाप बूढ़ा हुआ—मैं जवान हूँ। राज्य करनेका अधिकार शक्तिपर निर्भर रखता है—अब मैं शक्त हो गया, तो बापको मुझे राज्यसे वंचित रखनेका क्या अधिकार है? जो राज्य न चिरकालकी रूढ़िपर स्थित हो और न प्रजाके प्रेमपर, उसके संचालकका बुढ़ापा या रोग एक प्रकारसे विद्रोहका निमन्त्रण है। अकबरकी वृद्धावस्था देखकर स्वभावतः सलीमके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि शक्ति ही राज्यारोहणकी प्रधान साधिका है, तो जवान सलीम बूढ़े अकबरकी अपेक्षा राज्यका अधिक अधिकारी क्यों नहीं है?

सलीमको विद्रोही बननेमें इस बातसे भी कुछ कम सहायता नहीं मिली कि अकबरके धार्मिक विचारोंने मुसलमानोंमें खलबलीसी मचा रखी थी। वह अकबरकी उदारताको द्वेष और घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। ऊपरसे चुप थे, क्योंकि चढ़ती कलाके सामने हरेक आदमी झुक जाता है, परन्तु अन्दरसे वह उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे जब कोई कट्टर मुसलमान बादशाह आगरेकी गद्दीपर बैठे। सलीम चाहे अन्दरसे कट्टर मुसलमान न हो, परन्तु अपने राज्यकी खातिर नीतिके तौरपर उसे कट्टर मुसलमान बननेसे इन्कार नहीं था। उसने राजगद्दीपर बैठनेसे पूर्व मुसलमान सरदारोंसे वादा किया था कि वह भारतमें इस्लामकी रक्षा करेगा। सलीमको आशा थी कि यदि पिता-पुत्रकी लड़ाई हुई, तो मुसलमानोंका अधिकांश पुत्रका साथ देगा।

अकबरके समयमें मुग़ल-साम्राज्य अपने यौवनकी ओर जा रहा था। उसके आधार मज़बूत हो रहे थे, परन्तु वह रोग जो अन्तमें मुग़ल-साम्राज्यको खा जानेवाले थे, बीज रूपमें विद्यमान थे। उनमें तीन मुख्य रोगोंकी ओर हमने ऊपर निर्देश किया है। संक्षेपमें वह निम्नलिखित हैं—

(१) शासक-वर्गकी विषयासक्ति और लम्पटता।

(२) राज्य-शक्तिका केवल एक-सत्तात्मक होना।

(३) शासक-जातिका मज़हबी कट्टरपन, जिसके कारण उदारसे उदार शासकको भी उन सरदारोंका सहारा लेना पड़ता था, जो भारतकी हिन्दू प्रजाको काफिर समझते थे।

यह तीन कारण थे, जिन्होंने सलीमको विद्रोहके लिए प्रेरित किया; परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सलीम इनके लिए विशेष रूपमें दोषी था। वह केवल अवस्थाओंका दास था। दोष या तो वंशीय थे, या सामयिक। उस समयका एक बड़ा रोग मद्य-पान था। सलीम बड़ा भारी पीनेवाला था। परन्तु यह केवल उसीका दोष नहीं था। मुग़ल-साम्राज्यका संस्थापक बाबर खूब शराब पीता था। उसने आत्म-चरितमें मद्य-पानके दौरका मज़ेदार वर्णन किया है। हुमायूँ भी पीता था। अकबर शराब और अफीम दोनोंका प्रयोग करता था। कभी कभी शराबकी मस्तीमें वह ऐसे अनर्थ कर बैठता था कि सचेत अवस्थामें उनपर शर्माना पड़े। बड़ी उमरमें उसने शराब पीना छोड़ दिया था, परन्तु उसके स्थानपर अफीम खानेका व्यसन सीमासे अधिक बढ़ गया था। ऐसे वंशज संस्कारोंमें उत्पन्न होकर यदि सलीम मद्य और अफीमका उपासक था, तो आश्चर्यकी बात कौनसी हुई?

अकबरके शासन-कालके गुण और सुधार सब उसकी व्यक्तिगत उदारता और दूरदर्शिताके परिणाम थे। उसने कानूनका सुधार तो किया, परन्तु कानून बनानेवाली मशीन वैसीकी वैसी बनी रही थी। बादशाहकी इच्छा ही कानून था। एक बादशाहकी उदारताने जो उत्तमसे उत्तम कानून बनाये, दूसरे बादशाहकी अनुदारता सहजहीमें उनपर पानी फेर सकती थी। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह उसूल उस समय सर्वसम्मत था। जब सलीमने देखा कि उसके हाथमें लाठी आ गई है, तो उसने अपना अधिकार समझा कि बूढ़े बापके हाथसे हुकूमतरूपी भैंसको छीननेका प्रयत्न करे।

अकबरका हृदय विशाल था। इस्लामके मौलिक सिद्धान्तोंको स्वीकार करते हुए भी उसके रूढ़िवादपर विश्वास करना उसके

लिए असम्भव था। उसने 'दीने इलाही' की कल्पना की। दुःखकी बात है कि उसकी धार्मिक उदारताने उलटा ही रूप धारण किया। उदारताका उचितरूप यह होता कि वह किसी नये धर्मकी स्थापना न करके और अपने मज़हवी विचारोंको राज-बलसे फैलानेकी चेष्टा न करके, प्रजाको अधिकार देता कि वह अपनी इच्छानुसार धार्मिक कर्तव्यका पालन करे। इस सरल मार्गको छोड़कर उसने स्वयं मज़हवी पेशवा बननेका यत्न किया। कई सामयिक लेखकोंकी तो सम्मति है कि अन्तिम वर्षोंमें अकबरने इस्लामपर आघात भी किये। जिस उदारतासे उसने हिन्दुओंके हृदयोंको जीत लिया था, मुसलमानोंके साथ सलूक करते हुए उसे हाथसे छोड़ दिया था। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि धार्मिक अत्याचार प्रत्यक्ष क्रियारूपमें बन्द हो गया, परन्तु धर्मके कारण राजनीतिक अधिकारमें भेद करनेकी प्रवृत्ति कम न हुई। असहिष्णुताका शरीर दब गया, परन्तु भाव विद्यमान रहा। शासन करनेवाले हाथके कमज़ोर होते ही वह असहिष्णुताका भाव वैसे ही उज्ज्वल हो उठा, जैसे पवनके झोंकेसे राखके हट जानेपर दबी हुई आग उज्ज्वल हो उठती है।

'यथा राजा तथा प्रजा।' जब बादशाह खुले दरबारमें शराब पीता था, तो रईस और उमरा क्यों कसर छोड़ने लगे। शराब और अफीम अधिकारके आभूषण बन गये। हरेक रईस छोटे पैमानेपर राजदरबारका अनुकरण करना चाहता था। स्त्रियोंके सम्बन्धमें इस्लामके बाँधे हुए बन्धनका उल्लंघन ऐश्वर्यका आभूषण समझा जाता था। अबुलफ़ज़लके चार औरतें थीं, इस लिए वह तो एकदम फकीर सदाचारी और शुद्ध सोना समझा जाता था। जीते हुए शत्रुकी औरतें तो विजेताकी सहज सम्पत्ति मानी जाती थीं। विवाहित औरतोंके अतिरिक्त गोलियाँ रखनेका रिवाज़ भी आम था। विजेता मुसलमानोंके इन दोषोंसे राजपूत रईस भी नहीं बच सके थे। वह लोग अफीमका बुरी तरह व्यवहार करते थे। शासनकी नीतिमें भी सभी रईस या सूबा

अपनी अपनी सीमामें छोटे बादशाह बने हुए थे। बादशाहकी नज़र बचाकर जहाँतक बन पड़ता था, अपने मज़हबी पागलपनकी भी करामात दिखला देते थे।

ऐसे गन्दे समाजमें सलीमका अपने पिताके प्रति विद्रोही बन जाना क्या आश्चर्यजनक था? १५९१ में अकबरको कालिककी (?) पीड़ा हुई, तो उसने दरबारियोंसे यह संकेत प्रकट किया कि शायद सलीमने जहर दे दिया है। १६०० ई० तक पहुँचते पहुँचते शाहज़ादेका धैर्य जाता रहा। वह गद्दीपर बैठनेके लिए उतावला हो उठा। १५९२ ई० में अकबरने खान्देश और बरारको जीतकर अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया था। अकबरके दो पुत्र मुराद और दानियाल एक दूसरेके पीछे उस सूबेके शासक बनाकर भेजे गये, परन्तु दोनों ही शराबी, विषयासक्त और निर्बल थे। दोनों ही नाकामयाब हुए। १५९९ में अबुलफ़ज़लको दक्षिणके जीतने सूबा बनाकर भेजा गया। सुस्ती देखकर अकबर स्वयं मैदानमें पहुँचा और चाँदबीबीद्वारा अपूर्व साहस और धैर्यसे सुरक्षित अहमदनगरको सैन्य-बल और उद्यमसे जीतनेमें समर्थ हुआ। १६०० ई० में असीरगढ़का किला भी मुग़ल-राज्यका अंग बन गया। इस प्रकार खान्देशकी विजयको पूर्ण करके १६०१ ई० में अकबर आगरे वापिस आ गया। आनेपर उसे मालूम हुआ कि सलीमने विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया है, और स्वतन्त्र राजाके सब चिह्न धारण कर लिये हैं।

दक्षिणकी ओर जाते हुए अकबरने सलीमको अजमेरका 'सूबेदार' नियुक्त किया था। उसकी सहायताके लिए राजा मानसिंह भेजे गये। कुछ दिन पीछे बंगालमें उस्मान ख़ाँने विद्रोह खड़ा किया। राजा मानसिंहको वहाँ जाना पड़ा। बादशाह दक्षिणमें, और राजा मानसिंह बंगालमें—शाहज़ादेके मुँहमें पानी भर आया। सूबेदारी छोड़कर बादशाह बन जानेका संकल्प किया, और अजमेरको परित्याग कर आगरेकी ओर यात्रा की। आगरे पहुँचकर चाहा कि वहाँके शासकको मुट्ठीमें करके खजानेपर अधिकार

जमा ले, परन्तु कुलीज खाँकी स्वामिभक्ति बलिष्ठ सिद्ध हुई। उसने शहरके द्वार सलीमके लिए बन्द कर दिये, जिससे निराश होकर उसे इलाहाबादका रास्ता लेना पड़ा। इलाहाबादमें सलीमके कुछ मददगार थे। उनकी सहायतासे उसने सरकारी ख़ज़ानेपर कब्जा कर लिया और अवध और बिहारके सूबोंमें, अपने आप बादशाह बन बैठा। खजानेमें लगभग ३० लाख रुपये थे। वह सब उसके हाथ आये। थोड़े ही दिनोंमें सलीमके नामके सिक्के बाज़ारमें चलने लगे। अकबरने दक्षिणसे लौटकर अपने सुपुत्रकी करतूत कानोंसे सुनी और आँखोंसे देखी, क्योंकि सलीमने पितृद्रोहके दोषको ढिठाईद्वारा पूर्णता तक पहुँचा देनेके लिए अपने नामके सोने और चाँदीके सिक्के अकबरके पास भेज दिये थे।

दो वर्ष तक ऐसी ही दशा बनी रही। सलीमने अपने दूतद्वारा अकबरको कहला भेजा कि मेरे बारेमें आपको जो ग़लतफहमी हुई है, उसे दूर करनेके लिए मैं ७० हजार सिपाहियोंको साथ लेकर आना चाहता हूँ। अकबरने इस अद्भुत मुलाकातको मंजूर नहीं किया। परन्तु कुछ स्वाभाविक पुत्र-प्रेमसे और कुछ दूरदर्शितासे प्रेरित होकर वह उदार शासक सलीमको सीधा विद्रोही नहीं बनाना चाहता था। मामला इसी तरह लटकता गया। इस समय एक ऐसी दुर्घटना हो गई, जिसने अकबरके हृदयको गहरी चोट पहुँचाई, और विद्रोहको विद्रोह समझनेके लिए बाधित किया। अबुलफ़ज़ल अकबरका इतिहास-लेखक ही नहीं था, वह उसका गहरा दोस्त, और अन्तरंग सलाहकार था। वह १६०२ ई० के आरम्भमें दक्षिणसे आगरेकी ओर आ रहा था। सलीम अबुलफ़ज़लसे बहुत जलता था। उसके दिलमें यह बात जम गई थी कि अकबरके हृदयमें उसकी ओरसे मैल पैदा करनेवाला अबुलफ़ज़ल ही है। वज़ीरके आगरे लौटनेकी खबर सुनकर शाहज़ादा घबरा गया। अबुलफ़ज़लका मार्ग ओरछाके सरदार वीरसिंह बुन्देलाके इलाकेमेंसे होकर गुज़रता था। सलीमने वीरसिंह-

को रुपयेका लोभ देकर वशमें कर लिया। अबुलफज़लकी फौज़को अकस्मात् छापा मारकर वीरसिंहने तितर-बितर कर दिया, और वज़ीरका सिर काटकर सलीमके पास भेज दिया।

इस समाचारने अकबरके हृदयको मसल डाला। वह बहुत रोया, और कई दिनों तक दरबारमें न आया। बादशाहने अबुलफज़लकी हत्याका क्रोध वीरसिंहपर उतारना चाहा; परन्तु बुन्देला राजपूत भाग निकला। इस प्रकार अवस्था बिगड़ रही थी, जब राजपरिवारकी महिलाओंने गुत्थीको सुलझानेकी चेष्टा की, और कृतकार्यता भी प्राप्त की। सलीमा बेगम, जो पटरानी होनेसे अन्य रानियोंकी अपेक्षा अकबरपर अधिक अधिकार रखती थी, स्वयं आगरे गई, और समझा-बुझाकर सलीमको आगरे ले आई। आगरेमें अकबरकी माताने पोतेकी संरक्षाका बोझ अपने ऊपर लिया। इस प्रकार पुत्र और पितामें सुलह हो गई। पुत्रने आदरके तौर पर १२ हज़ार मुहरें, ७७० हाथी और बहुतसी कीमती चीज़ें पिताको भेंट की। अकबरने कुछ हाथी रख लिये, शेष वापिस दे दिये।

प्रत्यक्ष रूपमें दोनोंमें सुलह हो गई, पर अन्दर ही अन्दर आग सुलगती रही। सलीम इलाहाबाद लौट गया। वहाँ जाकर फिर उसी राजसी ठाठसे रहने लगा। शराब और अफीमका दौर दिन दूनी और रात चौगुनी गतिसे बढ़ने लगा। अतिक्रमणका असर सलीमकी तबीयतपर भी हुआ। उसकी तबीयत उग्र हो उठी। ज़रा ज़रासी बातपर ख़फ़ा हो जाना, और अपराधीको जानसे मरवा डालना। आसपासके लोग उससे बाघके समान डरने लगे। भविष्यमें राजगद्दीपर बैठनेवाले मनुष्यके लिए यह शकुन अच्छे नहीं थे।

इधर जहाँगीर अकबरको आँखें दिखा रहा था, उधर मुराद और दानियाल शराब और अफीमके नशेमें अपनी आयु और विभूतिको ग़र्क कर रहे थे। दानियालपर बादशाहकी बड़ी आशायें थीं। सलीमके बिगड़ जानेपर पिताकी आँखें छोटे पुत्रपर ही पड़ती थीं। उसके गौरवको बढ़ानेके लिए १६०४ ई० में बीजापुरके

बादशाहकी कन्यासे दानियालकी शादी की गई, परन्तु होनीको कौन टाल सकता है। शराबका दुर्व्यसन अपना काम कर गया। अकबरने राजकुमारको शराबसे बचानेके जितने उपाय किये, व्यर्थ गये। जो पहरेदार मद्यकी पहुँचको रोकनेके लिए खड़े किये गये, उन्हें दानियालने पैसोंसे जीत लिया, और अपनी मौतको निमन्त्रण देकर बुला लिया। १६०४ ई० के समाप्त होनेसे पहले ही उसका देहान्त हो गया। शराबके नशेमें ही बेहोशी और कँप-कँपीका एक ऐसा दौरा उठा कि राजकुमारके मज़बूत शरीरको हार माननी पड़ी। बुढ़ापेमें विजयी बादशाहको भाग्यसे हार खानी पड़ी।

उधर सलीमके अत्याचारोंकी कथायें प्रतिदिन आ रही थीं। उन्हें सुन-सुनकर अकबरका हृदय दग्ध हो रहा था। आखिर उसकी सहनशक्तिका अन्त हो गया। उसने इलाहाबादमें पहुंचकर बिगड़े हाथीको जंजीरोंमें बाँधनेका निश्चय किया। इधर दरबारमें एक पार्टी ऐसी खड़ी हो रही थी, जो सलीमके स्थानपर उसके पुत्र खुसरोको गद्दीका अधिकारी बनाना चाहती थी। उस पार्टीके नेता राजा मानसिंह और खान-ए-आज़म थे। यह दोनों अमीर खुसरोके रिश्तेदार भी थे। राजा मानसिंह खुसरोका मामा और खान-ए-आज़म उसका श्वशुर था। सलीमको सजा देनेके लिए अकबरका लश्कर तैयार होकर जमनासे पार हो गया था, और स्वयं बादशाह भी कूचका हुक्म देनेके लिए आ पहुंचे थे, कि इतनेमें एक दुर्घटनाने उसका हाथ थाम लिया। अकबरकी बूढ़ी माँ अकस्मात् बीमार हो गई, और चिकित्सकोंने राय दी कि वह मृत्यु-शय्यापर पड़ी है। समाचार सुनते ही बादशाह आगरे लौट आया। किन्तु होनीको कौन टाल सकता है। राज-माता ५ दिन तक बेहोशीकी हालतमें रहकर २६ अगस्त १६०४ के दिन इस संसारको छोड़ गई। अकबरको एक और धक्का पहुँचा। उसने सलीमको सज़ा देनेका विचार छोड़ दिया। सलीमको भी सुलहके लिए अच्छा मौका मिला। दादीके मरनेके बहानेसे वह आगरे

आया। अकबरने उसका प्रत्यक्ष रूपमें तो खूब स्वागत किया, परन्तु ज्यों ही वह दरबारमें पिताके सामने आकर झुका कि अकबरने हाथसे पकड़कर उसे अन्दरकी ओर घसीट लिया, और छोटेसे कमरेमें ले जाकर बिगड़े हुए बेटेके मुँहपर ज़ोरकी चपत जमाई, और बहुत बुरा भला कहा। सलीमके हिमायती क़ैद कर दिये गये, उसे बीमार बनाकर नज़रबन्दीमें अच्छे हकीमोंकी देख-रेखमें रखा गया। कुछ दिनों पीछे नज़रबन्दी जाती रही, और शाहज़ादा एक जुदा महलमें रहने लगा।

अकबरका अन्त समय आ पहुँचा। कहते हैं कि उसकी अन्तिम बीमारी अपनी ही करनीका फल थी। वह राजा मानसिंहको सलीमके रास्तेसे हटाना चाहता था। उसने हकीमसे एक ही रूप-रंगकी दो गोलियाँ बनवाई थीं, जिनमेंसे एक ज़हरीली, और दूसरी सादा थी। देते हुए भूल हो गई। अपना खोर अपने ही सिरपर सवार हो गया। बादशाहने वह गोली तो स्वयं खा ली, जो मानसिंहके लिए थी, और मानसिंहको निर्दोष गोली दे दी। बीमारीका इलाज करनेकी बहुत चेष्टा हुई, परन्तु अवस्था प्रतिदिन खराब ही खराब होती गई।

जब अकबरकी दशा निराशाजनक हो गई, तब सलीम, जो खुसरोकी पार्टीके डरसे पिताके पास आनेसे घबराता था, हिम्मत करके, बहुतसे मददगारोंके साथ महलमें पहुँचा, और रोगीकी शय्याके पास हाजिर हुआ। उस समय अकबरकी ज़बान बन्द हो चुकी थी, परन्तु देखने और समझनेकी शक्ति कायम थी। सलीमने झुककर सलाम किया। अकबरने हाथके इशारेसे उसे उठनेको कहा, और दरबारियोंको इशारा किया कि सलीमके सिरपर राजाकी पगड़ी रख दें, और कमरमें हुमायूँकी वह तलवार, जो दीवारपर लटक रही थी, बाँध दें। आज्ञाका पालन किया गया। सलीमका राज्याभिषेक हो गया। उसके थोड़े ही समय पीछे बादशाहके प्राण-पखेरू नश्वर शरीरको छोड़कर उड़ गये।

इस प्रकार उस शक्तिशाली, दूरदर्शी और उदार बादशाहका अन्त हुआ, जिसका नाम भारतवर्षके ही नहीं, अपितु संसारके साम्राज्य-संस्थापकोंकी सूचीमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखा जा चुका है। वह शासनकी प्रतिभाके साथ पैदा हुआ था। वह स्थान, जाति या मज़हबके तंग विचारों और संस्कारोंको महत्त्वाकांक्षाकी पवित्र वेदीपर कुर्बान कर सकता था। उसमें जो दोष थे, वह समयके दोष थे, कुलके दोष थे, पर उसमें जो गुण थे, वह समयसे बहुत ऊँचे थे, वह उसके अपने थे। मुग़ल-साम्राज्यकी और उसके साथ ही इस्लामकी उन जड़ोंको जो कई सौ साल बीत जानेपर भी अभी भूतलपर ही फैल रही थीं, अकबरने बहुत दूर-तक जमीनकी गहराईमें पहुँचा दिया। उसकी मृत्युसे पूर्व, योरपमें और एशियाके अन्य देशोंमें यह खबर मशहूर हो गई थी कि 'हिन्दुस्तानमें एक महानुभाव राजा राज्य करता है जिसके घाटपर बाघ और बकरी एक साथ पानी पीते हैं।'

९—नूरजहाँ और जहाँगीर

जब 'खुसरो' की पार्टीकी प्रबलताके कारण घबराकर सलीमने मुसलमान सरदारोंसे मदद माँगी, तब उन लोगोंने दो शर्तें पेश कीं। एक शर्त यह थी कि सलीम इस्लामकी फिरसे स्थापना करेगा, और दूसरी यह थी कि खुसरोके पक्षपातियोंको कोई कड़ी सज़ा न देगा। सलीमने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। राजगद्दीपर बैठकर बादशाह जहाँगीरने शाहज़ादा सलीमकी प्रतिज्ञाका जिस प्रकारसे पालन किया, उससे उसका पूरा चरित्र समझा जा सकता है। उसने फिरसे इस्लामको राज-धर्म बना दिया, परन्तु वह इस्लाम केवल शरीरमात्र था, उसमें आत्मा नहीं थी। मसजिदोंमें इस्लामी खुतबा पढ़ा जाने लगा, दरबारमें मुसलमान धर्माचार्योंको ऊँचा स्थान दिया गया, और हिजरी संवत् जारी किया गया। परन्तु साथ ही शराबका दौर पहलेसे भी अधिक ज़ोरसे चलने लगा। जिन दिनोंमें अकबरने गोश्त खाना बन्द किया हुआ था, उनमें

वह बन्द ही रहा; संगीतका आदर होता था; दरबारमें तस्वीरें लटकाई जाती थीं, ईसाई जेस्विट पादरियोंको इनाम मिलते थे और इनको जगह दी जाती थी, और हिन्दू सरदार ऊँचे ओहदों-पर कायम रखे गये। दूसरी शर्त यह थी कि खुसरोके सहायकोंको कोई दण्ड न दिया जाय। यह ठीक है कि प्रत्यक्ष रूपमें उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया गया, परन्तु बेचारे खुसरोके साथ जो बीती, उसपर उस समयकी प्रजा रोती थी। वह बेचारा जितने दिन जिया, बेइज़्ज़तीसे जिया, वह प्रायः जेलमें रहा। उसकी आँखोंके पपोटे सीं दिये गये, ताकि वह देख न सके। इन अत्याचारोंने उसे बीमार कर दिया। बीमारीकी दशामें ही वह छोटे भाई खुर्रमके सुपुर्द किया गया, जिसकी संरक्षामें उसके दुःखित और घायल प्राणोंने शरीरका परित्याग किया। जहाँगीर अकबरका पुत्र था, इस लिए सर्वथा राक्षस नहीं बन सकता था, परन्तु मुग़ल होते हुए अकबरकी हार्दिक विशालतासे विहीन था, इस कारण विला-सिता और क्रूरताको तिलांजलि नहीं दे सकता था। वह न इतना गिरा हुआ था कि स्वयं अत्याचार करता, और न इतना बलिष्ठ था कि अत्याचार होनेसे रोक सकता। उसके अपने जीवनके दो भाग थे। एक होशका, और दूसरा बेहोशीका। सुबहसे शामके तीन बजे तक वह पूरे होशमें रहता था, और उसके पीछे पूरी बे-होशीमें। उसका गुण था, सरलतापूर्ण मनस्साहस; उसका दोष था विषयासक्ति और वंशपरम्परागत क्रूरता। जब वह सावधान-तामें रहता था, तब अपने ढीले ढंगपर अकबरकी नीतिको चलानेका यत्न करता था, परन्तु जब शराब या विषयासक्ति उस-पर हावी हो जाती थी, तब वह अन्धा और क्रूर हो उठता था।

जहाँगीरकी दिनचर्या सुनिए। हॉकिन्स नामका अँग्रेज़ कुछ समयके लिए शाही दरबारमें आकर रहा था। उसने जहाँगीरके साथ कई बार हम-निवाला हम-प्याला होकर दिन गुज़ारा। उसने लिखा है कि प्रभातमें बादशाह उठता है। उसका पहला काम है, माला फेरना। यह काम एक प्रार्थनागृहमें होता है, जिसमें जहाँ-

गीर पश्चिमकी ओर मुँह करके बैठता है। प्रार्थनागृहमें ईसा और मेरीके चित्र लगे हुए हैं। उसके पश्चात् वह प्रजाको दर्शन देता है, जिसके पीछे दो घण्टे तक आराम करता है। विश्रामके पश्चात् खाना खाकर बादशाह बेगमातमें चला जाता है। कुछ घण्टे अन्तःपुरमें बीतते हैं, जिसके पीछे दरबार होता है। राज्यका सब काम उसी समय किया जाता है। अर्ज़ियाँ सुनी जाती हैं, और राजनीतिक मुलाकातें होती हैं। दरबारके पीछे हाथियोंकी लड़ाई या ऐसे ही और तमाशे दिखाये जाते हैं, जिसमें इच्छानुसार बादशाह शामिल होता है। फिर नमाज़ होती है, जिसके पीछे दस्तरख़ान परोसा जाता है। भोजनमें चार पाँच तरहके व्यंजनोंके अतिरिक्त विशेष हिस्सा शराबका रहता है। भोजनके पीछे बादशाह अपने निजू कमरेमें पहुँच जाते हैं, जहाँ महफिल लगती है। महफिलमें वही लोग सम्मिलित हो सकते है, जिन्हें स्वयं बादशाह निमन्त्रित करें। उस समय बातचीत, हँसी-मज़ाक, नाचना-गाना, और मेल-मुलाकातके साथ साथ शराबका दौर चलता है। जहाँगीर हकीमके आदेशानुसार प्रायः पाँच प्याले चढ़ाता है, परन्तु कभी कभी सीमाका उल्लंघन भी हो जाता। शेष निमन्त्रित मुसाहिबोंको भी थोड़ी बहुत शराब चढ़ानी पड़ती। रात होते होते सारी महफिल बेहोश हो जाती। जहाँगीरकी मस्ती जब पूरे जोबनपर होती, तब अफीमका गोला चढ़ाया जाता, जिसके पीछे सिवा इसके कोई उपाय नहीं रहता कि नौकर अपने झूमते हुए बादशाहको पकड़कर चारपाईपर डाल दें। दो घण्टेतक बेहोशी सवार रहती; जिसके पीछे आधीरातके समय उसे उठाकर थोड़ा बहुत खाना खिलाया जाता। उसे खिलाना नहीं—बल्कि बलात्कारसे पेटमें अन्न भरना कहा जा सकता है।

यह थी जहाँगीरकी दिनचर्या, जो एक ऐसे दर्शकने लिखी है, जिसे कई महफिलोंमें शामिल होनेका अवसर मिला था। जिस आदमीका आधा दिन मद्य-सेवामें जाता हो, उसे पूरा सचेत आदमी नहीं कह सकते; परन्तु जाननेवालेने लिखा है कि प्रातः-

कालके समय जहाँगीरका चित्त सावधान होता था। सावधानताकी दशामें वह इतना चौकन्ना रहता था कि यदि कोई सरदार रातकी लीलाकी चर्चा दिनमें करे, तो उसी कड़ी सज़ा दी जाती थी। यदि किसी दरबारीपर यह सन्देह हो जाय कि वह शराब पीकर दरबारमें आया है, तो उसे दण्ड दिया जाता था।

इस प्रकार जहाँगीरमें भलाई और बुराईका मेल था। वह युद्धमें वीर था। सावधान अवस्थामें उदार और समझदार था, जान-बूझकर प्रजाको सताना नहीं चाहता था, बल्कि यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि यदि विशेष कष्ट उठाये विना प्रजाका भला हो सके, करनेको तैयार था। उसने दरबारमें एक घण्टा लगाया था, जिसकी रस्सी दरवाजेके पास ऐसी जगह बाँधी गई थी, जहाँ हरेक आदमी पहुँच सके। उद्देश्य यह था कि जिस किसीको बादशाहके पास कोई शिकायत पहुँचानी हो, वह रस्सीको खींचकर घण्टेको हिला सके, जिसपर बादशाह फर्यादीको बुलाकर फर्याद सुन सके। स्कीम चाहे कितनी ही अक्रियात्म हो, परन्तु उद्देश्यके अच्छा होनेमें सन्देह नहीं। अकबरके शासन-सुधारोंको उसने यथाशक्ति निभानेकी चेष्टा की; परन्तु जहाँगीरके चरित्रके दुर्गुणोंने जो परिस्थिति पैदा की, और जितने अंशमें मुग़ल-साम्राज्यको कमज़ोर किया, यह हम आगे दिखायँगे। प्रजाका प्रेम प्राप्त करनेकी चेष्टा करनेपर भी वह लोकप्रिय नहीं था। हॉकिन्स लिखता है कि रियाया बादशाहसे डरती है, जिसके दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो यह कि अपनी प्रारम्भिक प्रतिज्ञाकी पूर्तिमें उसे राजपूतोंकी अपेक्षा मुसलमान सरदारोंका अधिक आदर करना पड़ता था, जिससे हिन्दुओंके हृदयोंमें अविश्वास पैदा हो गया था। दूसरा कारण यह था कि क्रोधकी बदहवासीमें वह ऐसी ऐसी क्रूरतायें कर बैठता था कि प्रजा थर-थर काँपने लगती थी। एक जरासा शक होनेपर उसने अपने एक वज़ीरको अपने हाथसे मार डाला था, और एक नौकरको प्याली तोड़नेके जुर्ममें बेतोंकी सज़ा दी गई थी। शेर और आदमीकी

ऐसी लड़ाई देखनेमें वह बहुत मज़ा अनुभव करता था, जिसमें आदमीके टुकड़े टुकड़े हो जायँ। ऐसे शासकके लिए प्रजाके हृदयमें कोई गहरा प्रेम नहीं हो सकता। संक्षेपमें जहाँगीरका चरित्र यह था कि वह न जान-बूझकर किसीका बहुत भला करना चाहता था, और न बहुत बुरा। वह निर्बल था। इन्द्रियोंके विषय उसे जिधर चाहते थे, खेंचकर ले जाते थे।

लोहेको चुम्बक मिला। हाथीको फीलवान मिल गया। जहाँगीरके महलोंमें नूरजहाँने कदम रखा। यह मेल अच्छा हुआ या बुरा, यह कहना तो कठिन है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस जोड़ीको जुटाकर कुदरतने अपने नियमको पूरा कर दिया। जो अपना मालिक है, उसे प्रजा मिलनी चाहिए, और जो अपना—अपनी इन्द्रियोंका दास है—उसे मालिककी आवश्यकता होती है। जहाँगीरको एक स्वामीकी जरूरत थी, वह नूरजहाँके रूपमें प्राप्त हो गया।

नूरजहाँका दादा तेहरान (फारिस) का रहनेवाला था। वह रियासतमें अच्छा मान रखता था। लेकिन उसका लड़का मिर्ज़ा ग़यास ग़रीब हो गया। उसने सोनेकी चिड़ियाके पास जाकर सुनहरी अंडेद्वारा भाग्योंको पलटनेका निश्चय करके भारतकी ओर यात्रा की, परन्तु दुर्भाग्यने साथ न छोड़ा। कन्दहार पहुँचते पहुँचते उसकी जेब बिल्कुल खाली हो गई। आफ़तपर आफ़त यह कि कन्दहार पहुचनेके साथ ही उसके एक लड़की पैदा हुई। इसी लड़कीका नाम आगे जाकर नूरजहाँ हुआ। ग़यास बड़ी आफ़तमें फँसा। बच्चीको सँभाले या उसकी माँको। यात्राको जारी रखना भी जरूरी था। जब और कोई उपाय न सूझा, तो लड़कीको सड़कके किनारे रखकर बोझको हल्का किया, परन्तु 'जाको राखे साइयाँ, मारि न सकि है कोय' नूरजहाँके भाग्य उसके साथ थे। एक व्यापारियोंका काफिला उधरसे गुज़र रहा था। काफिलेके सरदारने सड़कके किनारेपर चाँदके टुकड़ेको

पड़ा पाया, तो उसके हृदयमें प्रेम उमड़ आया। उसने बच्चेको उठा लिया, और अपना करके पालनेका निश्चय किया। पहली आवश्यकता धायकी पड़ी। बेटेके भाग्योंकी नावपर चढ़कर उसके सम्बन्धी भी तर गये। गयास और बीबी पास ही थे। नूरजहाँकी माँ ही उसकी धाय बनाई गई। इस प्रकार सुलक्षणी लड़कीके सहारे कुनबेका कष्ट निवारण हुआ।

काफिलेके साथ वह परिवार भारतकी ओर रवाना हुआ। सरदारने देखा कि नूरजहाँका बाप और बड़ा भाई बुद्धिमान् और कार्यकुशल हैं। उसने उन्हें अपने कारोबारमें ले लिया। दोनों अपने गुणोंसे चमक उठे। यहाँ तक कि उनका जाना आना अकबरके दरबारमें भी हो गया। नूरजहाँ भी बड़ी हुई। ज्यों ज्यों उसकी आयु बढ़ती जाती थी, सुन्दरता उभरती आती थी। जवानी आते आते उसके सौन्दर्यकी धूम चारों ओर मच गई। साथ ही वह चुलबुली तबीयतकी भी थी। बोलनेमें प्रवीण थी। बात करते कविता कर डालती थी, और कारोबारमें चतुर थी। सलीमकी चढ़ती जवानी थी, नूरजहाँको देखकर मन हाथसे निकल गया। दोनोंका मेल-जोल होने लगा। संसारमें ऐसी बातें पानीमें तेलकी भाँति फैल जाया करती हैं। शाहजादा सलीम और गयासकी लड़कीके प्रेमकी चर्चा भी दूर दूर तक फैल गई। अकबरने उसे सुना। शाहज़ादेका एक गरीब आदमीकी लड़कीसे मेल कैसा? अकबरने लड़केको बुलाकर डाँट बतलाई, और हुक्म दिया कि नूरजहाँकी शादी शीघ्र किसी जगह कर दी जाय। इसी हुक्मके अनुसार शेर अफ़गन नामके युवा सरदारके साथ नूरजहाँका विवाह किया गया, और आफ़तको टालनेके लिए बादशाहने उसे बंगालमें जागीर देकर रवाना कर दिया। इस तरह मामला किसी तरह रफ़ा-दफ़ा हो गया।

परन्तु गद्दीपर बैठते ही जहाँगीरने बंगालकी ओर आँख उठाई। वह नूरजहाँको भूला नहीं था। उसने अपने एक रिश्तेदारको प्रेमका दूत बनाकर शेर अफ़गनके पास भेजा। उसने उस बहादुर
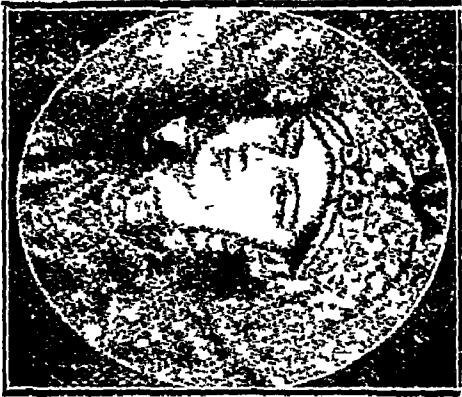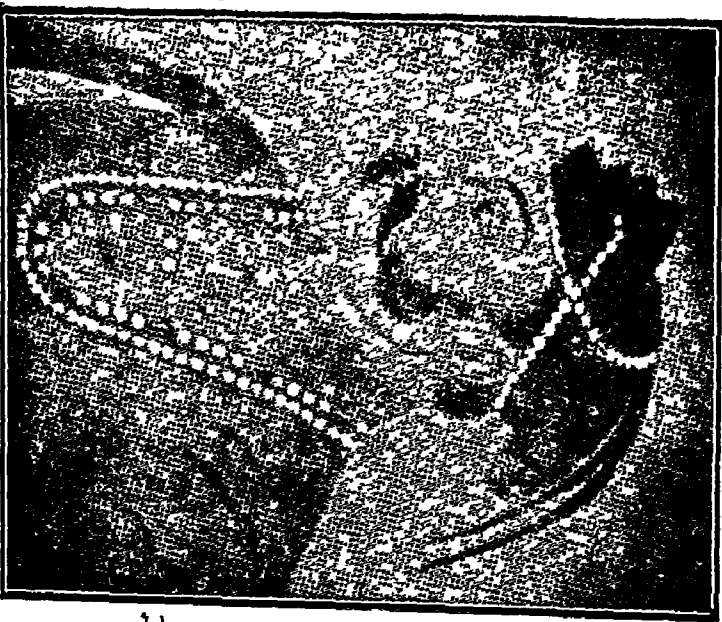
नूरजहाँ

जहाँगीर

परन्तु अभागे सरदारको लोभ दिया, और धमकाया, परन्तु वह नूरजहाँको छोड़नेपर राजी न हुआ। प्रत्युत उल्टा उसने यह समझकर कि सरकारका आश्रित होनेसे ही दवाव डाला जा रहा है, नौकरीपर लात मार दी, और हथियार पहिनने छोड़ दिये। साम और दानके उपायको असफल हुआ देखकर जहाँगीरने दूसरे उपायका अवलम्बन किया। बंगालके सूवेदारने शेर अफ़गनको मुलाकातके लिए बुलाया। वह धोखेसे डरता था, इस लिए कपड़ोंके अन्दर छुरा लेकर गया। सूवेदारने शेर अफ़गनसे नूरजहाँको छोड़ देनेका प्रस्ताव किया, जिसे उस वहादुरने अपमानजनक समझा। दोनोंमें वातचीतकी गर्मी वढ़ गई, यहाँ तक कि हथियार निकल आये। शेर अफ़गनने सूबेदारके अपमानजनक प्रस्तावका जवाव छुरेसे दिया, परन्तु स्वयं भी सूवेदारके सिपाहियोंके हाथसे काट डाला गया। इस तरह जहाँगीरका काम आसानीसे वन गया। शेर अफ़गनने सूवेदारको मारकर जो राज-विद्रोह किया, उसकी सजा यह दी गई कि उसके अन्तःपुरको वादशाहके अन्तःपुरके साथ मिला दिया गया।

कैदी होकर नूरजहाँ आगरे पहुँची। जहाँगीरने प्रेमका प्रस्ताव किया, उस मानिनीने पतिके घातकके साथ वात करनेसे मुँह फेर लिया। यह मान पतिके हत्यारेके साथ घृणाका सूचक था, या पुराने प्रेमीकी परीक्षाका साधन था, यह कहना कठिन है। जहाँगीरने भी मानका जवाव मानसे दिया, और नूरजहाँको अपनी माताकी परिचारिकाओंमें स्थान दे दिया। कुछ समय तक मानलीला जारी रही, परन्तु प्रेम असली था, इस कारण मानके मिटनेमें देर न लगी। गद्दीपर बैठनेसे छठे साल जहाँगीर और नूरजहाँकी शादी धूमधामसे हो गई। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि जहाँगीरके स्थानपर हिन्दुस्तानकी गद्दीपर नूरजहाँ बैठी। वह पति और पतिका राज्य—दोनोंकी स्वामिनी वनी। इसके पश्चात् जहाँगीरके राज्यकी जितनी वड़ी घटनायें है, उन सवकी तहमें 'नूरमहल' का हाथ दिखाई देता है। जहाँगीरके अपने चरित्र-

पर भी इस विवाहका कुछ कम असर नहीं पड़ा। उसका चरित्र अंकुशके वशमें आ गया। पान-लीला सीमामें बाँध दी गई। नूर-जहाँने अन्तःपुरको फालतू सुन्दरियोंसे खाली कर दिया। जहाँ नूरजहाँ जहाँगीरकी राज-काजके प्रति उदासीनताके लिए उत्तर-दाता है, वहाँ वह उस उद्दण्ड प्रकृतिके मनुष्यकी उग्रताको कम करनेके श्रेयकी भागिनी भी है।

राज-कार्यमें धीरे धीरे नूरजहाँका दख़ल बढ़ने लगा। इस्लामी शासनमें यह एक अपूर्व बात थी कि जहाँगीरने अपने और नूर-जहाँके नामसे सिक्के जारी किये। नूरजहाँका बाप प्रधान मन्त्री बनाया गया, भाईको ऊँचे ओहदेपर बिठाया गया। दरबारकी सजावट हो या सूबेदारका चुनाव हो, अन्तःपुरका प्रबन्ध हो या दरबारके योग्य वेषका निश्चय हो, सब जगह उसकी राय प्रिवी-कौंसिलके फैसलेके समान थी। कहा जाता है कि उसने औरतोंके वेषमें बहुत सुधार किया, सुगन्धित इत्र बनानेकी शैली उसीसे आरम्भ हुई, और दरबारकी सजावटको उसीने खूबसूरतीकी हद तक पहुँचाया।

१०—शाहजहाँ और जहाँगीर

इस विवाहके पीछे हम जहाँगीरको 'कैदी बादशाह' कह सकते हैं। वह नूरजहाँके रूपका कैदी था। इसमें आश्चर्य भी क्या है कि जो आदमी विषयोंका और इन्द्रियोंका दास हो, वह एक चतुर और सुन्दर स्त्रीका दास बन जाय। फिर इसमें भी क्या आश्चर्य है कि जो बादशाह विषय, इन्द्रिय और सुन्दरताका कैदी हो, वह अपने नौकरका भी कैदी बन जाय। अकबरके पुत्रको यह दिन भी देखना था कि वह अपने सेनापतिका कैदी बनकर रहे। कारण यह था कि जहाँगीर अपना स्वामी आप नहीं था।

मद्य और विषय-सेवाने उसे बहुत निर्बल कर दिया था। मुसलमान इतिहास-लेखक मुहमद हाजीने लिखा है—" धीरे धीरे वह (नूर-जहाँ) साम्राज्यकी असली स्वामिनी बन गई, और बादशाह उसके हाथकी कठपुतली बन गया। वह प्रायः कहा करता था कि नूर-जहाँ बेगमको देशके शासनके लिए चुना गया है, और वह काफ़ी बुद्धिमत्तासे शासनको चला रही है। मुझे तो शरीर-रक्षाके लिए शराबकी एक बोतल और कबाबके कुछ टुकड़ोंकी ज़रूरत है। जो मनुष्य अपने मुँहसे ऐसी घोषणा दे रहा हो, उसे हम कैदी बादशाह कहें तो क्या आश्चर्य है ?

नूरजहाँ चतुर थी, उदार थी, और हुकूमत करनेके लिए पैदा हुई थी। प्रारम्भमें उसका आधिपत्य देशके लिए अच्छा ही सिद्ध हुआ। वह प्रायः अपने पिताकी सलाहसे काम करती थी। वह इस समय वज़ीरे आज़म था। एक वयोवृद्ध और बहुदर्शी अमात्यकी सलाहसे जो काम किये जाते हैं, वह अच्छे ही होते हैं। जब तक मिर्ज़ा ग़यास जिया, शासनकी किश्ती भँवरोंसे बचती रही। नूरजहाँकी चतुरता और ग़यासकी धीरताका मिश्रण राज्यके लिए अमृत सिद्ध हुआ। परन्तु ग़यासकी मृत्यु हो जानेपर नूरजहाँकी तीव्र प्रतिभा और स्त्रैण स्वभावने राज्यकी किश्तीको किन किन भँवरोंमें फँसाया और किन किन चट्टानोंसे टकराया, यह इतिहासके पन्नोंमें पढ़िए। आगे हम जहाँगीरके राज्यकालके इतिहासका जो सरसरी निरीक्षण करते हैं, उससे इस सचाईकी जोरदार पुष्टि हो जायगी कि जिस राज्यमें नामका राजा एक और कामका राजा दूसरा है, वह एक ऐसे महलके समान है, जिसकी नींव एक जगह खुदी हुई है और दीवार दूसरी जगह बनी हुई है। ऐसा राज्य भूकम्पके छोटेसे धक्केको भी बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अकबरके राज्य-कालके अन्तिम दिनोंमें बंगाल विद्रोहका लीला-स्थल बना हुआ था। जहाँगीरके राज्य-कालके आरम्भमें विद्रोहका नेता उस्मान मर गया, जिससे विद्रोह भी शान्त हो गया।

अकबरके समय जो कार्य अधूरे छूट गये थे, उनमेंसे एक उदयपुर रियासतको विजय करना था। अपने राज्यके अन्तिम वर्षोंमें अकबरने मेवाड़की ओरसे आँख फेर ली थी। उसने उधर देखना ही बन्द कर दिया था। कहाँ तो वह चित्तौड़के लिए लालायित हो रहा था, और कहाँ वर्षोंतक उसकी सुध न ली। कई लेखकोंका विचार है कि प्रतापकी वीरता और आपत्तिने मुग़ल-सम्राट्के हृदयको मोम बना दिया था। अन्य लेखकोंने यह सम्मति दी है कि मेवाड़के पहाड़ों और जंगलोंमें हज़ारों सिपाहियोंको मरनेके लिए भेजना अकबरको सार्थक प्रतीत नहीं हुआ। मेवाड़पर आक्रमण करनेमें उसे व्यय अधिक लाभ कम दिखाई देता था। कोई भी कारण हो, इसमें सन्देह नहीं कि राणाकी आयुके अन्तिम वर्ष बेफिक्रीसे कटे। महाराणाके प्राणान्तके पश्चात् उनका बड़ा पुत्र अमरसिंह गद्दीपर बैठा। अमरसिंह भी अपने पिताकी तरह बलवान् वीर था, यद्यपि यह कहना कठिन है कि उसमें पिताके समान ही धैर्य और तत्परताकी मात्रा भी विद्यमान थी। राणा अमरसिंहके गद्दीके बैठनेके आठ वर्ष पीछे सम्राट् अकबरका भी देहान्त हो गया।

अमरसिंहने शान्तिका अवसर पाकर राज्य-व्यवस्था स्थापित करनेका प्रयत्न किया। भूमि-कर नये सिरेसे लगाया गया, और सरदारोंको राज्यकी सेवाके अनुपातसे जागीरें बाँटी गईं। सरदारों तथा अधिकारियोंको सेवा और योग्यताके अनुसार श्रेणियोंमें बाँटा गया। राज्यकी स्थिरताको बढ़ानेके लिए और भी अनेक उपाय किये, जिनकी सूचना प्रजाको शिलास्तम्भों द्वारा दी गई। आज्ञाओंसे अंकित शिलास्तम्भ राज्यके भिन्न भिन्न भागोंमें खड़े किये गये थे।

इधर अकबरके उत्तराधिकारीके हृदयमें यह लालसा उत्पन्न हुई कि जिस कामको पिताने अधूरा छोड़ दिया है, उसे पूरा किया जाय। जहाँगीर अपने मुकुटमें एक हीरा लगाना चाहता था, जो अकबरको नसीब न हुआ था। वह हीरा मेवाड़का था। उसने

मेवाड़का मान मर्दन करनेका निश्चय करके खानखानाके भाईकी अध्यक्षतामें एक बड़ी सेना उदयपुरकी ओर रवाना की।

यह समाचार उदयपुरमें पहुँचा, तो सरदार लोग सावधान होने लगे। उन्हें वह प्रतिज्ञा स्मरण हो आई, जो मृत्युशय्यापर लेटे हुए राणा प्रतापसिंहके सम्मुख उन्होंने की थी। राणाके हृदयमें अपने पुत्रकी ओरसे सन्देह उत्पन्न हो गया था। एक वार जब राणाका बसेरा जंगलकी झोपड़ियोंमें था, तब अमरसिंहकी पगड़ीका एक किनारा बाँसमें फँस गया। अमरसिंह इतनेहीसे झुंझला उठा। शान्तिपूर्वक पगड़ीके छोरको छुड़ानेके स्थानपर वह उसे खेंचता हुआ चला गया। इस दृश्यने राणाके हृदयमें अशान्ति पैदा कर दी। वह सोचने लगे कि क्या अमरसिंह उन सब कष्टोंको धैर्य-पूर्वक सहन कर सकेगा, जो मेवाड़की मान-रक्षाके लिए आयँगे? इसी सन्देहको मिटानेके लिए राणाने सरदारोंसे शपथ ली थी। राणाका सन्देह सच्चा साबित हुआ। जहाँगीरके सेना-सन्नाहके समाचारने अमरसिंहको फौजी शिविरमें नहीं, विलास-भवनमें मस्त पाया। यह दशा देखकर राजपूत सरदार इकट्ठे हुए, और राणाको मोह-निद्रासे जगानेके लिए उसके अन्तःपुरमें हाजिर हुए। वहाँ जाकर राणाको आमोद-प्रमोदमें मग्न पाया। भवनमें विलायतका बना हुआ एक बड़ा शीशा रखा था। सरदारोंकी दृष्टि उसकी ओर गई। चन्दावत सरदारने प्रतापसिंहके पुत्रको ललकार-कर पिताके आदेशको पालन करनेके लिए कहा; परन्तु इतनेसे भी अमरसिंहमें स्फूर्ति पैदा न हुई। सुखनिद्राका भंग हो जानेसे उसके माथेपर त्योरी दिखाई दी। सलूम्बराका तेजस्वी सरदार अपने स्वामीके इस प्रमादको न सह सका। ग़लीचेको दबानेके लिए पीतलका एक बोझ रखा हुआ था। उसे उठाकर उसने पूरे जोरसे वीरताकी शत्रु विलासिताके चिह्नस्वरूप उस आइनेपर मारा, शीशा चकनाचूर हो गया, और उसीके साथ अमरसिंहका मानी हृदय भी उत्तेजित हो उठा। सलूम्बराने उत्तेजित राणाको हाथसे पकड़कर सिंहासनसे नीचे खेंच लिया और बाहिर लाकर

घोड़ेपर सवार करा दिया। रणभेरी बजने लगी, राजपूत वीरोंकी तलवारें म्यानमें खनखनाने लगीं, और शत्रुपर चढ़नेके लिए अधीर घोड़े हिनहिनाने लगे। राणा अमरसिंह अभिमान और तिरस्कारके भावसे अन्धा हो रहा था। उसने सलूम्बराको भला बुरा कहा, और द्रोहीतक ठहराया; परन्तु सरदारोंकी इच्छा प्रतिरोध करनेकी उसमें शक्ति न थी। बुतकी तरह घोड़ेपर सवार होकर सेनाओंके आगे चला जा रहा था। राणा प्रतापसिंहके उत्तराधिकारीकी आँखोंसे अपमानजनित क्रोधसूचक आँसुओंकी धारा बह रही थी।

अश्रुजलने क्रोधके मैलको धो दिया। अभी दूर न गये थे कि अमरसिंहका हृदय शान्त हो गया। सारी परिस्थिति उसके सामने आ गई। उन रूखे परन्तु बहादुर सरदारोंके प्रति कृतज्ञताका भाव चित्तमें उत्पन्न हो गया, और क्रोधके आँसुओंका स्थान कृतज्ञताके आँसुओंने ले लिया। एक बार मोह-निद्राके टूट जानेपर अमरसिंहने अपने आपको प्रतापसिंहका योग्य पुत्र सिद्ध कर दिखाया। उसने शाही फौजोंको कई लड़ाइयोंमें पराजित किया। रनपुरकी लड़ाईमें मुग़ल-सेनाका सर्वनाश ही हो गया। जहाँ कहीं मुसलमान-सेनाओंकी राजपूतोंसे मुठभेड़ हुई, वहीं उन्हें मुँहकी खानी पड़ी। मुग़ल सेनायें समुद्रकी लहरोंकी तरह उमड़कर आती थीं, और राजपूती चट्टानसे टकराकर लौट जाती थीं, परन्तु मुग़ल-साम्राज्यकी जनशक्ति और धनशक्ति इतनी अधिक थी, कि एक लहरके टूटते ही दूसरी लहर सिर उठाती थी। जहाँगीरने मेवाड़को जीतनेका संकल्प कर लिया था। इस कारण वह सेनापर सेना भेज रहा था।

फिर भी मेवाड़का सिर नीचा न हुआ। तब जहाँगीरने भेद-नीतिसे काम लेनेका निश्चय किया। राणा प्रतापके विद्रोही भाई सगरसिंहको मेवाड़की गद्दीका प्रलोभन देकर मुट्ठीमें कर लिया, और राजतिलक करके मुसलमान फौजोंके साथ चित्तौड़के खण्डरातमें हुकूमत करनेके लिए भेज दिया। एक ही भूमिकी कोखसे कोयला और हीरा दोनों उत्पन्न होते हैं। प्रताप और सगर भी भाई भाई थे।

सगरसिंहने अपने वंश और धर्मका द्रोह करते हुए जहाँगीरकी प्रेरणासे चित्तौड़का राजा बनना स्वीकार कर लिया, परन्तु शाबाश है उन राजपूत सरदारोंको जिन्होंने शाही प्रसन्नताका प्रलोभन होनेपर भी अमरसिंहका साथ न छोड़ा। एक भी मशहूर सरदार सगरसिंहके पक्षमें न गया। सात वर्ष तक जातिद्रोही सगरसिंहने चित्तौड़में राज्य किया। चित्तौड़ बे-आबाद पड़ा था। राजपूतोंने उसे छोड़ दिया था। इस नये राजाके ७ वर्षोंके परिश्रमसे भी उन शानदार परन्तु बेजान इमारतोंमे जान न पड़ सकी। सगरसिंह उन मीनारों और महलोंको सजाता था, परन्तु देश और धर्मपर प्राण देनेवाले बाँके राजपूतोंकी रक्तधाराओंसे अभिषिक्त वह जातिके गौरव-स्तम्भ सजनेकी जगह अधिक अधिक भयावने प्रतीत होते थे। उन इमारतोंके पीछेसे मुँह निकाल निकालकर ऐतिहासिक राजपूत वीर सगरसिंहको लज्जित करते थे, और कहते हैं कि भैरोंने साक्षात् दर्शन देकर उसे धमकाया था। भैरोंजीने दर्शन देनेके लिए कैलाससे चित्तौड़ तककी यात्रा की हो या न की हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि अपराधीकी अपनी आत्मा उसे लज्जित कर रही थी। सात वर्ष तक बे-आबाद चित्तौड़के खंडरातमें हुकूमत चलाकर सगरसिंहकी अन्तरात्मामें घृणा पैदा हो गई। उसने अपने भतीजे अमरसिंहके पास चित्तौड़-गढ़की चाबियाँ भेज दीं, और स्वयं जंगलका मार्ग ले लिया। कुछ दिनों पीछे जब वह बादशाहके दरबारमें हाजिर हुआ, तो उसने सगरसिंहको ऐसे कुत्सित शब्दोंमें फटकारा कि वह सहन न कर सका, और वहींपर छुरा निकालकर उसने अपनी हत्या कर डाली।

भेद-नीतिमें निष्फल प्रयत्न होकर भी जहाँगीरने हिम्मत नहीं हारी। पराजित भारतमें एक मात्र स्वाधीन रियासतका मान-मर्दन करनेके लिए उसका चित्त व्याकुल हो गया था। अजमेरमें एक बृहती सेना एकत्र की गई, और राजकुमार परवेज़को उसका नायक बनाया गया। बादशाहने परवेज़को युद्धके लिए भेजते हुए निर्देश किया था कि यदि राणा दोस्ती करना चाहे, तो उसका

आदर-सत्कारके साथ स्वागत किया जाय। इस बार मुगल-सेनाओंका सन्नाह जबर्दस्त था, पुराने और अनुभवी सेनाध्यक्ष परवेज़के साथ भेजे गये थे। राजपूतोंके सिरमौरने खन्नोटमें शाही सैन्यका स्वागत किया। रक्तकी नदियाँ बह गईं, दोनों ही ओरसे वीरताके करिश्मे दिखाये गये। शाही सेना संख्यासे अधिक थी, परन्तु फिर एक बार शूरताने संख्यापर विजय प्राप्त किया, और मुसलमान सेना पीठ दिखाकर भाग निकली। राजकुमार पेचीदा घाटीमें फँसकर दुश्मनके हाथमें पड़ते पड़ते बचा। उसकी सेनामें फूट पड़ गई। जिसे जिधर मार्ग मिला, उधरहीसे अजमेर-की ओर भाग निकला। जहाँगीरको मेवाड़का मान-मर्दन करनेमें फिर एक बार निराश होना पड़ा। मेवाड़पतिका मस्तक उस समय सारे भारतवर्षके शासकोंसे ऊँचा हो रहा था। वह उसके गौरवका यौवन काल था। जहाँगीरने मेवाड़के विरुद्ध १७ वार सेनायें भेजीं और १७ वार ही राजपूत-वीरताकी दीवारसे टकराकर उन्हें लौट आना पड़ा।

परन्तु हरेक नई लड़ाई मेवाड़पतिकी तलवारको कमज़ोर करती जाती थी, और उसकी ढालमें छेद करती जाती थी। हरेक युद्धमें जो वीर मर जाता था, उसकी स्थानपूर्त्ति नहीं हो सकती थी, क्योंकि क्षेत्र परिमित था, और धनका अभाव था। दूसरी ओर अनन्तकोष और विस्तृत भारतदेशका बल था। सौकी जगह हजार, और हजारकी जगह लाख आनेको तैयार थे। १७ लड़ाइ-योंमें राजपूतानेके चुने हुए वीर-रत्न काम आ गये, पर जहाँगीरकी अगणित सेनापर कोई असर न पड़ा। वह बार बारके पराजयसे खिन्न गया, और अन्तिम फैसला करनेके लिए उसने सब कठिना-इयोंको हल करनेवाले, सब मर्ज़ोंकी दवा भाग्यशाली पुत्र खुर्रमको मेवाड़-विजयके लिए रवाना किया।

पहली सब सेनाओंकी अपेक्षा बृहती सेना एकत्र की गई। राजकुमार खुर्रमके चुनावके लड़ाके उसके साथ दिये गये। उधर राणाने भी रणकी भेरी बजाकर वीरोंको इकट्ठा करनेकी चेष्टा की,

परन्तु वहाँ वीर थे कहाँ ? अधिकाँश वीर युद्धभूमिमें काम आ चुके थे। राजपूतानेका ख़ज़ाना या तो आक्रमणकारीके हाथों लुट चुका था, या आत्म-सम्मान और वंशमर्यादाको त्यागकर दासता स्वीकार कर चुका था। राणा अमरसिंह और युवराज कर्णसिंहके आमन्त्रणपर केवल मुट्ठीभर वीर इकट्ठे हुए। तो भी वहादुरोंने जी नहीं छोड़ा। धर्म और जन्मभूमिकी मान-रक्षाके लिए शत्रुसे भिड़ गये, परन्तु खुर्रम परवेज़ नहीं था। वह अनुभवी और भाग्यशाली सेनापति था। राणाके थोड़ेसे लड़ाके खुर्रमके जनप्रवाहके साथ न खड़े हो सके। वह वन्द, जो कई वर्षोंतक मुग़ल-सेनाके वरसाती नालेको रोक रहा था, अन्तको टूट गया। उस समय प्रताप और अमरमें जो भेद था, वह प्रकट हो गया। अमरसिंह प्रताप नहीं था कि सर्वथा पराजित और और निर्वल होकर पराधीन होनेकी जगह वनवासी वनना पसन्द करता। अमरसिंहने पराजयको स्वीकार कर लिया, स्वयं खुर्रमके पास हाजिर होकर अधीनता स्वीकार की, और अपने पुत्र कर्णसिंहको जहाँगीरके दरवारमें भेज दिया।

इस प्रकार मेवाड़का शासक मुग़ल-सम्राटके सामन्तोंकी श्रेणी-में सम्मिलित हो गया, परन्तु जिस वहादुरीसे राजपूतोंने सुदीर्घ समय तक मुग़ल-शक्तिका सामना किया, उसका सुफल मिले विना न रहा। मेवाड़पतिने स्वयं राजधानीमें जाकर सामन्तोंमें बैठनेकी अनिच्छा प्रकट की। इस इच्छाका आदर करके राणाको दिल्ली जानेसे मुक्त किया गया। युवराजका दिल्लीमें जो सम्मान हुआ, वह किसी दूसरी रियासतके प्रतिनिधिको प्राप्त नहीं हुआ था। वादशाहकी ओरसे उसे प्रायः प्रतिदिन भेंटें दी जाती थीं, और दरवारमें ऊँचा आसन प्राप्त होता था। जव युवराज कर्णसिंह कुछ दिनोंतक दरवारमें रहकर अपने घरकी ओर वापिस गया, तव वह सम्राट्की प्रसन्नतासूचक खिलतों और इनामोंसे लदा हुआ था।

इस प्रकार यह मेवाड़-विजयका स्वर्णपदक भी राजकुमार खुर्रम-की छातीपर ही लटकाया गया।

११-मुग़ल-साम्राज्यका उत्थान और पतन

देखनेमें उदयपुरकी विजयने राजकुमार खुर्रम (यानी शाहजहाँ) के यश और प्रभावको स्थिर आधारपर स्थापित कर दिया, परन्तु मुग़ल-साम्राज्यमें ऐसा प्रभाव जो केवल योग्यता और वीरतापर अवलम्बित हो, न केवल अस्थिर प्रत्युत भयानक समझा जाता था, क्यों कि उससे डाह पैदा हो जाती थी। वह डाहका युग था। बेटेसे बाप ईर्ष्या करता था, भाईसे भाई ईर्ष्या करता था। ऐसे युगमें प्रभावकी स्थिरताके लिए किसी प्रभावशाली सहायककी जरूरत थी। शाहजहाँको वह भी मिल गया। शाहजादा खुर्रमकी शादी नूरजहाँके भाई आसिफ़ ख़ाँकी लड़की 'ताजमहल' से हो गई, जिसके कारण देशकी असली शासिका नूरजहाँ, और सेनापति आसिफ़ ख़ाँकी पूर्ण सहानुभूति शाहजादाको प्राप्त हो गई।

बेचारा शाहजादा खुसरो पहले ही पिताके क्रोधका पात्र था। वह तो बेचारा दिन रात यही रोता था कि यदि मै राजकुमार न होकर किसी गरीबके घर पैदा होता, तो अधिक उत्तम होता। राजगद्दीपर बैठनेके उम्मेदवारोंकी सूचीसे खुसरोका नाम खारिजसा हो चुका था। खुर्रमके उदयने खुसरोके भाग्योंको बिलकुल मिटा दिया। लोग खुसरोपर दया करते थे, उसके लिए दुवा करते थे, परन्तु यह सम्भावना किसीके हृदयमें भी शेष नहीं रही थी कि वह राजगद्दीपर बैठेगा। योरपियन यात्रियोंने लिखा है कि सामान्य प्रजामें खुसरोके समर्थकोंकी संख्या बहुत अधिक थी, परन्तु वह सहानुभूति केवल एक दुःखित राजकुमारके साथ सहानुभूतिका रूपान्तर थी या उसके गुणोंका परिणाम थी, यह कहना कठिन है। उस बेचारेकी दशा दयाके योग्य थी। गद्दीपर बैठकर जहाँगीरने जो पहला काम किया, वह यह था कि अपने बड़े लड़केको एक हाथीपर बिठाकर बाज़ारमें घुमाया। हाथीके आगे आगे एक चोपदार मजाकिया तौरपर बेचारेको सलाम करता

हुआ जाता था। जहाँगीरने यह नाटक खुसरोंकी हँसी उड़ानेके लिए किया होगा, परन्तु कहा जाता है कि प्रजापर उसका असर उल्टा ही पड़ा। लोग बेचारेकी दुर्दशापर रोते थे, यहाँ तक कि एक दो स्थानोंपर दंगा होते होते बचा। इसके पीछे अभागे राजकुमारको अधिक समय कैदखानेमें ही गुजारना पड़ा। कैदखानेमें भी हथकड़ी पहिनाना जरूरी समझा जाता था। कुछ समयके लिए राजकुमारकी आँखोंकी पलकें सी दी गई थीं, ताकि वह कोई शरारत न कर सके।

शाहजहाँका सितारा प्रतिदिन ऊँचाईपर जा रहा था। जो आवश्यक कार्य था, वह उसीके सुपुर्द किया जाता था, और उसीके हाथों होता था। वह अपने समयका योग्यतम सेनापति समझा जाता था। दक्षिणमें दशा फिर बिगड़ रही थी। अकबरने अपने शासनके अन्तिम समयमें मुग़ल-सत्ताको दक्षिणके कुछ हिस्सेमें स्थापित किया था, परन्तु वह सत्ता देरतक जीवित न रह सकी। मलिक अम्बर नामके एक अबीसीनियाके निवासीने डूबते हुए दक्षिणके राज्यको फिर सहारा दिया। वह अहमदाबादके बादशाहका वज़ीर था। वह युद्धमें बहादुर, नीतिमें चतुर, और प्रबन्धमें दक्ष था। औरंगाबादके समीप नया शहर बसा और उस नये शहरमें राजधानी बनाकर उसने मुर्दा रियासतकी रगोंमें नया रुधिर दौड़ा दिया। सेनाको नये सिरेसे तैयार किया, टोडरमलकी लगान-पद्धतिको चलाकर प्रजाको सन्तुष्ट कर दिया, और जिस युद्ध-नीतिकी सहायतासे औरंगजेबके समयमें मराठा सरदार सफलता प्राप्त करनेवाले थे, उसका अवलम्बन किया। वह युद्धनीति यह थी कि बढ़ती हुई मुग़ल-सेनाओंके सामनेसे पीछे हट जाना, चारों ओर पहाड़ों और नालोंमें फैलकर छुप जाना और मैदानको साफ़ छोड़ देना। रास्ता खाली देखकर मुग़ल-सेनायें आगे बढ़ जाती थीं, परन्तु आसपासकी घाटियों और नालोंके रास्तोंमें शत्रुका पीछा नहीं कर सकती थी। मुग़ल-सेनाओंने रातको डेरा डाला और शत्रुने चारों ओरसे छापे

मारने शुरू किये। इक्के दुक्केको काट डाला, रसदका आना रोक दिया, पीछे जानेके रास्तेको खतरनाक बना दिया। दक्षिणके हल्के हल्के आदमी छोटे छोटे घोड़ोंपर सवार होकर जिस फुर्तीसे भाग जाते और फिर इकट्ठे हो जाते थे, शानदार खेमों, गडाडील घोड़ों, और तोपखानोंसे लदी हुई मुग़ल-सेनायें उससे चकरा जाती थीं; मलिक अम्बरने इसी युद्धनीतिका अवलम्बन किया।

मलिक अम्बरके विद्रोहको दबानेके लिए कई सेनापति भेजे गये; परन्तु उनमेंसे किसीको भी सफलता न हुई। तब जहाँगीरने उसपर कई ओरसे इकट्ठा धावा करके विद्रोहको कुचलनेका निश्चय किया। तीसरे शाहजादे परवेज़को आक्रमणकी सेनाका सरदार बनाया गया। उसकी सहायताके लिए राजा मानसिंह, खानजहान लोदी, और गुजरातके सूबेदार अब्दुल्लाखाँको नियुक्त किया गया; परन्तु यह लम्बी चौड़ी सेनापतियोंकी फौज भी मलिक अम्बरको पराजित न कर सकी। उस फुर्तीले और बहादुर सरदारने भिन्न भिन्न दिशाओंसे आनेवाले शत्रुओंको आपसमें मिलनेसे पूर्व ही अलग अलग पराजित कर दिया।

जहाँगीरकी आँखें फिर शाहजहाँकी ओर फिरीं। दक्षिणको जीतनेका कार्य उसके सुपुर्द किया गया। घटनाचक्रने उसकी सहायता की। मलिक अम्बरकी वीरता अपने बराबरवाले सरदारों और दक्षिणके अन्य सरदारोंकी ईर्ष्यासे उसकी रक्षा न कर सकी। दक्षिणमें ही उसके शत्रु पैदा हो गये। जब शाहजादा खुर्रम सेनापति बनकर दक्षिणकी ओर रवाना हुआ, तब मलिक अम्बरका प्रभाव बहुत कुछ कम हो चुका था। उसने देख लिया कि सामना करना व्यर्थ है। शीघ्र ही निजामशाही रियासतकी ओरसे अधीनताका सन्देश शाहजादाकी सेवामें आ पहुँचा। अहमदाबाद तथा अन्य जो स्थान मुग़ल-राज्यसे मलिक अम्बरने छीने थे, वह सब वापिस दे दिये गये। फिर एक बार राजधानीमें शाहज़ादा खुर्रमका जयजयकारा गूँज उठा। इसमें कोई सन्देह शेष न रहा, कि वही मुग़ल-सम्राट्का उत्तराधिकारी होगा।

दो वर्ष तक दक्षिणमें शान्ति रही। शान्तिके अवसरका सदुपयोग करनेके लिए जहाँगीरने काश्मीरकी सुन्दर घाटीमें महीनों तक आनन्द किया। वह स्वर्गीय स्थान उस विलासी बादशाहको बहुत ही प्यारा था। सर्दी थी, पानी था, हरियाली थी, सुन्दरता थी, और निश्चिन्तता थी। जहाँगीरको और क्या चाहिए? श्रीनगरका शालीमार बाग़ आज भी जहाँगीरकी सुरुचिपूर्ण यात्राओंका स्मरण करा रहा है। १६२० ई० में काश्मीरमें उसने सुना कि दक्षिणमें विद्रोहकी आग फिर जल उठी है। मलिक अम्बरने यह सुन कर कि बादशाह काश्मीरमें सो रहा है, फिरसे सिर उठाया। जहाँगीरके लिए शीतल घाटीका त्याग करना कठिन था। उसने शाहजहाँको दक्षिण जानेका आदेश भेज दिया, परन्तु बिना इस बातका अन्तिम निर्णय किये कि राज्यका उत्तराधिकार उसीके लिए सुरक्षित रखा जायगा, फिरसे दक्षिणकी कठिन लड़ाईमें जीवनको सन्देहमें डालना शाहजादेको उचित प्रतीत न हुआ। उसने बादशाहसे इस बातका पक्का और स्थूल सबूत माँगा कि गद्दीपर उसीको बिठाया जायगा। बादशाहने अपनी बला दूसरेके सिर डालनेका अच्छा मौका देखकर खुसरोको ही उसके सुपुर्द कर दिया। वह अभागा राजकुमार पिताको छोड़ भाईका बन्दी बना, परन्तु यह अपमान उसे अधिक देर तक बर्दाश्त न करना पड़ा। दक्षिणकी जल-वायुने या भाईकी डाहने उसके लिए ज़हरका काम किया। थोड़े दिनों पीछे भाग्यहीन खुसरोके प्राण-पखेरू राजकुमारके शरीरको दुःखोंका घर समझकर स्वाधीनताकी तलाशमें प्रयाण कर गये। इधरसे निष्कंटक होकर शाहजहाँने पूरे यत्नसे दक्षिणमें युद्ध किया, और थोड़े ही समयमें मलिक अम्बरने क्षमा माँगकर अधीनता स्वीकार करनेका चिह्न स्वरूप हर्जाना अदा कर दिया।

प्रत्यक्ष रूपमें शाहजहाँका प्रभाव अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। राज्यका उत्तराधिकारी खुसरो मर चुका था। योद्धाओंमें शाहजहाँका सर्वोपरि मान था। तीसरा राजकुमार यद्यपि

अपने पिताका प्यारा था. क्योंकि वह जहाँगीरके टक्करकी शराब पी सकता था. परन्तु उसमें योग्यता नहीं थी। राज्यकी असली संचालिका नूरजहाँ खुर्रमके पक्षमें थी। राज्यकी रक्षा उसके बिना असम्भव थी। किसी राजपुत्रके लिए इससे अधिक प्रसन्नताकी बात क्या हो सकती है?

१८—घरू फूट और मृत्यु

लक्ष्मीको चंचल कहा गया है, और स्त्री-स्वभावको भी चंचल कहा गया है। यदि दैववशात् कहींपर लक्ष्मी स्त्री-स्वभावपर अवलम्बित हो जाय, तो चंचलताकी मात्राका दुगुना हो जाना स्वाभाविक है। शाहजहाँ भी इसी अनिष्ट मिश्रणका शिकार हुआ। जो प्रत्यक्षमें उसके भाग्योंकी सर्वाधिक बढ़तीका समय था, वही उसके दुर्भाग्यकी पराकाष्ठाका उद्योग पर्व बना। इधर खुर्रम अपने हृदयमें राजगद्दीको सुरक्षित समझकर प्रसन्न हो रहा था, और उधर दुर्दैव उसकी वर्तमान परिस्थितिको भी मिटानेका उपक्रम कर रहा था। जो शाहजादेके अभ्युदयके कारण थे, वही उसके अधःपातके साधन बने। उसके लिए फूल ही काँटे बन गये।

नूरजहाँ न खुसरोको चाहती थी, और न खुर्रमको। वह हुकूमत चाहती थी। वह गद्दीका अधिकारी ऐसे राजकुमारको बनाना चाहती थी, जो उसकी अधीनतामें—उसके असरमें—रहे। खुसरोसे उसे कोई आशा नहीं थी। उससे बादशाहकी बनती भी नहीं थी। जब तक खुसरो जिन्दा रहा, नूरजहाँ खुर्रमका साथ देती रही। उसे आशा थी कि वह राजकुमार रिश्तेके कारण अपने असरमें रहेगा। नूरजहाँने ही खुसरोको खुर्रमके सुपुर्द कराया। वह काँटा रास्तेसे निकल गया और उसकी मृत्युकी उत्तरदायिता न नूरजहाँपर आई और न जहाँगीर-

पर। इस अंशमें उस चतुर महिलाकी नीति सफल हुई। अब दोनों आमने सामने खड़े हुए। नूरजहाँने खुसरोके मरनेपर जब शाहजहाँकी ओर आँख उठाकर देखा, तो उसे प्रतीत हुआ कि उसने जिस भूतको खड़ा किया है, वह उसके वशका नहीं है। राजकुमार खुर्रम स्वभावका उद्धत, चुपचाप और शान्त था। बहादुरीमें वह नाम पा चुका था। भाईकी प्रतिद्वन्द्विता नष्ट हो चुकी थी। अब उसे किसी दूसरे सहारेकी जरूरत नहीं थी। नूरजहाँकी तीव्र बुद्धिने देख लिया कि खुर्रमको औजार बनाकर उसकी मार्फत हुकूमत करना असम्भव है। वह अपना स्वयं स्वामी बनकर रहेगा। यह समझते ही उसने एक मोहरेको छोड़ दूसरे मोहरेको आगे बढ़ाकर वज़ीर बनानेका उपक्रम किया। शेर अफ़गनसे उसके एक लड़की थी। चौथे राजकुमार शहरयारके साथ धूमधामसे उसका विवाह कर दिया गया। शहरयार एक कमजोर और सीधा साधा नौजवान था। वह बड़ी सुलभतासे कठपुतली बन सकता था। भारतकी भाग्यविधात्री देवीकी कृपादृष्टि हटते ही खुर्रमका मार्ग कण्टकाकीर्ण होने लगा।

कन्दहारको फ़ारिसके बादशाहने जीत लिया। उसे फिरसे जीतकर मुग़ल-राज्यका हिस्सा बनाना आवश्यक था। शाहजहाँकी अपेक्षा अधिक योग्य सेनापति मिलना कठिन था। बस, एकदम हुक्म जारी हुआ कि दूसरा राजकुमार कन्दहारके लिए रवाना हो जाय। शाहजहाँने आज्ञाके पहुँचते ही उत्तरके लिए पयान किया, और वह माण्डूके किले तक पहुँच भी गया, परन्तु वहाँ पहुँचते पहुँचते उसकी नींद खुल गई। कन्दहार भेजनेका असली उद्देश्य उसकी समझमें आने लगा। कन्दहार उसके लिए विजयकी भूमि नहीं थी, देशनिकालेका स्थान था, जिन्दा जिस्मको गाड़नेका क़ब्रिस्तान था। वह ठिठक गया। उसने बादशाहको सन्देश भेजा कि पहले मुझे इस बातकी गारण्टी दी जाय कि गद्दीका अधिकारी मैं समझा जाऊँगा, अन्यथा मैं देशसे बाहिर जानेको तैयार नहीं हूँ।

इसके जवावमें हुक्म मिला कि तुम सेनापतिकी पदवीसे च्युत किये गये, कन्दहार जानेवाली सेनाका सेनापति शहरयार बनाया गया है, तुम्हारे साथ जितनी फौज और धन-राशि है, वह शहरयारके पास भेज दो। हुक्म सुनते ही राजकुमार सन्न रह गया, और जवाव भेजा कि मैं स्वयं खिदमतमें हाजिर होकर सब मामलेको साफ करना चाहता हूँ। इस प्रार्थनाके उत्तरमें सब सेनापतियोंको हुक्म दिया गया कि वह शाहजहाँको छोड़कर शहरयारके पास आजायँ।

इस आज्ञाने खुर्रमको एकदम बागियोंकी श्रेणीमें शामिल कर दिया। हिन्दुस्तानमें शाहजहाँके पास जितनी जायदाद थी, वह जब्त कर ली गई, और उससे गुजरातमें कोई जायदाद चुन लेनेके लिए कहा गया। शाहजहाँने समझ लिया कि अब सुलहका रास्ता बन्द हो गया, और केवल शक्तिसे ही प्राण और अधिकार-रक्षा हो सकती है। जैसे सलीम अकबरके विरुद्ध विद्रोही बन कर खड़ा हुआ था, वैसे ही खुर्रम जहाँगीरके विरोधमें खड़ा हुआ। घरू युद्ध मुगल-साम्राज्यका स्थायी रोग था। शाहजहाँने भी कुल-प्रथाका पालन किया। शाहजहाँ विद्रोही सेनाओंको लेकर आगरेकी ओर रवाना हुआ। यह समाचार सुनकर जहाँगीर भी काश्मीरकी शीतल जलवायुको छोड़कर मैदानमें आनेके लिए बाधित हुआ। आपत्तिके समयमें नये मित्रोंकी तलाश होती है। नूरजहाँने भी नये मित्रोंके लिए आँख दौड़ाई, तो बढ़ते हुए सेनापति महाबतखाँपर दृष्टि पड़ी। राजकुमार परवेज़ और महाबतखाँको शाहजहाँके पछाड़नेके लिए भेजा गया। आपत्तिमें बड़ेसे बड़े मित्र भी साथ छोड़ देते हैं। बहुतसे सेनापति भीड़के समयमें शाहजादाका साथ छोड़ गये। शाहजहाँने पहले बंगालमें और फिर दक्षिणमें पाँव जमानेकी चेष्टा की; परन्तु सफलता न हुई। साथियोंने छोड़ दिया, हिम्मत टूट गई, और सिवा अधीनताके कोई उपाय न रहा। शाहजहाँने बादशाहके पास अधीनता स्वीकार करनेका सन्देश भेज दिया। जहाँगीरने इस शर्तपर

अधीनताकी प्रार्थना स्वीकार की कि जितने किले शाहजहाँके हाथमें हैं, छोड़ दिये जायँ और शाहज़ादेके दो लड़के दाराशिकोह और औरंगज़ेब ज़मानतके तौरपर राजधानीमें भेज दिये जायँ। राजकुमारने दोनों शर्तें पूरी कर दीं। इस प्रकार शाहजहाँका विद्रोह समाप्त हो गया।

शाहजहाँकी आँधी अभी दबने न पाई थी कि देश भरको कँपानेवाला एक और अन्धड़ उठ खड़ा हुआ। नूरजहाँके चंचल और अभिमानी स्वभावने नये शत्रु पैदा करने आरम्भ कर दिये। महावतखाँ एक पुराना सेनापति था, वह सल्तनतका पुराना सेवक था। अकबरने उसे ५०० का सरदार बनाया था। जहाँगिरके समयमें वह खूब ऊँचा उठा। उसे कई सूबोंका सूबेदार नियुक्त किया गया। शाहजहाँके विद्रोहको दबानेके लिए नूरजहाँने राजकुमार परवेज़के साथ उसे भी अपनाया था। शाहजहाँ परास्त हो गया, अब महावतखाँकी जरूरत न रही। जिसके लिए खुसरोके मरनेपर शाहजहाँ व्यर्थ प्रत्युत भयंकर हो गया था, उसके लिए शाहजहाँकी शक्तिके बिखर जानेपर यदि महावत खाँ व्यर्थ और भयंकर हो जाय, तो क्या आश्चर्य है? उसके कई अपराध थे। परवेज़के साथ उसकी मुहब्बत थी। शहरयारकी सुहाग-रातमें परवेज़को हँसनेका क्या अधिकार था? किसी मुग़ल बादशाहके सरदारको तीसरे राजकुमारसे सम्बन्ध रखनेकी क्या मजाल थी? फिर वह बहादुर था, प्रभावशाली था, इस लिए नूरजहाँके भाई आसिफ़खाँका प्रतिद्वन्द्वी बन सकता था। क्या यह छोटा अपराध था? नूरजहाँने फैसला कर लिया कि अब यह नीबू निचोड़ा जा चुका है, इसे फेंक देना चाहिए। पुराने मुर्दे उखाड़कर महाबतके जुर्मोंकी सूची तैयार की गई। जब वह बंगालका गवर्नर था, तब उसने रिश्वत ली थी, और प्रजापर अत्याचार किया था। क्यों न उससे जवाब माँगा जाय? हुक्मनामा पहुँचते ही बादशाहकी खिदमतमें हाजिर होकर सफ़ाई पेश करनेके लिए महावतखाँ रवाना हुआ।

उस समय जहाँगीर काबुलकी ओर यात्रा कर रहा था, क्योंकि काबुलसे विद्रोहका समाचार आया था। जहाँगीरका डेरा बेहात नदीके किनारे पड़ा हुआ था। नदीके उस पार जानेकी तैयारी थी। महाबतख़ाँ पाँच हज़ार राजपूतोंकी सेनाके साथ उस जगह पहुँचा और बादशाहके पास प्रार्थना भेजी कि सेवामें उपस्थित होकर सफ़ाई पेश करनेका अवसर दिया जाय। उत्तर मिला कि बादशाहका द्वार बाग़ीके लिए बन्द है। महाबतने समझ लिया कि जादूगरनीका मन्त्र चल गया। अब सर्वनाशमें विलम्ब नहीं है। मरता क्या न करता। महावतने द्वारको छोड़कर खिड़कीसे बादशाह तक पहुँचनेका निश्चय किया।

दर्यापर पुल तैयार हो चुका था। पहले दिन सेनायें उस पार पहुँच चुकी थीं। भीड़से बचनेके लिए बादशाहका खेमा अभी इस पार ही लगा हुआ था। रातकी पान-लीलाके कारण जहाँगीरकी आँखोंमें खुमार भरा हुआ था। डेरेमें सन्नाटा था। अचानक मारो काटोका शब्द सुनाई दिया। सिपाही आँखें मलते हुए बिस्तरों-परसे उठकर इधर उधर देखने लगे। 'क्या हुआ?' पूछनेसे पहले ही राजपूतोंकी तलवार उनकी गर्दनपर आ पहुँची। महाबत ख़ाँने पौह फूटनेसे पहले ही दो हज़ार राजपूत पुलपर क़ब्ज़ा करनेके लिए भेज दिये, और शेष तीन हजारको लेकर शाही खेमेपर चढ़ गया। बादशाहने भी शोर सुना। आँखें मलकर खोली ही थीं कि नंगी तलवार हाथमें लिये खेमेमें घुसता हुआ महाबत ख़ाँ दिखाई दिया। जहाँगीर बिस्तरपर उठ बैठा, और आश्चर्य और क्रोधसे भरे हुए स्वरमें चिल्ला उठा—'बाग़ी महाबत ख़ाँ, यह क्या?' महाबतकी तलवार एकदम जहाँगीरके चरणोंके पास लेट गई, और सेनापतिने बादशाहको झुककर सलाम करते हुए निवेदन किया कि 'जब गुलामके लिए सीधे रास्ते बन्द हो गये, तब उसे अपने मालिकके पास पहुँचनेके लिए बलात्कारका रास्ता पकड़ना पड़ा।' जहाँगीरने शीघ्र ही परिस्थितिको समझ लिया। सामना करना या इन्कार करना व्यर्थ था, इस लिए उस समय महाबतको खुश

रखना ही उचित समझकर बादशाहने भवितव्यताके सामने सिर झुका दिया। कपड़ा पहिननेके बहानेसे ज़नानेमें जाकर नूरजहाँसे सलाह करनेकी चेष्टा भी व्यर्थ हुई, क्योंकि महावतने जनानेमें जानेकी इजाजत ही नहीं दी। वह जानता था कि बादशाहकी नूर-जहाँसे भेट उसके लिए विष सिद्ध होगी। उन्हीं कपड़ोंके साथ बादशाहको हाथीपर बिठाकर महावत ख़ाँ अपने खेमेमें ले गया। इस प्रकार तेजस्वी अकबरका बेटा विषयोंका गुलाम बनकर औरतका गुलाम बना, और फिर राजपाट औरतके सुपुर्द करके नौकरका कैदी बना।

नूरजहाँके देखते देखते महावत बादशाहको कैदी बनाकर ले गया। वह मानिनी औरत इस चोटको चुपचाप कैसे सहन कर सकती थी? चोट खाई हुई नागिनकी तरह उत्तेजित होकर वह अपने पतिको बन्दी-गृहसे छुड़ानेके लिए उद्यत हुई। वह जितना शीघ्र हो सका, नदीके दूसरे पार शाही सेनाओंमें पहुँच गई, और उसने अपने भाईको तथा अन्य सेनापतियोंको लड़नेके लिए उत्साहित किया। राजपूतोंने पुल जला दिया था, परन्तु इससे क्या तेजस्विनी स्त्री डरनेवाली थी? सेनाको पानीमें घुसनेसे घबराते देखकर नूरजहाँने सबसे पहले अपना हाथी नदीमें डाल दिया। वह अपने ऊँचे हाथीकी पीठपर जंगी भेस पहिने, शहर-यारकी बेटीको साथ लिये, तीर-कमान बाँधे साक्षात् रणचण्डी प्रतीत होती थी। महारानीके हाथीके पीछे पीछे शाही फौज़ भी दर्यामें उतर गई। उस पार राजपूत सिपाही रास्ता रोके खड़े थे। बड़ा भयानक परन्तु असमान युद्ध हुआ। पानी गहरा था। सैकड़ों डूब गये, सैकड़ों बह गये, सैकड़ों फिसल गये। जो भाग्य-शाली उसपार पहुँचे, वह बिल्कुल गीले हो चुके थे। बोझके मारे उनका हाथ नहीं हिल सकता था। शत्रु आरामसे खड़ा हुआ तीर बरसा रहा था, और पार लगे हुओंको रोक रहा था।

सबसे अधिक ज़ोरदार आक्रमण नूरजहाँके हाथीपर किया गया। हाथी चारों ओरसे घिर गया। तीरोंकी बौछार हो रही

थी। शरीर-रक्षक मारे गये। एक तीर आकर शहरयारकी लड़कीको लगा, जिससे खून जारी हो गया। मारे तीरों और गोलोंके हौदा छलनी हो गया। अन्तमें हाथीवान मारा गया। निरंकुश हाथी तीरोंसे घबराकर उल्टे पाँव भागा, और नदीमें उतर गया। पानी इतना था कि हौदेके साथ हाथीने कई डुबकियाँ खाईं। कुछ समयके लिए तो सन्देह हो गया कि रानी जीती न बचेगी, परन्तु गिरता-पड़ता हाथी उसपार पहुँच गया। वहाँ नूरजहाँकी औरतोंका ठट्ठ जमा था। वह धाड़ें मार-मारकर रो रही थीं। हाथीको पहुँचते ही सबने घेर लिया। इस आपत्तिमें भी वह वीर महिला शान्त थी। उसके अपने शरीरपर भी कई घाव लगे थे, पर वह शहरयारकी लड़कीके कोमल शरीरपर पट्टी बाँध रही थी। लड़ाई समाप्त हो गई। शाही फौजोंने मुँहकी खाई। बादशाह जहाँगीर महाबतखाँ और उसके राजपूतोंके पंजेसे न छूट सका।

इस प्रकार बल-प्रयोगद्वारा पतिको बन्धनमुक्त करनेमें नाकाम होकर नूरजहाँने सौम्य-नीतिका अवलम्बन किया; तलवारको छोड़कर नारी-प्रतिभाका आश्रय लिया। उसने महाबतखाँको कहला भेजा कि 'मैं अपने शौहरको स्वतन्त्र नहीं करा सकी, इस लिए अब मेरा कर्तव्य उसकी सेवा करना, और कैदमें हिस्सेदार बनना है। मुझे बादशाहके पास रहनेकी इजाजत दी जाय।' महाबतखाँ विद्रोही नहीं बनना चाहता था। वह बादशाहकी अधीनताका स्वाँग रच रहा था, फिर इस उचित प्रार्थनासे इन्कार कैसे कर सकता था? उसने यह भी विचारा कि स्वतन्त्र नूरजहाँ कैदी नूरजहाँसे कहीं अधिक खतरनाक होगी। नूरजहाँ भी जहाँगीरके तम्बूमें कैद की गई।

परन्तु कैदी नूरजहाँ स्वतन्त्र नूरजहाँसे अधिक खतरनाक सिद्ध हुई, क्योंकि अब वह बादशाहको इच्छानुसार मोड़ सकती थी। बाहिर वह अकेली थी, अब दुगुनी हो गई। उसने जहाँगीर-को समझा दिया कि पहला काम महाबतखाँको निश्चिन्त कर

देना है। जहाँगीर महावतखाँकी सलाहमें शामिल हो गया। उसने इस बातपर प्रसन्नता प्रकट की कि महावतखाँने उसे नूरजहाँके भाई आसिफ़खाँके पंजेसे छुड़ा कर स्वतन्त्र कर दिया है। फिर महावतखाँको यह भी विश्वास दिलाया कि नूरजहाँ उसकी शत्रु नहीं है। महावतखाँने आसिफ़खाँ और उसके साथियोंको कैद कर लिया, तब भी बादशाह चुप रहा। इस प्रकार महावतखाँको निश्चिन्त करके नूरजहाँने अपनी नीतिका जाल फैलाना आरम्भ किया। उसने अपने एजेण्ट भेजकर आसपासके पठानोंको अपने पक्षमें कर लिया, उनमेंसे बहुतसोंको तरह तरहकी नौकरियाँ दिलाकर अपने समीप रख लिया, और बादशाहके शरीर रक्षक अहदी नामके घुड़सवारोंको महावतखाँ और राजपूतोंके विरुद्ध बरगला दिया। ऐसी दशामें महावतखाँने काबुलकी यात्रा जारी रखी। कुछ पड़ाव चलकर वह ठेठ पठानोंके मुल्कमें पहुँच गया। राजपूत केवल पाँच हजार थे, और महावतखाँको केवल उन्हींका भरोसा था। बीच बीचमें अहदियों और राजपूतोंमें मारकाट भी होती रहती थी, जिससे राजपूतोंकी संख्या कम हो रही थी। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही महावतखाँकी शक्ति कम, और नूरजहाँकी शक्ति अधिक हो गई। हिन्दुस्तान दूर था, इस लिए वहाँसे विद्रोही सेनापतिको किसी तरहकी सहायताकी आशा नहीं रही थी।

जहाँगीरने हुक्म दिया कि कल सारी सेनाका निरीक्षण होगा। हरेक सेनापतिने अपनी अपनी फौज ठाट-बाटसे सजाई। नूरजहाँकी गिनती सेनापतियोंमें भी थी। उसने भी अपनी फौजको सजानेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा दी गई। नूरजहाँने चारों ओरसे अपने सहायकोंको बुलाकर फौजका ठाठ तैयार कर दिया। बादशाह और फौजोंको देखने गये, तब नूरजहाँकी फौजको देखने जाना भी आवश्यक था। महावतखाँ साथ जाने लगा, तब बादशाहने उसे समझा दिया कि नूरजहाँकी फौजके अन्दर जाना उसके लिए खतरनाक है। बादशाहकी ओरसे वह निश्चिन्त था

ही, उसने अपने आपको खतरेमें डालना उचित न समझा। बाद-शाह केवल एक राजपूत शरीर-रक्षकके साथ नूरजहाँकी फौजमें पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही राजपूतको तलवारके घाट उतार दिया गया, और बादशाहका जयकारा बुला दिया गया। जहाँगीर स्वतन्त्र हो गया—अर्थात् महावतखाँकी कैदसे निकलकर फिरसे नूरजहाँकी कैदमें आ गया। इस तरह उस चतुर महिलाने सेना-पति महावतखाँको उल्लू बनाया।

जहाँगीर स्वतन्त्र हो गया, और नूरजहाँके हाथमें बागडोर आ गई, पर भाग्योंका उलट-फेर किसीके हाथमें नहीं। इस सम-यसे नूरजहाँका भाग्य-चन्द्रमा अस्तोन्मुख हुआ, और शाहजहाँका भाग्य-सूर्य उदयोन्मुख। बेचारा शाहजहाँ धन और जनकी शक्तिसे हीन होकर निराशाकी दशामें सिन्धकी खाक छानता फिरता था और वहाँसे फारिसकी ओर भाग जानेका मन्सूबा बाँध रहा था, जब उसे समाचार मिला कि बादशाह महावतखाँके हाथसे छूट गया है, और महाबतखाँ शाही फौजके डरसे दक्षिणकी ओर भागा जा रहा है। शाहजहाँकी जानमें जान आई। उसने फारि-सका रास्ता छोड़कर दक्षिणकी ओर मुँह मोड़ा, और शीघ्र ही नूर-जहाँके क्रोधके दोनों शिकार मिलकर गद्दीको छीननेके उपाय सोचने लगे।

उनके इस संकल्पमें भाग्य भी सहायक हुआ। जहाँगीरकी बरा-बरीमें प्याला चढ़ानेका अभिमान करनेवाले राजकुमार परवेज़का बुरहानपुरमें देहान्त हो गया—वह बोतल और अफीमके गोलेका शिकार हुआ। जहाँगीर काबुलसे लौटकर लाहौर होता हुआ काश्मीर चला गया था, जहाँ शहरयारको सख्त बीमारीने आ घेरा। उसे पहाड़की सर्दी छोड़कर मैदानकी ओर भागना पड़ा। कुछ दिनों पीछे स्वयं जहाँगीर बीमार हो गया। उसे दमेका रोग था। बहुतसे इलाज किये गये, परन्तु कोई लाभ न हुआ। अन्तको जल वायु-परिवर्तनका निश्चय किया गया। शाही क़ाफ़िला क़ाश्मीरसे लाहोरकी ओर रवाना हुआ, परन्तु जहाँगीरका विषय-सेवाद्वारा

जर्जरित और बीमारीसे घायल शरीर यात्राके कष्टको बर्दाश्त न कर सका। रास्तेमें ही उसका देहान्त हो गया।

इस प्रकार इस भले परन्तु निर्बल बादशाहका राज्य-काल समाप्त हुआ। उसके राज्यकालके २२ वर्षोंका पूरा लेखा तैयार करें, तो परिणाममें घाटा ही दिखाना पड़ेगा। समकालिक देशी और विदेशी—सभी इतिहास-लेखकोंका मत है कि अकबरके समयमें जो युद्ध-शक्ति और प्रबन्धकी खूबसूरती थी, जहाँगीरके समयमें वह बहुत घट गई थी। यह ठीक है कि कोई प्रदेश सल्तनतसे जुदा नहीं हुआ था, परन्तु साथ ही यह भी सर्वसम्मत सचाई है कि राज्यका संगठन बहुत शिथिल हो गया था। राज्यकी नींव अकबरके दूरदर्शितापूर्ण उदार कार्योंसे पूरी तरह मजबूत होने भी न पाई थी, कि जहाँगीरके कमजोर हाथोंसे वह खोदी जाने लगी। यह ठीक है कि उस मनमौजी बादशाहने कोई ऐसे कार्य नहीं किये जो सीधे तौरसे अकबरके विरोधी हों, परन्तु उसने ऐसे कार्य भी नहीं किये, जो साम्राज्यकी रक्षा या वृद्धिमें सहायक हों। परिणाम यह हुआ कि सल्तनतका शरीर तो रह गया, परन्तु उसमें आत्मा न रही।

जहाँगीर गुणोंसे हीन नहीं था। वह हृष्टपुष्ट था। यह कहना इस कथनके अन्तर्गत आ जाता है कि वह बाबरका वंशज था। वह सौम्य अवस्थामें उदार और मिलनसार था, परन्तु दोषोंने गुणोंको आच्छादित कर दिया था। विषय-सेवाने, जिसमें मद्य और स्त्री दोनों शामिल है—उसके दिलको कमजोर कर दिया था। वह अपनी इच्छाका आप मालिक नहीं रहा था। कहाँ वह अकबर कि जो बुढ़ापेमें भी यह हिम्मत रखता था कि जवानीके मदमें मस्त सलीमको भर दरबारमें हाथसे पकड़कर घसीट ले और मुँहपर चपत रसीद करे, और कहाँ यह जहाँगीर कि विद्रोही पुत्र या विद्रोही सेनापतिसे आँख मिलानेका साहस नहीं करता था। जहाँ बादशाहकी इच्छा ही कानून है, वहाँ इच्छा-शक्तिसे हीन बादशाह यदि राज्यके लिए ज़हर सिद्ध हो, तो क्या आश्चर्य है?

१३—शानदार बादशाह

जहाँगीरकी मृत्युका समाचार धीरे धीरे मुल्कमें फैल गया। गद्दीके दो उम्मीदवार थे। एक शाहजहाँ, दूसरा शहरयार। बहादुरीमें, दूरदर्शितामें और ख्यातिमें दोनों भाइयोंमें कोई समानता नहीं थी। शहरयारमें केवल एक गुण था कि वह नूरजहाँका दामाद था। न कहीं उसने युद्धमें नाम पाया था, न किसी सूबेका शासक बना था, और न किसी बड़े राज्य-कार्यमें नियुक्त हुआ था। केवल नूरजहाँका प्रभाव उसके लिए पर्याप्त नहीं हो सकता था, क्योंकि उस असाधारण महिलाका राज्यपर अधिकार अपने प्रेमान्ध पतिकी मार्फत था, सीधा नहीं। जहाँगीरके मरते ही आसिफ़खाँने बहिनकी हुकूमतको माननेसे इन्कार कर दिया। आसिफ़खाँने एकदम शाहजहाँके पक्षमें घोषणा दे दी, और उसे बुलानेके लिए दक्षिणको दूत रवाना कर दिये। इधर इस खतरेको देखकर कि नूरजहाँकी पार्टी गड़बड़ मचाये, अपनी बहिनको नज़रबन्द कर दिया। उस मानिनीने समझ लिया कि जब भाई ही समर्थन करनेको तैयार नहीं, तो हाथ पाँव मारना व्यर्थ है। खेल खत्म हो चुका, अब शान्तिपूर्वक पीछे हट जानेसे ही मान-रक्षा हो सकती है। नूरजहाँने मातमी सफेद वस्त्र धारण कर लिये और सार्वजनिक जीवनसे सम्बन्ध तोड़ लिया। इसके पश्चात् वह कई वर्ष तक जीवित रही। सब लोग उसका आदर, और उसकी शान्तिकी प्रशंसा करते थे।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि शहरयारने मूर्खता नहीं की। उसने तो अपनी अदूरदर्शिताद्वारा मृत्युको निमन्त्रण दे ही दिया। उसने लाहोरके ख़ज़ानेपर कब्ज़ा कर लिया, और अपने बादशाह होनेकी घोषणा दे दी। आसिफ़खाँने लाहौरपर चढ़ाई की। लड़ाईमें शहरयारकी हार हुई, वह किलेमें घुस गया, पर किलेके आदमियोंने उसके पीछे जाने देना उचित न समझकर

उसे आसिफ़खाँके हाथोंमें सौंप दिया। पीछेसे उस वजीरने शह-रयार और शाहजादा दानियालके बेटोंको तलवारके घाट उतार-कर शाहजहाँका मार्ग निष्कंटक कर दिया। इस प्रकार रिश्ते-दारों और सम्भव उम्मेदवारोंकी पूरी सफ़ाई करके शाहजहाँ गद्दीपर विराजमान हुआ। यह मुसलमान-कालकी और विशेष-तया मुग़लोंके राज्य-कालकी विशेषता थी कि कोई भी बाद-शाह सीढ़ियोंपर भाइयों या भतीजोंके रुधिरको बहाये बिना तख्त तक नहीं चढ़ सकता था।

१६२८ ई० में शाहजहाँ हिन्दुस्तानका एकच्छत्र सम्राट् उद्घो-षित हो गया। उस समय उसकी आयु ३७ वर्षकी थी। उसके गुण-दोष प्रजाके सामने आ चुके थे। वह संसारके उतराव चढ़ाव देख चुका था। यह मानना पड़ेगा कि शाहजहाँने अपने अनुभवसे पूरा काम लिया। उसने राजगद्दीपर बैठकर अभिमानको शान और नीरसताको उदारताके रूपमें परिणत कर दिया। उसके पूर्व चरितको देखकर लोग डर रहे थे कि वह अलग थलग रहनेवाला सड़ियल शासक होगा, परन्तु मुग़लोंकी समस्त वंशावलीमें शाह-जहाँसे बढ़कर मिलनसार और शानदार व्यक्ति मिलना कठिन है। यदि बाबरको अपनी ऊँची महत्त्वाकांक्षाके लिए, हुमा-यूँको भलमनसाहतके लिए, अकबरको असाधारण दूरदर्शिता और युद्ध-नीतिके लिए और जहाँगीरको विषयासक्तिके लिए नमूनेके तौरपर पेश किया जा सकता है, तो शाहजहाँको सामाजिकता और शानके लिए नमूनेके तौरपर पेश करना कुछ अनुपयुक्त नहीं है। गद्दीपर बैठनेके समय उसमें बाबरकी कल्पना, हुमायूँकी भलमन-साहत, और अकबरकी दूरदर्शिताके चिह्न पाये जाते थे, पर उन सबसे बढ़कर जो गुण अभी तक तिरोहित था, वह था प्रजाको चौंधिया देनेवाले उत्सवों, तमाशों, इमारतों और बाग़ोंकी कल्पना करना, और कल्पनाको कार्यमें परिणत करना।

शाहजहाँकी शासन-नीति उदार थी। यद्यपि वह अकबरकी सी धार्मिक उदारता नहीं रखता था, और कट्टर सुन्नी मुसलमान था,

परन्तु जहाँगीरकी भाँति वह राजपूतनीका जाया था, इस लिए काफिरोंके रुधिरका प्यासा नहीं था। उसने अपने इस्लामको कभी राजनीतिके सिरपर सवार नहीं होने दिया। उसका मशहूर मन्त्री सादतखाँ जन्मका हिन्दू था। हिन्दू सेनापति उसके राज्य-कार्यमें बड़े प्रेमसे राज्यसेवा करते रहे। शाहजहाँने ३० वर्ष तक राज्य किया, इस समयमें कोई ऐसी राजाज्ञा प्रचारित नहीं हुई, जो विशेपतया हिन्दुओंके धार्मिक या नैतिक अधिकारोंपर आघात करे।

भाग्योंसे शाहजहाँको मन्त्री भी अच्छे ही मिले। नूरजहाँका भाई आसिफखाँ अनुभवी और वहादुर वज़ीर था। वह साम्राज्यका पुराना स्तम्भ था। दूसरा वहादुर और विश्वासपात्र मन्त्री तथा सेनापति महावतखाँ था। दोनों ही शाहजहाँके कट्टर समर्थक और विश्वासपात्र थे। नये मन्त्रियोंमेंसे एक अलीमर्दानखाँ नामका कन्दहारका निवासी था। वह वीर पुरुष फारिसकी ओरसे कन्दहारका गवर्नर था, परन्तु अपने वादशाहसे वह इतना घवराता था कि उसे छोड़कर उसने प्रसन्नतासे शाहजहाँकी सेवामें आना उचित समझा। राजाको छोड़कर सम्राट्की नौकरी अंगीकार करके उसने अपनी दूरदर्शिताका प्रमाण दिया। शाहजहाँने आगन्तुक मन्त्रीका सत्कारपूर्वक स्वागत किया। अलीमर्दानखाँ अपने समयका शिरोमणि राजनीतिज्ञ था। वह कावुल और काश्मीरका सूवेदार वननेके अतिरिक्त वादशाहका हमेशाका साथी और सलाहकार रहा। दिल्लीके निर्माणमें, और विशेपतया नहर आदिके वनानेमें उसका विशेप हाथ था। उत्सवों और त्योहारोंको शानदार और मनोरंजक वनानेमें वह विशेप प्रवीणता रखता था। दूसरा नया वज़ीर साद्-अल्ला या सादत खाँ था। विदेशी और देशी सभी तत्कालीन लेखकोंने एक स्वरसे इस वज़ीरकी दूरदर्शिता, ईमानदारी और समझदारीकी प्रशंसा की है। यह जन्मका हिन्दू था, पीछे मुसलमान वना। प्रजा सादतखाँसे प्रेम करती थी। रवायत है कि जब शाहजहाँने दिल्लीका लाल किला तैयार

कर लिया, तब सभी वज़ीरों और अमीरोंने खुशीमें कुछ न कुछ नज़राना पेश किया, परन्तु सादतखाँने कुछ भी पेश न किया। इसपर बादशाहने असन्तुष्ट होकर पूछा। सादतखाँने अपनी भेंट उस समय पेश करनेकी इज़ाज़त माँगी, जिस समय बादशाह नये महलोंमें दाखिल हों। जब दाखिल होनेका समय आया, तब सादतखाँने भेंट पेश करनेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल गई। सादतखाँने महलके एक कोनेमें जाकर नालीके मुँहपर दिया हुआ एक खटका हटा दिया। जमनाका सरसराता हुआ जल नालीके रास्ते होकर दीवाने आम, दीवाने खास और महलमें बनी हुई संगमर्मरकी नालियोंमेंसे बह निकला, जिसने उस चमत्कारपूर्ण इमारतके चमत्कारको और भी बढ़ा दिया।

कारीगर सब काम अपने हाथसे नहीं करता। अच्छे कारीगरकी यही प्रशंसा है कि वह उपयोगी औज़ारोंका ठीक चुनाव करता है, और उनसे उचित उपयोग लेता है। राज्य चलानेके लिए भी कुशलताकी जरूरत है। शासककी कुशलता केवल इसमें नहीं कि वह स्वयं अधिकसे अधिक मेहनत करे, परंतु इसमें है कि वह मेहनत करनेवाले औजारों—कार्यकर्त्ताओं—का अच्छा चुनाव करे, और फिर उन औज़ारोंसे यथोचित कार्य ले। यदि औज़ारोंका कार्य स्वयं कारीगर करने लगे, तो कोई विशाल कार्य चल ही नहीं सकता, और यदि मशीनको चलाकर कारीगर सो जाय, तो कुछ फल निकलना तो एक ओर रहा, मशीन भी टूट फूट जायगी। संसारमें जितने अत्यन्त तेजस्वी विजेता या शासक हुए हैं, उनमें दोनों गुण पाये जाते हैं। वह अच्छे सहायकोंको इकट्ठा कर सकते थे, और उनसे पूरा कार्य ले सकते थे। शाहजहाँने लगभग ३० वर्षतक शासन किया। इस समयको दो युगोंमें बाँट सकते हैं। पहिला युग वह है जब उसकी शक्तियाँ सम्पूर्ण अवस्थामें विद्यमान थीं। वह मन्त्रियों और सेनापतियोंका बढ़िया चुनाव कर सकता था, और फिर उनसे भली प्रकार काम भी ले सकता था। वह औज़ारोंका मालिक था,

ह्रास नहीं। उस युगको हम मुग़ल-साम्राज्यका स्वर्णीय युग कहेंगे। उसमें शान्ति थी, समृद्धि थी और उन्नति थी। दूसरा युग वह आया, जिसमें सम्राट्के सलाहकार वही थे, सेनापति वही थे, और वजीर भी वही थे, परन्तु कारीगरका दिमाग़ ऐश्वर्य-की मस्तीसे घूम चुका था, और कारीगरके हाथ विषय-भोगकी अधिकतासे शिथिल हो चुके थे। उस युगमें साधन कारीगरके स्वामी बन गये। सम्राट् शून्य बन गया, और उसके सेनापति और सलाहकार सैकड़ों और हजारोंकी रकमोंकी हैसीयत तक पहुँच गये। इस स्थितिका स्वाभाविक परिणाम था कि कारी-गरको उपेक्षा करके औज़ार आपसमें ही लड़ने लगें। बलवान् और निर्बलके संघर्षमें निर्बलका अन्त हो, यह संसारका अटल नियम है। बादशाह सलामत जेलखानेमें सड़ा किये, और साध-नोंके संघर्षके पश्चात् जो सबसे अधिक योग्य साधन सिद्ध हुआ, उसने राजगद्दीपर अधिकार जमा लिया।

शाहजहाँके राज्य-कालके पहले युगको हमने मुग़ल-साम्राज्यका स्वर्णीय युग कहा है। अकबरने जो शासन-सुधार किये, और जितना विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया, उसका फल यह होना चाहिए था कि प्रजा सुख और समृद्धिसे जीवन व्यतीत करती, देशका व्यापार उन्नत होता, शत्रु डरते और मित्रोंकी संख्यामें वृद्धि होती। इन दृष्टियोंसे शाहजहाँके राज्य-कालका प्रथम युग सर्वोत्कृष्ट था। सामयिक लेखकोंकी सम्मति है कि शाहजहाँका शासन प्रजाके लिए अत्यन्त सुखदायी था। उस समयके फारसी इतिहास-लेखक खाफीखाँकी राय है कि यद्यपि अकबर प्रसिद्ध विजेता और कानूनका निर्माता था, तो भी शासनके भली प्रकार निरीक्षण, हरेक विभागके विधिपूर्वक संचालन और हिसाब-किताबकी देख-भालमें शाहजहाँकी अपेक्षा अधिक कुशल बादशाह कभी हिन्दुस्तानकी गद्दीपर नहीं बैठा। उस समयके हिन्दू इति-हास-लेखक भीमसेनने भी शाहजहाँके शासनकी भरपेट प्रशंसा की है, और बतलाया है कि देशमें धर्मके कारण प्रजामें कोई

अधिकार-भेद नहीं समझा जाता था। विदेशी यात्री टैवर्नियरने लिखा है कि 'शाहजहाँ देशपर राजाकी भाँति शासन नहीं करता था, अपि तु जैसे पिता बच्चोंपर शासन करता है, उस भाँति करता था।' अन्य जो विदेशी यात्री भारतवर्षमें आये, वह भी देशकी समृद्धि और प्रजाकी सन्तुष्ट अवस्थाको देखकर आश्चर्यान्वित होते थे।

समृद्धि और सन्तुष्टिके कारण तीन थे—

(१) प्रथम कारण यह था कि शाहजहाँका दबदबा शत्रुओं और मित्रोंपर बैठ चुका था। उसके लोहेकी ख्याति दिग्दिगन्तरमें व्याप्त हो चुकी थी। उसकी धाकका यह परिणाम था कि सहज-हीमें किसीका साहस नहीं होता था कि सिर उठाये।

(२) शाहजहाँकी नीति धार्मिक पक्षपातसे विहीन थी। अक-बरकी नीतिके संस्कार अभी नहीं मिटे थे। राजपूतनीका दूध भी व्यर्थ नहीं गया था। प्रायः इतिहास-लेखक लिखते हैं कि अपनी प्यारी बीबी 'ताजमहल' के असरसे शाहजहाँमें कुछ कट्टरपन आ गया था। यदि यह ठीक भी हो, तो निश्चयसे कहा जा सकता है कि इस कट्टरपनका उस समझदार बादशाहकी शासन-नीति-पर कोई प्रभाव नही पड़ा। वह यथाशक्ति हिन्दू और मुसलमान प्रजाको समान दृष्टिसे देखनेका यत्न करता था। यह दूसरा कारण था।

(३) असाधारण समृद्धिका तीसरा कारण अच्छे वज़ीरोंका संग्रह था। अच्छे सलाहकार और सहायक मिट्टीको सोना बना देते है। शाहजहाँ तो स्वयं समझदार था।

राज्यको सफलतासे चलाना शाहजहाँका केवल एक कार्य था, परन्तु उसकी प्रसिद्धि केवल उतनेपर आश्रित नहीं है। वह बड़ा भारी निर्माता था। उसे इमारतोंका शौक़ ही नहीं था, मर्ज़ था। उसकी हरेक बातमें-हरेक कल्पनामें-चमत्कार था। जो इमारतें उसने बनाई हैं, वह भी अपनी चमत्कारपूर्ण आभामें अपूर्व हैं, अनुपम हैं। जिस इन्द्रप्रस्थकी भूमिको मय-दानवने पाण्डवोंके

दुर्गका निर्माण करके प्रसिद्ध किया था, उसीको कई सौ सदियों पश्चात् शाहजहानाबादकी रचना करके शाहजहाँने ख्याति प्रदान की। मुग़ल-साम्राज्य तो बना और बिगड़ गया, पर शाहजहाँकी प्रतिभाकी फल-स्वरूप 'ताजबीबीका रोज़ा' 'शाहजहानाबाद' और आगरेकी कई विख्यात इमारतें उस प्रतिभा-सम्पन्न शासकके सुयशको अमररूपमें आज भी प्रख्यात कर रही हैं।

शाहजहाँकी प्रसिद्ध रचनाओंमें प्रथम 'ताज़' है। शाहजहाँकी सबसे अधिक प्यारी बेगमका नाम 'मुमताज-महल' था। ताज-महल उसका संक्षिप्त है। शाहजहाँको उसने १४ सन्तानें दीं। १६३० ई० में उसका देहान्त हुआ। १८ वर्षतक उसके अवशेष बाग़में एक छोटीसी कब्र बनाकर रखे गये। यह समय उस प्रेमी स्वभावके सम्राट्ने अपनी स्नेहमयी पत्नीका योग्य स्मारक बनानेमें व्यय किया। 'ताज' की इमारत १६४८ ई० में समाप्त हुई। बर्नियरने लिखा है कि दो हजार कारीगर उसपर कार्य कर रहे थे। 'ताज' का नकशा एक इटलीके कारीगरका बनाया हुआ था, जिसका नाम वरोनियो था। यही कारण है कि मुग़ल-कालकी अन्य रचनाओंसे 'ताज' में कुछ भेद है। सारी इमारतके बनानेमें कितना खर्च हुआ, यह अभीतक ठीक ठीक हिसाब नहीं लगाया जा सका। वह राशि किसी दशामें भी ८ संख्याओंसे कममें नहीं दिखाई जा सकती।

असीम राशि खर्च कर प्रेमका जो स्मारक बनाया गया, वह संसारके ९ अद्भुत पदार्थोंमेंसे एक समझा जाता है। विदेशी लेखकोंने 'ताज' की प्रशंसामें पन्नोंके पन्ने खर्च कर डाले हैं। एक लेखकने उसे संगमर्मरका स्वप्न कहा है, दूसरेने उसे रत्नोंका मुकुट बतलाया है। परोंमें जो फूल थे, उनमेंसे एक एकमें सौ सौ तक हीरे जड़े हुए थे। सम्पूर्ण इमारतको देखकर आँखें चौंधिया जाती हैं। एक एक बालिश्तमें कारीगरीका खज़ाना भरा हुआ है। 'ताज' क्या है, यह लिखनेका नहीं, देखनेका विषय है। 'ताज' जब बना था, तब कैसा था, इसकी कल्पना वर्तमान 'ताज' के खाली खम्भों

और मेहराबोंको हीरोंसे भर देनेपर ही हो सकती है। ताज संसारका आश्चर्य है, भारतका गहना है, मुग़ल-साम्राज्यकी विभूतिका नमूना है, और शाहजहाँकी विशाल कल्पनाका एक टुकड़ा है।

आगरेमें ताजके अतिरिक्त और भी बहुतसी दृश्य इमारतें हैं, जो शाहजहाँकी बनवाई हुई हैं। किलेमें नये महल बनवाये गये, बड़ी मसजिद और मोती मसजिद १६५३ ई०में पूरी हुई। शाहजहाँके समयमें स्वयं आगरा एक समृद्धिशाली और देखने योग्य शहर था। विदेशी यात्रियोंकी आँखें उसे देखकर चौंधिया जाती थीं। वहाँ आकर उन्हें सब कुछ चमकदार और विशाल प्रतीत होता था। आगरेकी लम्बाई जमनाके किनारे किनारे ६ मीलसे कम नहीं थी। आबादी ६ लाखसे ऊपर थी। भारतके ऐश्वर्य और बादशाहकी उदारताके किस्सोंसे खिंचे हुए विदेशी यात्री हमेशा ही राजधानीकी रौनकको बढ़ाते थे। दूर दूर देशोंके व्यापारी आगरेमें आते थे, उनके अलग अलग बाज़ार थे। एक यात्रीने लिखा है, कि आगरेसे फतहपुर सीकरी तकके रास्तेके दोनों ओर, लगभग १२ मील तक, बाजार लगा हुआ था। कोई वस्तु नहीं थी, जो उस बाजारमें न मिलती हो।

विदेशी यात्रियोंकी दृष्टिमें आगरा एक अनुपम नगर था, परन्तु शाहजहाँकी महत्त्वाकांक्षामें वह भी न जँचा। उसने अकबरकी बनाई हुई राजधानीकी शानको मात करनेवाली राजधानीकी बुनियाद १६३८ ई० में रखी। भारतके भाग्योंसे पूर्ण दिल्लीकी भूमिपर शाहजहाँने शाहजहानाबाद नामका अद्भुत शहर बसाया। पाण्डवोंके समयमें उस भूमिपर जहाँ अब दिल्ली पुरी अपने पाँव फैलाये पड़ी है, घना जंगल था, जिसका नाम खाण्डववन था। उस वनमें जंगली जातियाँ बसती थीं। तीसरे पाण्डव अर्जुनने उस जंगलको जलाया, और जंगली जातियोंको वशमें किया। यह ईसासे लगभग ४ हजार वर्ष पूर्वकी बात है। खाण्डव वनके स्थानपर यमुनाके किनारे मय-दानवने इन्द्रप्रस्थका वह किला बनाया, जो अपने समयका अद्भुत चमत्कार था। उस किलेका स्थान आज

भी इन्द्रप्रस्थके किलेके नामसे विख्यात है। द्वार और दीवारें युधिष्ठिरके समयकी न हों, परन्तु जिस स्थानपर वह दीवारें खड़ी हैं, युधिष्ठिरका प्रसिद्ध भवन वहीं बना था, चारों पाण्डव वहींसे दिग्विजयके लिए निकले थे, चारों दिशाओंसे रत्न और माणिक्यकी भेंट लेकर सामन्त लोग वहीं उपस्थित हुए थे, और युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ वहींपर हुआ था। एक बार भारतके शस्त्रकी झनकार भूमण्डलपर गूँज गई थी, एक बार इन्द्रप्रस्थकी धूलि दूर दूर देशोंसे आये नरेशोंके मुकटोंपर छा गई थी। इस भाग्यपूर्ण भूमिने जन्मके साथ ही अद्भुत शोभा और गौरवका दृश्य दिखाया, अपना सौन्दर्य उद्घाटित किया—परन्तु कौरववंशके लिए वह सौन्दर्योद्घाटन विषके समान सिद्ध हुआ। वह चमक दीपककी आखिरी चमककी भाँति क्षण-भंगुर सिद्ध हुई और महाभारतके संग्राममें, कुरुक्षेत्रकी भूमिपर, कौरवोंके वंश और भारतके गौरवका सर्वनाश हो गया।

समय गुजरता गया। राजवंश आये और राजवंश चले। इस डायनके पेटमें न जाने कितनी वंशावलियाँ विलुप्त हो गईं। सदियाँ बीत गईं, परन्तु दिल्लीका आकर्षण कम नहीं हुआ। चौहान राजपूतोंने राजपूतानेकी घाटियोंको छोड़कर इसी विलास-पुरीमें डेरा जमाया। राजा पृथ्वीराजने दिल्लीको अपने प्रसिद्ध मन्दिर और 'पिथौराकी लाट' (पीछेसे जिसका नाम कुतुबकी लाट हुआ) से सुशोभित करके सुरुचिका परिचय दिया। इसे जिसने अपनाया, इसने उसीको धोखा दिया। राजा पृथ्वीराज भी दुर्दैवका शिकार हुआ। दिल्लीमें राजधानी बननेके साथ ही हिन्दू साम्राज्यका अन्त हो गया। दिल्लीकी दीवारोंपर इस्लामका झण्डा फहराने लगा, परन्तु होनीको कौन टाल सकता है। नट बदल गये परन्तु नाटक वही जारी रहा। पर्देपर पर्दा उठने लगा। गुलाम, खिल्जी, तुग़लक, सय्यद और लोदी वंशोंने एक दूसरेके पीछे आकर इस दुर्भाग्य-पुरीको अपनाया, और बरबाद हुए। आज दिल्लीके खुश्क मैदानमें उन राजवंशोंके खंडरात भयानक

शाहजहाँ

मुस्कराहटद्वारा संसारमें भाग्योंकी अनित्यताका परिचय दे रहे है।

पठान-वंशके पीछे बाबरने मुगल-वंशकी स्थापना की। वह दिल्लीके लुभावने रूपके आकर्षणसे बचकर आगरे चला गया। अकबरने भी आगरेको ही सम्मान दिया। जहाँगीरको शायद काश्मीरकी लुभावनी सुन्दरताने ऐसे मोह लिया कि वह दुर्भाग्य-पुरीके माया-जालमें न फँसा, परन्तु उसका उत्तराधिकारी भवितव्य-ताके पंजेसे न बच सका। शाहजहाँको इस पुंश्चलीका आकर्षण खेंच ही लाया। उसने आगरेको छोड़कर दिल्लीमें राजधानी बनानेका निश्चय किया। जिस समय शाहजहानाबादकी बुनियाद डाली गई थी, उस समय शाहजहाँको स्वप्नमें भी विचार न होगा कि उसे किस्मत घसीटकर ले जा रही है। जिसने किसीका साथ नहीं दिया, वह शाहजहाँका पक्षपात क्यों करती? शाहजहाँ अपने लिए महल नहीं, कैदखाना तैयार कर रहा था।

जो भूल पाण्डवोंने की, जो भूल पृथ्वीराजने की, जो भूल पठान-वंशने की, और जो भूल शाहजहाँने की, वही पीछेसे मराठोंने की, और मराठोंके पीछे भारतके जो स्वामी हुए, वह भी उस भूलसे न बच सके। किस्मतको कोई नहीं टाल सकता। नहीं मालूम, यह मायाविनी अभी किस किसका बेड़ा गर्क करेगी। जिसे हमने भूल कहा है, उसीका दूसरा नाम किस्मत है।

१० वर्षोंमें शाहजहानाबादका शहर तैयार हुआ। आजका शाहजहानाबाद शाहजहाँके शाहजहानाबादके सामने एक खिलवाड़ है। दर्शकोंने उस नवीन नगरकी प्रशंसामें आकाश और पातालको एक कर दिया है। शहर एक ऊँची शहर-पनाहसे घिरा हुआ था। शहरमें दो इमारतें महत्त्वपूर्ण थी—एक क़िला, और दूसरी जुम्मा मसजिद। दोनों ही इमारतें आज भी उस समयकी शानका स्मरण करा रही हैं। जिसे आँखें देख सकती हैं, उसका वर्णन शब्दोंमें क्या करें? जाओ, और उस कल्पनाशील बादशाहकी कल्पनाके उन फलोंको देखो। ३०० वर्ष हो जानेपर

भी इन इमारतोंकी दीवारोंको देखनेसे यही मालूम होता है कि वह इसी वर्ष बनकर तय्यार हुई हैं। लाल पत्थर और संगम-मेरमें मोती हीरे जड़कर एक काल्पनिक स्वर्ग तैयार किया गया है, जिसके विषयमें बनानेवालेका दावा था—

"अगर फिरदौस बररूए ज़मीनस्त
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।"

यदि इस पृथ्वीपर कोई स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, और यही है।

इस अपने बनाये हुए स्वर्गमें शाहजहाँने अपना अन्तिम समय व्यतीत किया। यही उसका राज-भवन, और यही उसका विलास-भवन था। शाहजहाँ अपने शासनकालमें तीन अवस्थाओंमेंसे होकर गुजरा। पहले वह राजा था, फिर राज-काज लड़कोंपर डालकर ऐश्वर्यके आमोदमें मग्न हो गया, और अन्तमें उसके फलस्वरूप उसे जेलखाना नसीब हुआ।

दूसरी अवस्थाकी शान निराली ही थी। ऐश्वर्यका उपभोग और प्रदर्शन करना सबको नहीं आता। उसका सुख-दुःख सभी लेते हैं, परन्तु उसका उपभोग विरलेको ही प्राप्त होता है। शाह-जहाँने ऐश्वर्यका उपभोग भी किया और प्रदर्शन भी। तख्त ता-ऊसकी शोभा अपूर्व थी, संसार-भरके यात्री उसे आश्चर्योत्फुल्ल नेत्रोंसे देखते थे। जिसे उस तख्तकी शोभा देखनी हो, फारिस-में जाये, और नादिरशाहकी लूटके मालको वहाँके बादशाहके नीचे देखकर शाहजहाँकी सम्पत्तिका अन्दाज़ लगाये। एक एक त्योहारपर लाखों रुपये व्यय हो जाते थे। बादशाहके जन्म-दिनका उत्सव विशेष धूमधामसे मनाया जाता था। उस दिन बादशाह मोती, हीरा, सोना, चाँदी, ताँबा, कपड़ा, अनाज आदि सब वस्तुओंसे अलग अलग तुलता था; तोलमें जितना माल चढ़ता था, वह सब बाँट दिया जाता था। रुपयेके कोई दाम न थे। औरंगज़ेबने एक बार मस्त हाथीका सामना करनेमें बहादुरी

दिखाई, इस खुशीमें उसे सोनेके साथ तोला गया, और सोना गरीबोंमें बाँट दिया गया। एक एक आनन्द-यात्राका व्यय लाखों रुपयों तक पहुँचता था। काश्मीरमें बादशाहका एक खेमा तैयार हुआ था, जिसके गाड़नेमें पूरे दो महीने खर्च होते थे।

वह आनन्द-भवन—और यह अतुल सम्पत्ति—इनके बीचमें पड़कर शाहजहाँ धीरे धीरे विषयकी नदीमें मग्न हो गया। जबतक मुमताज़ बेगम जीती रही, तब तक शाहजहाँ उसमें मग्न था, जब वह गुजर गई, तो यद्यपि अन्तःपुरका आकर्षण कम नहीं हुआ, तो भी उसके प्रेमका अधिक प्रवाह अपनी बड़ी लड़की जहाँनाराकी ओर ही बहता रहा। धीरे धीरे वह बाहिरके कार्योंसे निश्चिन्त होकर इन्द्रिय-सुखमें लिप्त होता गया। यह परिवर्तन एकदम नहीं हुआ। इसमें बहुत समय लगा, परन्तु इतना निश्चयसे कहा जा सकता है कि जब १६५७ ई० में उसकी बीमारीकी खबरने देशमें भूकम्प पैदा किया, उससे पूर्व ही साम्राज्यकी शासनकी बागडोर उसके हाथोंसे निकल चुकी थी।

१४—दक्षिणकी चट्टान

सदियों तक भारतमें इस्लामी राज्यका तूफ़ान दक्षिणकी चट्टानसे टकराकर उत्तरीय भारतकी ओर वापिस आता रहा। कई विजेताओंका नेज़ा पेशावरसे विन्ध्याचल तक घुसता चला गया, परन्तु उस पर्वतके कठोर देहको न छेद सका। उसमें लगकर खुण्डा हो गया। कई विजेताओंने दक्षिणके कई हिस्सोंके जीतनेका यत्न किया, कई टुकड़ोंके जीतनेमें सफलता भी प्राप्त की, परन्तु या तो उन्हें सफलता ही नहीं हुई, और यदि हुई भी हो तो वह चिरस्थायिनी न हो सकी। मुग़ल बादशाहोंके लिए तो दक्षिण एक मृग-तृष्णिकाके समान था। अकबरसे लेकर औरंगज़ेब तक जितने बादशाह हुए उन्होंने दक्षिणको साम्राज्यमें मिलानेकी चेष्टा की। या तो उन्हें सफलता ही नहीं हुई, और कुछ सफलता

हुई भी, तो वह विफलताकी अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक थी। उस सफलताने साम्राज्यको नई नई उलझनोंमें डाल दिया, जिनमेंसे निकलना मुश्किल हो जाता था। ज्यों ज्यों मुग़ल-सम्राट् दक्षिणमें घुसते गये, त्यों त्यों उनके मुँहको लहू लगता गया। वह लहू उन्हें आगे ही आगे घसीटता गया, यहाँतक कि दलदलमें पाँव फँस गये, जान मुश्किलमें आई, छोड़ना अपमानजनक हो गया, और पकड़ना असम्भव हो गया। दक्षिण ही अन्तमें मुग़ल-साम्राज्यका कब्रिस्तान बना।

मुसलमान विजेताओंमेंसे पहले पहल दक्षिणमें पाँव रखनेका साहस अल्लाउद्दीन खिल्जीने किया। जिस क्रूर सिपाहीने अपने उपकारी चचाके विश्वास और लाड़का बदला हत्यासे दिया, और धोखेसे गद्दीका रास्ता साफ किया, उसने यदि धोखेसे ही दक्षिणमें प्रवेश किया तो कोई आश्चर्य नहीं। वह राजपूतानेसे लौटता हुआ दक्षिणकी ओर बढ़ गया। वहाँ देवगिरि-राज्यकी सीमाके पास जाकर उसने मशहूर कर दिया कि 'चचाने अपमानित करके मुझे निकाल दिया है, इस कारण मैं किसीका आश्रय ढूँढ़ने आया हूँ।' देवगिरिका राजा रामदेव भोलेपनमें पूरा हिन्दू था। उसने धूर्त शत्रुके लिए राजधानीके द्वार खोल दिये। अलाउद्दीन अपने पठान सिपाहियोंके साथ अन्दर घुस गया, और उसने जाते ही किलेपर कब्जा कर लिया। मूर्ख रामदेवने अपनी अदूरदर्शिताका फल पाया। ख़ज़ाना लूट लिया गया, और प्रजापर कठोर अत्याचार किये गये। बेचारे राजाने अलाउद्दीनकी अधीनता स्वीकार करके प्राण रक्षा की। इस प्रकार देवगिरि या वर्तमान दौलताबादको धोखेसे जीतकर अलाउद्दीन खिल्जीने दक्षिणमें मुसलमानी राज्यकी बुनियाद डाली।

अलाउद्दीन खिल्जीकी मृत्युपर दिल्लीकी सल्तनत कमज़ोर हो गई। उसके समयमें मलिक काफ़ूर नामके सेनापतिने दक्षिणमें राज्य-विस्तारकी बहुतसी चेष्टा की। उसने वारंगल और द्वारसमुद्र तककी दौड़ लगाई, और इस प्रकार वर्तमान माइसूर तकके

प्रदेश जीत लिये, परन्तु यह राज्य-विस्तार बिल्कुल अस्थायी और कमज़ोर था। सेनापतिके पीठ फेरते ही प्रदेशोंने स्वतंत्रताका झण्डा खड़ा कर दिया।

१३१६ ई० से लगभग ५ वर्ष तक दिल्लीमें अव्यवस्था रही। १३२१ ई० में मुहम्मद तुग़लक राजगद्दीपर बैठा। वह बादशाह अपनी योग्यता और अयोग्यतामें सानी नहीं रखता था। वह फारसी और अरबी भाषाओंका विद्वान् था, गणित और तत्त्व-ज्ञानका पण्डित था, कविता लिख सकता था, और कवियोंका आदर करता था। उसकी दानशीलता मशहूर थी। राजा भोजका 'प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ' उसमें सार्थक होता था। यह मुहम्मद तुग़लकके गुण थे। जितने विशाल गुण थे, दोष भी उतने ही विशाल थे। वह हमेशा कोई न कोई नई कल्पना करता रहता था, नया मंसूबा बाँधता रहता था। कभी फारिसको जीतनेकी धुन-सवार हुई, तो कभी चीनको परास्त करनेका ख़ब्त उत्पन्न हुआ। जो राजा दानमें इतना उदार था, उसके बारेमें एक मुसलमान इतिहास-लेखकने लिखा है कि 'उसके दरवाजेपर दो तरहके पुरुष अवश्य दिखाई देते थे—ऐसा याचक जिसने भरपेट पाया हो, और ऐसा अभागा, जो बादशाहके घोर अत्याचारका सताया हो।' एक क्रूर अत्याचारी उदार दानी भी हो सकता है, यह मुहम्मद तुग़लकने अपने दृष्टान्तसे सिद्ध कर दिखाया। मुहम्मद तुग़लकने अपनी मौजकी लहरमें बहकर एक बार दक्षिणको भारतका केन्द्र बनानेका भी यत्न कर डाला था। उस यत्नमें उस योग्य पागलके गुण और दोष दोनों ही प्रतिबिम्बित दिखाई देते हैं।

मुहम्मद तुग़लकके दिमाग़में यह बात समा गई कि दिल्लीको भारतकी राजधानी बनानेसे सारे देशका शासन ठीक तरहसे नहीं हो सकता। शायद दक्षिणकी हरियालीपर कवि बादशाह लट्टू हो गया हो। दिल्लीमें आज्ञा प्रचारित की गई, कि बादशाह सलामत अपनी राजधानी दक्षिणमें दौलताबाद नामके किलेमें बनायँगे। दिल्ली शहरमें जितने रईस, अहलकार या दूकानदार रहते हैं, उन

सबको घर-बार उठाकर दक्षिणकी ओर कूच कर देना चाहिए। यात्राके लिए सहूलियत पैदा करनेकी चेष्टा की गई थी। दिल्लीसे दौलतावाद तक साफ और खुली सड़क बनाई गई थी, जिसके दोनों ओर छाया देनेवाले वृक्षोंकी पंक्तियाँ थीं। सम्पूर्ण मार्ग ४० पड़ावमें बाँटा गया था। हरेक पड़ावपर सराय थी। शाही हुक्मसे सब दिल्लीनिवासी हटा दिये गये। शहर खाली हो गया, और दौलतावादकी सड़क आबाद हो गई।

शहरका शहर उठकर चल तो पड़ा, परन्तु लाखों आदमियोंके ठहरने योग्य सराय, और उनकी पेटपूजाके लिए अनाजका प्रबन्ध हरेक पड़ावपर कैसे हो सकता था। यात्रियोंको अपार कष्ट हुआ। हरेक पड़ावपर लाशें पड़ने लगीं। बहुतसे परिवार रास्तेमें ही ढेर हो गये। जो दौलताबाद तक पहुँच पाये, उनकी ऐसी दुर्दशा हो गई थी कि वह किसी नये शहरको बसाने योग्य न रहे थे। परिणाम यह हुआ कि दिल्ली उजड़ गई, और दौलताबाद आबाद न हुआ।

अब दूसरा हुक्म हुआ। दौलताबादसे सबको दिल्ली वापिस जाना चाहिए। सरकारी हुक्म है, सबको मानना ही होगा। बेचारी प्रजा डंडे खाकर फिर ४० दिनकी नरक-यात्राके लिए रवाना हुई। कुछ लोग भूखे मरे, कुछ गर्मी सर्दीके शिकार हुए, जो बेचारे भाग्योंसे ठिकानेपर पहुँच गये, उनकी मुर्दोंसे बुरी हालत थी। एक पागल शासककी मूर्खतासे हजारों घर बरबाद हुए। राजधानी उजाड़ बीयाबान हो गई, और दक्षिण भी आबाद न हुआ। इस प्रकार दक्षिणपर बादशाहत करनेकी हवसने मुहम्मद तुग़लकको आपत्तियोंके समुद्रमें डाल दिया।

मुहम्मद तुग़लकके पीछे दिल्लीकी सल्तनत कमज़ोर होती गई। निर्बल शासकोंने तो उसे निर्बल किया ही था, ऊपरसे दैवी आफ़तने उसकी कमर ही तोड़ डाली। उस समय एशियापर वह प्रलय-कालका बादल बरस रहा था, जिसका नाम तैमूरलंग था। तैमूरलंग और चंगेज़ख़ाँको हम प्रलय-कालके बादलके सिवा

दूसरा नाम नहीं दे सकते। उनका लक्ष्य न राज्य स्थापित करना था, और न कर उगाहना। उनका लक्ष्य मार-काट और लूटद्वारा पृथ्वीके बोझको हल्का करना था। महामारीकी तरह वह जिधर निकल गये, उधर ही विधवाओं और अनाथोंका हाहाकार सुनाई देता था। शहरके शहर कत्ले आमके अर्पण कर दिये जाते थे। लूटका तो ठिकाना ही नहीं। जिसे देखा, लूट लिया। सर्वनाशकी पूर्तिके लिये अन्तमें सब कुछ अग्निदेवके अर्पण कर दिया जाता था। तैमूरलंग भारतमें आँधीकी तरह आया, और पेशावरसे दिल्ली तकको पाँव तले रौंधकर पागल हाथीकी तरह हरिद्वार काँगड़ा आदि पहाड़ोंमें होता हुआ वापिस चला गया। दिल्लीको उसने खूब लूटा। कई दिनों तक उसके सिपाहियोंने तलवार और आगकी सहायतासे भारतकी राजधानीको तबाह किया। अन्तको बरबाद शहरों और उजड़े हुए घरोंको फूट और महामारीके अर्पण करके वह नर-पिशाच जिधरसे आया था, उधर ही वापिस चला गया।

उस आफ़तके चले जानेपर भी दिल्लीकी वैसी ही दशा रही जैसी किसी भूतोंवाले घरकी हुआ करती है। दो महीने तक किसीका यह साहस न हुआ कि हिन्दुस्तानकी राजधानीपर दावा करे। वह बिना बादशाहके रही। पीछेसे लोदी वंशने राजगद्दीको सँभाला, परन्तु उनका शासन दिल्लीके घेरेसे अधिक दूर तक फैला हुआ नहीं था।

केन्द्रकी इस निर्बलताका परिणाम यह हुआ कि दूरके प्रान्तोंने दिल्लीके शासनका जुआ कन्धेपरसे फेंक दिया। दक्षिणका तो हुलिया ही बदल गया। वहाँपर इस समय तीन राज्य स्थापित हुए। तैलिंगानाके राजाको मलिक काफूरने वारंगलसे खदेड़ दिया था। उसने फिरसे अपने राज्यपर कब्ज़ा कर लिया। वह राज्य तैलिंगानाके नामसे मशहूर हुआ। दूसरा राज्य 'विजय-नगर' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह राज्य लगभग दोसौ वर्षों तक कायम रहा। मुसलमान रियासतोंसे घिरा रहनेपर भी विजय-

नगरके राजाओंने हिन्दू राज्यको ध्वजाको देरतक ऊँचा रखा। विजयनगरकी समृद्धिको देखकर विदेशी यात्रियों और मुसलमान पड़ोसियोंके मुँहमें पानी आता था। इस प्रसिद्ध राज्यका इतिहास—विजयनगरके उत्थान और पतनका वर्णन—बड़ा ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद है; परन्तु उसके लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है। यहां इतना ही कह देना पर्याप्त है कि दक्षिणमें जो तीसरी स्वतन्त्र मुसलमानी रियासत स्थापित हुई, उसके साथ विजयनगरका संघर्ष बराबर जारी रहा। संघर्षकी समाप्ति इस प्रकार हुई कि अड़ोस पड़ोसकी सब मुसलमान शक्तियोंने मिलकर विजयनगरपर आक्रमण किया। वह युद्ध न रहा, वह ज़िहाद हो गया। उस ज़िहादकी बाढ़में विजयनगरका प्रसिद्ध और बलिष्ठ राज्य भग्न हो गया।

तीसरा स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य, जो दिल्लीकी निर्बलताके कारण स्थापित हुआ, वह 'बाहमनी' राज्यके नामसे कहलाया। बाहमनी राज्यके संस्थापकका नाम हसन गंगू था। वह जन्मका पठान था। एक ब्राह्मणके यहाँ नौकर था। वहाँसे बढ़ता बढ़ता वह सेनापति बना, यहाँ तक कि दिल्लीके निर्बल होनेपर उसने स्वतन्त्र राज्यकी स्थापना की। इस विभूतिके समयमें भी उसने अपने पुराने मालिककी याद रक्खी, और जिस राज्यकी स्थापना की, उसे 'बाहमनी' के नामसे पुकारा। अपने नामके साथ गंगू जोड़कर भी उसने अपने मालिकके प्रति कृतज्ञताका भाव ही प्रकट किया।

हसन गंगूके वंशने १७१ वर्ष तक दक्षिणमें राज्य किया। उसके राज्यका विस्तार बरारसे लेकर कृष्णा नदी तक था। आज कलकी परिभाषाके अनुसार कह सकते हैं कि हसन गंगू ज़फ़रख़ाँके वंशजोंने बम्बई प्रेसीडेन्सी और दक्षिण-हैद्राबादके प्रदेशोंपर राज्य किया। १३४७ ई० से १४३७ ई० तक सारी रियासत एक ही शासकके अधीन रही, परन्तु इसके पश्चात् परिवारमें फूट पड़ गई, जिससे बाहमनी राज्य निम्नलिखित हिस्सोंमें बँट गया—

(१) आदिलशाहने बीजापुरमें 'आदिलशाही' राज्यकी बुनियाद डाली।

(२) निज़ामुल-मुल्कके लड़के अहमदने अहमदनगरमें निज़ाम-शाही राज्यकी स्थापना की।

(३) गोलकुण्डामें कुतवशाहने अलग राज्य स्थापित किया।

(४) वरारमें एलिचपुरके आसपासकी जगह इमादशाह नामक शासककी अधीनतामें स्वतन्त्र हो गई।

मुग़लोंकी बढ़तीके समय दक्षिण इन चार स्वतन्त्र राज्योंमें बँट चुका था। विजयनगरकी रियासत मुसलमान रियासतोंके सम्मि-लित आक्रमणके सामने समाप्त हो चुकी थी, और तैलिंगानाका राज्य भी गोलकुण्डामें मिश्रित हो चुका था।

उत्तरीय भारतको जीतकर अकवरके हृदयमें यह उमंग पैदा हुई कि वह दक्षिणको भी साम्राज्यका हिस्सा वनाकर काश्मीरसे रासकुमारी तकके भारतका सम्राट् वने। उसके पीछे जहाँगीरके समयमें भी मुग़ल-सेनाओंने दक्षिणकी ओर बढ़नेका यत्न किया। उन्हें जितनी सफलता प्राप्त हुई, यह हम ऊपर देख आये हैं। खानदेश और वरार मुग़ल-साम्राज्यके हिस्से वन गये, और अह-मदनगरने घरू फूटके कारण कुछ समयके लिए अकवरके सामने सिर झुका दिया, परन्तु वह सिर झुकाना फिर ऊपर उठानेके लिए ही था। मलिक काफ़ूरने फिरसे अहमदनगरकी निजामशाही रियासतको जीवित करके मुग़ल-साम्राज्यके मार्गका कण्टक वना दिया।

जिस समयका इतिहास हम लिख रहे हैं, उस समय वीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर—यह तीनों रियासतें अपने यौवनपर थीं। मुग़लोंके हाथमें केवल वरार और खानदेश थे। शाहजहाँ गद्दीपर वैठनेसे पूर्व दक्षिणमें कई लड़ाईयाँ लड़ चुका था। उसे थोड़ी वहुत सफलता भी प्राप्त हुई थी; परन्तु स्थायी सफलता अभी कोसों दूर थी। वीरांगना चाँदवीवीके पीछे मलिक अम्बरने अहमदनगरकी रियासतको यौवनपर पहुँचाया था। इस समय

वहाँका बादशाह मुर्तिज़ा निज़ामशाह मलिक अम्बरके लड़के फतेहख़ाँकी शिष्यतासे निकलकर स्वतन्त्रताका दावा कर चुका था। कोई विशेष कारण नहीं था कि वह मुग़ल-राज्यके साथ उलझता, परन्तु शाहजहाँके सेनापति ख़ानजहानके विद्रोहने मामला पेचीदा कर दिया। ख़ानजहान लोदी जहाँगीरके विश्वस्त सरदारोंमेंसे था। जब शाहजहाँने पिताके विरुद्ध विद्रोह किया, तब ख़ानजहानने शाहजहाँका विरोध किया। इस प्रकार अविश्वासका बीज बोया गया। वह बीज शाहजहाँके गद्दीपर बैठनेपर वृक्षरूपमें परिणत हुआ। पापी आत्मा स्वयं ही डरा रहता है। ख़ानजहानके अविश्वासका अन्त भी विद्रोहमें हुआ। शाही फौजोंने विद्रोही सेनापतिका पीछा किया, तब वह आश्रय ढूँढ़नेके लिए बीजापुर पहुँचा, परन्तु मुहम्मद आदिलशाहको दूसरेके झगड़ेमें पड़कर मुग़ल-साम्राज्यसे उलझनेमें कोई लाभ दिखाई नहीं दिया, तब ख़ानजहानने अहमदनगरके बादशाहके पास आश्रय तलाश किया। मुर्तिजा निज़ामशाह स्वयं मुसीबतोंसे घिरा हुआ था। उसके दो हिन्दू सरदार दुश्मनसे जा मिले थे। तो भी उसने भगोड़े सेनापतिका पक्ष लेकर शाहजहाँसे लड़ाई ठानी। इसे उसकी भारी अदूरदर्शिताका परिणाम समझें, या ऊँची उदारताका, यह कहना कठिन है। दौलताबादके लगभग दोनों सेनाओंमें मुठभेड़ हुई, जिसमें निज़ामशाहका पराजय हुआ। ख़ानजहान अपनी जान बचाकर भाग निकला, और काबुल पहुँचकर विद्रोह खड़ा करनेके उद्योगमें भागता हुआ बुन्देलखण्डमें पकड़ा गया। वहाँके राजपूत राजाने उसकी सेनाको परास्त कर दिया, वह स्वयं एक राजपूतके नेज़ेका निशान बना। विद्रोहीका सिर सम्राट्के पास नजरानेके तौरपर भेजा गया।

झगड़ेका कारण समाप्त हो गया, परन्तु झगड़ा समाप्त न हुआ। मुग़ल-सेनाओंकी अहमदनगरके बादशाहके साथ लड़ाई जारी रही। इधर दक्षिणमें भारी अकाल पड़ गया। तो भी सेनाओंका संघर्ष हलका न हुआ। १६३० ई० से १६३५ ई० तक किसी न किसी

रूपमें युद्ध जारी रहा। पहले तो प्रतीत होता था कि निजाम-शाही सल्तनतका अन्त हुआ चाहता है। आपत्तिमें आकर निज़ा-मशाहने मलिक अम्बरके लड़के फतेहख़ाँको कैदसे निकालकर वज़ीरकी पदवीपर बिठा दिया। फतेहख़ाँने अपमानका बदला लेनेका सुअवसर जानकर स्वामि-विद्रोह किया और मुग़लोंकी अधीनता स्वीकार कर ली, परन्तु अन्तमें उसे भी धोखा मिला, और इधर बीजापुरके बादशाहने यह सोचकर कि यदि मुग़लोंने अहमदनगरको जीत लिया तो फिर मेरी बारी भी आयगी, मुग़-लोंके साथ अहमदनगरके पक्षमें युद्ध छेड़ दिया। ख़ानजहानका पक्ष लेनेपर जैसी अहमदनगरसे बीती, अहमदनगरका पक्ष लेनेपर बीजापुरपर भी वैसी ही बीती। झगड़ेका कारण शीघ्र ही समाप्त हो गया, क्योंकि फतेहख़ाँने फिर अपने राज्यके साथ द्रोह किया। उसने हार मानकर रियासत शाहजहाँके सुपुर्द कर दी, और स्वयं मुग़ल-सेनामें शामिल हो गया। इस प्रकार निजामशाही रियासतको परास्त करके शाहजहाँने अपनी सारी शक्ति बीजापुरके विरुद्ध लगा दी। दक्षिणके झमेलेको एक बार ही तय कर देनेके लिए शाहजहाँ स्वयं दक्षिणमें आकर युद्धका संचालन कर रहा था। १६३५ ई० तक इसी प्रकार बीजापुरके साथ मुग़ल-सेनाओंका संघर्ष जारी रहा। इसी बीचमें शाहजहाँको आगरे जाना पड़ा। दक्षिणके युद्धका संचालन महाबतख़ाँके सुपुर्द था। ५ वर्षोंकी लड़ाईके पीछे शाहजहाँने हिसाब लगाकर देखा, तो उसे मालूम हुआ कि दक्षिणकी ऊसर भूमिमें जो जन और धनका ख़र्च किया गया है, उसने कोई फल पैदा नहीं किया। बीजापुर अब भी युद्धमें डटा हुआ था, और जिस निजामशाहीकी ओरसे शाहजहाँ निश्चिन्त हो गया था, वह एक नये ढँगपर जीवित हो चुकी थी। शाहजी भोंसला निजामशाही सरकारका पुराना नौकर था। उसने मलिक अम्बरके समयमें वीरता द्वारा अच्छा नाम कमाया था। अब फतेहख़ाँके विद्रोहसे खिन्न होकर उसने निज़ामशाही राज्य जीवित रखनेका संकल्प किया, और राजवंशके एक लड़केको

बादशाह उद्घोषित करके उसके साथ पहाड़ी इलाकेमें जाकर आश्रय लिया। इस प्रकार ५ वर्षकी निरन्तर धन-जन-वृष्टिके पश्चात् भी दक्षिणके जंगलोंमें आगकी चिनगारियाँ पूर्वकी भाँति दिखाई देती थीं।

इस आगको बुझानेके लिए १६३५ ई० के अन्तमें शाहजहाँने फिर दक्षिणको प्रयाण किया। इस बार बीजापुरका मर्दन करनेके लिए साम्राज्यकी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी गई। इधर शाहजीने यह देखकर कि मैदानमें मुग़ल-सेनाओंसे भिड़ना कठिन है, पहाड़ोंकी कन्दराओंका आश्रय लिया, परन्तु वहाँ भी उसे शाही सेनाओंने आरामसे बैठने न दिया। बीजापुरके बादशाह आदिलशाहने बड़ी बहादुरीसे कई गुना शाही-बलको देरतक रोकनेमें सफलता प्राप्त की, परन्तु क्या आदिलशाह और क्या शाहजी दोनोंमेंसे किसीके लिए भी उस अनन्त धन-राशि और टिड्डीदलकी भाँति उमड़ते हुए सैन्य-दलका देरतक सामना करना कठिन था। अन्तमें दोनोंको हार माननी पड़ी। दोनोंको हथियार फेंकते हुए देखकर गोलकुण्डा-के शासकने भी भलाई इसीमें देखी कि मुग़ल-छत्रके सामने सिर झुकाया जाय। इस प्रकार तीनों रियासतोंके साथ मुग़ल-साम्राज्यकी निम्नलिखित शर्तोंपर सन्धि हो गई—

(१) बीजापुरके बादशाहने मुग़ल-सम्राट्की अधीनता स्वीकार की। साथ ही वार्षिक कर देनेका भी वादा किया। उसके बदलेमें अहमदनगरकी रियासतके कुछ भाग, जो बीजापुरसे मिलते थे, उसके अर्पण कर दिये गये।

(२) शाहजीने हार मानकर उस कठपुतलीको शाहजहाँके सुपुर्द कर दिया, जिसे वह अहमदनगरका बादशाह बनाना चाहता था। वह स्वयं शाहजहाँकी अनुमतिसे बीजापुरकी रियासतकी सेवामें आ गया। शाहजी प्रसिद्ध महाराष्ट्र-विजेता शिवाजीका पिता था।

(३) गोलकुण्डाकी रियासतने भी मुग़ल-सम्राट्की अधीनता स्वीकार करके साप्ताहिक प्रार्थनाओंमेंसे फारिसके शाहका नाम

निकालकर उसके स्थानपर मुग़ल-सम्राट्का नाम प्रविष्ट करनेका वादा किया।

इस प्रकार, उस समयके लिए दक्षिणमें मुग़लोंका आधिपत्य स्वीकार किया गया। शर्तें कहाँतक कायम रहीं, और आधिपत्य कितने दिनों जीवित रहा, यह तो हमें आगे प्रतीत होगा, परन्तु यहाँपर इतना सूचित कर देना आवश्यक है कि यह अन्तिम युद्ध था, जिसका संचालन शाहजहाँने स्वयं किया। इसके आगे जितनी बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, उनमें शाहजहाँ अपने पुत्रोंद्वारा ही युद्धका संचालन करवाता रहा। उन युद्धोंको हम शाहजहाँके जीवन-चरित्रका भाग बनानेकी जगह यदि उसके पुत्रोंकी जीवनीका भाग बनायें, तो अनुचित न होगा।

१५—शाहजहाँकी सन्तान

जिस पड़ावपर हम पहुँच गये है, वहाँ शाहजहाँका अकेला रास्ता समाप्त होता है और उसके लड़कोंके चार रास्ते आरम्भ हो जाते हैं। इसके आगे उस शक्तिशाली परन्तु अभागे सम्राट्का इतिहास सन्तानके इतिहासमें लुप्त हो जाता है। अवसर आ गया है कि हम पिताको आच्छादित कर देनेवाली सन्तानका परिचय प्राप्त करें, और देखें कि किस प्रकार एक सम्राट्की शक्ति कई शाखाओंमे विभाजित हुई, और किस प्रकार इस शक्ति-विभागने साम्राज्यका सर्वनाश किया।

यों तो शाहजहाँके कई सन्तानें हुईं, परन्तु उनमें छहहीने इतिहासके क्षेत्रपर अपने पग-चिह्न छोड़े हैं। उन छहमेंसे चार लड़के थे, और दो लड़कियाँ थीं। लड़कोंके नाम निम्नलिखित है—(१) दाराशिकोह, (२) औरंगज़ेब, (३) शुजा, (४) और मुरादबख़्श। लड़कीका नाम जहानारा था।

दाराशिकोह सबसे बड़ा था। वह देखनेमें सुन्दर, डीलडौलका जवान और प्रतिभासम्पन्न था। वह अपने पिताका दुलारा और तबीयतका उदार था। बचपनसे ही शाहजहाँने उसे अपने पास रखा। जब जहाँगीर शाहजहाँसे बहुत नाराज़ हुआ, तो उसने नेक-चलनीकी जमानतके तौरपर दाराशिकोह और औरंगज़ेबको अपने पास रखा। वह बेचारे दादाकी मृत्युपर ही अपनी मातासे मिल सके। इतिहास-लेखकने लिखा है कि अपने बिछुड़े हुए धनको प्राप्त करके मुमताज बेगम खूब रोई। पढ़ने लिखनेमें दाराकी बुद्धि खूब चलती थी। उसके धार्मिक विचार अकबरकी शैलीके थे। उसके अनुशीलनका क्षेत्र बहुत विस्तृत था। उसकी मानसिक विशालताका इससे बढ़कर क्या सबूत हो सकता है कि जहाँ उसने इस्लामकी शिक्षा सरमद नामके मुसलमान फकीरसे प्राप्त की, वहाँ हिन्दू योगी लालदासके चरणोंमें बैठकर वेदान्तकी शिक्षाका भी लाभ उठाया। जहाँ उसने एक ओर बाइबिलके पुराने और नये अहदनामोंका मनन किया, वहाँ उपनिषदोंका भी गहरा अनुशीलन किया। इस्लाम और हिन्दू-धर्म दोनोंहीमें उसे सचाईके अंश दिखाई देते थे, और इसी आशयको प्रकट करनेके लिए उसने मज़मूआ-ए-वाहरियानके नामसे एक ग्रन्थ लिखा। पण्डितोंकी सहायतासे दाराने उपनिषदोंका फारसी अनुवाद भी तैयार किया था। उसके कराये हुए पचास उपनिषदोंके फारसी अनुवादका नाम सिर्रे-उल-असरार था। बाबा लालदाससे दाराकी जो ज्ञान-गोष्ठी होती थी, उसका संग्रह 'बाबा लालसे बातचीत' के नामसे प्रकाशित किया गया। मुसलमान सन्तोंकी जीवनियोंके संग्रहका नाम सफीतत-उल-औलिया रखा गया था। दाराके विशेष धर्मगुरु मियाँ मीरका जीवनचरित्र 'सकीनत-उल-औलिया' के नामसे प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार दाराका धार्मिक स्वाध्याय और उसकी प्रेरणासे लिखी गई पुस्तकोंसे सिद्ध होता है कि जहाँ वह विश्वासोंमें मुसलमान था, वहाँ उसकी

दृष्टि सचाईका अन्वेषण इस्लामके दायरेसे बाहिर भी कर सकती थी। वह धार्मिक दृष्टिसे अकबरका शिष्य था।

चारों भाई एक ही माताके पुत्र थे। दारा उनमें बड़ा था। इस कारण स्वभावतः राज्यका उत्तराधिकारी वही था। शाहजहाँने उसीको युवराज पदका अधिकारी मान रखा था। इसमें कोई अन्याय या पक्षपातकी बात भी प्रतीत नहीं होती। अनेक झगड़ोंके होते हुए भी हरेक देश और हरेक ऐसी जातिमें जहाँ वंशानुक्रमसे राजगद्दीका अधिकार प्राप्त होता हो, वहाँ बड़ा पुत्र ही स्वाभाविक अधिकारी समझा जाता है। शाहजहाँ और उसके दरबारी—सभी लोग दाराको भावी सम्राट् समझते थे, और उसका विशेष आदर करते थे। इसके साथ ही यह कह देना भी आवश्यक है कि दाराशिकोह अपने पिताकी सेवा अनन्य-भावसे करता था। यदि शाहजहाँ उसे अपने समीप रखना चाहता था, तो दारा उसे आराम पहुँचानेमें भी कोई कसर न छोड़ता था। हम दाराको हरेक कष्टमें बूढ़े पिताको कन्धेका सहारा देते हुए पाते है।

शाहजहाँ ज्यों ज्यों आयु और भोगके कारण शिथिल होता गया, त्यों त्यों उसे लठियाके सहारेकी आवश्यकता होती गई। दाराशिकोह बूढ़ेकी लठिया बन गया। लठियाको हमेशा बूढ़ेके पास ही रहना पड़ता है, दारा भी प्रायः दरबारको ही सुशोभित करता था। वह इलाहाबाद, पंजाब और मुल्तान जैसे धन-धान्य पूर्ण प्रान्तोंका सूबेदार बनाया गया, परन्तु उसे कभी सूबेमें जानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वह अपने प्रतिनिधियों-द्वारा ही शासन करता था। स्वयं उसका केन्द्र आगरा या दिल्ली-में ही रहता था। साम्राज्यमें दाराशिकोहका स्थान शाहजहांसे दूसरे दर्जेपर था।

आयुमें तीसरा परन्तु महत्त्वमें दूसरा भाई औरंगज़ेब संसारके उन विशेष पुरुषोंमेंसे है, जो अपने चरित्रद्वारा एक विशेष ढँग-का नमूना स्थापित कर गये हैं। वह महान् था, उसके गुण भी

महान् थे, उसके दोष भी महान् थे। उसके चरित्रके गुण दोषोंका विस्तृत विवरण इस पुस्तकके दूसरे भागमें पाया जायगा। औरंगज़ेबका चरित्र भारतके इतिहासपर ही नहीं, इस्लामके इतिहासपर और संसारके इतिहासपर अपना सिक्का छोड़ गया है। यहाँ हम उस चरित्रका सम्पूर्ण चित्रण नहीं करना चाहते। यहाँ हमें केवल इतना निर्देश करना है कि सम्राट् औरंगज़ेबका चरित्र शाहज़ादा औरंगज़ेबमें पूर्ण रूपसे विद्यमान था, या नहीं ? शाहज़ादा औरंगजेबका चरित्र कई अंशोंमें सम्राट्के अनुकूल था, परन्तु कई अंशोंमें भिन्न था। अवस्थाओंने उसमें बहुतसे परिवर्तन पैदा कर दिये थे। इतना होते हुए भी हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सम्राट् औरंगज़ेबरूपी महावृक्ष शाहज़ादा औरंगजेबरूपी बीजमें विद्यमान था।

शाहजादा औरंगज़ेब देखनेमें बहुत सुन्दर नहीं था, परन्तु गठीले शरीरका था। उसे शारीरिक व्यायाम और युद्ध-कलाके अभ्यासका शौक था। पढ़ने लिखनेमें उसकी बुद्धि यद्यपि विशाल नहीं थी, परन्तु खूब प्रखर थी। उसकी विशेष अभिरुचि इस्लामके मज़हबी साहित्यकी ओर थी। कुरान और हदीस उसे खूब उपस्थित थे। अरबी और फारसी बोलनेमें वह उन भाषाओंके पण्डितोंको मात करता था। कहते हैं कि उसने हिन्दी भी पढ़ी थी। तुर्की भाषाका भी उसने अभ्यास किया था। शेख सादीकी कविता उसे कण्ठस्थ थी। इस प्रकार अनुशीलनकी शक्ति और अभिरुचि रखते हुए भी यह कहना अनुचित नहीं है कि उसका शिक्षण एकतर्फा था। उसके हृदयका संस्कार एकहीसे वातावरणमें हुआ था। उसकी साधारण प्रवृत्ति इस्लामके मजहबी साहित्यकी ओर थी। कुरानसे उतरकर यदि उसे किसी किताबका शौक था, तो वह कुरानकी टीका थी।

बचपनहीसे उसे ललित-कलाओंकी ओरसे घृणा थी। चित्रकारीको वह पाप समझता था। संगीत तो कुफ्र था ही। यद्यपि उसने राज्याधिकारी बनकर कई इमारतें बनवाई हैं, तो भी वह इतनी

साधारण है कि हम यह कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं करते कि रचनाके सौन्दर्यका उसे कोई शौक नहीं था। कवियोंको आश्रय देना, या सुन्दर कविता सुनकर इनाम देना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध था। इतना होते हुए भी हमें बाल्य और यौवनमें औरंगज़ेब सर्वथा रसिकतासे विहीन नहीं प्रतीत होता। शेख सादी और ऐसे ही अन्य बहुतसे फारसी कवियोंकी कवितायें उसने कण्ठस्थ कर छोड़ी थीं। इसके अतिरिक्त 'हीराबाई' पर औरंगज़ेबका मोहित होना, और फिर उसे अपने अन्तःपुरमें रखना उसके उस नीरस और कठोर चरित्रके साथ मेल नहीं खाता, जो हम साम्राज्यके धुरन्धर होनेकी दशामें देखते हैं। औरंगज़ेबकी माताकी बहिनका पति मीर ख़लील बुरहानपुरका शासक था। जब शाहज़ादा दक्षिणका सूबेदार बनकर औरंगाबादकी ओरको जा रहा था, तब अपनी मासीसे मिलनेके लिए बुरहानपुरमें ठहरा। वहाँ बाग़में टहलते हुए उसने मासीकी अनुचरियोंमें एक किशोरीको देखा जो देखनेमें सुन्दरी और हाव-भावमें चंचल थी। जब वह किशोरी राजकुमारके सामनेसे गुज़र रही थी, तब आमोंसे लदे हुए एक पेड़के पास जाकर उछलकर फल तोड़ने लगी। आमोद और यौवनके कारण उसका अंग अंग नाच रहा था। औरंगज़ेब घायल हो गया, और देरतक वहीं मोहकी अवस्थामें पड़ा रहा। जब मासीको लड़केकी दुरवस्थाका पता लगा, तब उसने अपने पतिसे चर्चा की। वह किशोरी मीर ख़लीलकी गुलाम थी। उसका नाम हीराबाई था। मीर ख़लीलने औरंगज़ेबकी प्राणरक्षाका दूसरा उपाय न देखकर हीराबाईको छत्रबाई नामकी औरंगज़ेबकी एक गुलाम कन्याके साथ बदल लिया। शाहज़ादेपर उस गायिकाका ऐसा जादू चला कि कुछ समयके लिए अपने इस्लाम और महत्त्वाकांक्षाओंको भूलकर शृंगार-रसमें मग्न हो गया। कहा जाता है कि हीराबाई उर्फ ज़ैनाबदीकी मधुर प्रेरणासे वह शराब तक पीनेको उद्यत हो गया था। यह मानना कठिन है कि औरंगज़ेब एकदम रसविहीन शुष्क काष्ठ ही था। यदि राजनीतिक आवश्य-

कतायें उसे कट्टर मुल्ला बननेपर बाधित न कर देतीं, तो सम्भव है उसका हृदय इतना ऊसर न होता।

बचपनसे युद्ध-विद्या और शारीरिक व्यायामका उसे शौक था। डर किस चिड़ियाका नाम है, यह उसे विदित ही नहीं था। बचपनकी एक घटना औरंगज़ेबकी निर्भयताको खूब सूचित करती है। २८ मई १६३३ ई० की बात है। शाहजहाँको अन्य सब मुग़ल बादशाहकी तरह, हाथियोंकी लड़ाई देखनेका शौक था। उस रोज सुधाकर और सूरत-सुन्दर नामके दो मस्त हाथियोंको आगरेके किलेके नीचे भिड़ाया गया। दोनों हाथी लड़ते लड़ते कुछ दूर चले गये। द्वन्द्व-युद्धको समीपसे देखनेके लिए शाहजहाँ अपने आसनसे उठकर युद्ध-स्थलकी ओर चला। उसके पीछे तीनों बड़े लड़के भी थे। लड़ते लड़ते दोनों नरपर्वतोंको दम चढ़ गया। दम लेनेके लिए दोनों कुछ कदम पीछेको हट गये। सुधाकर नामका हाथी, जिधर दम ले रहा था, औरंगज़ेबका घोड़ा उधरहीको बढ़ गया। बस फिर क्या था, सुधाकर जोशमें तो था ही, भयंकर चिंघाड़के साथ शाहज़ादा औरंगज़ेबपर टूट पड़ा। औरंगज़ेब उस समय केवल १४ वर्षका था। दूसरा कोई होता तो उस पिशाचसे भागकर जान बचानेकी कोशिश करता, परन्तु औरंगज़ेबने अपने घोड़ेकी लगामको सँभालकर मस्त हाथीपर नेज़ेका वार किया। हाथी नेज़ेकी चोट खाकर और भी अधिक प्रचण्ड हो उठा, और उसने अपनी सूँडके वारसे औरंगज़ेबके घोड़ेको गिरा दिया। उपस्थित जनतामें हाहाकार मच गया। शाहजहाँने अपने सब सरदारोंको शाहज़ादेकी मदद करनेके लिए ललकारा। हाथीको डरानेके लिए बारूदके गोले छोड़े गये। राजकुमार शुजा घोड़ेको बढ़ाकर हाथीपर वार करना चाहता था, हाथीने सूँडके आघातसे सवार और घोड़ा—दोनोंको नीचे पटक दिया। चारों ओर घबराहट और त्रासका राज्य हो रहा था, परन्तु निश्चल गम्भीर और वीर राजकुमार घोड़ेपरसे कूदकर अलग जा खड़ा हुआ और म्यानसे तलवार निकालकर हाथीको रोकनेका यत्न करने लगा। इतनेमें

महाराज जयसिंहने आगे बढ़कर सुधाकरपर नेज़ेका भरपूर वार किया। उधर सूरत-सुन्दर भी दम लेकर ताज़ा हो चुका था। उसने भयंकर ध्वनिके साथ सुधाकरपर वार किया। नेज़ेकी चोट, गोलोंकी आवाज़ और उसपर सूरत-सुन्दरका धावा—इन तीन चीज़ोंको सहनेमें असमर्थ होकर सुधाकर मैदान छोड़कर भाग निकला।

इस प्रकार औरंगज़ेबने बचपनमें उस अदम्य साहसका परिचय दिया, जो अगले जीवनमें उसका साथ देनेवाला था। समयके साथ औरंगज़ेबके निर्भय साहसमें वृद्धि ही हुई, अवनति नहीं। जिस समय औरंगज़ेब बल्ख़की लड़ाईमें शत्रुओंसे घिर गया था, उस समयको घटना है कि युद्ध होते होते साँझ हो गई। नमाज़का समय आ गया। चारों ओर तीर और गोले बरस रहे थे, और बहादुरोंकी लाशें गिर रही थी। बीचमें औरंगज़ेब घोड़ेपरसे उतरता है, और भूमिपर कपड़ा बिछाकर शान्तिपूर्वक नमाज़ पढ़ता है। विरोधी सेनापतिने जिस समय यह देखा, उस समय उसके मुँहसे आकस्मात् यह शब्द निकले कि 'जो आदमी युद्धके घोर निनादमें इस प्रकार नमाज़ पढ़ सकता है, उससे लड़नेका यत्न करना पागलपन है।'

यही साहस था, जिसने राजगद्दीके लिए भाइयोंकी परस्पर लड़ाईमें औरंगज़ेबको विजयी बनाया। संग्राम हो रहा था। दिल्लीकी राजगद्दी बाज़ीपर रखी हुई थी। यह निश्चय हो रहा था कि भारतका सम्राट् दारा शिकोह बनेगा या औरंगज़ेब। विजयश्री हाथसे फिसलती दिखाई देती थी, अपनी सेनाओंके दिल टूट रहे थे, ऐसे समय औरंगज़ेब न हाथीसे उतरता है, और न हाथीका मुँह फेरता है। वह अपने हाथीके पाँव जंजीरोंसे बँधवा देता है, ताकि वह दुश्मनके वारसे घबड़ाकर पीठ न दिखा दे। वह साँकलें, इस संकल्पका भी चिह्न थीं, कि या तो जीतकर राजगद्दीपर बैठूँगा, और या इसी स्थानपर मारा जाऊँगा। सिपाहियोंने जब बादशाहके हाथीको हिमालयकी तरह स्थिर और अटल देखा, तो उनके डूबते हुए

हृदय तैर उठे। कायरोंके दिलोंमें वीरताका प्रवेश हो गया, और वह इस जोरसे लड़े कि शत्रुओंके पाँव उखड़ गये। विजयश्री और राज्यश्रीने साथ ही साथ औरंगजेबका आलिंगन किया।

इन सब गुणोंके साथ साथ औरंगज़ेबमें कई बड़े दोष भी थे। हम देख चुके हैं कि उसकी धार्मिक परिधि संकुचित थी, उसकी मानसिक शक्तियोंमें तीव्रता थी, परन्तु उदारताका सर्वथा अभाव था। तीखापन था, परन्तु फैलाव नहीं था। यह अनुदारता जीवनके प्रत्येक भावमें प्रकट होती थी। वह बचपनसे ही कट्टर मुसलमान था। ज्यों ज्यों आयु बढ़ती गई त्यों त्यों कट्टरपनमें भी वृद्धि होती गई। हम आगे देखेंगे कि उस कट्टरपनकी धारको राजनीतिक आवश्यकताओंने खूब पैना किया—इतना पैना किया कि सब गुण एक ही दोषसे आच्छादित हो गये, परन्तु वह दोष बीजरूपमें पहलेसे ही विद्यमान था।

एक कट्टरसे कट्टर धार्मिक पुरुष दूसरेके धर्मके लिए उदारताका विचार रख सकता है। धर्म ऐसी वस्तु नहीं है कि वह हृदयकी खिड़कीको सहानुभूति या सहिष्णुताके पवित्र पवनके मुँहपर बन्द कर दे। धर्मका लक्ष्य हृदयको विशाल और विचारोंको उदार बनाना है। ऐसा पवित्र धर्म जब किसी संकुचित और अनुदार पात्रमें पड़ जाता है, तो दोमेंसे एक परिणाम अवश्य होना चाहिए। या तो पात्रकी अनुदारता नष्ट हो जायगी और या धर्म अपने असली रूपको खोकर भयानक हृदयाग्निका रूप धारण करेगा। धर्मकी अधिकतासे प्रथम तो मनुष्य देवता बन जायगा, परन्तु, यदि किसी प्रबल विरोधी स्वभावके कारण यह सम्भव न हो, तो धर्म मजहबी पागलपनके रूपमें परिणत होकर अपने धारण करनेवालेको राक्षस बनाकर छोड़ेगा। वह एक आग है, जो या तो सोनेको तपाकर विशुद्ध कर देगी, या हरे-भरे उद्यानको जलाकर राख कर देगी। औरंगज़ेबका इस्लाम उसके स्वभाव-दोषके कारण अमृत न बनकर विष बन गया। उसके लिए इस्लामसे प्रेमका अर्थ था—हिन्दू धर्मसे घृणा, हिन्दू जातिसे घृणा, और हिन्दू इमारतोंसे

घृणा। राजनीतिक आवश्यकताओंके कारण इस घृणाका विस्तार इतना बढ़ा कि औरंगज़ेब उन लोगोंसे भी घृणा करने लगा जो मुसलमान होते हुए भी काफिरोंसे घृणा न करें। धीरे धीरे औरंगज़ेबकी दृष्टिमें 'मुसलमान' का लक्षण 'काफिरसे घृणा करनेवाला' और 'काफिर' का लक्षण 'काफिरसे घृणा न करनेवाला' यह हो गया।

यौवनमें ही हृदयकी यह अनुदारता रंग लाने लगी थी। बुन्देला-युद्धमें १७ वर्षका शाहज़ादा औरंगज़ेब मुग़ल-सेनाका सेनापति बनाया गया। पीछेसे स्वयं शाहजहाँ भी उस युद्धमें पहुँच गया था। वह शाहजहाँ, जो सामान्यतया राजकार्यमें धर्मगतभेदको कभी आगे नहीं आने देता था, गोंड देशके विजयके समयमें अपने लड़केके आग्रहको न रोक सका। औरंगज़ेबकी प्रार्थनापर शाहजहाँ दतिया और ओर्छाका निरीक्षण करने गया। उसी समय इस्लामकी विजयको प्रमाणित करनेके लिए औरंगाबादके पास बुन्देल-नरेश वीरसिंहदेवके विशाल मन्दिरको तोड़कर उसके स्थानपर मसजिद बनाई गई। यह औरंगज़ेबका इस्लाम-प्रचारके क्षेत्रमें प्रवेश-संस्कार था।

उसकी मानसिक प्रवृत्तिकी सूचना निम्नलिखित चिट्ठीसे मिल सकती है, जो उसने दक्षिणके दूसरी बारके शासनके समयमें प्रधान वज़ीर सादुल्लाखाँको लिखी थी। हम उक्त चिट्ठीका कुछ भाग प्रो० जदुनाथ सरकारकी 'औरंगजेबकी जीवनी' के प्रथम भागसे उद्धृत करते हैं:—"बिहार शहरके कानूँगो ब्राह्मण छबीलरामने रसूलके बारेमें कुछ अनुचित शब्दोंका प्रयोग किया था। तहक़ीक़ातके बाद, बादशाहकी आज्ञासे, ज़ुल्फिकारखाँ और अन्य अफसरोंने उसे फाँसीपर चढ़ा दिया था। अब मुझे मुल्ला मुहनने लिखा है कि उस काफिरके रिश्तेदारोंने (Lord Justice) सदर आला शेख मुहम्मद मौला, और (Ecclesiastical Judge) प्रधान क़ाज़ी शेख अब्दुलगनीके विरुद्ध बादशाहके पास अपील की है। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूँ कि हरेक मुसलमानका

फ़र्ज़ है कि वह इस्लामके कानूनकी हिफ़ाजत करे और बादशाहोंका यह फ़र्ज़ है कि वह उलमाको इस्लामके कानूनको प्रचलित करनेमें सहायता दें। तुम्हें चाहिए कि तुम इन काफिरोंके लिए अपीलका रास्ता बन्द करा दो, और मुसलमानोंको सफ़ाई पेश करनेमें मदद दो।"

इस पत्रका अभिप्राय स्पष्ट है। सम्राट् औरंगज़ेब शाहज़ादा औरंगज़ेबमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान् था। अनर्थ करनेकी इच्छा और प्रवृत्ति विद्यमान् थी, न्यूनता थी केवल अवसरकी।

हृदयकी संकुचितता या अनुदारता ऐसी वस्तु नहीं है कि वह एक दिशामें जाय, और दूसरी दिशाको छोड़ दे। वह एक व्यापक दोष है, जो मनुष्य-जीवनके हरेक अंगको व्याप्त कर लेता है। यह नहीं कि औरंगज़ेबके हृदय-कपाट हिन्दुओंके लिए बन्द थे, वह अपने रिश्तेदारों और पीछेसे अपने पुत्रों तकके लिए बन्द हो गये थे। 'अविश्वास' औरंगज़ेबका मूल मन्त्र था। वह १७ वर्षकी उम्रमें सरकारी ओहदेपर आसीन हुआ। उस समयसे लेकर राजगद्दीपर बैठनेकी दशा तक शाहजहाँने उसे किसी न किसी ऊँचे ओहदेपर स्थापित किया। बुन्देलखण्डके पीछे वह दक्षिणका सूबेदार हुआ। फिर उसे मुल्तानका सूबा देकर कन्दहारकी विराट् सेनाका प्रधान सेनापति बनाया गया। वहाँ विफलता होनेपर फिर उसे दक्षिणके विस्तृत सूबेका शासक नियुक्त किया गया। इस प्रकार शाहजहाँने उसे विश्वासके ऊँचेसे ऊँचे पद दिये, परन्तु औरंगज़ेबकी निरन्तर यही शिकायत रही कि 'बादशाह मुझपर विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह दुश्मनोंके हाथमें है।'

भाइयोंमेंसे शुजा और मुराद छोटे थे। वह शक्ति और पदवीमें भी कम थे; इस कारण यौवनमें औरंगज़ेबकी घोर ईर्ष्याकी मारसे बचे हुए थे, परन्तु बड़े भाई दारा शिकोहके साथ उसका ३ और ६ का सा सम्बन्ध था। औरंगज़ेब दाराको अपना घोर शत्रु समझता था। पत्र-व्यवहारमें वह कभी बड़े भाईका नाम नहीं लिखता था। यदि उसकी ओर कभी निर्देश करना अभीष्ट होता था, तो

'दुश्मन' शब्दसे ही करता था। शाहजहाँके सम्बन्धमें उसे सबसे बड़ी शिकायत यही थी कि वह दारासे अधिक प्रेम करता है। दारा उम्रमें सब भाइयोंमें बड़ा था, वह राज्यका स्वाभाविक उत्तराधिकारी था। उसके साथ ही प्रतीत होता है कि वह पिता तथा अन्य सम्बन्धियोंसे गहरा प्रेम रखता था। इन कारणोंसे शाहजहाँका झुकाव उसकी ओर अधिक था। औरंगज़ेब स्वभावसे अविश्वासी था। वह सदा यह समझता रहता था कि शाहजहाँको दारा बहकाता है। पिता और पुत्रका परस्पर पत्र-व्यवहार पढ़कर आश्चर्य होता है। औरंगज़ेब पितासे हमेशा बेरुखेपनकी और पक्षपातकी शिकायत करता था और शाहजहाँ भी प्रायः औरंगज़ेबका मज़ाक उड़ाता या उसे झाड़ता रहता था। दोनों बेटोंके परस्पर झगड़ेके कारण दरबारमें और घरमें रातदिन कलह पैदा न हो, इसका उपाय शाहजहाँने यह किया कि दोनों शेरोंको जुदा जुदा पिंजरोंमें बन्द कर दिया। दारा शिकोहको दरबारमें रखकर और औरंगज़ेबको कार्यक्षेत्रमें भेजकर स्नेही पिताने समझा कि उसने विकट घरेलू समस्याको हल कर दिया है, परन्तु यह उसकी भूल थी। औरंगज़ेब शुजा नहीं था, कि दूरस्थ प्रान्तमें गुम होकर बैठ जाता। वह दक्षिणमें हो या मुल्तानमें, दरबारकी एक एक खबरका पता रखता था। उसके गुप्तचर आगरे और दिल्लीकी चिट्ठी नियमपूर्वक भेजते रहते थे। बादशाहकी छोटीसे छोटी आज्ञाके वह गुप्त अर्थ निकालता था। उसकी तीक्ष्ण प्रतिभा बादशाहकी प्रत्येक चालमें दाराके हाथको तलाश कर लेती थी। कभी वह शिकायत करता था कि 'मेरी सिफ़ारिशपर बादशाह किसी अच्छे पदाधिकारीको नियुक्त नहीं करते।' कभी वह रोना रोता था कि 'दारा शिकोहके लड़कोंको जितना आदर प्राप्त हो रहा है उतना भी मुझे प्राप्त नहीं होता।' बहुत दिनों तक बाप-बेटेमें इस झगड़ेपर गर्मागर्म पत्र-व्यवहार चला कि दक्षिणके सूबेके शासनका खर्च शाही खज़ानेसे दिया जाय या नहीं। औरंगज़ेबका कथन था कि क्योंकि दक्षिणका प्रान्त नया है, और अधिकांश ऊसर

है, इस कारण उसके शासनके व्ययका कुछ भाग उपजाऊ सूबोंसे मिलना चाहिए। शाहजहाँ चाहता था कि प्रत्येक प्रान्त अपना ख़र्च स्वयं चलाये। यह विवाद वर्षोंतक चलता रहा। इस प्रकारके वाद-विवादसे बादशाहकी तबीयत खिन्न गई, और वह औरंगज़ेबसे घबराने लगा।

एक बार तो मामला यहाँ तक बढ़ा कि औरंगज़ेबका दरबारमें आना तक बन्द कर दिया गया। दारा पिताका प्यारा, और सल्तनतका दुलारा होनेके कारण अतुल सम्पत्तिका स्वामी था। उसने आगरेमें नया महल बनवाया। महलके तैयार हो जानेपर उसके देखनेके लिए समस्त परिवारको निमन्त्रण दिया गया। महलमें एक तहख़ाना था। उसमें केवल एक द्वार था। जब दारा शाहजहाँको और अपने भाइयोंको तहख़ानेमें ले जाने लगा, तब औरंगज़ेब दरवाजेपर ही रुक गया, और जबतक सब लोग तहख़ानेसे वापिस आये तबतक वहीं बैठा रहा। शाहजहाँको अपने लड़केकी इस चेष्टापर बड़ा दुःख हुआ। उसने क्रोधको प्रकाशित करनेके लिए सूबेदारीका काम और अन्य सब राजकीय अधिकार औरंगज़ेबसे छीन लिये।

प्रायः ग्रन्थोंमें ऐसा लिखा जाता है कि यौवनावस्थामें औरंगज़ेबकी प्रवृत्ति त्यागकी ओर इतनी बढ़ गई थी कि उसने पितासे मक्के जानेकी आज्ञा माँगी थी। इस जनश्रुतिका मूल ऐसी ही किसी घटनामें प्रतीत होता है। ऐसे ही किसी अपमानके क्षणमें औरंगज़ेबने यह संकल्प प्रकट किया होगा कि इस अपमानसे तो यह अच्छा है कि इस गुलामको हज करनेकी इजाज़त दी जाय। वह संकल्प-प्रेमके फासमें फँसे हुए पुरुषके निराशाके क्षणमें मरण-संकल्पके समान था। औरंगज़ेबकी महत्त्वाकांक्षा बचपनसे बहुत बड़ी थी—वह घोर रूपमें उग्र थी—किसी रुकावटके कारण उसका मन्द हो जाना सम्भव था, पर मिट जाना असम्भव। पिता और पुत्रकी इस मान-लीलाका अन्त प्रेममयी साध्वी जहानाराके प्रयत्नसे हुआ। जहानारा शाहजहाँकी सबसे अधिक प्यारी सन्तान

थी। माँ (मुमताजमहल) के मरनेपर बापके हृदयको इसी स्नेहपूर्णा पुत्रीने सँभाला था। उसने पिताको विश्वास दिलाया कि औरंगज़ेबका दाराके तहख़ानेमें जानेसे इन्कार करनेका कारण यह था कि उसे दाराके हाथों छलद्वारा बादशाहके मारे जानेका भय था। वह दरवाज़ेपर पहरेदार बनकर बैठा था। अविश्वासी पुत्रकी पितृभक्तिकी कल्पनाने बूढ़े बादशाहको प्रसन्न कर दिया, और औरंगज़ेब फिर सूबेदारीपर नियुक्त किया गया।

दारा और औरंगज़ेबकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण समस्त साम्राज्यमें एक विशेष परिस्थिति पैदा हो गई। प्रतिद्वन्द्विताके असरसे बचनेके लिए शाहजहाँने जिस नीतिका अवलम्बन किया, उसका उन दोनों राजकुमारोंके चरित्रपर भी गहरा असर पड़े बिना न रहा। साम्राज्यके कर्मचारी और बादशाहके समर्थक दो हिस्सोंमें बँट गये। दाराके धार्मिक विचार उदार थे, इस कारण हिन्दू प्रजा उससे प्रेम करती थी। राजपूत सरदार दाराके पक्षपाती बन गये। बादशाहके वज़ीरोंमेंसे जो उदार विचारोंके थे, या जिनकी बादशाहमें व्यक्तिगत गहरी भक्ति थी, वह भी बड़े राजकुमारका ही समर्थन करते थे। दाराकी बादशाहके कानोंतक पहुँच है, यह समझकर जो युवराजद्वारा अपनी कार्यसिद्धि करवाना चाहते थे वह भी उसके स्वार्थी अनुयायी समझे जाते थे। दूसरी ओर ऐसे सब सरदार या उलमा जो अन्धी इस्लामी भावनासे प्रेरित थे, और जिनके सामने मुहम्मद ग़ोरी, अल्लाउद्दीन ख़िल्जी और तैमूरके कारनामे आदर्शोंकी तरह घूम रहे थे, वह दूसरे शाहज़ादेपर आशायें बाँधे हुए थे। जिन लोगोंको दाराकी बढ़ती देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होती थी, वह भी औरंगज़ेबकी ओर झुकते थे। इनके अतिरिक्त सरदारोंका एक जत्था था, जिसे सूबोंमें और युद्धोंमें औरंगज़ेबके नीचे कार्य करनेका अवसर मिला था। औरंगज़ेबकी प्रतिभा, निर्भयता और कार्यकुशलताने उन लोगोंको अपने वशमें कर लिया था। वह उसपर जी जानसे फिदा होनेको तैयार रहते थे।

दोनों राजकुमारोंके चरित्रपर उस परिस्थितिका गहरा असर पड़ा। दारा शिकोह रेशमी गदेलोंमें पैदा हुआ, संगमर्मरके फर्शोंपर खेला, फूलोंकी सेजपर पला, और लक्ष्मीकी गोदमें बड़ा हुआ। वह बादशाहके कृपा-पीयूषमें स्नान करता था, चाटुकारों-की मधुर स्तुतियोंको सुनकर फूलता था, और गद्दीपर बैठकर राज-काजकी देख-भाल करता था। वह कई सूबोंका सूबेदार बनाया गया, परन्तु उसे कहीं जाना नहीं पड़ा। शासनका कार्य कारिन्दे करते थे, दारा तो उन सूबोंकी पुष्कल आयका उपभोग करता था। युद्धके मैदानमें, कड़ी धूप और बर्फ़में, उसे वैतरणी नदीको पार करनेका अवसर नहीं मिला। केवल एक बड़ी मुहीममें, जो कन्दहारकी तीसरी मुहीम कही जाती है, दाराको सेनापति बना-कर भेजा गया था, परन्तु वहाँ उसके साथ इतने सेनापति और वज़ीर थे कि उसे स्वयं कुछ भी नहीं करना पड़ा। युद्धका परि-णाम भी नाकामयाबी हुआ। इस प्रकार न तो प्रबन्धके कार्यमें, और न रणक्षेत्रमें युवराजको क्रियात्मक शिक्षणका अवसर मिला। वह सब शक्तियोंको रखते हुए भी उनके प्रयोगमें न आनेसे आराम-कुर्सीपर बैठनेवाला राजनीतिज्ञ बन गया।

इसके विपरीत औरंगज़ेब यद्यपि रेशमी गदेलोंमें उत्पन्न हुआ, और संगमर्मरके फर्शपर खेला, परन्तु दक्षिणके कण्टकाकीर्ण सूबेके कड़े शासनमें बड़ा हुआ, बल्ख़ और कन्दहारकी कठोर बर्फ़ीली घाटियोंमें घड़ा गया, और बादशाहका सहारा न मिलने-के कारण अपने पाँवपर खड़ा होनेका अभ्यासी बन गया। उसकी प्रतिभा शासनकी गहरी समस्याओंकी आगमें पड़कर उज्ज्वल हो गई, और उसका साहस प्रबल शत्रुके साथ रणक्षेत्रमें भिड़कर प्रचण्ड हो उठा। उसकी शक्तियाँ निरन्तर उपयोगसे परिमार्जित और परिवर्धित हो गईं। औरंगज़ेब १७ वर्षकी आयुमें बुन्देलखण्ड-के युद्धमें प्रधान सेनापति बनाया गया। उसके पीछे वह क्रमशः दक्षिण, गुजरात, मुलतान तथा सिन्ध, और फिर दक्षिणका सूबे-दार नियुक्त हुआ। वह बल्ख़, कन्दहार, और दक्षिणके संग्रामोंमें

प्रधान सेनापतिके पदपर नियुक्त होकर कार्य करता रहा। वह जहाँ भी रहा, अपना स्वामी स्वयं बनकर रहा। जब वह सूबेदार बना, तब असलमें ही सूबेदार बना—केवल लगान-भोगी रईस नहीं। जब वह सेनापतिके पदपर नियुक्त किया गया, तब वह सचमुच ही सेनापति बनकर रहा, केवल मिट्टीका माधो या मुहर लगानेकी मशीन बनकर नहीं। परिणाम यह हुआ कि औरंगजेबकी स्वाभाविक शक्तियाँ परीक्षाके जलसे सींची जाकर निरन्तर बढ़ती और परिपुष्ट होती गईं।

आयुमें दूसरा परन्तु महत्त्वमें तीसरा राजकुमार शुजा था। शुजामें दारा शिकोहके कई गुण थे। वह शरीरमें बलवान्, दूरदर्शी और उदार था। पिताकी आज्ञानुसार उसने बंगालकी सूबेदारीका कार्य लगभग २० वर्ष तक भली प्रकार चलाया। उसके समयमें शस्य-श्यामला बंगभूमि शाही ख़ज़ानेके लिए रत्नसू हो रही थी। प्रान्तमें शान्ति रही। शाहजहाँका उसपर विश्वास था। जब कभी वह दक्षिण प्रान्तकी आमदनी कम होनेके कारण औरंगज़ेबसे असन्तुष्ट होता, तब प्रायः शुजासे उस प्रान्तकी सूबेदारी स्वीकार करनेके सम्बन्धमें पूछा करता था। इतने गुणोंके होते हुए भी उसमें दो कमियाँ थी। प्रथम तो उसका झुकाव मुसलमानोंके शीया पन्थकी ओर अधिक था, जिससे उस कालके अधिकांश मुसलमान असन्तुष्ट थे। उस समय भारतके अधिकतर मुसलमान सुन्नी सम्प्रदायके थे। दूसरी कमी यह थी कि दीर्घकाल तक बंगालके जल-बहुल सूबेमें रहने, और संग्रामकी कठिनाइयोंसे दूर रहनेके कारण उसका शरीर शिथिल हो गया था। ४० वर्षकी आयुमें शुजा बूढ़ा प्रतीत होता था। उसे शराब पीनेकी भी बुरी लत पड़ी हुई थी।

सबमें छोटा और निकम्मा भाई मुराद था। मुराद कई सूबोंमें सूबेदार बनाकर भेजा गया, और बल्ख़के युद्धमें प्रधान सेनापति-पदके लिए भी नियुक्त किया गया; परन्तु किसी स्थानपर भी उसने नामको उज्ज्वल न किया। यह नहीं कि उसमें

कोई गुण था ही नहीं। वह खुली तबीयतका बहादुर नौजवान था। युद्धमें तलवार हाथमें ले शेरकी तरह शत्रुओंपर टूट पड़ना उसका प्रधान गुण था। उस समय शत्रुओंकी अधिक संख्या या अपनी निर्बलता उसे नहीं डरा सकती थी। वह जिधर जा पड़ता था, उधर कँपा देता था, परन्तु यह काम एक सिपाहीका है, सेनापतिका नहीं। वह सिपाही था, सेनापति या शासक नहीं। फिर मद्य-सेवामें तो वह शुजाको भी पीछे छोड़ गया था। नासमझी और शराब दोनों वस्तुएँ मिलकर समय-समयपर मनुष्यको हिंसक जन्तु बना देती हैं। मुराद भी क्रोधके समयमें घोर हिंसक जन्तुके रूपमें परिणत हो जाता था। उसकी आयु यौवनमें प्रवेश कर रही थी, परन्तु बचपनकी यह दशा थी कि जब उसे बल्ख़के जीतनेके लिए सेनापति बनाकर भेजा गया, तो वहाँ पहुँचकर उसका जी उदास हो गया। उसने बादशाहको लिखा कि मेरा यहाँ जी नहीं लगता, इस लिए वापिस लौटनेकी इजाज़त दी जाय। शत्रुका देश, भयानक सर्दी, हजारों सिपाही पड़े हुए—ऐसी दशामें शत्रुके सामने सेनापतिका जी उदास हो जाय, और वह घर वापिस आना चाहे, तो उसे कौन ऐसी आज्ञा देगा? बादशाहने आज्ञा न दी। मुराद अपने बाल-हठपर जमा रहा। परिणाम यह हुआ कि प्रधान वज़ीर सादुल्लाख़ाँको बल्ख़ जाना पड़ा, जहाँ जाकर उसने राजकुमारको समझा-बुझाकर सेनाके साथ रखनेकी चेष्टा की, परन्तु मुरादकी समझमें कोई बात न आई। अन्तको लाचार होकर सादुल्लाख़ाँने राजकुमारको सेनापति पदसे अलग कर दिया। कुछ समयतक मुरादका दरबारमें प्रवेश न हुआ।

यह चार भाई थे। इनकी दो बहिनें थीं। एक जहानारा, और दूसरी रोशनारा। यह दोनों बहिनें एक दूसरेका जवाब थीं—एक तरहसे दारा शिकोह और औरंगज़ेब थीं। जहानाराका दूसरा नाम पादशाह बेग़म था। जहानाराको भूमिपर स्वर्गकी अप्सरा कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह रूपमें सुन्दर, प्रतिभामें उज्ज्वल और स्वभावमें देवी थी। उसकी सुन्दरताकी ख्याति देश-विदेशमें फैली

हुई थी, बड़े बड़े कवि और विद्वान् उसकी सेवामें आश्रय पाते थे, और वह स्वयं कविता करती थी। स्वभावमें तो उसे अमृतमयी कहना चाहिए। शान्ति और धीरताका एक नमूना थी। घरमें जब कभी द्वेषाग्नि प्रज्वलित होती तब जहानारा ही जलवृष्टिका कार्य करती। अगर पिता और पुत्र लड़ पड़े हैं, तो जहानारा मध्यस्थ बनती। यदि दारा और औरंगज़ेबका झगड़ा है, तो बहिन उनमें जज बनाई जाती। घरकी सीमाओंसे वाहिर भी उसकी उदारता और स्नेहका प्रभाव दिखाई देता था। अनगिनत विधवाओं और अनाथोंको उससे सहारा मिला था। किम्बहुना, वह अशान्त राज-परिवारमें एक शान्तिका स्रोत थी।

शाहजहाँके लिए तो वह स्नेहमयी माता थी, घरकी स्वामिनी थी, और प्रेममयी बेटी थी। शेष सब सन्तानकी अपेक्षा वह जहानारासे अधिक प्रेम करता था, और वह इस योग्य थी भी। माताके मरनेपर जहानाराने अपने वृद्ध पिताकी गिरस्तीको सँभाला। जब पुत्रोंके परस्पर द्वेषके कारण शाहजहाँका हृदय दुःखी रहने लगा, तब उसीने पिताके घावपर मरहम लगानेका कार्य किया। फिर जब बूढ़ा पिता विजयी पुत्र औरंगज़ेबका कैदी बना, तब उस टूटी हुई कमरकी लठिया अगर कोई थी तो जहानारा थी। यद्यपि उसका विशेष प्रेम दारा शिकोहसे था, तो भी वह सदा औरंगज़ेबको पिताके क्रोधसे बचानेका यत्न करती, शाहजहाँके क्रोधित हृदयपर ठण्डा जल छिड़कती रहती।

वह भारतके शाहन्शाहकी लड़की थी। रत्नोंके ढेर उसके चरणोंमें लोट रहे थे। वह चाहती तो कितनी ही अमीरी करती, परन्तु उस लक्ष्मी और संभोगके भवनमें रहकर भी यदि जहानाराका नाम किसी गुणके लिए देशमें विख्यात था तो वह उसकी सादगी थी। उसकी सम्पत्ति दानके लिए, और ऐश्वर्यका अधिकार त्याग करनेके लिए था। जीवनमें वह एक फकीर बन कर रही, और मरते हुए भी अपना ऐसा स्मारक छोड़ गई, जिसकी अपेक्षा प्रभावशाली और हृदयद्रावक स्मारक कहीं मिलना कठिन है।

दिल्लीमें जाओ, और कन्दहारसे दक्षिण भारत तकके शाहन्शाह शाहजहाँकी उस लड़कीका मज़ार देखो। जहाँ छोटे छोटे वज़ीरोंके मकबरे अभिमानसे आकाशमें सिर उठाये खड़े हैं, वहाँ उस साध्वीके मज़ारपर घास खड़ी है, और उस घासके बीचमें निम्नलिखित शेर लिखा हुआ है, जो मरनेसे पूर्व स्वयं जहानारा बनाकर रख गई थी—

वग़ैर सब्जे न पोशद कसे मज़ार मेरा
कि सब्ज पोश ग़रीबान हमे गयाह बस अस्त।

हमारे मज़ारपर हरे घासके सिवा कोई ढकना न होना चाहिये, क्योंकि ग़रीबोंके लिए घासका आच्छादन ही सर्वोत्तम है।

शाहजहाँकी दूसरी लड़कीका नाम रोशनारा था। रोशनारा स्वभावसे और वृत्तिसे औरंगज़ेबकी ओर झुकती थी। वह हृदयकी अनुदार और चालबाज़ थी। पिताका जहानारासे जो प्रेम था, उससे वह जलती थी। घरकी और दरबारकी गुप्त खबरें औरंगजेब तक उसीके द्वारा पहुँचती रहती थीं। उससे जहाँतक बन पड़ता था, दारा और औरंगज़ेबकी कलहाग्निमें घृतकी आहुतियाँ डालती रहती।

यह थी शाहजहाँकी सन्तान। मानना पड़ेगा कि शाहजहाँ शेरोंका पिता था। सब अपने अपने रँगमें रँगे हुए थे। गुणहीन कोई भी न था। दाराकी उदार महानुभावता, औरंगज़ेबकी अदमनीय वीरता, शुजाकी मधुर दूरदर्शिता, और मुरादकी प्रचण्ड निर्भयतासे अगर कोई व्यक्ति कार्य ले सकता, तो वह संसारके इतिहासमें सफलताके अनूठे अध्याय लिख जाता। फिर शाहजहाँके पास तो योग्य वज़ीरोंका भी अभाव नहीं था। परन्तु ललाटकी रेखाको कौन मेट सकता है? शेरोंका पिता संसारके इतिहासमें सफलताके अध्याय लिखनेके स्थानपर जो दुःख, दया और यातनासे भरा हुआ अध्याय लिख गया है, उसकी समानता मिलनी कठिन है।

१६—घोर निष्फलता और उसके कारण

यह विश्वास किया जाता है कि भारतकी आर्य सभ्यताके अत्युन्नत प्रासादको पहला बड़ा धक्का महा-भारतके संग्रामसे लगा। प्रासाद उस भयंकर युद्धके कारण एकदम नहीं गिरा। सदियों तक उसके गगनभेदी शिखर संसारको चकित करते रहे, परन्तु प्रासादकी दीवालें हिल चुकी थीं। जरा-जरासी चोटसे वह डोल जाती थीं। निर्वलता प्रतिदिन वढ़ती गई, यहाँ-तक कि जब उत्तर दिशासे इस्लामकी प्रवल झञ्झावात आई, तव वह हिमालयकी शिखाओंको चुनौती देनेवाला प्रासाद धड़ाकेके साथ भूमिपर गिर गया। जिसे यूनानियों, पारसियों, सीथियनों और हूणोंके आक्रमण गिरानेमें समर्थ न हुए, वह वोदा हो जाने-पर इस्लामकी मारको न सह सका—जिसे विश्वविजेता सिकन्दर न हिला सका, उसे ग़ौरी और ग़ज़नवीने चकनाचूर कर दिया। आखिरी वार किसीका हो, परन्तु नाशका असली कारण वही कहा जायगा, जिसने भवनकी दीवारोंकी जड़को हिलाकर निर्वल कर दिया हो।

इस पुस्तकका लक्ष्य मुग़ल-साम्राज्यके विनाशके इतिहासकी कहानी सुनाना है। यह न किसी राजा या राजवंशकी जन्म-पत्री है, और न घटनाओंका विस्तृत विवरण है। इस पुस्तकका उद्देश्य उन कारणोंका अन्वेषण, और उन घटनाओंका विश्लेषण करना है, जिनके कारण मुग़ल-साम्राज्यका नाश हुआ। साथ ही इस पुस्तकका उद्देश्य यह भी है कि लेखक जिस अनुशीलनसे साम्राज्य-नाशके कारणोंको जाननेमें समर्थ हुआ है, उनका भी उल्लेख किया जाय। न यह केवल फिलासफी है और न केवल कहानी है। यदि इसे कुछ कहना ही है, तो हम कहानीकी फिला-सफी या फिलासफीभरी कहानी कह सकते हैं।

अब तक १५ परिच्छेदोंमें जो कहानी सुनाई गई वह एक प्रका-रसे हमारे प्रस्तुत विषयकी भूमिका थी। उन परिच्छेदोंमें हमने

अकबरके समयसे लेकर शाहजहाँके समय तकका मुग़ल-साम्राज्यके विस्तार और मानवृद्धिका इतिहास लिखा। अब हम जिस समयमें प्रवेश कर रहे हैं, उसमें उस विस्तृत और सम्मानित साम्राज्यके क्रमशः क्षयका इतिहास प्रारम्भ होता है। इसी इतिहासका गवेषण और वर्णन इस पुस्तकका लक्ष्य है।

इस समयका प्रारम्भ मुग़लोंके महाभारतके साथ होता है। महाभारतकी निम्न लिखित विशेषतायें हैं—

भाईका भाईसे युद्ध हो। दोनोंको सहायता देनेके लिए देश-देशान्तरके योद्धा एकत्र हों। हजारोंके वारे न्यारे हों। साम्राज्यके बड़े बड़े स्तम्भ खेत रहें। विजेताको राजसिंहासन तक पहुँचनेके लिए अपने पिताओं, गुरुओं, भाइयों और पुत्रोंके रुधिरकी नदी पार करनी पड़े। एक दूसरेपर कोई दया न दिखाई जाय। युद्धमें धर्म और अधर्मका ध्यान न रखा जाय। दोनों ओरसे 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव' (लड़ाईके बिना मैं दूसरेको भूमिका उतना टुकड़ा भी न दूँगा, जो सूईके अग्रभागसे मापा जा सके) इस प्रतिज्ञाका पालन किया जाय। अन्तमें अविश्वास और नाशका राज्य हो। इसका नाम महाभारत है।

मुग़ल-साम्राज्यका आरम्भ १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें हुआ और अन्त १८ वीं शताब्दीके मध्यमें हुआ। लगभग २५० वर्ष तक मुग़ल-वंशके बादशाह भारतकी गद्दीपर बैठते रहे। इन २५० वर्षोंमेंसे लगभग १५० वर्ष साम्राज्यके उदय और समृद्धिके हैं, और लगभग १०० वर्ष क्षय और अधःपातके हैं। उदय और अस्तके बीचमें मध्याह्नका स्थान है। शाहजहाँके शासनका पूर्वार्ध मुग़ल-वंशका मध्याह्न काल था। उसके पीछे सूर्य अस्ताचलकी ओर रवाना हुआ। वह घटना जिसने साम्राज्यकी उन्नतिकी ओर गतिको अवनतिमें परिणत किया, उसका नाम हमने मुग़लोंका महाभारत रखा है।

इस महाभारतमें भी भाई भाईका संग्राम हुआ। देशभरकी युद्धशक्ति एक स्थानपर एकत्र हुई। हजारों वीर मारे गये।

करोड़ों रुपया बरबाद हुआ। जिसे अन्तमें सफलता मिली, उसका हाथ बुजुर्गों, भाइयों और भतीजोंके निरपराध लहूसे सना हुआ था। देशपर मुर्दनी सी छा गई थी। देखनेमें साम्राज्यक-शरीर था, परन्तु उसकी आत्मा निकल चुकी थी।

उस महाभारतकी कहानीका मुग़ल-साम्राज्यके नाशमें बहुत आवश्यक भाग है। एक प्रकारसे वह साम्राज्यके भाग्य-परिवर्तनकी कहानी है। परन्तु उसे आरम्भ करनेसे पूर्व हमें कुछ थोड़ी-सी ऐसी घटनाओंकी ओर भी निर्देश करना है, जो भारतके इतिहासमें विशेष महत्त्व न रखती हुई भी, उस परिस्थितिको अवश्य स्पष्ट कर सकती हैं, जो शाहजहाँकी शिथिलताके कारण पैदा हो गई थी।

हम ऊपर बतला आये हैं कि दक्षिणकी रियासतोंका उस समयके लिए सन्तोषजनक निपटारा कर देनेके पश्चात् शाहजहाँने अपनी शक्तिको टुकड़ोंमें बाँटकर पुत्रोंके कन्धोंपर डाल दिया था। साम्राज्यका केन्द्रिक शासन दारा शिकोहके सुपुर्द कर दिया गया था। बंगालकी सूबेदारीपर शुजाको नियुक्त किया गया था। दक्षिणकी कठोर समस्या औरंगज़ेबके हिस्से आई थी, और मुरादको कई जगह लगाकर परखा जा रहा था कि वह किस स्थानको पूर्ण करनेके योग्य है। बात यह थी कि शाहजहाँ अब अपने लगाये हुए पुष्पोद्यानमें भ्रमण करना चाहता था, अपने बनाये हुए स्वर्गमें विलास करनेकी इच्छा रखता था, अपनी एकत्र की हुई लक्ष्मीके उपभोगका अभिलाषी था। इस कारण शासन और युद्धकी उत्तरदायिता पुत्रोंपर डालना उसे उचित प्रतीत हुआ। इस निश्चयका एक यह भी कारण हो सकता है कि वह पुत्रोंको परस्पर झगड़नेसे रोकनेका यही उपयोगी उपाय समझता था कि सबको एक दूसरेसे अलग रखकर किसी न किसी कठिन कार्यमें लगाया जाय, ताकि उनकी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण होती रहे। शाहजहाँके राज्य-कालका शेष इतिहास उसके पुत्रोंकी सफलता या निष्फलताका इतिहास है। शाहजहाँने जिस नीतिका

अपने सुख, और पुत्रोंकी सन्तुष्टिके लिए उपयोग किया, उसका परिणाम उसके और साम्राज्यके लिए भला हुआ या बुरा, यह अगले पृष्ठ स्वयं बतला देंगे। उसने मुग़ल बादशाहोंकी इस पुरानी धारणाको कि सल्तनतका अन्तिम उद्देश्य उपभोग है, कार्यमें परिणत किया, और जो नतीजा पहले निकला था, वही अब भी निकला।

इस समयका पहला युद्ध बल्ख़ और बदख़्शानके सदूरवर्ती प्रान्तमें हुआ। यह प्रान्त काबुलके उत्तरमें हिन्दूकुश पर्वत और औक्सस (Oxus) नदीके मध्यमें फैला हुआ है। इस प्रान्तका भारतके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था और न यह मुग़ल बादशाहोंकी पुरानी सम्पत्ति थी, परन्तु जिनके पास शक्ति है, उनकी महत्त्वाकाक्षा ऐसी सीमाओंसे कहाँ रुकती है? वहाँके शासकोंमें परस्पर झगड़ा हुआ। शाहजहाँके मुँहमें पानी भर आया, और उस प्रान्तको साम्राज्यके लिए जीतनेके निमित्त अलीमर्दानख़ाँ नामके प्रभावशाली वज़ीर और योद्धाको हिन्दुस्तानी रुपया और हिन्दुस्तानी सिपाहियोंके साथ भेजा गया। अलीमर्दानख़ाँको पूरी सफलता न हुई, तो राजा जगतसिंहको १४ सहस्र राजपूतोंके साथ बल्ख़के विजयके लिए रवाना किया गया। जब इन पराये काजमें लहू बहानेवाले सूरमोंसे भी काम न चला, तो शाहजहाँने राजकुमार मुरादको अलीमर्दानख़ाँकी देख-रेखमें युद्धक्षेत्रकी ओर प्रेषित किया, और स्वयं शाहजहाँ बहुतसी सेनाओं और धन-कोषके साथ काबुलमें डेरा डालकर बैठ गया। इस बार उद्योग सफल हुआ, और मुग़ल-सेनाओंने बल्ख़पर कब्ज़ा कर लिया। शाहजहाँ विजयसे प्रसन्न होकर दिल्लीको वापिस लौट गया।

परन्तु इतना धन और जनका व्यय करके जो प्रान्त जीता गया, वह देर तक हाथमें न रखा जा सका। राजकुमार मुरादका उस सुदूरवर्ती शिशिर उजाड़ प्रान्तमें जी न लगा। उसने स्नेही पितासे प्रार्थना की कि उसे बल्ख़के उजाड़को छोड़कर हिन्दुस्तानकी आबादीमें वापिस आनेकी इजाज़त दी जाय। इजाज़त तो न मिली, परन्तु अधिक आग्रह करनेपर मुरादको सेनापतिके पदसे च्युत

कर दिया गया। उसके स्थानपर अगले वर्ष शाहज़ादा औरंगज़ेबको प्रधान सेनापतिका अधिकार देकर फिर बल्ख़के विजयके लिए भेजा गया। इस बार क्या सेनाकी दृष्टिसे, और क्या युद्ध-सामग्रीकी दृष्टिसे गतवर्षकी अपेक्षा कहीं अधिक तैयारी की गई थी; परन्तु काबुलमें बादशाहके स्वयं उपस्थित रहते भी स्थानकी कठोरता और प्रबन्धकी शिथिलताका यह परिणाम हुआ कि जहाँ मुरादने ५० सहस्र सिपाहियोंके साथ संग्राम-भूमिमें प्रवेश किया था, वहाँ औरंगज़ेब २५ हज़ारसे अधिक सिपाहियोंको युद्धके समय कार्यमें न ला सका। उज़्बक लोग, जिनसे मुग़लोंका युद्ध था, मराठोंकी नीतिसे युद्ध करते थे। बढ़ते हुए शत्रुका रास्ता छोड़ देते थे, दायें-बायें और पीछेसे वार करते थे, रसदकी सामग्री लूट लेते और रास्ते रोक देते, और जब मुग़ल नींदमें होते, तब छापा मारते थे। मुग़लोंकी ओरसे सिपाही और पैसे पानीकी तरह बहाये गये, औरंगज़ेबने दृढ़ साहस दिखलाकर शत्रुको चकित किया, परन्तु फल कुछ न निकला। अन्तमें मुग़लोंको पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो गया। शीतकाल सिरपर आ रहा था, विजयश्री कोसों दूर तक दिखाई नहीं देती थी, रास्तेमें हिन्दूकुश पर्वतकी हिमाच्छन्न घाटियाँ मानों ग्रास करनेके लिए मुँह बाये खड़ी थीं, अन्तमें हीन सन्धिद्वारा पिण्ड छुड़ाकर मुग़लोंको भागनेके सिवा रक्षाका कोई उपाय न सूझा। बल्ख़को शत्रुके हाथमें सौंपकर औरंगज़ेब और उसके सेनापति थकी हुई और पराजित सेनाको घसीटते हुए काबुलकी ओर भागे। औरंगज़ेब और अलीमर्दान ख़ाँ तो थोड़ेसे सिपाहियोंको लेकर लम्बी मंजिलें करते हुए आसानीसे पार निकल गये, परन्तु मुग़ल-राज्यका वह अभागा सेवक राजा जयसिंह और बहादुर ख़ाँ अपनी अपनी सेनाओंके साथ हिन्दूकुशकी बर्फ़ीली घाटियोंमें फँस गये। उन्हें असहनीय दुःख हुए। आदमी और जानवर बर्फ़की पगडंडियों-परसे फिसलकर खड्डमें गिरते थे, तो उनका कहीं पता न चलता था। थके हुए ऊँट और घोड़े बर्फ़पर बैठ जाते थे, तो फिर उठ-

नेका नाम न लेते थे। समकालीन लेखकोंका कथन है कि, इस वापिसी यात्रामें शाही फौजके कमसे कम ५ सहस्र सिपाही और ५ सहस्र पशु बर्फ़की भेट चढ़े। बल्ख़के युद्धपर शाही ख़जानेसे लगभग ४ करोड़ रुपया व्यय हुआ, बल्ख़के किलेमें ५ लाखका अन्नकोष था, वह शत्रुके हाथ पड़ा, और लगभग ७२ सहस्र रुपया शत्रुपक्षके लोगोंको अपने पक्षमें खरीदनेके लिए खर्च किया। यह ५ करोड़ रुपया किस वस्तुपर कुर्बान हुआ? बादशाहकी इस मनमौजपर कि बल्ख़ मुग़ल-साम्राज्यका एक हिस्सा होना चाहिए। भारतकी इतनी प्रजा और सम्पत्ति एक ताजधारी मनुष्यकी हवस-पर बलि चढ़ गई। बीचमेंसे निकला क्या?—पराजय और अपमान।

परन्तु बल्ख़का पराजय अकेला ही नहीं आया। अगले वर्ष, १६४८ ई० में फारिसके बादशाह शाह अब्बास द्वितीयने कन्द-हारके किलेपर आक्रमण किया। यह किला फारिस और भारतका मिलाप-स्थान होनेके कारण दोनों देशोंके शासकोंमें झगड़ेका बीज बना हुआ था। कभी वह ले जाते थे, और कभी यह। शाह अब्बास द्वितीय एक साहसी और विजयाभिलाषी बादशाह था। उसने कन्दहारपर हमला कर दिया। उस समय किलेका मुग़ल-सेनापति दौलतख़ाँ था। उसने शाहजहाँके पास सहायताके लिए प्रार्थना भेजी; परन्तु सर्दीके दिन थे, बाबरका वंशज दिल्लीके विलास-पूर्ण भवनमें रहकर इतना शिथिल हो गया था कि शीतकालमें काबुलकी यात्रा करना उसे उचित प्रतीत न हुआ। परिणाम यह हुआ कि कन्दहार फारिसनिवासियोंके हाथ आ गया। कहाँ तो मुग़ल-सम्राट् बल्ख़ और बदख़्शानके सपने ले रहे थे, और कहाँ घरपर ही छापा पड़ गया। मुगलोंका यश देश विदेशमें फैला हुआ था। कन्दहारके हाथसे निकल जानेके कारण उसे मानो ग्रह लग गया। जिनकी युद्ध-शक्तिसे अड़ोस-पड़ोसकी शक्तियाँ काँपती थीं, उनके घरमें आकर एक वैदेशी शासक पाँव जमा ले, यह शाहजहाँको कैसे सहन हो सकता था? सर्दी व्यतीत हो जानेपर मुग़ल-साम्राज्यकी सैन्यरूपी मशीन दिल्लीसे चलकर काबुल पहुँची

और काबुलसे कन्दहारकी ओर रवाना की गई। कन्दहारकी ओर जानेवाली सेनाका सेनापतित्व औरंगज़ेबको दिया गया। उसकी सहायताके लिए वज़ीर सादुल्लाख़ाँको नियुक्त किया गया। दोनों सेनापतियोंने ५० हजार सिपाहियोंके साथ युद्ध-भूमिके लिए प्रस्थान किया।

कन्दहारपर १६ मई सन् १६४९ ई० से मुगलोंका प्रत्याक्रमण आरम्भ हुआ। वह पहला प्रत्याक्रमण था। दूसरा प्रत्याक्रमण १६५२ ई० में हुआ। तीसरा प्रत्याक्रमण १६५३ ई० में हुआ। हरेक प्रत्याक्रमणमें कन्दहारको घेरकर फारिसकी सेनाके हाथसे छीननेकी चेष्टा हुई। पहले और दूसरे प्रत्याक्रमणोंमें औरंगज़ेब सेनापति था। दोनों ही प्रत्याक्रमण निष्फल हुए। पहली बार तोपें पर्याप्त नही थीं, दूसरी बार तोपें तो थीं, परन्तु सेनाका दम उखड़ गया। कुछ न कुछ कसर दोनों ही बार रही। औरंगज़ेबने चतुरता भी बहुत दिखलाई, और बहादुरी भी। काबुलमें बैठकर शाहजहाँने धन जन और सम्मतिद्वारा सलाह देनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी, परन्तु परिणाम कुछ भी न निकला। कन्दहार फारिसकी सेनाओंके हाथमें रहा। मुग़लोंको इतने अनादरका सामना करना पड़ा कि शाह अब्बासको एक बार भी अपनी गद्दी छोड़कर कन्दहारकी रक्षाके लिए न आना पड़ा। मुग़लोंकी विशाल सेना, और राजकुमारोंके सन्नाह-का उत्तर शाहके सेनापति ही देते रहे।

औरंगज़ेबकी निष्फलतापर शाहजहाँके दरबारमें खूब फबतियाँ उड़ती थीं। बादशाह स्वयं औरंगज़ेबसे असन्तुष्ट हो गया था। उसने कई कड़ी कड़ी चिट्ठियाँ अपने लड़केको लिखीं, जिनमें निष्फलताकी उत्तरदायिता उसीपर फेंकी गई। दाराके पक्षपाती दरबारी लोग बादशाहकी असन्तोषाग्निको मजाक और तानोंद्वारा भड़कानेमें कोई कसर न छोड़ते थे। दारा भी उस मजाकमें शामिल हो जाता था। परन्तु उसके मान-मर्दनमें भी देर न लगी। तीसरा प्रत्याक्रमण दाराकी ही अध्यक्षतामें हुआ। दारा बादशाहका लाड़ला बेटा था, कन्दहारका लेना अत्यावश्यक हो गया

था, इस कारण तीसरे प्रत्याक्रमणमें सिपाही, खज़ाना, और तोपखाना—तीनों वस्तुओंका अपूर्व समारोह किया गया, परन्तु दाराकी निष्फलता औरंगज़ेबकी निष्फलताकी अपेक्षा कहीं अधिक भद्दी हुई। जहाँ औरंगज़ेबने उन युद्धोंमें विजय प्राप्त न करते हुए भी व्यक्तिगत रूपसे बहादुरी और युद्धकुशलताका सिक्का जमा दिया, और सिद्ध कर दिया कि वह सेना और सेनापतियोंका नियंत्रण और संचालन कर सकता है, वहाँ दाराको हर प्रकारसे निष्फलता प्राप्त हुई। सदा दरबारमें रहनेसे उसे युद्ध-कलाका व्यावहारिक परिज्ञान नहीं हुआ था। हमेशा खुशामदियोंसे घिरा रहनेके कारण उसके स्वभावमें उग्रता और अहम्मन्यता आ गई थी। कठिनाइयोंसे बचे रहनेके कारण, व्यक्तिगत सहिष्णुताके साथ साथ दूसरोंमें जोश पैदा करने और युद्धके लिए उत्तम साधन चुननेकी शक्तिका उसमें विकास नहीं हुआ। दाराकी यह सब निर्बलतायें कन्दहारकी युद्ध-भूमिमें प्रत्यक्ष हो गईं। दाराको भी शर्मसे गर्दन नीची करके हार माननी पड़ी और कन्दहारको शत्रुके कब्जेमें छोड़कर काबुल होते हुए दिल्ली वापिस आना पड़ा।

कन्दहारपर जो तीन प्रत्याक्रमण हुए, उनका भारतकी प्रजापर कितना असह्य बोझ पड़ा, यह इससे विदित हो सकता है कि इन प्रत्याक्रमणोंकी खातिर दिल्लीके खज़ानेसे कमसे कम १० करोड़ रुपया भेजा गया। कुछ दिनोंतक कन्दहारको कब्ज़ेमें लेकर उसके दुर्गको मज़बूत करने और धन-धान्यसे सम्पन्न करनेमें लगभग एक करोड़के व्यय हुआ। इतनी धन राशि देशभरके लगानसे दो वर्षमें वसूल हो सकती थी। मनुष्यों और पशुओंका जो क्षय हुआ, उसका तो ठीक ठीक हिसाब ही नहीं, परन्तु केवल मनुष्योंका क्षय पच्चीस तीस हजारसे कम नहीं हुआ, यह निश्चयसे कहा जा सकता है।

इस व्ययके बदलेमें हिन्दुस्तानको क्या मिला? कुछ नहीं।

क्या मुग़ल-साम्राज्यने इस ख़र्चसे कुछ कमाया? हाँ, साम्राज्यने कमाया संसारमें अपयश और पड़ोसियोंमें गौरवका क्षय। अबतक मुग़ल बादशाहोंका सिक्का जमा हुआ था। समझा जाता था कि उनकी युद्ध-शक्तिको परास्त करना असम्भव है। वह माया कन्दहारके निष्फल प्रत्याक्रमणने तोड़ दी। बल्ख़की निष्फलतासे माथेपर जो कलंकका टीका लगा था, वह अधिक विस्तृत और गहरे रंगका हो गया।

इस पराजयके कारण क्या थे? यदि निष्फलता केवल बल्ख़तक ही परिमित होती, तो शायद युद्ध-स्थलकी दूरता, हिन्दू-कुशपर्वतकी हिमाच्छन्न घाटियाँ, या उल्काकी तरह गिरकर चोट करने और फिर विलुप्त हो जानेवाले उज़्बक योद्धा दोषी ठहराये जा सकते थे; परन्तु कन्दहार तो उतना दूर नहीं था। वहाँ तो सभ्य फारिसनिवासियोंके साथ संघर्ष था। फिर एक एक नहीं, तीन तीन आक्रमण हुए। बल्ख और कन्दहारके युद्धोंमें शाहजहाँके तीन पुत्रोंने सेनापतिकी हैसियतसे कार्य किया। मुराद, औरंगज़ेब, और दाराकी क्रमशः परीक्षा हुई। सब अनुत्तीर्ण हुए। राजपूत, पठान या फारसी—सभी जातियोंके धुरन्धर सेनापति मैदानमें उतरे, और हारकर वापिस गये।

उस समयके नाटकके नटोंने निष्फलताके दोषको एक दूसरेपर डालनेका यत्न किया था। शाहजहाँका कहना था कि औरंगज़ेब हेकड़ी तो बहुत रखता है, परन्तु सेनापति अच्छा नहीं है। औरंगज़ेबकी शिकायत थी कि उसे कभी स्वतन्त्रतासे सेना-संचालनका अधिकार नहीं दिया गया। प्रथम तो स्वयं शाहजहाँ काबुलसे बैठकर युद्धका संचालन करता था। अगर तोपको एक स्थानसे उठाकर दूसरी जगह ले जाना होता था, तो बादशाहसे आज्ञा माँगनी पड़ती थी, जिसमें कभी कभी २० या २५ दिन लग जाते थे। हरेक प्रश्नका अन्तिम निर्णय बादशाह स्वयं करता था। दूसरे हमेशा औरंगज़ेबकी गतिको रोकनेके लिए एक वज़ीर साथ नत्थी किया जाता था। बादशाह, वज़ीर, और शाहज़ादा, युद्धका

नियन्त्रण तीनोंमें बँटा हुआ था। युद्ध कोई दावत नहीं है कि बाँट-कर खाई जा सके। युद्ध-क्षेत्रमें तो एककी आज्ञा अन्तिम होनी चाहिए।

बादशाह, वज़ीर, और युवराज मिलकर युद्धका संचालन करते थे, और फिर भी शिकायत यह थी कि अगर सिपाही पहुँच गये हैं, तो तोपें नहीं पहुँचीं, और तोपें पहुँचीं हैं, तो ऐसे अवघड़ तोपची भेजे गये हैं कि तोपको ही निकम्मा कर दिया है। कन्दहारके घेरेके लिए ८ बड़ी तोपें भेजी गई थीं, जिनमेंसे ३ अधिक बारूद डालकर चलानेसे फट गईं; इस कारण केवल ५ तोपें काममें लाई जा सकीं।

निष्फलताके कारण व्यक्तिगत नहीं थे, वह सामान्य और काफ़ी थे। यह निष्फलतायें किसी एक सेनापति या शाहज़ादेकी निष्फलतायें नहीं थीं, यह साम्राज्यकी निष्फलतायें थीं, यह एक सल्तनतकी निष्फलतायें थीं। वह सामान्य कारण, जिन्होंने मुग़ल-साम्राज्यको इस तिरस्कारका मुँह दिखाया निम्नलिखित थे—

(१) मुग़ल-साम्राज्य न प्रजाका प्रजापर राज्य था, और न सरदारोंका सामान्य लोगोंपर राज्य—वह एक मुग़ल सम्राट्का सल्तनतपर शासन था। एक ही इच्छा थी, जो समस्त कलको चलाती थी। ऐसा राज्य दो ही अवस्थाओंमें शान्ति और सफलताके साथ चल सकता है। या तो वह राज्य इतना परिमित हो कि उसे आसानीसे सँभाला जा सके, और या सँभालनेवाला हाथ इतना ज़बर्दस्त, और उसको चलानेवाला दिमाग़ इतना विशाल हो कि किसी पुर्ज़ेको कभी बेकाबू न होने दे। मुग़ल-साम्राज्यमें दोनों ही वस्तुओंका अभाव हो गया था। साम्राज्यका आकार बेतरह बढ़ गया था, और बढ़ रहा था, और बादशाह कुछ आयु, और कुछ भोग-विलासके कारण शिथिल हो रहा था। ऐसे समयमें क्षयसे बचनेके दो ही उपाय थे। या तो शासनकी प्रणाली बदल जाती, और एकसत्तात्म राज्य न रहता, और या कोई ऐसा राजा बनाया जाता, जो न कभी बूढ़ा होता, और न कभी आराम करता।

शासन-प्रणालीके बदलनेका समय अभी बहुत दूर था, ऐसा मनुष्य मिलना कठिन था जो न कभी बूढ़ा हो और न कभी भूल करे। इधर साम्राज्यका शरीर बेतरह मोटा हो रहा था, ऐसी दशामें आवश्यक परिणाम यही हो सकता था कि साम्राज्यकी बागडोर शिथिल हो जाय। अकबरके पीछेसे शासन बराबर शिथिल हो रहा था। शाहजहाँने कुदरतके क्रमको जवानीमें रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु उसे सफलता न हुई। शासन करनेवाले हाथके बूढ़ा होते ही प्रकृतिने अपना क्रम जारी कर दिया।

(२) सम्भव है कि एक बादशाह अपने वज़ीरों और सेनापतियोंद्वारा बढ़ते हुए राज्यको सँभालनेमें सफल-यत्न हो जाय, परन्तु मुग़ल-राज्यकी जो स्थायी समस्या थी, उसका इलाज किसीके पास नहीं था। यह रोग हिकमतकी शक्तिसे बाहिर हो गया था। वह रोग था, राजकुमारोंकी महत्त्वाकांक्षाको रोकना। भारतमें मुसलमान-राज्यके आरम्भसे ही यह प्रथा चली आती थी कि बादशाहका बड़ा या छोटा बेटा ही नहीं, प्रत्युत वज़ीर और गुलाम भी यह समझता था कि वह बलसे या छलसे, जैसे भी हो दूसरे उम्मेदवारोंको मारकर गद्दीपर बैठ सकता है। कोई रूढ़ि नहीं थी, और न नियम था। राजपुत्र तो जन्मते ही समझ लेते थे कि राज्यका अधिकार हमारा है, उनका पिता जितने दिन गद्दीपर बैठता था, उसे भी वह अपने अधिकारोंकी हत्या समझते थे। यह पुराना रोग शाहजहाँके समय अधिक भयंकर हो उठा था, क्योंकि चारों पुत्र जवान हो चुके थे। दाराकी आयु ४० के लगभग थी, शुजा उससे दो वर्ष छोटा था, औरंगज़ेब उससे दो वर्ष छोटा था, और मुराद भी पूर्ण युवा हो चुका था। सभीको किसी न किसी प्रान्तकी हुकूमतका मज़ा आ चुका था। सभी राजगद्दीके लिये उत्सुक हो रहे थे, इस कारण बापपर बेटोंका अविश्वास था, और बेटोंपर बापका भरोसा नहीं था। दोनों एक दूसरेके कार्योंको आशंकाकी दृष्टिसे देखते थे। जहाँ परस्पर विश्वास न हो, वहाँ संग्राम नहीं जीते जा सकते।

(३) निष्फलताका तीसरा कारण यह था कि बादशाह और राजपुत्रोंके अनुकरणमें सरदार, और उनके अनुकरणमें सिपाही-इस प्रकार शासक-जातिकी परम्परा विषय और आमोदको अधिकारका आवश्यक अंग समझकर अपनी आरम्भिक शक्तिको खो चुकी थी। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं कि जजिया करके न होनेपर भी वह राज्य मुसलमानोंका हिन्दुओंपर राज्य था। जो मुसलमान बाबरके हिन्दूकुशकी घाटियाँ उतरकर आये थे, वह कठोर और परिश्रमी थे। भारतके धनधान्यपूर्ण प्रदेशमें आमोद और प्रमोदकी बहुतायतमें रहकर उनकी वह शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थीं। अब वह फारिसके कठोर सिपाहियोंके साथ लड़नेकी योग्यता नहीं रखते थे। शाह अब्बासका यह व्यंग्य उचित ही था कि 'मुग़ल-सम्राट् सोनेके लोभसे किसी किलेदारको जीत सकते हैं, परन्तु शस्त्रोंसे किसी किलेको नहीं जीत सकते।' विलासी जीवनने कठोर सिपाहियोंको आमोदप्रिय दरबारी बना दिया था।

निष्फलताके यह सामान्य कारण थे। पहले राज्योंमें जो दोष बीजरूपमें थे, वह अब धीरे धीरे बढ़कर वृक्षका रूप धारण कर रहे थे।

१७—मुग़लोंका महाभारत

१—उद्योग-पर्व

१६५७ ई० के मार्च मासकी ७ वीं तारीख़के दिन शाहजहाँके राज्यकालका ३१ वाँ वर्ष आरम्भ होता था। वह शुभ दिन बड़ी धूमधामसे मनाया गया। बादशाह उस समय फैज़ाबादमें था। राजवंशके लोग और मुख्य मुख्य सरदार बादशाहकी सेवामें प्रसन्नतासूचक भेंट ले-लेकर उपस्थित हुए। बादशाहकी ओरसे उन्हें खिलतें और पारितोषिक दिये गये। सबसे अधिक पारितोषिक दारा शिकोह और उसके बेटोंको मिला। देश भरमें शान्तिका

राज्य था। शत्रु डर रहे थे, और मित्र निश्चिन्त थे। सुखी और समृद्ध प्रजा शाहजहाँके गुणोंका गान कर रही थी। भूतलके ऊपर दृष्टि दौड़ानेसे मुग़ल-साम्राज्य सन्तोषका घर प्रतीत होता था।

१६५७ ई० के सितम्बर मासकी ६ ठी तारीखके दिन शाहजहाँ कब्ज़ और मूत्ररोगसे पीड़ित हुआ। यद्यपि वह वर्षोंमें बहुत बड़ा नहीं था, तो भी शराब और युद्ध-भूमिके गर्म और काश्मीर और भोग-विलासके सर्द झोकोंने उसके शरीरको शिथिल कर दिया था। शिथिल शरीर रोगके आवेगको सहनेमें समर्थ न हुआ। शाहजहाँ चारपाईपर पड़ गया। हकीमोंके बड़े बड़े नुसखे बेकार सिद्ध हुए। कुछ ही दिनोंमें निचला धड़ सूजने लगा, जीभ सूख गई, और बीच बीचमें बुखार भी हो जाता था। दैनिक दरबार बन्द हो गया, कई दिनों तक बादशाह प्रजाको अपना चेहरा न दिखा सका, और रोगीगृहमें दारा और उसके थोड़ेसे विश्वास-पात्र सलाहकारोंके सिवा कोई अन्दर न जाने पाता था। बादशाहकी बीमारीका समाचार देशभरमें हवाके साथ फैल गया।

कुछ दिनों पीछे शाहजहाँकी तबीयत कुछ अच्छी हुई। दवा बन्द हो गई, और वह इस योग्य हो गया कि उसने खिड़कीमेंसे प्रजाको दर्शन भी दे दिये। राजधानीमें बादशाहके नीरोग होनेपर खूब प्रसन्नता मनाई गई, बादशाहने भी जी खोलकर इनाम बाँटे। सबसे बड़ा इनाम दारा शिकोहको मिला। शाहजहाँने अपने सब सरदारोंको एकत्र किया। भरे दरबारमें दारा शिकोहको डेढ़ लाख रुपया नकद और ३४ लाखके जवाहिरात उस सेवाके पारितोषिक रूपमें दिये गये, जो उसने रोगकी दशामें पिताकी की थी। दाराको साठ हज़ारीका असाधारण ओहदा दिया गया। उसके बड़े लड़केको भी पुष्कल पारितोषिक दिये गये। इन सब पारितोषिकोंके अतिरिक्त सबसे बड़ा पारितोषिक यह था कि शाहजहाँने स्पष्ट शब्दोंमें दाराको अपना उत्तराधिकारी बनाकर गद्दी-

का स्वामी बना दिया। दाराका राज्यारोहण निश्चित हो गया। वह पिताके जीते जी दिल्लीका बादशाह बन गया।

परन्तु यह सौभाग्य-चन्द्रमा निष्कलंक नहीं था। उसका अधिकाररूपी जहाज सुरक्षित नहीं था। प्रान्तोंमें वह तूफान इकट्ठे हो रहे थे, जिनसे उसके जहाजको लड़ना पड़ेगा। सामने वह चट्टानें खड़ी थीं, जिनपर उसका जहाज चकनाचूर हो जायगा। शाहजहाँकी बीमारीका समाचार चारों ओर फैल चुका था। यह भी अफवाह थी कि रोग घातक है, यदि इससे बादशाह कुछ समयके लिए बच भी निकला तो वह कुछ दिनोंका ही मेहमान है। शुजा, औरंगज़ेब और मुराद सभीके दूत दरबारमें विद्यमान थे। वह दरबारकी और शाहजहाँके रोगकी दैनिक खबरें राजपुत्रोंको भेजते रहते थे। औरंगज़ेबकी गुप्त दूती तो उसकी बहन रोशनारा थी। भाइयोंको जो समाचार मिलते थे, उनका आशय यह था कि बादशाहकी मृत्यु समीप है। दाराको राजगद्दीका अधिकारी बना दिया गया है। शाहजहाँकी तो केवल मुहर है, राज्यका संचालन दारा ही कर रहा है। खज़ाना भी उसीके हाथोंमें है। कोई आश्चर्य नहीं कि दो चार दिनमें शाहजहाँ मर जाय, फिर तो दारा बना बनाया बादशाह है। यह समाचार थे, जो राजपुत्रोंको प्राप्त हो रहे थे। दाराने महल और दरबारके समाचारोंको बाहिर निकलनेसे रोकनेकी चेष्टा की, बाहिर जानेवाले दूतोंतकको नजरबन्द कर दिया, परन्तु इसका असर उल्टा ही हुआ। अविश्वासकी मात्रा और अधिक बढ़ी। सर्व-साधारणका विश्वास हो गया, कि बादशाह असलमें मर चुका है, दारा अपनी स्थितिको मज़बूत करनेके लिए इस सचाईको छुपा रहा है। दाराके भाई जानते थे कि बादशाह मरा नहीं है, परन्तु उन्हें यह माननेमें ही लाभ दिखाई देता था कि सर्व-साधारणका अनुमान सच्चा है—इस कारण उन्होंने भी दरबारकी सच्ची ख़बरोंको छुपाकर यही प्रकट करना उचित समझा कि शायद सम्राट्का देहावसान हो चुका है।

जिस समय भाइयोंके पास यह समाचार पहुँचा, उस समय वह किस परिस्थितिमें थे ?

शुजा बंगालका शासक था। उसे उस प्रान्तमें सूबेदारी करते लगभग १७ वर्ष हो गये थे। उसके समयमें प्रान्तमें शान्ति रही। प्रजा सुखसे रहती थी, और सल्तनतका कोष भरती थी। शुजाके पास धनकी कमी नहीं थी, फौज पर्याप्त थी, और एक धन-धान्य-पूर्ण प्रान्तकी शक्तिका भरोसा था। उसकी आयु उस समय ४० वर्षकी थी। वह दारासे दो वर्ष छोटा था। यदि उसे दुनियाका मज़ा लेनेकी इच्छा थी, तो उसके पूरा करनेका समय आ गया था। दिल्लीकी गद्दी ख़ाली हो रही थी। दारा उम्रमें बड़ा था तो क्या, शुजाको भी गद्दीपर बैठकर ऐश्वर्यका उपभोग करनेका समान अधिकार था। शाहजहाँकी मृत्युकी अफवाहने शुजाके हृदयमें यही भाव उत्पन्न किये।

औरंगज़ेब कन्दहारसे लौटकर दक्षिणका सूबेदार बनाया गया था। वहाँ उसने दो तीन वर्षोंका खूब ही सदुपयोग किया। न तो दाराकी तरह शाहजहाँकी सेवामें रहकर हुकूमतका उपभोग करके ही मनको सन्तुष्ट किया, और न शुजाकी तरह बंगालके मृदु वायुमें शराब पी-पीकर शरीर और मनकी शक्तियोंको क्षीण किया। उसने यह वर्ष राज्यकी सीमाओंको विस्तृत करने, योग्य सहायकोंके संग्रह करने और दक्षिणके कोषको लूट या जुर्मानेकी धनराशिद्वारा भरनेमें व्यय किये। औरंगज़ेबका साम्राज्य-विस्तारके लिए पहला उद्योग गोलकुण्डा रियासतकी ओर हुआ। गोलकुण्डाकी रियासतके साथ मुग़ल-राज्यका कोई झगड़ा नहीं था, पर रियासतकी राजधानी हैद्राबादकी धन-सम्पत्ति, ओर उसके वशवर्ती कर्णाटक प्रान्तकी कीमती खानोंका प्रलोभन बहुत ज़बर्दस्त था। जिनके पास शक्ति है, वह अधिकार अनाधिकारकी पर्वा नहीं किया करते। उन्हें यदि कमज़ोरपर वार करनेका अवसर न मिले, तो वह इसी बहानेपर वार कर देते हैं कि कमज़ोरकी ओरसे कोई बहानेका अवसर क्यों नहीं दिया

जाता ? औरंगजेब अपने कोषको गोलकुण्डाकी सम्पत्तिसे भरना चाहता था, फिर उसे वहाना ढूँढ़नेमें क्या विलम्ब हो सकता था ! गोलकुण्डाके वादशाहका वज़ीर मीर जुमला नामका एक प्रभावशाली सरदार था। वह पहले हीरोंका सौदागर था, पीछेसे योग्यता द्वारा वज़ीरके पदतक पहुँच गया। उसने अपने मालिकके नामपर कर्णाटकका कुछ भाग जीता था। वहाँकी धनराशिको देखकर मीर जुमलाके मुँहमें पानी आ गया; और उसने यत्न किया कि गोलकुण्डाके शासकसे वह जायदाद अपने लिए ले ले। अब्दुल्ला कुतुबशाह (गोलकुण्डाका शासक) ऐसी भरकम सम्पत्तिको छोड़नेपर राजी न हुआ। यह झगड़ा चल ही रहा था कि मीर जुमलाके उद्दंड पुत्र मुहम्मद अमीनने अपने वादशाहको नाराज कर दिया। वह शरावके नशेमें इतना चूर हुआ कि अपने मालिकके गलीचेपर जाकर वेहोश हो गया, और उसे ग़लीज़ कर दिया। अब्दुल्लाने नाराज होकर मुहम्मद अमीन और उसके परिवारको कैदमें डाल दिया।

यह गोलकुण्डाका घरू मामला था, परन्तु औरंगज़ेवने इसीको झगड़ा पैदा करनेका वहाना वनाया। मीर जुमलाने अपने वादशाहके विरुद्ध मुग़लोंकी शरण माँगी, औरंगज़ेवके जोर देनेपर शाहजहाँने मीर जुमलाको अपनी नौकरीमें लेकर गोलकुण्डाके शासकको धमकीभरा पत्र लिखा कि या तो मीर जुमलाके परिवारको छोड़ दो अन्यथा तुम्हारे राज्यपर हमला किया जायगा, और पूर्व इसके कि वहाँसे कोई उत्तर आता, औरंगज़ेवने हैद्रावादपर हमला कर दिया। अब्दुल्लापर अचानक ही आपत्ति आ गई। उस बेचारेको इतना ही समय मिला कि वह अपने परिवारको लेकर गोलकुण्डा नामके पहाड़ी किलेमें वन्द हो जाता। हैद्रावादको मुग़ल-सेनाओंने खूब लूटा और खूब जलाया। अब्दुल्लाको हार माननी पड़ी, और यदि औरंगज़ेवकी बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षा और शक्तिसे डरकर दारा शाहजहाँको गोलकुण्डाकी रक्षाके लिए तैयार न करता, तो शायद गोलकुण्डाके शासककी प्राण-

रक्षा भी कठिन थी। शाहजहाँके निश्चित हुक्म आनेपर तदनुसार औरंगज़ेबने गोलकुण्डासे हर्जाना और आगेके लिए अधीन रहनेका वादा लेकर छोड़ दिया।

इस प्रकार गोलकुण्डाकी ओरसे प्रतिहत होकर औरंगज़ेबकी महत्त्वाकांक्षाने दूसरा रास्ता तलाश किया। बीजापुरके राजा मुहम्मद आदिलशाहने शाहजहाँकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, और वार्षिक कर देनेका प्रण किया था। वह जबतक जीता रहा, प्रणको पूरा करता रहा, परन्तु दक्षिणके सूबेदार औरंगज़ेबकी दृष्टिमें वह अपराधी था, क्यों कि उसका विशेष परिचय दारा शिकोहसे था। मुहम्मद आदिलशाह मर गया। उसके पीछे उसका १९ वर्षका अली नामका पुत्र गद्दीका अधिकारी हुआ। औरंगज़ेबके मुँहमें पानी आ गया। क्यों न बीजापुरको जीतकर मुग़लसाम्राज्यमें शामिल कर दिया जाय? उसने शाहजहाँको सुझाया कि अली मुहम्मद शाहका जायज बेटा नहीं है, ऐसी दशामें चक्रवर्ती होनेके कारण ख़ाली गद्दीके लिए अधिकारी चुननेका हक मुग़लसम्राट्का ही होना चाहिए। शाहजहाँका ज़रासा इशारा होते ही औरंगज़ेबकी सेनाओंने बीजापुरपर धावा बोल दिया। वह रियासत युद्धके लिए तैयार न थी, क्यों कि युद्धका कोई उचित कारण ही उपस्थित न था। शाही फौजोंने पहले ही झपाटेमें 'बेदर' (Bedar) के किलेपर कब्ज़ा कर लिया, और कल्याणीके किलेका मुहासिरा कर लिया। बीजापुरके शासकने हार मानकर हीन-सन्धि करनेका पैग़ाम भेजा, परन्तु औरंगज़ेबके दिलमें तो रियासतको हड़प जानेका विचार था, इस कारण पैग़ामकी अवहेलना का गई और आक्रमणकी सेनाको और भी अधिक मज़बूत किया गया। दाराके बीचमें पड़नेसे शाहजहाँने औरंगज़ेबको बीजापुरके साथ सुलह करनेके लिए आज्ञा भेजी, इस प्रकार सफलताके द्वारसे पीछे धकेला जाकर औरंगज़ेब यह सोच रहा था कि उसे बादशाहकी आज्ञाका शब्दशः पालन करना चाहिए या

नहीं, कि उसे राजधानीसे बादशाहके सम्बन्धमें चिन्ताजनक समाचार मिलने लगे।

उस समय औरंगज़ेबकी आयु २८ वर्षकी थी। वह शरीरसे हृष्ट पुष्ट, प्रतिभासम्पन्न, पूर्ण युवा होनेके साथ साथ अनुभवी और प्रसिद्ध सेनापति बन चुका था। उसने संघर्षके मैदानमें शिक्षा पाई थी। मद्य या अन्य व्यसनोंसे वह अछूता था। कई कई युद्धोंमें घुटे हुए अनुभवी सेनापति, और उनके सिपाही औरंगज़ेबको अपनी भक्तिका और महत्त्वाकांक्षाका केन्द्र मानते थे। दक्षिणके शासनमें जिन योग्य वज़ीरोंसे काम लिया था, वह उसके लिए जान तक देनेको तैयार थे। इन सबके अतिरिक्त, मीर जुमला, जिसे गोल-कुण्डाकी सेवासे निकालकर शाहजहाँने पहले अपना प्रधान वज़ीर बनाया, और फिर दक्षिणकी लड़ाइयोंमें मदद करनेके लिए भेजा, औरंगज़ेबका उपकृत मित्र और पक्का हिमायती था।

उधर दाराके साथ उसका आग और जलकासा वैर था। शाह-जहाँके पीछे दारा गद्दीपर बैठेगा—यह विचार भी उसे मृत्युके समान प्रतीत होता था। दाराके अधीन जीवित रहना औरंगज़ेबके लिए असम्भव था। वह यह भी जानता था कि यदि शाहजहाँ अब न मरा, और कुछ दिनोंतक लटकता रहा, तो भी उसका नाम और दाराका अधिकार रहेगा।

मुराद गुजरातके सूबेका शासक था। वह उम्रमें सबसे छोटा था। शासन और नियन्त्रणकी योग्यतामें भी सबसे न्यून था; परन्तु दर्प और महत्त्वाकांक्षामें शायद सबसे बढ़ा हुआ था। उसमें व्यक्ति-गत वीरताकी कमी नहीं थी, परन्तु केवल व्यक्तिगत वीरतासे राज्य नहीं जीते जाते, और न साम्राज्य चलाये जाते हैं। उसकी शक्ति-योंको मद्यके व्यसनने जर्जरित कर छोड़ा था, तो भी तीनों भाइयों-मेंसे किसीके अधीन होकर रहनेकी न उसकी इच्छा थी, और न कोई आवश्यकता प्रतीत होती थी। यदि दारा, शुजा, औरंगज़ेब दिल्लीके सिंहासनपर बैठ सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं बैठ सकता?

बादशाहकी घातक बीमारीका समाचार सुनकर मुरादके हृदयमें पहली तरंग इसी प्रकारकी उठी।

एक राजगद्दी और चार उम्मेदवार—महाभारतका सामान बना बनाया था। केवल ढोल पिटनेकी देर थी।

शुजाने पहल की। उसे अपनी सेनापर और प्रान्तपर विश्वास था। उसे यह भी भरोसा था कि सुन्द और उपसुन्दकी तरह दारा और औरंगज़ेब एक दूसरेको या तो समाप्त कर देंगे, या इतने कम-ज़ोर हो जायगे, कि फिर उन्हें समाप्त करना कुछ कठिन न होगा। उसने धूम-धामसे अपने आपको राजगद्दीपर बिठाकर 'बादशाह' उद्घोषित कर दिया, और अपने नामका सिक्का प्रचलित कर दिया। इस प्रकार सिंहासनारोहणकी विधि पूरी करके शुजाने राजधानी-को हस्तगत करनेके लिए सेनासहित बिहारके रास्तेसे उत्तरकी ओर यात्रा आरम्भ कर दी।

मुरादने भी मैदानमें उतरनेमें विलम्ब न किया। शाहजहाँकी बीमारीका समाचार सुनते ही उसने अपने समर्थकोंका संग्रह शुरू कर दिया। नई सेनायें भर्ती होने लगीं, प्रजासे युद्ध-कर इकट्ठा किया जाने लगा। मुरादका वज़ीर अली तक़ी अनुभवी और सच्चा आदमी था। उसके खरे व्योहारने अफसरोंमें उसे अप्रिय बना दिया था। दाराके मस्तिष्कमें जब दिल्लीका सिंहासन घूमने लगा, तब उसे यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं राजभक्त अली तक़ी विद्रोहमें विघ्नकारी न हो। एक षड्यन्त्र रचा गया। अली तक़ीकी ओरसे दाराके नाम एक जाली ख़त बनाकर उस पुराने सेवकको दोषी ठहराया गया, और मुरादने अपने हाथसे उसकी हत्या कर डाली। इस तरह मार्गका कण्टक दूर हो गया, परन्तु पुष्कल धनके बिना लम्बा युद्ध नहीं लड़ा जा सकता। धनके लिए मुरादकी नज़ीर 'सूरत' पर पड़ी। सूरत व्यापारका केन्द्र था। वहाँ देशी और विदेशी व्यापारियोंकी कोठियाँ थीं। सूरतमें सेनाको भेजकर उसने उस स्वर्ण-कोषको खूब लूटा। इस प्रकार हर तरहसे सन्नद्ध होकर मुराद

१६५६ ई० के दिसम्बर मासकी ५वीं तारीखके दिन भारतका 'शाहन्शाह' उद्घोषित हो गया।

औरंगज़ेब भाइयोंकी जल्दबाज़ीपर हँसता होगा। उसने धैर्य और दूरदर्शितासे काम लिया। जब देखा कि अब राजगद्दी बाज़ीपर रख दी गई है, तब उस चतुर नीतिज्ञने गहरी चाल चलनेका संकल्प किया। अपने आपको सिंहासनपर नहीं बिठाया और न अपने नामके सिक्के चलाये। बीजापुरके शासकके साथ सुलह कर ली, गोलकुण्डाके शासकको कुछ आशा दिलाकर सन्तुष्ट कर लिया, और शाहजीके बेटे शिवाजी नामके * मराठा सरदारको मीठी बातोंसे प्रसन्न कर लिया। शाहजीके बेटे शिवाजीका नाम इस समय दक्षिणमें सुनाई देने लगा था। उस छोटीसी जागीरके वारिसने पहाड़ी मावलियों और कुछ आवारागर्द लोगोंको इकट्ठा करके एक छोटीसी फौज बना ली थी, और उस फौजकी सहायता और अपने चमत्कारी साहससे दक्षिणके कई किले जीत लिये थे। शिवाजीका पहला संघर्ष बीजापुरके साथ हुआ, परन्तु जंगलमें लगी हुई आग पूर्व या पश्चिमको नहीं देखती। औरंगज़ेब अपने पत्र-व्यवहारमें शिवाजीको 'कुत्तेका बच्चा' लिखता था। मुसलमान सेनापति उसे 'पहाड़ी चूहा' या 'लुटेरा' कहते थे। उस पहाड़ी चूहेने मुग़ल-साम्राज्यमें भी बिलें खोदनी आरम्भ कर दी थी। औरंगजेब उस '......के बच्चे' की इस धृष्टतासे इतना नाराज हुआ कि उसने अपने सरदारोंको निम्नलिखित हुक्म भेजा—

"मुग़ल सेनापतियोंको चाहिए कि वह लुटेरोंको अपनी हदसे बाहिर खदेड़ दे, और फिर शिवाजीकी जागीरमें घुसकर गाँवको उजाड़ दें, बेदर्दीसे रियायाको कत्ल कर दें, और उनका सब माल लूट लें। पूना और चाकन (शिवाजीकी जागीर) को बिल्कुल तबाह कर दो, और लोगोंको मारने या गुलाम बनानेमें कोई रहम न

* शिवाजी और मराठोंके उत्थानका पूरा ब्योरा इस ग्रन्थके दूसरे भागमें दिया जायगा।

दिखाया जाये। शाही इलाकेके गाँवके वह नम्बरदार या किसान जिन्होंने शिवाजीको किसी तरहकी मदद दी हो बिना किसी ननु नचके कत्ल कर दिये जायँ।"—औरंगज़ेबका इतिहास। प्रो० जदुनाथ सरकारलिखित, परिच्छेद ११

औरंगज़ेबका 'पहाड़ी चूहे' पर इतना भारी प्रकोप दिल्लीके समाचारोंसे कुछ शान्त हुआ। उत्तरकी यात्रा करनेसे पूर्व उसने आवश्यक समझा कि शिवाजीसे सुलह कर ली जाय। औरंगज़ेबको भी कोई गुरु मिला तो शिवाजी। शिवाजीने भी समझा कि अवसर अच्छा है। सुलह कर ली, परन्तु इनामके तौरपर बीजापुरका कुछ इलाका माँगा। औरंगजेबने उत्तर दिया कि इस प्रश्नपर फिर विचार किया जायगा, इस समय मुझे राजसिंहासनकी लड़ाईके लिए सेनाओंकी आवश्यकता है, सेनायें भेज दो। शिवाजीने इस आशयका उत्तर भेजा कि सेनायें तैयार हो रही हैं, भेजी जायँगी। दोनों दाव खेल रहे थे। न विचार हुआ, और न सेनायें भेजी गईं, हाँ प्रत्यक्षमें दोनोंका झगड़ा शान्त हो गया, परन्तु उत्तरकी ओर रवाना होनेसे पूर्व औरंगज़ेबने फिर उन अफसरोंको जिन्हें वह दक्षिणमें छोड़कर जा रहा था, लिखा कि "उस '.........के बच्चे'का ध्यान रखना, कहीं मौका पाकर काट न बैठे।"

इस प्रकार दक्षिण प्रान्तसे निश्चिन्त होकर, और मीर जुमला आदि सहायकोंकी सहायताका निश्चय होनेपर औरंगज़ेबने मुराद और शुजाके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। शुजाके साथ किस प्रकारका पत्र-व्यवहार हुआ, यह विदित नहीं, परन्तु मुरादके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसके बहुतसे भाग सुरक्षित हैं। उनमें धूर्तता, योग्यता, और दम्भका जो मेल है, उसे परास्त करना कठिन है। पत्र-व्यवहारको आसानीसे जारी रखनेके लिए औरंगज़ेबने यह प्रबन्ध किया कि गुजरात और दक्षिणके बीचमें प्रत्येक पड़ावपर दो दो हरकारे हमेशा तैयार रहते थे। दोनों भाइयोंने अपने अपने प्रान्तमें हरकारोंकी नियुक्ति करा दी। इसी प्रका-

रका प्रबन्ध शुजाके साथ पत्र-व्यवहार जारी रखनेके लिए भी किया गया; परन्तु एक तो बंगाल बहुत दूर था, और दूसरे शुजाने शीघ्र ही दिल्लीकी ओर प्रयाण कर दिया, इस कारण उससे कुछ फल निकला प्रतीत नहीं होता। पत्र-व्यवहारको गुप्त रखनेके लिए औरंगज़ेबने एक गुप्त लिपिके इशारे बनाकर मुरादको भेजे। बहुतसा पत्र-व्यवहार उसी लिपिमें हुआ।

औरंगज़ेबने मुरादको जो पत्र भेजे, उनमें सबसे प्रथम अपने मूर्ख भाईको प्रेम भरे शब्दोंमें सिंहासनारोहणपर बधाई दी। फिर उसे अपने भ्रातृ-प्रेम और सहायताका आश्वासन दिया। साथ ही दाराके बुतपरस्त (मूर्तिपूजक) होनेपर दुःख प्रकट करते हुए यह आशा प्रकट की कि मुराद जब राजगद्दीपर स्थिरता-से बैठ जायगा, तब इस्लामकी शानको बढ़ाने और बुत-परस्तोंकी ताकतको कम करनेका यत्न करेगा। अन्तमें अपनी सेवायें मुरादके अर्पण करते हुए यह भाव प्रकट किया कि मेरा लक्ष्य केवल देशमें इस्लामकी शानको बढ़ाना है, जिसके हो जानेपर मैं राजपाटके धन्धे छोड़, मक्केमें जाकर, खुदाकी यादमें दिन बिताऊँगा।

मुरादने भाईकी सब बातोंपर विश्वास किया या नहीं, यह तो कहना कठिन है, परन्तु उसके उत्तरोंसे यह अवश्य सूचित होता है कि उसने औरंगज़ेबको यही दिखानेकी चेष्टा की कि उसे पूरा विश्वास है। दोमेंसे एक बात अवश्य है। या तो वह इतना ना-समझ था कि उसने भाईकी हरेक बातको सच मान लिया, और या वह इतना अनात्मज्ञानी और अदूरदर्शी था कि उसने औरंग-ज़ेब जैसे चाणाक्षको धोखा देनेका प्रयत्न किया। दोनों ही दशा-ओंमें मुरादकी मूर्खता दयनीय है। उसने औरंगज़ेबको उत्तरमें प्रेम और विश्वाससे भरे हुए पत्र भेजे, जिनमें दाराके बेधर्मीपनको खूब कोसा, और इस्लामकी रक्षाके लिए कसमें खाईं। जो लोग असली मुराद और उसके मज़हब-हीन चरित्रको जानते थे, वह उन कसमोंपर मुस्कराते थे। इस प्रकारसे दोनों भाइयोंने एक

दूसरेको, और साथ ही इस्लामको मतलब साधनेके लिए औज़ार बनाया।

बहुतसा पत्र-व्यवहार हो चुकनेपर देशको जीतकर आपसमें बाँट लेनेका निम्नलिखित प्रकारसे निश्चय हुआ। प्रतीत होता है कि थोड़े समयके पीछे औरंगज़ेबने शुजाको कामका न समझकर गिन्तीमेंसे छोड़ दिया था। वह बड़ा था, और शायद इतना मूर्ख नहीं था कि जड़ हथियारका काम कर सकता। औरंगज़ेबका वह गुप्त पत्र, जिसमें सन्धिकी शर्तें पेश की गईं थीं, इस योग्य है कि उसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत किया जाय। वह उस धूर्त नीतिज्ञकी नीतिका एक नमूना है। औरंगज़ेबने लिखा—

"क्यों कि सिंहासनपर कब्ज़ा करनेका प्रयत्न जारी हो गया है, इस लिए रसूलके झण्डे अपने लक्ष्यकी ओर मुँह करके चल दिये है। मेरा पवित्र उद्देश्य बुतपरस्ती और कुफ्रको इस्लामकी जमीनसे उखाड़ फेकना, और बुतपरस्तोंके सरदार (दारा) को और उसके अनुयायियों और किलोंको पराजित करके कुचल डालना है—ताकि हिन्दुस्तानमें बग़ावतकी धूल उड़नी बन्द हो जाय।

और क्यों कि मेरा हृदयकी भाँति प्यारा भाई इस जहादमें शामिल हो गया है, और परस्पर सहयोगकी उन शर्तोंको मंजूर करता है, जो पहले वादों और कसमोंद्वारा तय हुई थीं, और यह भी वादा करता है कि मजहब और सल्तनतके दुश्मनके नष्ट हो जाने और दशाके सुधर जानेपर इसी तरह मिलकर रहेगा और हर समय, हर स्थान, और हरेक काममें मेरा साथी और हिस्सेदार बनेगा, मेरे मित्रोंका मित्र और दुश्मनोंका दुश्मन होगा, और इस फैसलेद्वारा साम्राज्यका जो हिस्सा उसकी प्रार्थनानुसार उसे दिया जायगा, उससे अधिक न माँगेगा।

इस कारण, मैं वादा करता हूँ कि जबतक मेरा यह भाई उद्देश्य, हृदय, और सचाईकी एकतामें मेरे प्रतिकूल नहीं होता, तब तक उसके लिए मेरा प्रेम और पक्षपात निरन्तर बढ़ते

जायँगे। मैं उसके हानि-लाभको अपना हानि-लाभ समझूँगा। हर समय और हर दशामें उसकी सहायता करूँगा और जब मेरा उद्देश्य पूरा हो जायगा, और खुदाका दुश्मन बुतपरस्त (दारा) नष्ट हो जायगा, तब मैं उस भाईसे और अधिक प्रेम करने लगूँगा।

मैं अपनी प्रतिज्ञापर दृढ रहूँगा, और जैसा कि पहले तय हो चुका है, मै उसके लिए पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध (शक्कर और ठट्ठा) अर्थात् अरब समुद्र तकके उस प्रदेश-को छोड़ दूँगा, और फिर उसे लेनेका यत्न न करूँगा।

ज्यों ही बुतपरस्त नष्ट हुआ, और सल्तनतके उद्यानमें उपद्रव शान्त हुआ—जिस कार्यमें उसकी सहायताकी आवश्यकता है—मैं उसे उसके प्रान्तोंमें जानेकी छुट्टी दे दूँगा। इस प्रतिज्ञामें मैं खुदा और रसूलको साक्षी बनाता हूँ।"

इस प्रकार मुरादबख़्शके हिस्सेमें पंजाब, सिन्ध, काश्मीर और अफ़ग़ानिस्तान आये, और यह भी निश्चय हुआ कि लूटके माल-का एक हिस्सा मुरादको और दो हिस्से औरंगज़ेबको मिलेंगे।

दक्षिणमें शान्ति हो गई। मुराद वशमें आ गया, और शुजा दारासे भिड़कर शक्तिको घटानेमें लग गया। समय अनुकूल देख-कर औरंगज़ेबने मुरादको दिल्लीकी ओर रवाना होनेको लिखा और स्वयं भी कूच बोल दिया। मीर जाफरको दाराकी आज्ञा आई थी कि वह शीघ्र ही दिल्लीमें हाजिर हो। आपसकी सलाहसे औरंगज़ेबने उसे दरबारमें बुलाकर नाम मात्रको कैद कर लिया। उसकी सम्पूर्ण शक्ति भी औरंगज़ेबकी स्वेच्छापूर्वक सहायक बनी।

दोनों भाई अपने अपने प्रान्तसे चलकर १३ अप्रैल १६५८ ई० के दिन उज्जैनके समीप आ पहुँचे, और अगले दिन उज्जैनमें सेना-सहित पहुँचकर प्रेमपूर्वक एक दूसरेके गले लगकर मिले।

१८-मुग़लोंका महाभारत

२-पहली झपट

मुग़लोंके महाभारतका पहला संघर्ष कन्नौजसे १४ मील दक्षिण पश्चिमको धर्मत नामके स्थानपर सिप्रा नदीके तटपर हुआ। दाराने विद्रोही भाइयोंका रास्ता रोकनेके लिए राजा जसवन्तसिंहको कासिमख़ाँके साथ मालवाकी ओर भेजा था। राजाको रवाना करते हुए शाहजहाँने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि तुम्हारा लक्ष्य राजकुमारोंको समझा बुझा या डराकर अपने अपने प्रान्तमें वापिस भेज देना है। इस लक्ष्यकी पूर्ति जिस प्रकार भी सम्भव हो, करो। उसे राजकुमारोंको आगरा आनेसे रोकनेका काम सौंपा गया था। उन्हें परास्त करने या मारनेका नहीं। इस अप्रिय और कठिन कार्यको पूर्ण करनेके लिए जसवन्त-सिंह कई महीनोंसे मालवेमें प्रतीक्षा कर रहा था। यह कार्य अप्रिय था, क्यों कि बाप और बेटेकी लड़ाईमें जो नौकर पड़ता है, वह अभागा है। अन्तमें उसे पछताना पड़ेगा। यदि दोनोंमेंसे एकको मारकर कामयाब हो, तो सम्भवतः अन्तमें पुत्र या पिताके वधके लिए मालिकके क्रोधका शिकार बनेगा, और यदि वह लिहाज़ करके पराजित हो जाय, तो फिर दोनों ही ओरसे बुरा बनकर 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' होनेमें सन्देह नहीं। राजा जस-वन्तसिंहने ऐसे ही दुष्कर कार्यको अपने कन्धोंपर ले लिया था।

जब उसे मालूम हुआ कि औरंगज़ेब और मुराद कन्नौजके समीप पहुँच रहे हैं, तब उसे आश्चर्य हुआ। उसे निश्चय था कि शाही फौजोंके प्रदर्शन मात्रसे राजकुमार लौट जायँगे। साथ ही औरंगज़ेबने अपनी युद्ध-यात्राके समाचारोंको अत्यन्त गुप्त रखा था। जसवन्तसिंहको एक सेनापतिकी हैसियतसे उचित था कि राजकुमारोंके समीप आनेका समाचार सुनते ही आगे बढ़ जाता, और उनकी सेनाओंको मिलनेसे रोकता। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह इस यत्नमें लगा रहा कि औरंगज़ेबको समझा-बुझा-

कर वापिस किया जाय। उधर समझनेवाला कौन था? औरंगज़ेब अपनी शक्तिको समझता था। मुरादके मिल जानेसे उसकी हिम्मत कई गुना हो गई थी। उसने राजा जसवन्तसिंहको रूखे शब्दोंमें कहला भेजा कि 'मैं युद्धके लिए रवाना हो चुका हूँ, अब विलम्ब नहीं कर सकता। यदि तुम लड़ना नहीं चाहते, तो अपनी सेनाको छोड़कर अकेले नजाबतख़ाँके पास आ जाओ, वह तुम्हें मेरे लड़के मुहम्मद सुल्तानके पास ले आयेगा, और वह तुम्हें मेरे सामने हाज़िर करेगा और माफ़ी दिलायगा।' इस अपमानजनक उत्तरको सुनकर मारवाड़-नरेशकी समझमें आ गया कि उसका मिट्टीके धोंधेसे नहीं, लोहेकी ढालसे वास्ता पड़ा है। तब जसवन्तसिंहने युद्धकी तैयारी आरम्भ की।

१५ अप्रैल १६५८ का दिन, दो पहरसे अधिक चढ़ चुका था, जब दोनों सेनायें एक दूसरेके सामने आईं। बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। विजयश्री भी कभी इस ओर और कभी उस ओर झुकती रही। सैन्य-बलकी दृष्टिसे दोनों पक्ष लगभग समान थे। दोनों ओर लगभग तीस तीस हज़ार सिपाही युद्ध-क्षेत्रमें उतारे गये थे। दोनोंके पास तोपख़ाने थे, और बर्कन्दाज़ थे। सेनायें उस समयके आदर्शके अनुसार सर्वांगसम्पन्न थीं।

धर्मतका संग्राम दो बातोंके लिए स्मरणीय रहेगा। उस संग्राममें राजपूतोंने वह बहादुरी दिखाई कि शत्रुओंके मुँहसे भी वाह-वाहके शब्द निकल पड़े। राजपूत वीर ऐसा जी तोड़कर लड़े कि थोड़ी देरके लिए औरंगज़ेब और मुरादके दिल हिल गये। यदि केवल निर्भयता और वीरताके सिरपर विजयका सेहरा बँधना होता, तो औरंगज़ेब राजगद्दी तक न पहुँच सकता, परन्तु साथ ही उस युद्धने यह भी दिखा दिया कि विजयश्री सेनाको नहीं; सेनापतिको ही प्राप्त होती है। सेनापतिकी भूलसे बाँके जवान वीरता और निर्भयताके करिश्मे दिखाकर भी भट्टीमें चनोंकी तरह भुन सकते हैं। शासन और नियमसे चलाये हुए कायर भी पराजयमेंसे विजयको निकाल सकते हैं।

युद्धका आरम्भ गोलाबारी और बाण-वृष्टिसे हुआ। प्रारम्भमें ही शाही सेनाको अपने सेनापतिकी भूलसे हानि उठानी पड़ी। राजा जसवन्तसिंहने युद्धके लिए ऐसी भूमि चुनी थी कि उसमें फैलनेका स्थान नहीं था। चारों ओर गढ़ों, मोर्चों और दलदलके कारण रास्ते रुके हुए थे। उसकी सेनाके दो भाग थे। बड़ा हिस्सा राजपूतोंका था। वह मध्यमें और आगे था। दूसरा हिस्सा मुसलमान सेनाओंका था। वह दोनों ओर फैला हुआ था। शत्रुके गोले अगले और मध्यके हिस्सेपर गिरकर प्रलयका सा उत्पात मचाने लगे। राजपूत बहादुर इसे सहन न कर सके। राजपूत मरना जानते हैं, परन्तु गाजर-मूलीके भाव नहीं। वह मार-कर मरनेमें ही श्रेय समझते है। गोलोंसे भूने जाकर उनका हृदय अपमानित होने लगा। सेनाके नियम और सेनापतिके इशारेकी प्रतीक्षा न करके राजपूतोंके दलने शत्रुके विध्वंसका बोझ अपने कन्धोंपर लिया। 'राम' 'राम' के सिंहनादसे आकाशको गुँजाता हुआ वह केसरिया-दल पावसके मेघकी तरह उमड़कर शत्रु-दलके तोपखानेपर टूट पड़ा। तोपचियोंनें तोपके गोले दागे, और बन्दूकचियोंने बन्दूकें छोड़ीं, परन्तु जानपर खेलनेवाले उन पुरुषसिंहोंको रोकनेकी शक्ति किसमें थी। तोपची तोप छोड़ भागा, और बन्दूकचीकी बन्दूक गिर गई। उस सपाटेमें जो आया वह मारा गया। बवडरकी तरह उमड़ता हुआ वह राजपूत घुड़सवारोंका दल आनकी आनमें तोपख़ानेसे पार हो गया। तोपख़ानेका सेनापति मुर्शिद अलीख़ाँ मारा गया, और भी बहुतसे कारीगर धराशायी हुए।

बवंडर आगे बढ़ा। तोपख़ानेके पीछे औरंगज़ेबकी सेनाका अगला भाग था। उसमें चुने हुए बहादुर सिपाही थे। राजपूत सवार असह्य गतिसे उसपर जा टूटे। धक्का बड़ा ज़बर्दस्त था। उन मस्त शेरोंको कौन रोकता था? मुसलमान सिपाही गाजर-मूलीकी तरह कटने लगे। उनके सेनापति ज़ुल्फ़िकारख़ाँको घोड़ेपरसे उतरना पड़ा। वह भी प्राणोंकी ममता छोड़कर साधारण

सिपाहीकी तरह लड़ा, परन्तु सब व्यर्थ। वह उमड़ता हुआ बरसाती नाला किसीके रोके न रुका। औरंगज़ेबकी सेनाका अग्र भाग तितर बितर होगया।

विजयके साथ ज़ोर पकड़ता हुआ लहूके मदमें मस्त वह राजपूतोंका जत्था शत्रुकी सेनाके अग्रभागके मध्यमें जा पहुँचा। सिपाहियोंने अपना काम कर दिया। क्या सेनापति अपना काम करेंगे? वह उस युद्धका महत्त्वपूर्ण क्षण था। वह सेनापतिकी परीक्षाका समय था। यदि औरंगज़ेब उन उभरे हुए शेरोंके रास्तेको नहीं रोक सकता, तो उसे राजगद्दीसे हाथ धोना पड़ेगा, और यदि जसवन्तसिंह उन आगके परकालोंकी सहायता नहीं कर सकता, तो उसे राजपूतानेके उद्यानके उन अमूल्य पुष्पोंसे हाथ धोना पड़ेगा, क्योंकि वह राजपूत इतनी तेज़ीसे आगे बढ़ गये थे कि उनकी सहायताके लिए पीछेसे कोई नहीं आसका था। वह मार-काट करते हुए अन्धे जोशमें शत्रुके पेटमें छुरीकी तरह घुस गये थे, परन्तु छुरी चलानेवाला हाथ बहुत पीछे रह गया था। औरंगज़ेब चूकता तो सिंहासनकी जगह फाँसीका अधिकारी बन जाता, पर वह नहीं चूका। उसने दिमागको ठण्डा रखा, और अपनी सेनाओंका ऐसा घेरा डाला कि वह वीर राजपूतोंका गिरोह चारों ओरसे घिर गया। राजपूत फिर भी खूब लड़े, एक एकने दस दसको मारा, परन्तु कहाँतक? चारों ओरसे घिरकर सिवा इसके कि वह बहादुरोंकी तरह मरें, और हो ही क्या सकता था? इतनी असाधारण वीरता दिखाकर, निर्भयताका ऐसा चमत्कार दिखाकर वह शूर-दल केवल लाशोंका ढेर रह गया, इसका कारण था, उनके सेनापतिकी अयोग्यता। पहले तो राजा जसवन्तसिंह उन्हें आगे बढ़नेसे रोक न सका, और जब वह आगे बढ़ गये तो उनकी सहायताके लिए, उनकी सफलतासे लाभ उठानेके लिए कुमक भेजनेमें असमर्थ हुआ। परिणाम यह हुआ कि शाही-सेनाका सबसे आवश्यक भाग क्षण भरका चमत्कार दिखलाकर बिना तेलके दीपककी भाँति बुझ गया।

शेष युद्धका तो अनुमान लगाया जा सकता है। तोपखानेवाले फिर तोपोंपर आ गये, और लगे दनादन गोले बरसाने। मुराद-बख्शने पहले शाही खेमोंको लूटा और फिर शाही सेनाके वाम पार्श्वपर धावा किया। शाही सेनाके बाईं और सेनापति इफ्तिखार ख़ाँ बहादुरीसे लड़ता हुआ मारा गया। इधरसे शत्रु बढ़ रहा था। अग्रभाग खाली हो ही चुका था। इस प्रकार आगेसे, दाँयेसे और बाँयेसे दवाये जाकर जसवन्तसिंहका लगभग २००० राजपूतोंके साथ मध्यमें डटे रहना असम्भव था। आपत्तिमें साथ देनेवाले विरले होते हैं। शत्रुसे घिरकर मरनेकी अपेक्षा पीठ दिखाकर भाग जानेवालोंकी संख्या हजारों तक पहुँच चुकी थी। मुसलमान सेना और छोटे छोटे सेनापति तो शत्रुके पक्षमें जा मिलनेका मौका ही तलाश कर रहे थे। हजारों मुसलमान सिपाही युद्धकी समाप्तिसे पूर्व ही औरंगज़ेबकी ओर जा मिले थे।

इस प्रकार चारों ओरसे घिरकर राजा जसवन्तसिंह दोमेंसे एक ही मार्गका अवलम्बन कर सकता था। या तो राजपूतोंकी तरह लड़कर मर मिटता, या युद्धके नियमके अनुसार युद्धस्थलको छोड़ देता। उसके हृदयकी उमंग तो यही थी कि राजपूतोंकी पद्धतिका अनुसरण करता। उस समयका इतिहास-लेखक ईश्वर-दास लिखता है कि 'जसवन्तकी इच्छा थी कि युद्धके अन्दर जाकर लड़ मरे, परन्तु महेशदास, आसकरण और अन्य प्रधानोंने उसके घोड़ेकी वाग पकड़ ली, और संग्राम-भूमिसे वाहिर ले गये।' मासूम, अकिल ख़ाँ, और बर्नियर आदिने भी इसी वातका समर्थन किया है कि जसवन्तसिंहका अपना विचार मैदान छोड़कर भागनेका नहीं था, परन्तु उसके मन्त्रियोंने उसे यह समझाकर रण-स्थलसे अलग किया कि दूसरोंकी घरू लड़ाईमें व्यर्थमें जान देना बुद्धिमत्ताका काम नहीं है। जब कई मुसलमान सेनापति शत्रुसे जा मिले हैं, तब हमें ही क्या पड़ी है कि मुफ्तमें मरें। जसवन्त-सिंहको लाचार होकर यह सलाह माननी पड़ी, और मैदान छोड़कर जोधपुरका रास्ता लेना पड़ा।

इस प्रकार धर्मतके युद्धमें औरंगज़ेब कामयाब हुआ। औरंगज़ेबकी सफलता और जसवन्तसिंहकी पराजयके कारण स्पष्ट थे। औरंगज़ेब अपने समयका सर्वोत्कृष्ट सेनापति था, फिर इस युद्धमें तो मुराद जैसा वीर उसका सहायक था। जसवन्तसिंहकी वीरतामें सन्देह नहीं; परन्तु वह सेनाओंके नियन्त्रणमें राजकुमारका सानी नहीं था। औरंगज़ेब मालिक था, जसवन्तसिंह नौकर था। औरंगज़ेब अपनी स्थितिके लिए—चक्रवर्ती राज्यके लिए—लड़ रहा था, जसवन्तसिंह केवल सेवकका धर्म निबाहनेके लिए। इन व्यक्तिगत कारणोंके सिवा एक बड़ा कारण यह था कि सम्पूर्ण शाही फौजके मुसलमान सिपाही दाराके पक्षमें अनमने होकर लड़ रहे थे। औरंगज़ेबके जिहादी आन्दोलनने गहरा असर किया था। कट्टर मुसलमान दाराको बुतपरस्त काफिर समझने लगे थे। मुसलमानोंकी धर्मान्धताको भड़काना कितना सहल है, यह इतिहासके पाठक खूब जानते हैं। इस्लामका समस्त वायुमण्डल दाराके लिए गुप्तरूपसे ज़हरीला हो गया था। औरंगाबादसे प्रयाण करनेसे पूर्व ही औरंगज़ेब अपनी जिहादी प्रेरणाके कारण मुसलमानोंका दुलारा बन गया था। शाहजहाँकी सेवाका बन्धन था, जो उन्हें युद्धस्थलमें खेंच लाता था। वहाँ आकर प्रायः मुसलमान सिपाही अनमने होकर लड़ते थे, और जहाँ ज़रासा अवसर मिलता था, दाराका झण्डा फाड़कर औरंगज़ेबका जिहादी झण्डा खड़ा कर देते थे। इस प्रकार दाराकी पक्षपातिनी सेना न केवल हिन्दू सेना थी, और न मुसलमान सेना। उसमें दोनोंका मेल था, परन्तु वह था बहुत अनमेल मेल। हिन्दू केवल सेवकका कर्तव्य समझकर लड़ रहे थे, और मुसलमान बेदिल होकर। ऐसी सेनाका संचालन स्वयं सिकन्दर भी करता, तो विजयी नहीं हो सकता था। दूसरी ओर औरंगज़ेबकी सेनामें कुछ थोड़ेसे राजपूतोंके होते हुए भी वहाँ एक ही इच्छा थी, और एक ही लक्ष्य। राजा जसवन्तसिंहका या किसी अन्य सेनापतिका ऐसी बेतुकी सेनाकी सहायतासे कामयाब होना सर्वथा असम्भव था।

परन्तु राजा जसवन्तसिंहकी मानिनी धर्मपत्नीने धर्मतके पराजयको ऐसी दार्शनिक दृष्टिसे नहीं देखा, जिस दृष्टिसे एक इतिहास-लेखक देख सकता है। उसका राजपूती हृदय पतिके पराभवसे तड़प उठा। चोट खाई हुई साँपिनकी तरह वह प्रज्वलित हो उठी। राजा जसवन्तसिंह युद्ध-क्षेत्रसे सीधा अपनी राजधानीकी ओर रवाना हुआ। जब रानीने सुना कि मैदानसे भागा हुआ पति राजधानीके समीप आ गया है, तब सब नगर-द्वार बन्द करवा दिये, और पतिदेवको कहला भेजा कि 'संग्रामभूमिमें हारे हुए पतिके लिए राजपूतनीके घरमें जगह नहीं है। राजपूत यदि विजयी नहीं हो सकता, तो रणक्षेत्रमें मर तो सकता है।' ऐसी शेरनियोंकी सन्तान यदि जानको तृणवत् समझकर युद्ध-भूमिमें लड़ जाती थी, तो क्या आश्चर्य है। आश्चर्य और दुःख इतना ही है कि ऐसा अनमोल, ऐसा निर्भय, ऐसा बहादुर, और अनुपम रुधिर हाटमें बिक रहा था—जो कोई चाहता था, उसे खरीद लेता था। दाराकी सेना हो या औरंगज़ेबकी—दोनों ही ओरसे राजपूतोंका रुधिर बहता था। यह भी एक मनोवैज्ञानिक पहेली है कि जो राजपूत अपने मानके लिए जान न्यौछावर करनेमें जरासा भी आगा पीछा न देखते थे, वह चाकरीकी तलाश करनेमें जाति, धर्म और सत्य पक्षका कोई भी विचार न रखते थे। यह भारतकी एक जटिल पहेली है, जो न तब हल हुई और न आज हल हो रही है।

१९—मुग़लोंका महा-भारत

३—दाराका वाटर्लू

धर्मतके पराजयके समाचारसे आगरेमें सोग छा गया। शाहजहाँको आशा थी कि शाही सेनाओंसे लड़ना उचित न समझकर राजकुमार अपने अपने प्रान्तोंको वापिस चले जायँगे। उसने दूतोंके हाथ दोनों पुत्रोंको कहला भेजा था कि अगर तुम

मेरा हुक्म मानना चाहते हो, तो जिधरसे आये हो उधर ही लौट जाओ। औरंगज़ेव यह उत्तर भेजता रहा कि हमारा मन्शा केवल आपकी सेवामें उपस्थित होकर अपनी सफाई पेश करनेका है, हम लड़ना नहीं चाहते। राजकुमार वापिस लौटनेकी जगह शाही सेनासे लड़ गए, और विजयी हुए। शाहजहाँके दुःख और चिन्ताकी सीमा न रही। दाराने राजा जसवन्तसिंहको भेजकर समझ रक्खा था कि अब औरंगज़ेब और मुरादके कटे हुए सिर आनेमें देर न लगेगी। उसकी आशा भी पूर्ण न हुई। सबको राजधानी और राज्यकी रक्षाकी चिन्ताने आ घेरा।

यदि शाहजहाँ आयु, सुखी जीवन और बीमारीसे अपाहज न हो गया होता, तो उसके लिए एक ही मार्ग था। वह अपनी सेनाओंका अगुआ वनकर पुत्रोंके सामने मैदानमें खड़ा हो जाता, वह लोग पश्चात्ताप प्रकट करते तो क्षमा कर देता, अन्यथा विद्रोहियोंको दण्ड देता। शाहजहाँ अनुभवी और पुराना सिपाही था, वह बीसियों लड़ाइयोंका विजेता था। दक्षिण और राजपूतानेका विजेता शाहजहाँ अपने बनाए हुए स्वर्गमें गल चुका था, यह निर्वल इच्छा-शक्तिवाला, दाराका मोही बाप शाहजहाँ था, जो बल्ख़ कन्दहार गोलकण्डा और बीजापुरके कठोर रणक्षेत्रोंमें पके हुए औरंगज़ेबके सामने आँख उठानेकी हिम्मत नहीं कर सकता था।

अव क्या करना चाहिए? शाहजहाँकी राय थी कि औरंगज़ेव और मुरादसे युद्ध न करना चाहिए। बापके हृदयमें पुत्रोंका रक्तपात देखकर दुःख होता था। उसकी अन्तरात्मा रो रही थी। वह सुलहके पक्षमें था। सुलहका सन्देशहर वह स्वयं बननेको उद्यत था। उसने दाराके सामने यह विचार रखा कि बादशाह स्वयं राजधानीसे आगे बढ़कर राजकुमारोंसे मिले, और उनसे सुलहकी शर्तें तय करे। यदि आवश्यकता हो, तो सब भाइयोंको प्रान्त बाँट दिये जायँ। दाराको भी अपने प्रान्तमें भेज दिया जाय। परन्तु

दाराका हृदय उत्तेजित हो चुका था। उसका प्रतिद्वन्द्वी, उससे छोटा, उसे काफ़िर कहकर बदनाम करनेवाला औरंगज़ेब विजेता बनकर सुलहकी शर्तें लिखवाए—यह दाराको सह्य नहीं हो सकता था। धर्मतका पराजय उसके दिलमें कीलकी तरह गड़ गया था। दाराका वही उत्तर था जो सुलहका पैगाम लानेवाले श्रीकृष्णको दुर्योधनने दिया था। दुर्योधनने कहा था—

'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव!'

हे कृष्ण, विना युद्धके मैं पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर परिमाणवाला भूमिका टुकड़ा देनेको भी उद्यत नहीं हूँ। दाराको अपनी सेनाओंपर, अपने खजानेपर, और अपने भुजबलपर भरोसा था। उसने पिताकी रायको पसन्द न किया। शाइस्ताखाँ आदि ऐसे सरदारोंने जो अन्दरसे औरंगज़ेबके समर्थक थे, परन्तु ऊपरसे शाहजहाँकी सेवामें रहते थे, इस भयसे बादशाहके प्रस्तावका विरोध किया कि कहीं राजीनामेका यह परिणाम न हो कि औरंगज़ेब वापिस चला जाय। उन्होंने भी दाराकी हाँमें हाँ मिलाई। सुलहका प्रस्ताव गिर गया, और युद्धकी तैयारी होने लगी।

आगामी युद्धके लिए साम्राज्यकी समस्त शक्तिको एकत्र करनेका यत्न किया गया। प्रान्तोंसे सरदारों और सेनाओंको बुलाया गया। आगरे और दिल्लीके खजानोंके द्वार सेना और अन्य युद्ध-सामग्रीके सन्नाहके लिए खोल दिये गये। बूँदीनरेश राय छत्र-साल साह अपने समयका अद्वितीय वीर समझा जाता था। वह दाराका परम मित्र और सहायक था। दाराको उसका बहुत भरोसा था। वह हजारों राजपूतोंके साथ आगरे पहुँच चुका था। थोड़े ही समयमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित लगभग ६० सहस्र योधाओंकी सेना राजकुमारोंका रास्ता रोकनेके लिए सन्नद्ध हो गई। शाहजहाँका हृदय दाराको युद्धके लिए भेजते हुए काँपता था। उसकी अन्तरात्मा बोल रही थी कि यह मोही पिताकी लाड़ले बेटेसे अन्तिम भेंट है। विदाके समय जामा-मसजिदमें

इकट्ठी नमाज पढ़ी गई, जिसके पश्चात् शाहजहाँने आँसूभरी आँखों और काँपते हुए हाथोंसे दाराको आशीर्वाद देकर मांगलिक रथ-पर विठाया, और समर-भूमिके लिए रवाना किया।

दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ आगरेसे ८ मील पूर्वकी ओर समूगढ़ नामके स्थानपर हुई। समूगढ़के पास लम्बा चौड़ा मैदान है। दाराने कोशिश तो यह की थी कि औरंगजेबकी सेनाओंको धौल-पुरके पास चम्बल नदीपर रोक दिया जाय। इसके लिए उसने नदीको पार करनेके सब रास्ते तोपों और सिपाहियोंके मोर्चोंसे रोक रखे थे, परन्तु औरंगज़ेव दाराकी अपेक्षा अधिक चालाक था। उसने धौलपुरसे ४० मील पूर्वकी ओर एक ऐसी जगहसे चम्वल नदीको पार किया, जहाँ दाराकी कल्पना भी न पहुँची थी। दाराको लेनेके देने पड़ गये। उसे चम्बलका किनारा छोड़ आगरे-का रास्ता रोकनेके लिये भागना पड़ा। इस तरह दोनों सेनाओंका सामना समूगढ़के मैदानमें हुआ।

दारा मैदानमें औरंगज़ेवसे एक रोज पहले आ गया था। २८ मईको औरंगज़ेवकी सेनायें वहाँ पहुँच गई। यह सोच कर कि औरंगज़ेव आते ही धावा करेगा, दाराने सारी सेनाको क्षेत्रमें सजा दिया। औरंगज़ेवके सिपाही थके हुए थे। उसने अपने सेना-ओंको दूरीपर ही ठहरा दिया। मईका महीना, आगरेकी गर्मी, वे-बादलका दिन, और फिर दाराकी सेनाओंका मुँह पश्चिमकी ओर था, जिधरसे लू चला करती है। औरंगज़ेवने दूरहीपर डेरा डाल दिया। दाराको उचित था कि या तो हिम्मत वाँधकर आगे वढ़ता और धावा करके शत्रुकी थकी सेनाओंको परास्त कर देता, या अपनी सेनाओंको भी विश्राम करने देता, परन्तु प्रतीत होता है कि वाहिरकी शेख़ीके होते हुए भी उसका हृदय औरंगज़ेवकी युद्धनिपुणतासे काँपता था। सफलता ऐसी ही वस्तु है। प्रारम्भिक सफलतासे आदमीकी धाक वँधती है, और उस धाकसे फिर सफलता प्राप्त होती है। दाराने न तो आगे वढ़कर

आक्रमण किया, और न अपनी सेनाओंको विश्राम करनेका अवसर दिया। शाही सेनाके सिपाही दिन भर जेठकी धूपमें आगमें बैंगनकी तरह भुना किये। मारे प्यासके जीभ निकल आई, भारी कवचोंके अन्दर पसीनेके पानीने बहकर दम खुश्क कर दिये, सैकड़ों आदमी और जानवर 'हाय पानी' 'हाय गर्मी' पुकारते हुए परलोकगामी हुए। इस प्रकार वह दिन बीता। रातको जब दाराने अपनी सिपाहियोंकी प्रदर्शिनीको खेमोंमें वापिस जानेका हुक्म दिया, तब उसकी सेना गर्मी और प्याससे अधमुई हो चुकी थी, और औरंगज़ेबके सिपाही विश्रामद्वारा ताज़ा हो रहे थे। उस दिनकी प्रदर्शिनीने बतला दिया कि युद्ध-विद्यामें दारा औरंगज़ेबके सामने बच्चा था। एक रेशमी गद्दीपर पला था, और दूसरा युद्धकी कठोर भूमिपर बड़ा हुआ था।

२९ मईको प्रातःकालसे ही दोनों सेनाओंका सन्नाह आरम्भ हो गया था। दाराकी शक्ति ६०,००० और औरंगज़ेबकी ३०,००० के लगभग थी। इस प्रकार शाही सेनायें दुगनी थीं। दोनोंकी व्यूह-रचना प्रायः एक ही प्रकारसे हुई थी। उस समयका व्यूहका क्रम निम्नलिखित प्रकारसे था—

सबसे आगे, सेनाओंकी पूरी चौड़ाईको आच्छादित करता हुआ, तोपख़ाना रखा गया था। तोपोंको प्रायः जंज़ीरोंसे बाँधकर ऐसा जकड़कर रखा जाता था, कि शत्रुके घुड़सवार उनकी पंक्तिको लाँघकर एकदम धावा न कर सकें, यदि करें भी, तो उनका वेग टूट जाय। तोपोंकी पंक्तिके पीछे तोपख़ानेकी रक्षाके लिए पैदल बर्कन्दाज़ों और लड़ाकुओंका सैन्य होता था। पैदलोंके पीछे शत्रुके वेगको रोकनेके लिए लोहेकी कवचोंसे मढ़े हुए जंगी हाथियोंकी कतार होती थी। वह हाथी पैदलों और घुड़-सवारोंके बीचमें लोहेके पर्वतोंके भाँति प्रतीत होते थे। उसके पश्चात् घुड़-सवारोंकी श्रेणियाँ होती थीं। उस समयके असली योद्धा घुड़-सवार ही थे। लड़ाईका अन्तिम और मुख्य शस्त्र वही था। सेनापतिके तूणीरका प्रधान तीर वही था। वह सेना प्रायः निम्नलिखित भागोंमें विभक्त होती थी। सबसे आगे चुने

हुए बहादुरोंका छोटासा परन्तु तेज और निर्भय सैन्य रहता था, जिसे सेनाका अग्रभाग (Van) कहते हैं। दुश्मनके सेनारूपी कवचमें तीरकी तरह घुसकर छेद कर देना इसी सैन्यका काम था। इसमें वही बहादुर रखे जाते थे, जो जानपर खेल जायँ, मर जायँ, परन्तु पीठ न दिखायें। अग्रभागके पीछे सेनाका अधिकांश भाग तीन हिस्सोंमें बाँटकर लड़ाईके मैदानमें खड़ा किया जाता था। मध्यमें मध्य भाग (Centre), दायें हाथ दक्षिण पार्श्व (Right) और बायें हाथ वाम पार्श्व (Left)। मध्यमें प्रधान सेनापति अनुभवी सेनापतियों और सेनाओंके साथ रहता था। यह भाग एक प्रकारसे सारी सेनाओंका मस्तिष्क भी था, और किला भी। यहींसे सब आज्ञायें निकलती थीं, और कमज़ोरी होनेपर यहींसे सब ओर मदद भेजी जाती थी। दायें और बायेंके सैन्योंपर प्रधानतया युद्धकी उत्तरदायिता थी। यदि आक्रमण करना हो, तो उन्हींको आगे बढ़ना पड़ता था, यदि शत्रुका आक्रमण हो, तो उसे प्रतिक्षित करनेका बोझ भी उन्हींपर होता था। उनके सेनापति खूब अनुभवी विश्वासपात्र और बहादुर होने आवश्यक थे। यह उस समयके सेना-सन्नाहकी प्रचलित व्यूह-रचना थी। रचनासे अलग अनुभवी, सेनापति थोड़ीसी सेनाको हाथमें रखते थे, ता कि किसी भागमें कमज़ोरी आनेपर कुमुक पहुँचाई जा सके। उसे हम सहायक भाग (Reserve Force) कह सकते है।

दाराकी सेनाकी व्यूह-रचना निम्नलिखित प्रकारसे हुई थी—

बूंदीनरेश राजा छत्रसालकी अध्यक्षतामें राजपूत, दिलेरख़ाँकी अध्यक्षतामें अफ़ग़ान, और कुछ अन्य सेनाएँ यह सब मिलाकर लगभग १५ सहस्र वीर अग्रभागमें स्थित थे। वाम पार्श्वमें दाराके पुत्र सिपिहर शिकोह और रुस्तमख़ाँकी नायकतामें १५ हज़ार योद्धा थे। दक्षिण पार्श्वका नायक ख़लील ख़ाँ नामका पुराना दरबारी और सेनापति था। मध्यमें एक ऊँचे सुंदर हाथीपर स्वयं दारा विराजमान था और उसके चारों ओर लगभग १२ हज़ार विश्वासपात्र और बहादुर सिपाही थे।

औरंगज़ेबकी व्यूह-रचना निम्नलिखित थी—

अग्रभागके सेनापति औरंगज़ेबका पुत्र सुल्तान मुहम्मद और नजा-बत ख़ाँ थे। दक्षिण पार्श्व इस्लाम ख़ाँकी अध्यक्षतामें था। इस पार्श्वमें कुछ राजपूत सरदार भी अपनी सेनाओंके साथ सम्मिलित थे। मुराद बख़्श अपने १० हज़ार अनुयायियोंके साथ वाम पार्श्वमें था और मध्यमें स्वयं औरंगज़ेब था। दाराने सेनाका कोई भाग सहायक रूपमें नहीं रखा था, औरंगज़ेबने ५,००० के लगभग सिपाही व्यूह-से अलग रख छोड़े थे कि आवश्यकता पड़नेपर काम आयें। दोनों ओरकी व्यूह-रचना ज़बर्दस्त थी। दाराकी सेना परिमाणमें, सज-धजमें, और रणवाद्योंके लिहाजसे शत्रु-सेनाकी अपेक्षा लग-भग दुगनी थी।

दिन कुछ पहर चढ़ चुका था जब शाही सेनाओंकी ओरसे आक्र-मण आरम्भ हुआ। दाराके वाम-पार्श्वने औरंगज़ेबके दक्षिण-पार्श्वपर और दक्षिण-पार्श्वने वाम-पार्श्वपर इकट्ठा हो आक्रमण किया। मध्यमें गोलाबारी जारी रही। वाम-पार्श्वके नेता रुस्त-मख़ाँकी सेना, युद्धकी ललकारोंसे आकाशको गुँजाती हुई शत्रुके तोपख़ानेपर टूट पड़ी। तोपख़ानेके रक्षक पहलेसे तैयार थे। उन्होंने घुड़-सवारोंका स्वागत गोलों और गोलियोंसे किया। आक्रमण-कारी गिरने लगे। तोपख़ानेपर वार न चलता देखकर रुस्तम-ख़ाँने घोड़ोंका रुख पलटकर शत्रुकी सेनाके अग्रभागपर धावा करनेका विचार किया। औरंगज़ेब पहलेसे चौकन्ना था। उसने अपने दक्षिण पार्श्वसे बहुतसी सेना रास्ता रोकनेके लिये भेज दी। बड़ा ज़बर्दस्त संघट्ट हुआ। रुस्तमख़ाँके सवारोंका वेग असह्य था। शत्रुके तीन सेना-नायक धराशायी हुए। थोड़ी देरके लिए प्रतीत होने लगा कि औरंगज़ेबकी सेना हिल जायगी, परन्तु वह प्रशान्त सागर चलायमान न हुआ। वह मध्यसे और दक्षिण पार्श्वसे बरा-बर सहायता भेजता रहा। उधर दारा रुस्तमख़ाँको काफी सहायता न भेज सका। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही रुस्तमख़ाँकी सेना चारों ओरसे शत्रुओंसे घिर गई। भयानक मार-काट हुई। रुस्तम

खाँ हाथीको छोड़ घोड़ेपर सवार हुआ, और संहार करता हुआ शत्रुके मध्यतक चला गया, परन्तु वह अकेला कहाँ तक लड़ सकता था ? आखिर लड़ता लड़ता शत्रुओंसे घिरकर मारा गया। इस प्रकार दाराका वाम पार्श्व बड़ी वीरतासे लड़ा, परन्तु पीछेसे सहायता न मिलनेके कारण नष्ट हो गया। जैसे दीपकपर पड़कर पतंग जल जाता है, ऐसे ही औरंगज़ेबकी सेनापर गिरकर उसकी गति हुई।

उसी समय दूसरी ओर भी घोर संग्राम हो रहा था। दाराके दक्षिण पार्श्वने वाम पार्श्वके साथ ही धावा किया था। ख़लीलख़ाँ अपनी सेनाओंको लेकर मुराद बख़्शसे लड़नेके लिए आगे बढ़ा, परन्तु कुछ किया नहीं। आगे बढ़कर रुक गया। पीछेसे मालूम हुआ कि वह पहलेसे ही औरंगज़ेबको सहायता देनेका वचन दे चुका था। उसने दाराके साथ द्रोह किया। वह तो आक्रमण करते करते रुक गया, परन्तु बातके धनी और शूरताके मदमाते राजपूतोंको रोकनेवाला कौन था ? ख़लीलख़ाँके बढ़नेके साथ ही राजा छत्रसाल हाड़ा अपने राजपूतोंको लेकर तोपख़ानेको लाँघ गया था। ख़लीलख़ाँ रुक गया, परन्तु छत्रसालके बहादुर मुरादबख़्शकी सेनापर टूट पड़े। राजपूत थोड़े थे, और मुरादबख़्शकी सेनामें कमसे कम १० हज़ार सिपाही थे। संख्याकी कमी निर्भीकता और साहसिकताने पूरी की। छत्रसाल हाड़ा, रामसिंह राठौर और भीमसिंह गौर अपने अपने अनुयायियोंको साथ लिये मुरादकी सेनामें घुस गये। उनकी झपटके सामने ठहरना शत्रुओंके लिए असम्भव हो गया। केसरिया बाना पहिने राजपूत जिधर निकल जाते थे, प्रलय मचा देते थे। उस युद्धमें बहुतसे योरापियन गोलन्दाज़ और दर्शक भी थे। उन्होंने छत्रसालके बाँके वीरोंके साहसिक कृत्योंपर आश्चर्यभरा सम्मान भाव प्रकट किया है। संग्राम शीघ्र ही एक केन्द्रपर इकट्ठा हो गया। राजपूत मुरादबख़्शके हाथीको घेरनेकी चेष्टा करने लगे, शत्रुके सिपाही उसकी रक्षाके लिए जी जानसे यत्न करने लगे। मुरादने इस भयसे कि

हाथी भाग न जाय, उसकी टाँगोंमें ज़ंजीरें बंधवा दीं थीं। हाथीके चारों ओर दोनों ओरके सिपाहियोंकी लाशोंके ढेर लग गये। इतनेमें क्या देखते हैं कि एक राजपूत सवार अपने घोड़ेको सिपाहियोंके सिरोंपरसे कुदाकर मुरादबख़्शके हाथीके पास जा पहुँचा। वह सवार राठौर वीर राजा रामसिंह था। उसके शरीरपर केसरिया बाना था, और सिरपर अनमोल मोतियोंका हार था। बायें हाथमें घोड़ेकी लगाम थी, और दायेंमें ताना हुआ भाला था। घोड़ा कूदकर हाथीके पास पहुँचा, और अगले पाँव उठाकर हाथीके मस्तकपर रख दिये। राजपूतने मुरादको ललकारकर कहा कि 'क्या तू दारासे तख़्त छीनना चाहता है?' और भालेका वार किया। उसी समय मुरादने राजापर तीर छोड़ा। भाग्योंका फेर—भालेका वार ख़ाली गया, तीर अपना काम कर गया। निःशंक वीरतासे सेनाको चकित करके राजा रामसिंह धराशायी हुए। सेनापतिकी मृत्युसे उत्तेजित होकर राजपूतोंने मुरादबख़्शके हाथीको घेर लिया। राजकुमारके मुँहपर और शरीरपर तीरोंके कई घाव लगे, उसका हाथीवान मारा गया, हाथी भी घायल हुआ, और उसके पक्षके कई सेना-नायक जानसे मारे गये। मुरादबख़्श बड़ी बहादुरीसे लड़ता रहा, परन्तु उसकी सेना उस भयानक आक्रमणको बर्दाश्त न कर सकी, और तितर-बितर हो गई।

इधर राजा छत्रसालने जब देखा कि मुरादकी सेना बिखर रही है, तो अपने घोड़ेका मुँह औरंगज़ेबकी ओर मोड़ा। औरंगज़ेब मुरादबख़्शको आफतमें पड़ा सुनकर उसकी सहायताके लिए आ रहा था। रास्तेमें उसके पठानोंकी राजपूतोंसे टक्कर हुई। उस समयके दरबारी इतिहास-लेखकोंने भी माना है कि वह पठान-राजपूत-संघट्ट अपनी उपमा नहीं रखता। दोनोंको अपनी बहादुरीका अभिमान था, दोनोंके लिए युद्ध प्राणोंसे प्यारा था, दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके लिए विद्वेषका भाव विद्यमान था 'लोहेकी कवचसे मढ़े हुए दो मस्त हाथियोंकी तरह राजपूतों और पठानोंके

मदहोश दल टकरा गये। राजपूतोंका उद्देश्य औरंगज़ेबके हाथी-तक पहुँचकर राजकुमारको मार देना या पकड़ लेना था। सब विघ्न-बाधाओंको चीरते हुए वह लोग राजकुमारके हाथीकी ओर घिरने लगे। कुछ समयके लिए रक्षकोंमें भगदड़ पड़ गई। मौत-से बाजी लगानेवाले उन वीरताके पुतलोंके वेगको कठोर और वीर पठान भी रोक न सके। औरंगज़ेबके सिपाही घबराकर भागने लगे, उसका हाथी तीरों और भालोंकी बौछारसे बौखला-कर पीठ दिखानेके चिह्न दिखाने लगा। वह धैर्य और साहसकी परीक्षाका समय था। यदि औरंगज़ेब घबराकर अपना स्थान छोड़ देता, या शत्रुके सीधे वारसे बचनेके लिए हाथीकी पीठ छोड़कर घोड़ेपर सवार हो जाता, तो वह समाप्त हो चुका था। उसका नाम अभागे राजपुत्रोंकी सूचीमें सबसे ऊपर लिखा जाता, परन्तु वह किसी दूसरी ही धातुका बना हुआ था। इस डरसे कि हाथी घब-राकर भागनेकी चेष्टा न करे, उसने उसके पैर जंज़ीरोंसे बँधवा दिये। मानो एक तरहसे घोषणा दे दी कि मैं यहीं खड़ा हूँ, हिलूँगा नहीं, यदि विजय प्राप्त न हुई तो यहीं मर जाऊँगा। भागते हुए सिपाहियोंको वह ऊँचे स्वरसे पुकारकर कह रहा था कि 'दिले याराना' (मित्रो, हिम्मत करो) खुदा है, खुदा है, खुदा है। सेनापतिकी धीरता, और उत्साह-जनक शब्दोंका सिपाहियोंपर असर हुआ। भगोड़े वापिस आ गये, खाली स्थान भरने लगे, शरीर-रक्षक इकट्ठे होने लगे, परिणाम यह हुआ कि राजपूत वीर फिर चारों ओरसे घिर गये। पीछेसे उनको सहायता न पहुँच सकी।

असीम साहसकी यह विशेषता है कि ख़तरा उसकी धारको अधिक तेज कर देता है। चारों ओरसे घिरकर शेर अधिक भयंकर हो उठता है। राजपूतोंने जब देखा कि वह चारों ओर घिर गये, तो जी तोड़कर लड़ने और मार-काट करने लगे। रणभूमि शत्रु-ओंके लहूसे और राजपूतोंके केसरिया वस्त्रोंसे रँगी जाने लगी। एक योरोपियन दर्शकने लिखा है कि वह लोग पाग़ल कुत्तोंकी

तरह लड़ रहे थे। मनुष्यका जीवन तिनकेके भाव बिक रहा था। धीरे धीरे राजपूतोंका दल क्षीण होने लगा। राजपूतानेके उद्यानके चुने हुए फूल कट-कटकर गिरने लगे। नरकेसरी छत्रसाल हाड़ा, रामसिंह राठौर, भीमसिंह गौर आदि नेता वीरगतिको प्राप्त हो गये; परन्तु इससे बचे हुए वीरोंकी हिम्मत कम नहीं हुई। राजा रूपसिंह राठौर चमकती हुई तलवारों और सरसराते हुए तीरोंके बीचमें घोड़ेपरसे नीचे कूद गया, और नंगी तलवार हाथमें लेकर रास्तेको चीरता हुआ औरंगज़ेबके हाथीके पास जा पहुँचा। शत्रु और मित्र आश्चर्यभरी दृष्टिसे उस अमानुषिक साहसको देखने लगे। औरंगज़ेबने भी उसे देखा। इतनेमें राजकुमारके रक्षक चारों ओरसे घिर आये। पर उनकी कुछ भी पर्वा न करके रूपसिंह हौदेकी रस्सियोंको काटने लगा। उसका लक्ष्य यह था कि रस्सियोंके कट जानेसे हौदा राजकुमारके साथ ज़मीनपर आ गिरेगा। रस्सियोंके कटनेमें देर लगी, परन्तु राजकुमारके शरीर-रक्षकोंको वीर राजपूतको घेरकर काट डालनेमें देर न लगी। कहते हैं कि स्वयं औरंगज़ेब उस बहादुरीसे इतना प्रसन्न हुआ था कि वह शरीर-रक्षकोंसे चिल्लाकर रूपसिंहको ज़िन्दा पकड़ लेनेकी प्रेरणा करता रहा। इस प्रकार फिर एक बार राजपूतानेका खज़ाना, मुग़ल-बादशाहोंकी सेवामें, पीछेसे सहायता न पाकर, गाजर-मूलीके भाव बिक गया। अगर खलीलख़ाँ स्वामीके साथ द्रोह न करता, तो इस वीर नाटकका ऐसा बीभत्स अन्त न होता।

दाराकी सेनाने दायें और बायें, दोनों ओरसे आक्रमण किया, और दोनों ओर नीचा देखा। क्या दारा उतने समय तक निकम्मा बैठा था? नहीं। वह भी भाग दौड़ कर रहा था, परन्तु उसने जो कुछ किया, वह न करनेसे बदतर था। वह सेनापति था, उसे चाहिए था कि अपने स्थानसे युद्धका संचालन करता, परन्तु वह अनुभवहीनताकी कमी व्यक्तिगत बहादुरीसे पूरी करना चाहता था। युद्ध के आरम्भसे ही उसकी व्यूह-रचना बिगड़ गई।

जब रुस्तमख़ाँने औरंगज़ेबके दक्षिण पार्श्वपर धावा किया, तब यह समझकर कि बस अन्तिम धावेका समय आ गया, दाराने अपने हाथीको आगे बढ़ाया, और मध्य भागकी मुख्य सेनाओंको लेकर अपने तोपख़ानेसे आगे बढ़ गया, और युद्धके बायें किनारेपर जा पहुँचा। उसके आगे बढ़कर युद्ध-भूमिके एक किनारेपर पहुँच जानेके तीव्र परिणाम हुए। शाही सेनाका सेनापति सेनासे बहुत आगे निकल गया। शाही तोपख़ानेको इस डरसे चुप हो जाना पड़ा कि कहीं गोला दारापर न पड़े, और मध्य भाग कमज़ोर हो गया। आगे बढ़कर दाराको अपनी भूल मालूम हुई। वहाँ उसे मालूम हुआ कि वाम पार्श्वमें राजपूतोंने मुराद बख़्शकी सेनाको परास्त कर दिया है। उसने हाथीका मुँह मोड़ा और सारी युद्ध-भूमिको लाँघता हुआ वाम पार्श्वकी ओर चला। उस समय दोपहरका समय हो चुका था। २९ मईकी गर्मी थी। क्या दारा, और क्या उसके सिपाही, इस भाग-दौड़में गर्मी और प्यासके मारे अधमुए हो रहे थे। फिर भी दारा जब मध्यमें पहुँचा, तब उसे मालूम हुआ कि औरंगज़ेब बड़े संकटमें है। उसके आसपास अधिकसे अधिक हज़ार आदमी होंगे। समय था कि दारा उसपर झपट पड़ता और युद्धका अन्त कर देता। परन्तु कुछ रास्तेकी ख़राबी, और कुछ धूप और थकान, वह दम लेनेके लिये खड़ा हो गया।

वह खड़े होनेकी घड़ी आध घड़ी दाराका अन्त कर गई। औरंगज़ेबकी सेना राजपूतोंके धावेके ढीला पड़ते ही इकट्ठी होकर जम गई। इतने घोर संग्राममें भी उस धैर्यके सागरने अपने मध्य भागके अगले हिस्सेको जहाँका तहाँ जमाया हुआ था। नजाबतख़ाँ और सुल्तान मुहम्मदके घुड़सवार ताजादम खड़े हुए आगे बढ़नेके हुक्मकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही औरंगज़ेबने शत्रुके आक्रमणोंको शिथिल और दाराको किंकर्तव्यविमूढ़ देखा, त्यों ही सारी सेनाको आगे बढ़कर धावा करनेका हुक्म दे दिया। तोपख़ाना दनदनाने लगा, मध्य भागके बिल्कुल ताजादम घुड़सवार

बे-रोकटोक आगे बढ़ने लगे, दोनों पार्श्व दाराकी सेनाके दोनों ओरसे घिरने लगे।

अब दाराकी परीक्षाका समय था। व्यक्तिगत वीरतामें वह किसीसे कम नहीं था; परन्तु क्या वह सेनाका सँचालन कर सकता था? जो सेनापति पराजयके चिह्न होनेपर अपनी सेनाको सँभाल सके, वही सच्चा सेनापति है। दारा परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया। चारों ओरसे घिरकर वह सेनाको न सँभाल सका। उसका उन्नत सफेद हाथी शत्रुओंके तीरोंका सस्ता शिकार हो गया। चारों ओर गोले बरसने लगे। हाथी घबरा गया। किसीने सलाह दी कि हाथीपर बैठना इस समय खतरनाक है। दाराने सलाह मान ली और हाथीको छोड़कर घोड़ेपर सवार हो गया। घोड़ेपर सवार होनेके समय एक नौकर उसकी काठीको ठीक कर रहा था। एक गोली आई, और नौकरके प्राण ले गई।

बस, खेल खतम हो गया। सफेद हाथीका हौदा खाली दिखाई दे रहा है, और घोड़ेका सवार गोलीका शिकार हो गया—यह समाचार सेनामें हवाकी तरह फैल गया। जब दारा ही मर गया, तब कोई लड़े किसके लिये? जिसे जिधर रास्ता मिला, प्राणोंकी ममतासे उधर ही भाग निकला। 'यः पलायति स जीवति' के सिद्धान्तको शिरोधार्य करके सेना-नायक, और सिपाही उस धधकती हुई आगमें बेदम होकर भागे। जो रह गये, वह गोला गोली तलवार या तीरके शिकार हुए। अभागा दारा, और उसका पुत्र सिपिहर शिकोह केवल सौ दोसौ सच्चे सेवकोंसे घिरे हुए रह गये। दाराका दिमाग़ बेठिकाने हो गया था, उसका लड़का फूट फूटकर रो रहा था। सेवकोंने ज़बरदस्तीसे उनके घोड़ोंकी लगामें पकड़कर युद्ध-भूमिसे बाहिर निकला, और आगरेके रास्तेपर डाल दिया। भारतकी राजगद्दीका उम्मेदवार दारा—साठ हज़ार सिपाहियों और मशहूर लड़ाकुओंका सेनापति दारा—थोड़ेसे सेवकोंके साथ उस कड़कड़ाती धूपमें आगरेकी ओर भागता हुआ दिखाई दिया। इसका नाम दैव है—इसीका नाम किस्मत है।

औरंगज़ेबके इतिहास-लेखक प्रो० जदुनाथ सरकारने ठीक ही इस युद्धको दारा शिकोहका वाटर्लू कहा है। वाटर्लूका युद्ध एक ओजस्वी जीवनका, एक चमकदार विजय-यात्राका, एक अनन्त वीर संगीतका, और एक इतिहासके परिच्छेदका अन्तिम दृश्य था। वह नेपोलियनकी आशाओंकी श्मशान-भूमि था, वह फ्रांसके योरपियन साम्राज्यकी अभिलाषाओंका दीप-निर्वाण था। समूगढ़का युद्ध भी दाराकी आशाओंका अन्त था, शाहजहाँकी सजी हुई अक्षौहिणीका प्रलयकाल था, और साथ ही मुग़लोंकी विजय-कामनाओंका दीप-निर्वाण था। समूगढ़की गर्मीमें मुग़ल-नामका वह गौरव, और उसके शरीरका वह वीर्य, जो विजयकी असली चाबी है, क्षीण हो गया। समूगढ़का संग्राम दारा शिकोहके अन्तका ही आरम्भ नहीं था, वह मुग़ल-साम्राज्यके भी अन्तका आरम्भ था।

२०—मुग़लोंका महाभारत

४—शाहजहाँ कैदी हुआ

दाराके मैदान छोड़ भागनेका समाचार पाते ही औरंगज़ेब अपने हाथीपरसे उतरा और खुदाको सिज़दा किया। उसके पीछे रणभूमि विजयके वाद्यसे गूँज उठी। सिपाहियोंने शाही फ़ौजको यथासम्भव लूटा, और फिर हँसते खेलते अपने अपने डेरेकी ओर चले। पराजित सेनाका या दाराका पीछा नहीं किया गया, क्यों कि औरंगज़ेबकी सेनायें भी थक चुकी थीं। डेरेपर पहुँचकर एक बड़े दरबारकी तैयारी की गई, जिसमें राजपुत्रोंने अन्य सेनानायकोंके साथ मिलकर नमाज़ पढ़ी। मुरादबख़्शके शरीरपर कई जगह घाव लग गये थे। जब वह औरंगज़ेबके सामने आया, तो बड़े भाईका हृदय मानों बल्लियों उछल पड़ा। उसका सिर गोदमें लेकर घावको पोंछा, स्वयं पट्टी बाँधी और कुछ आँसू

भी बहा दिये। साथ ही औरंगज़ेबने मुरादबख्शको विजयकी बधाई देते हुए 'बादशाह'के पदसे सम्बोधित किया। इन दिनों औरंगज़ेब मुरादको 'बादशाहजी' और मुराद औरंगज़ेबको 'क़ाज़ीजी' कहकर पुकारा करता था। निःसन्देह, औरंगज़ेब सर्वांगसम्पूर्ण नर था—वह कमालका अभिनय कर सकता था।

उधर दारा बेचारा रातके समय आगरे पहुँचा। लज्जा और दुःखने उसके हृदयको छलनी कर दिया था। पिताकी सलाहके विरुद्ध युद्ध करनेको निकला था, इस लिए वह इतना शर्मिन्दा था कि पिताके पास जानेकी भी हिम्मत न कर सका। सीधा अपने घर पहुँचकर सब दरवाजे बन्द कर लिए। शाहजहाँने बुला भेजा, तो दाराने यही उत्तर दिया कि मेरा मुँह अब किसीके सामने होनेका नहीं है। अब तो अपने अभागे बेटेको जानेकी छुट्टी दीजिए। जो कुछ किस्मतमें लिखा होगा, देखा जायगा। प्रभात होनेसे पूर्व ही शाहजहाँको पता लगा कि दारा अपनी बीबी बच्चोंको लेकर दिल्लीके लिए रवाना हो गया। बूढ़े शाहजहाँके दुःखकी सीमा नहीं थी। वह अपने लाड़ले बेटेको संकटके समय आश्वासन तक न दे सका। फूट-फूट-कर रोया, परन्तु लाचारी थी। अन्तमें उसे दिल्लीके शासकको यह आदेश भेजकर कि दाराके लिए खज़ानेका मुँह खोल दिया जाय, और अपने खास सिपाहियोंमेंसे ५ हजार सिपाहियोंको दाराकी रक्षाके लिए भेजकर ही सन्तोष करना पड़ा।

तीसरे दिन औरंगज़ेबका नक्कारा आगरेके दरवाज़ेपर गूँजने लगा। संसार शक्तिका उपासक है। उदित होते सूर्यके सामने सभी सिर झुका देते है। डूबतेको भाग्य भी सहारा नहीं देता। एक सफलता दूसरी सफलताको खेंचकर लाती है। समूगढ़की विजयसे औरंगज़ेबका सितारा चमक उठा। सिपाही, सेना-नायक, सेनापति और उमरा अहमहमिकासे आगे बढ़कर कदमोंमें सिर रखने लगे। खलीलुल्लाह तो पहले ही बिगड़ चुका था, उसकी देखादेखी और भी बहुतसे सरदार शाहजहाँको छोड़ गये। राजा-

जयसिंहको दाराने अपने पुत्रके साथ शुजाका पीछा करनेके लिए भेजा था। वह शुजाको परास्त करके लौट रहा था। रास्तेमें उसे औरंगज़ेबकी सफलताका समाचार मिला। राजपूतने अपनी तलवार चढ़ती कलाके सामने पेश कर दी। धर्मतका सूरमा महाराजा जसवन्तसिंह अपनी बहादुरीके लिए तो मशहूर हो ही चुका था, अब उसने स्वामि-भक्तिमें भी नाम कमानेका निश्चय करके दाराका पक्ष छोड़कर औरंगज़ेबकी सेवा स्वीकार कर ली। फ़ाज़िल ख़ाँ आदि मुसलमान तो पहले ही ग़ाज़ीकी शरणमें जा चुके थे।

शाहजहाँने यह सब कुछ दुःखित हृदयसे सुना, परन्तु कुछ न कर सका। उसे अब केवल एक ही भरोसा था कि वह किसी प्रकार औरंगज़ेबके पुत्र-भावको जागृत करके सीधे रास्तेपर ला सके। सबसे प्रथम उसने जहानारासे औरंगज़ेबके नाम ख़त लिखवाया, जिसका आशय यह था—'अब शाहजहाँकी सेहत अच्छी हो गई है। अब वह स्वयं राज्य कर रहा है। तुम्हारा फ़ौजोंके साथ पितापर चढ़कर आना केवल पितृद्रोह ही नहीं राजद्रोह भी है। तुम्हें चाहिए कि एक सुपुत्रकी भाँति अकेले आकर पितासे मिलो।' फिर अपने बूढ़े वज़ीर फ़ाज़िलख़ाँकी मार्फ़त भी इस आशयका सन्देश भिजवाया। औरंगज़ेबका जवाब सीधा और रूखा था। शाहजहाँ केवल कठपुतली है। सम्पूर्ण शक्ति दाराके हाथमें आ गई है। वह हम लोगोंका नाश करके सल्तनतको हड़प जाना चाहता है। मेरी केवल यह इच्छा है कि मैं स्वयं बादशाहकी ख़िदमतमें हाज़िर होकर अपनी सफ़ाई पेश करूँ। इसमें जो कोई विघ्नकारी होगा, उसे मैं कुचल डालूँगा।

धीरे धीरे औरंगज़ेबने आगरा शहरपर कब्ज़ा कर लिया। शाहजहाँने दूसरा कोई उपाय न देखकर किलेके द्वार बन्द कर लिए, और उसकी सुरक्षाका प्रबन्ध कर लिया। औरंगज़ेबने भी दूसरा कोई उपाय न देखकर किलेका घेरा डाल लिया, और गोलाबारी भी शुरू कर दी, परन्तु आगरेका किला अपने समयमें अभेद्य

समझा जाता था। शायद औरंगज़ेबके सिपाही शाहजहाँपर सीधा बार करनेमें कुछ आगा पीछा भी करते हों। दारा दिल्लीके पास सेनाओंका संग्रह कर रहा है, यह समाचार भी बराबर आ रहे थे। इन सब कारणोंसे किलेको घेरकर आक्रमणद्वारा जीतनेका विचार छोड़कर औरंगज़ेबने दूसरे ही मार्गका अवलम्बन किया। आगरेका किला यमुनाके किनारेपर है। किलेमें पीनेके और अन्य कार्योंके लिए नदीसे ही पानी जाता था। किलेमें जो कुए थे, वह खारी थे। जिस द्वारसे दुर्गमें पानी ले जाया जाता था, वह खिज़िरी दरवाजा कहलाता था। औरंगज़ेबके आदमियोंने उसपर कब्ज़ा कर लिया। दरवाज़ेकी मेहरावके नीचे आ जानेके कारण किलेकी तोपें और बन्दूकें उनपर कोई असर न कर सकती थीं। इस प्रकार किलेको पानी मिलना बन्द हो गया। खारी पानी कौन पिये? किलेके जो रक्षक शायद कई महीनों तक लड़नेके लिए तैयार थे, पानीका क्लेश हो जानेसे हार गये। शाहजहाँ तो अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने उस अवसरपर अपने विजयी बेटेको एक कवितामय पत्र लिखा, जिसका आशय निम्नलिखित था—

ऐ मेरे बेटे! ऐ मेरे बहादुर!

मैं किस्मतकी शिकायत क्या करूँ।

क्यों कि मुझे मालूम है कि ईश्वरकी इच्छाके विना एक पत्ता भी नहीं हिलता।

अभी कल मैं ९ लाख सिपाहियोंका बादशाह था,
और आज मैं पानीके एक कुल्हड़के लिए तरसता हूँ।
मैं तो उन हिन्दुओंकी ही तारीफ़ करता हूँ,
कि वह अपने मरे हुए बुजुर्गोंको भी पानी देते हैं।
ऐ बेटे, तू अजीब मुसलमान है कि
अपने बापको पानीके लिए तरसाता है।

ऐ भाग्योंवाले बेटे, इस नश्वर संसारमें सौभाग्यपर अभिमान मत कर।

अपने समझदार सिरपर नासमझी और दर्पकी खाक मत डाल।

याद रख कि यह क्षणिक दुनियाँ केवल दोज़खका रास्ता है, और स्थिर ऐश्वर्य उसीको मिलता है, जो खुदाको याद करता, और मनुष्योंपर दया करता है।

मज़हबका अभिमान करनेवाले औरंगज़ेबपर इस मार्मिक अपीलका भी कोई असर नहीं हुआ। उसने केवल इतना ही उत्तर दिया कि 'यह तुम्हारे अपने ही कियेका फल है' और घेरेको अधिक मज़बूत कर दिया।

शाहजहाँको हार माननी पड़ी। ९ लाख सिपाहियोंके मालिकने बेटेके सामने सिर झुका दिया। किलेके द्वार खोल दिये गये। औरंगज़ेबके आदमियोंने खज़ाना मेगज़ीन और युद्धकी समस्त सामग्रीपर अधिकार कर लिया। उसका पुत्र सुल्तान मुहम्मद अपने दादासे जाकर मिला। शाहजहाँने उसे प्रेमसे पुचकारा, और औरंगज़ेबसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। उसका उत्तर यही था कि कई कारणोंसे औरंगज़ेब बापसे नहीं मिलना चाहता। तब शाहजहाँको मालूम हुआ कि मुहम्मद सुल्तान उसके पोतेकी हैसियतसे नहीं, अपि तु जेलरकी हैसियतसे भेजा गया है। वह हरममें क़ैद कर दिया गया। चारों ओर कड़ा सशस्त्र पहारा लगा दिया गया। चुने हुए नौकरोंके सिवा कोई आदमी उस तक नहीं पहुँच सकता था। बीमारीमें वही हकीम वहाँ तक पहुँच सकता था, जिसे औरंगज़ेब विश्वासयोग्य समझे।

इस प्रकार शानदार बादशाह शाहजहाँ १८ जून १६५८ के दिन अपने बेटेका क़ैदी बना। वह इसी अवस्थामें ७ वर्ष तक जिया। इन ७ वर्षोंमें उसने किलेके बाहिर कदम नहीं रखा। औरंगज़ेबने उसकी कैदको यथाशक्ति मीठा बनानेकी चेष्टा की। तरह तरहके

पक्वान्न बनानेवाले रसोइये भोजन तैयार करते थे, प्रसिद्ध नर्तकियाँ, और गायिकायें उसके मनोरंजनके लिए उपस्थित रहती थीं। बेगम जहानारा पिताके हृदयको सान्त्वना देकर, और आघातोंपर मरहम लगाकर अपनी प्रेमशक्तिका परिचय देती रहती थी। लम्बी दाढ़ियोंवाले मुल्ला आते थे, और घण्टों तक कुरान सुनाते थे। हुकूमतके शौकको पूरा करनेके लिए शाहजहाँने बच्चोंको पढ़ाकर उस्ताद बननेकी भी अभ्यर्थना की थी, परन्तु औरंगज़ेबने वह स्वीकार न की, क्यों कि उससे हुकूमतके संस्कारोंके फिरसे जाग उठनेकी सम्भावना थी!

७ वर्ष तक शाहजहाँ इस सुनहले पिंजरेमें क़ैद रहा। औरंगज़ेब उससे कभी नहीं मिला, परन्तु जहानाराकी मार्फत उसकी बातचीत बराबर होती रहती थी। अन्तिम वर्षोंमें दोनोंका मेल भी हो गया था। पिता अपनी लाचार बुज़ुर्गीको पुत्रके प्रति आसीस भेजकर कृतार्थ करता रहता था। १६६६ ई० में, ७६ वर्षकी आयुमें बन्दी शाहजहाँकी आत्मा बन्दीगृहको छोड़कर स्वतन्त्र अन्तरिक्षमें प्रयाण कर गई।

२१—मुग़लोंका महाभारत

५—मुरादबख़्शकी हत्या

पिता को सुरक्षित कैदख़ानेमें बन्द करके औरंगज़ेबने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। हिन्दुस्तानकी सल्तनतका उम्मेदवार मुरादबख़्श खड़ा खड़ा ताका किया। अब तक या तो वह समझ रहा था कि औरंगज़ेब अपने छोटे भाईको गद्दीपर बिठानेकी ख़ातिर इतना प्रयत्न कर रहा है, और या दिलमें ठाने हुए था कि जहाँ आगरा फतह हुआ कि औरंगज़ेबका गला काटकर स्वयं गद्दीपर बैठ जाऊँगा। दोनों ही अवस्थाओंमें शायद वह अपने समयका सबसे बड़ा मूर्ख था। अब उसकी आँखें खुली। उसने देखा कि सल्तनतकी शक्ति हाथमें आनेपर औरंगज़ेबने उससे

यह भी न पूछा कि 'भाई, तुम्हारी क्या राय है?' चुपके ख़ज़ानेकी चाबी अंटीमें दे ली।

वह खुशामदी और सलाहकार, जिन्होंने अपनी बढ़तीके लिए युवराजको बहकाकर गधा बनाया था, हाथसे माल निकलता देखकर घबरा गये। वह मुरादके कान औरंगज़ेबके विरुद्ध भरने लगे। उस अदूरदर्शी युवकके हृदयमें सन्देहका विष समा गया। उसने औरंगज़ेबसे मिलना जुलना बन्द कर दिया, और सिपाहियोंकी अलग भर्ती प्रारम्भ कर दी। वह तबीयतसे उदार था, सेवकोंको खूब तनख्वाहें देता था। बहुतसे ऐसे अफसर तथा सिपाही जो औरंगज़ेबके नियन्त्रण और मितव्ययसे तंग थे, उसकी नौकरी छोड़कर मुरादके यहाँ भर्ती होने लगे। मुरादने स्पष्ट शब्दोंमें अपने असन्तोषको प्रकट करना आरम्भ कर दिया।

औरंगज़ेबको भी मुरादसे जो काम लेना था, वह ले चुका। आगरा और दिल्ली उसके कब्जेमें आ चुके थे, क्यों कि दारा कुछ दिन तक दिल्लीमें ठहरकर लाहौरकी ओर चला गया था। समय आ गया था कि वह असली रूपमें प्रकट होता। सेना और अन्य कर्मचारियोंको आश्वासन देनेके लिए ज़रूरी था कि वह पिता या भाईके विरुद्ध विद्रोहीकी हैसियतका परित्याग करके सिंहासनका स्वामी बनकर दारा या शुजाको परास्त करे। सिंहासनपर बैठनेमें यदि कोई विघ्न था, तो मुराद था। फलत· औरंगज़ेबने मुरादको रास्तेसे हटा देनेका निश्चय कर लिया।

जब औरंगज़ेब आगरेसे दिल्लीकी ओर रवाना हुआ, तब मुराद भी उससे पड़ाव भर पीछे डेरा डाले पड़ा था। धूर्त औरंगज़ेबने मुरादको २० लाख रुपये, और २३३ घोड़े नज़रानेके तौरपर भेजे, और साथ ही कहला भेजा कि अब बहुत शीघ्र ही लूटका हिस्सा बाँटकर भेज दिया जायगा। मूर्ख मुराद नर्म हो गया। शीघ्र ही उसे भाईकी ओरसे दूसरा सन्देश मिला। भाई भाईका परस्पर झगड़ना अच्छा नहीं। विशेषतया जब वह कुफ्रको मिटानेके लिए मैदानमें उतरे हैं, तब तो उनमें प्रेमका अटूट राज्य होना चाहिए।

कुछ दिनोंसे जो नाराज़गी चली आती है, उसे मिटानेके लिए औरंगज़ेबने मुरादको अपने तम्बूमें भोजनके लिए निमन्त्रण दिया।

मुरादके बहुतसे सलाहकारोंने उसे समझाया कि उसे औरंगज़ेबपर विश्वास करके शत्रु-तम्बूमें नहीं जाना चाहिए, परन्तु २० लाख रुपयोंने लूटके एक-तिहाई हिस्सेकी तीव्र लालसा पैदा कर दी थी, मुराद प्रलोभनका संवरण न कर सका। शिकारसे लौटता हुआ औरंगज़ेबके तम्बूमें हाजिर हो गया। बड़े भाईकी प्रसन्नताका क्या ठिकाना था? द्वारपर आकर मुरादको गले लगा लिया, मानों वर्षोंके पीछे दिलका टुकड़ा मिला हो। मुरादके सब साथी बाहिर रह गये, वहीं औरंगज़ेबके सरदार भी थे। दोनों भाई एक सजे हुए शानदार डेरेमें बैठकर देर तक गप-शप करते रहे। भोजन परोसा गया। दोनोंने भरपेट खाया। अन्तमें शराब आई। मुरादका हृदय एक-तिहाई मालकी आशामें फूला हुआ था। प्यालेपर प्याला चढ़ने लगा। यहाँ तक कि आँखोंमें मस्ती आ गई। प्रेमी भाईने मुरादके आरामके सब सामान पहलेसे ही इकट्ठे कर रखे थे। गद्दे-लोंवाला बिस्तर पास ही बिछा हुआ था। औरंगज़ेबने मदमस्त मुरादको उठाकर उसपर लेटा दिया, और स्वयं वहाँसे खिसक गया। इतनेमें एक सुन्दरी दासी पैर दबानेके लिए हाजिर हुई। अब क्या था, मुराद पाँचवें आस्मानकी सैर करने लगा। आँखें बन्द हो गईं, और खुर्राटे सुनाई देने लगे। वह दासी चुपकेसे मुरादकी तलवार और खंजर उठाकर डेरेसे बाहिर हो गई।

थोड़ी देरमें आहट पाकर मुराद आँख मलता हुआ उठा, तो देखा कि बिस्तरके चारों ओर हथियारबन्द सिपाही खड़े हैं। उसका हाथ तलवारकी मूठकी ओर गया तो नदारद। छुरी भी नदारद। अब समझमें आ गया। निराश होकर चारपाईपर बैठ गया, और औरंगज़ेबको कोसने लगा। खुदा, पैगम्बर और कुरानके नामपर औरंगज़ेबने जो कसमें खाई थीं, और जो वादे किये थे, उन्हें याद दिलाने लगा। औरंगज़ेब पर्देके पीछे छिपा हुआ था, शिकारको काबूमें आया देखकर सामने निकल आया, और मुरादसे कहने

लगा—'तेरा दिमाग़ खुशामदियोंके वहकानेसे खराव हो गया है। उसमें हवा भर गई है। उसे ठीक करनेके लिए आवश्यक है कि तुझे कुछ दिनों एकान्तमें रखा जाय ताकि तू अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करे।' साथ ही खुदा, पैग़म्बर और कुरानके नामपर यह भी कसम खाई कि 'मेरे हाथों मेरे भाईका वाल भी वॉका न होगा।' उसके हाथोंमें सोनेकी हथकड़ियाँ डाल दी गईं, हाथीपर वन्द डोलीमें डालकर दिल्लीके पास सलीमगढ़के किलेमें पहुँचा दिया गया।

कुछ दिन पीछे मुरादको ग्वालियरके किलेमें भेज दिया गया। वहाँपर उसका जी लगानेके लिए शराव और औरतोंका प्रवन्ध भी कर दिया गया था। परन्तु मुराद ऐसी मीठी कैदको भी वर्दाश्त न कर सका। उसके छुड़ानेके लिए एक षड्यन्त्र रचा गया। यहाँ तक सफलता भी हो गई थी कि दीवारपर रस्सा डाल दिया गया था, और वाहिर मददगार तैयार थे, परन्तु जब मुराद वाहिर निकलनेके लिए तैयार होने लगा तव उसकी रखैली गायिका सरस्वतीबाईने रोना चिल्लाना शुरू कर दिया कि 'हाय मुझे किसके पास छोड़ चले।' इस शोरसे पहरेदार जाग उठे, और साजिश पकड़ी गई। अव औरंगज़ेवने काँटेको एकदम उखाड़ देनेका ही निश्चय किया। हम लिख आये हैं कि अपने आपको वादशाह उद्घोषित करनेसे पूर्व मुरादवख्शने अली तकी नामके एक वज़ीरको मार डाला था। औरंगज़ेवने उसके लड़केको मुद्दई वनाकर खड़ा कर दिया, और भाड़ेके टट्टू क़ाज़ियोंकी कचहरीमें मुरादवख्शके विरुद्ध हत्याका अभियोग दायर करवा दिया। नाटकका अन्त कैसा हो, यह नाटककारके हाथकी वात है। क़ाज़ियोंने मुरादवख्शको हत्याका अपराधी ठहराकर मृत्यु-दण्डका अधिकारी वतलाया। ४ दिसम्वर १६६१ को ग्वालियरके किलेमें भारतकी गद्दीके उम्मेदवार मूर्ख मुरादका सिर मज़हवका नाटक रचनेवाले भाई औरंगज़ेवकी आज्ञानुसार दो गुलामोंद्वारा धड़से अलग कर दिया गया।

इस भ्रातृहत्या और विश्वासघातके पीछे भी औरंगज़ेवने अवश्य ही ज़मीनपर वैठकर खुदाको सिज़दा किया होगा।

मुग़लोंका महाभारत

६—शुजाका अन्त

मुरादबख़्शको सलीमगढ़के क़िलेमें कैद करके औरंगज़ेबने वह दिखावटका पर्दा भी उठा दिया, जो घरू युद्धके आरम्भमें मुँहपर डाल लिया था। 'पादिशाहजी' को कैद करके 'क़ाज़ीजी' स्वयं बादशाह बन गये। २१ जुलाईके शुभ दिन दिल्लीमें औरंगज़ेबने अपना राज्याभिषेक कर लिया। अभिषेकके समय वह 'पादिशाह' और 'ग़ाज़ी' की उपाधियोंके अतिरिक्त 'आलमगीर' की उपाधिसे भी विभूषित किया गया। 'पादिशाह' तो वह बन ही गया था, 'ग़ाज़ी' बनना दाराको परास्त करनेके लिए आवश्यक था, और 'आलमगीर' (विश्वविजेता) का विशेषण उन विजयोंका सूचक था, जिन्होंने औरंगज़ेबको ऊँचे आसन तक पहुँचाया था।

पिता लोहेके दरवाज़ों और तलवारोंकी श्रेणीके पीछे सुरक्षित कोठरीमें बाँध दिया गया था, और भारतकी बादशाहतका मूर्ख उम्मेदवार मुराद सोनेकी हथकड़ी पहिनकर सलीमगढ़के किलेमें बन्द हो गया था। अब औरंगज़ेबको तीन ओरसे ख़तरा हो सकता था। पंजाबमें दारा, बिहारमें शुजा, और संयुक्तप्रान्तमें दारा शिकोहका पुत्र सुलेमान शिकोह यह तीन सेनापति दिल्लीकी ओर नज़र उठाये देख रहे थे। औरंगज़ेबने इन तीनोंको जिस तरह निपटाया, उसकी कहानी कहनेके लिए हम थोड़ी देरके लिए तारीख़ोंका क्रम छोड़कर कथानकके क्रमका ही आश्रय लेंगे। पहले हम शाह शुजाको निपटा देते हैं।

शाहजहाँकी बीमारीका समाचार सुनकर अपनेको सम्राट् उद्घोषित करनेवालोंमें पहला नाम शुजाका था। उसने सिंहासनपर बैठते हुए निम्नलिखित सुदीर्घ और शब्दाडम्बरपूर्ण नामकी घोषणा की थी—

'अबुल फ़ौज नसीरुद्दीन मुहम्मद तैमूर तृतीय सिकन्दर द्वितीय शाह शुजा बहादुर ग़ाज़ी' नाम तो बड़ा शानदार था, परन्तु दुःख है कि शुजा उस नामको निभा न सका। वह समझदार, मिलनसार, और नर्म स्वभावका राजकुमार शाहजहाँके कई गुणोंसे युक्त था, परन्तु एक दोषने सब गुणोंको परास्त कर दिया था। वह विलासी और प्रमादी था। १७ वर्षके लगभग बंगालके [illegible]पूर्ण प्रान्तमें सुखपूर्वक रहकर उसकी स्वभावसिद्ध नर्म प्रकृति और अधिक शिथिल हो गई थी। वह बलख, और कन्दहारकी चढ़ाइयों, और दक्षिणकी लम्बी चढ़ाइयोंमें ठोकरें खाकर पके हुए औरंगज़ेबका सामना करनेके योग्य न रहा था। कहाँ तो औरंगज़ेब, जो इन दिनों ज़मीनपर सोता था, शराबको मुँह नहीं लगाता था, सूर्योदयसे पहले दिनभरके कार्यके लिए तैयार हो जाता था, और एक दिनमें ही दो तीन मंज़िलें तय करता था; और कहाँ शुजा जो युद्धभूमिमें भी ऐसे पलंगपर सोता था, जिसके चारों ओर जालीका पर्दा हो। शराबमें मस्त होकर सोता था, और दिन चढ़े उठता था।

शाह शुजा बहादुर ग़ाज़ी १६५८ ई० के जनवरी मासमें दिल्ली-की गद्दीपर बैठनेके लिए बंगालसे रवाना होकर बनारसके समीप पहुँच गये थे। उसके पास काफ़ी सेना थी। सेनाके अतिरिक्त एक ऐसी वस्तु उसके पास थी, जो दूसरे किसी उम्मेदवारके पास नहीं थी। वह थी, बंगालकी हल्की किश्तियाँ, जो नदीको पार करनेमें सहायता दें। उस समयके युद्धमें दुर्गको छोड़कर, और शत्रुका मार्ग रोकनेके लिए नदीसे बढ़कर कोई उपयोगी पदार्थ नहीं था। शुजाका हल्की किश्तियोंका बेड़ा नदीको निकम्मा बनानेके लिए पर्याप्त था। वह प्राकृतिक दुर्गका [illegible] उत्तर था।

शुजा बनारसके पास पहुँच चुका था, जब सुलेमान शिकोहकी अध्यक्षतामें राजा जयसिंह और दिलेरख़ाँ रुहेलाकी सेनाओंने उसका रास्ता रोक दिया। उस समय तक राजघाटका स्वामी

दारा था। १४ फरवरीको दोनों सेनाओंका पहला संघर्ष हुआ, और वही अन्तिम था। शुजा पलंगपर पड़ा खुर्राटे भर रहा था, उसकी सेना पड़ी हुई दिल्लीके सपने ले रही थी, जब प्रभातकी अँधियारीमें सुलेमान शिकोहकी सेनाओंने उनपर धावा बोल दिया। शुजाकी सेना गाजर-मूलीकी तरह कट गई। जिसे जिधर रास्ता मिला, भाग निकला, स्वयं शुजाको अपनी किश्तियोंपर बैठकर गंगाकी धारकी शरण लेनी पड़ी। कैम्प लुट गया, जिससे शुजाका कमसे कम दो करोड़ रुपयोंका नुकसान हुआ। इस प्रकार पहली टक्करमें नीचा देखकर शुजा बिहारकी ओर भाग गया। मुंगेरमें पहुँचकर उसे दम लेनेका अवसर मिला।

परन्तु इतनेमें शतरंजके खेलका ढंग बदल चुका था। दाराको धर्मतमें परास्त करके औरंगज़ेबका युद्ध-यन्त्र आगरेकी ओर गड़-गड़ाता हुआ बढ़ रहा था। दारा शिकोहको उस यन्त्रकी गतिके रोकनेके लिए प्रत्येक सहायककी ज़रूरत थी। उसने सुलेमा शिकोहको तथा अन्य सब सेनापतियोंको वापिस बुला भेजा। वापिस जानेके लिए शुजाके साथ किसी न किसी तरहकी सन्धि कर लेना ज़रूरी था। यह शर्तें तय पाईं कि बंगाल, बिहार और उड़ीसाका पूर्णाधिकार शुजाको दिया जाय, और उसकी राजधानी राजमहलमें रहे। यह लीपापोती करके सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह आगरेकी ओर भागे, परन्तु उनके पहुँचनेसे पूर्व ही दारा शिकोहके हाथोंसे राज्यकी बागडोर फिसल चुकी थी। समू-गढ़में उसका वाटर्लू लड़ा जा चुका था। कमज़ोरका साथी दुनि-यामें कौन है? जो पवन वनमें लगी हुई खाण्डवाग्निको भड़कानेमें दूतका काम करता है, वही निर्बल दीपकको बुझा देता है। राजा जयसिंह और दिलेरखाँने भी जब सुना कि औरंगज़ेबका सितारा चढ़तीपर है, तो बेचारे सुलेमानको आकाश और पृथ्वीके मध्यमें त्रिशंकुकी तरह छोड़कर विजेताके चरणोंमें जा पड़े।

गद्दीपर बैठकर औरंगज़ेबने पहला काम यह किया कि शुजाको एक प्रेमपूर्ण पत्र लिखा। उसे दाराका डर बना हुआ था। वह

दोनोंसे इकट्ठा नहीं लड़ना चाहता था। उसने शुजाको लिखा कि "तुमने शाहजहाँसे प्रायः यह प्रार्थना की थी कि तुम्हें विहारका प्रान्त भी दे दिया जाय। मैं उस इच्छाको पूर्ण करता हूँ। तुम बंगाल और विहारपर आनन्दसे शासन करो। जब मैं दारासे निवट लूँगा, तब तुम्हारी भूमि तथा धनसम्बन्धी अन्य इच्छायें भी पूर्ण करूँगा।" शुजा मुरादबख्श जैसा मूर्ख नहीं था। उसने धूर्ततापूर्ण पत्रका धूर्ततासे ही उत्तर दिया, परन्तु युद्धकी तैयारी जारी रखी।

औरंगज़ेब दाराकी तलाशमें पंजावकी ओर चला गया। शुजाको आगरेपर कब्जा करके, और शाहजहाँको जेलसे छुड़ाकर दिल्लीपति बननेका इससे अच्छा अवसर कौनसा मिलता? वह थोड़ीसी परन्तु विश्वासपात्र सेना लेकर बाजकी तरह आगरेकी ओर झपटा और झपाटेसे इलाहाबाद तक पहुँच गया। उसे भी अधीनतामें लाकर शुजा आगे बढ़ा। वहाँसे तीन पड़ाव आगे, फतहपुर ज़िलेमें खजवा नामका एक शहर है। वहाँ औरंगज़ेबके लड़के सुल्तान मुहम्मदने बंगालकी सेनाओंका रास्ता रोक दिया। तीन दिन पीछे स्वयं औरंगज़ेब दाराका पीछा करनेका काम सेनापतियोंपर छोड़कर खजवाके युद्ध-क्षेत्रमें पहुँच गया। दारा बेचारेके पैर कहीं टिकने न पाते थे। उससे कुछ समय तक अधिक खतरा नहीं था। इधर शुजा राजधानीके समीप पहुँच रहा था। औरंगज़ेबको शुजाके समाचार मुल्तानमें मिले। वहाँसे वह चुनी हुई घुड़सवार सेनाके साथ एक एक दिनमें कई कई पड़ाव करता हुआ लगभग दो महीनोंमें युद्ध-क्षेत्रमें आ पहुँचा। शुजाको स्वप्नमें भी विचार न था कि औरंगज़ेब इतना शीघ्र पंजाबसे लौट आयेगा। जो उसे असम्भव प्रतीत होता था, वह औरंगज़ेबने कर दिखाया। तब क्या आश्चर्य था कि शुजाको राजगद्दी न मिली, और औरंगज़ेबको मिल गई?

३ जनवरी १६५९ ई० के दिन खजवाका प्रसिद्ध संग्राम हुआ। इस युद्धमें शुजा परास्त हुआ, और औरंगज़ेब विजयी हुआ, परन्तु सर्वसम्मतिसे यह माना चुका है कि यदि युद्धकी प्रतिभा, और

वीरताको ही विजयका अधिकारी माना जा सकता, तो सेहरा शुजा और उसकी सेनाके सिरपर ही बँधता। औरंगज़ेबकी सेनायें शुजाकी अपेक्षा तिगुनीके लगभग थी। उसके पास आगरे और दिल्लीके अस्तबलोंके हाथी घोड़ोंके अतिरिक्त अपरिमित युद्ध-सामग्री थी, तो भी युद्धके पूर्वार्धमें ऐसा अवसर आ गया था कि औरंगज़ेब अपने ९० हजार सिपाहियोंकी सेनाको तितर बितर होनेसे बचा सकेगा, या नहीं, यह सन्दिग्ध हो गया था। शुजाने राजा जसवन्तसिंहको तोड़ लिया था। वह औरंगज़ेबकी सेनामें सेनापति था, परन्तु यह अनुभव करके कि उसका औरंगज़ेबने काफी आदर नहीं किया, उसने प्रभातके अन्धेरेमें शाही सेनापर धावा बोल दिया। नींदसे आँखें मलते हुए उठकर औरंगज़ेबके सिपाहियोंने देखा कि राजपूतोंकी नंगी तलवार उनके सिरपर घूम रही है। घबराकर भागनेके सिवा रक्षाका कोई उपाय नहीं था। सैकड़ों मारे गये, हजारों भाग गये, सेनामें हाहाकार मच गया। उस भीड़के समयमें फिर औरंगज़ेबके धैर्य और निर्भय साहसने ही उसे सहारा दिया। वह शोर सुनकर उठा और तम्बूसे बाहिर आया। जब उसे महाराजा जसवन्तसिंहके द्रोहकी बात सुनाई गई, तो उसने हाथके इशारेसे केवल इतना सूचित किया कि 'गया तो जाने दो' और हाथीपर सवार होकर सेनामें घूम घूमकर सेनापतियों और सिपाहियोंकी हिम्मत बढ़ाने लगा। फल यह हुआ कि राजा जसवन्तसिंहके राजपूत शाही-सेनाके थोड़ेसे भागको छोड़कर शेष सेनाको कोई हानि न पहुँचा सके।

युद्ध आरम्भ होनेपर पहले पर्वमें शुजाके फौलादसे मढ़े हुए मस्त हाथियोंने बड़ी आफ़त मचाई। तीन विशाल हाथी शत्रुकी सेनाकी ओर धकेल दिये गये। वह सूँड़ घुमाते और चिंघाड़ते हुए जब सिपाहियोंपर टूटे, तो एकदम तहलकासा मच गया। बनी हुई कतारें टूट गईं, उसके साथ ही हिम्मत टूट गई। शुजाके घुड़सवार मस्त हाथियों द्वारा किये गये मार्गसे आगे बढ़कर शत्रुके सैन्यका संहार करने लगे। उन कवचधारी तीन दैत्योंकी गतिको रोकना

असम्भव प्रतीत होता था। देखते ही देखते औरंगज़ेबका वाम पार्श्व तितर-बितर हो गया। बड़े बड़े अनुभवी सेनापति पीठ दिखाकर भागते नज़र आने लगे।

वाम पार्श्वकी धज्जियाँ उड़ाकर वह मस्त हाथी शत्रु-सेनाके मध्य भागकी ओर उमड़े। वहाँ भी हाहाकार मच गया। व्यूह-रचना टूट गई। घुड़-सवार और पैदल बौखलाकर इधर उधर भागने लगे। मध्यमें स्वयं औरंगज़ेब था। उसके चारों ओर भी मैदान खाली हो गया। केवल दो हज़ार घबराये हुए सिपाही हाथीको घेरे खड़े थे। इतनेमें शाही सेनामें अफ़वाह फैल गई कि औरंग-ज़ेब मर गया। बस फिर क्या था, जिसे जिधर रास्ता मिला भाग निकला। बहुतसे वीर पुरुषोंने तो आगरेमें जाकर ही दम लिया!

क्षणभरके लिए प्रतीत होने लगा कि औरंगज़ेबकी जीवन-यात्राका अन्त आ पहुँचा, परन्तु उस गम्भीर सागरको विचलित करना कठिन था। औरंगज़ेबने भागनेसे रोकनेके लिए अपने हाथी-के पाँव जंजीरोंसे जकड़वा दिये, और वह सेनाको सँभालनेका यत्न करता रहा। मस्त हाथियोंमेंसे दो भालों और तीरोंकी मारसे घबराकर मध्यभागको छोड़ दूसरी ओर भाग निकले। तीसरा बहुतसे हाथियोंसे घिरकर क़ैद कर लिया गया। इस प्रकार उस राक्षसी मायासे छुट्टी पाकर औरंगज़ेबने अपनी सेनाको सँभालना शुरू किया। शुजाकी छोटीसी सेना अपना चमत्कार दिखाकर थक चुकी थी। आक्रमणकारियोंको आक्रमणका लक्ष्य बनते देर न लगी। हाथियोंकी आफ़तके टल जानेपर औरंगज़ेबकी सेना-के सँभलने और शत्रु-सेनापर आक्रमण आरम्भ करनेमें देर न लगी। शीघ्र ही शुजाकी शक्ति घटने लगी। औरंगज़ेबका तोपख़ाना एक ओर आफ़त मचा रहा था, और अग्रभाग दूसरी ओर बढ़-बढ़कर वार कर रहा था। शुजाकी सेना भागने लगी। स्वयं राज-कुमारका हाथी दुश्मनोंसे घिर गया। चारों ओरसे तीर और बर्छे

ओलोंकी तरह बरस रहे थे। अन्तमें शुजाको हाथीकी पीठको छोड़, घोड़ेपर सवार होकर युद्ध-क्षेत्रसे भागनेके लिए लाचार होना पड़ा। उसको दुश्मनोंने इस तरह घेर लिया था कि यदि वह न भागता, तो पकड़े जानेका भय था। इस प्रकार, खजवाके संग्राममें भी औरंगज़ेबकी प्रशान्त धीरता और निर्भय वीरताने डूबते हुए सितारेको थाम लिया और पराजयकी कोखमेंसे विजयकी श्रीको निकाल लिया।

खजवाके संग्राममें शुजाकी कमर टूट गई, परन्तु उसकी महत्त्वाकांक्षा नहीं टूटी। यह मुग़ल-राजवंशके रुधिरकी विशेषता थी कि वह मस्तक झुकाना नहीं जानते थे। राज्य करना या मरना—इन दोके बीचमें तीसरा मार्ग उनके लिए नहीं था। शुजा खजवाके मैदानसे भागकर सीधा बंगालमें पहुंचा। औरंगज़ेबकी आज्ञासे मीर जुमला और राजकुमार सुलतान मुहम्मदने उसका पीछा किया। शुजाने पहले मुंगेरमें अपनी सेनाओंको एकत्र करने और शाही सेनाओंके मार्गको रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु मीर जुमलाने पहाड़ी रास्तेसे घूमकर उसके वाम पार्श्वको खतरेमें डाल दिया, जिससे उसे मुंगेर छोड़कर राजमहलमें डेरा डालना पड़ा। शाही सेनाओंने वहाँ भी पीछा किया। शायद शुजाका वहाँ रुकना भी असम्भव हो जाता, अगर वर्षाऋतु सहायताके लिए न आ जाती। बरसातमें बंगालके नाले दरिया बन जाते है, और दरिया छोटे सिन्धु बन जाते हैं। शुजाके पास बेड़ोंकी शक्ति अधिक थी, इस कारण बरसातमें केवल उसने शत्रुओंका मार्ग रोका ही नहीं, मौका पाकर उन्हें हानि भी पहुँचाई। उसी समय औरंगज़ेबके युवराज सुलतान मुहम्मदने कुछ मीर जुमलाके कठोर व्यवहारसे तंग आकर, और कुछ शुजाकी लड़कीके प्रेमके वशमें पड़कर अपने पिताका साथ छोड़ दिया, और शुजाकी सेनामें जा मिला। शुजाने उसकी बड़ी आव-भगत की, और धूमधामसे युवराजकी शादी अपनी कन्यासे कर दी।

यह शुजाके भाग्य-प्रदीपकी आखिरी चमक थी। युवराज सुलतान मुहम्मद नई बीबीको लेकर शीघ्र ही फिर पिताकी शरणमें चला गया। बरसातका अन्त होते ही दिल्लीसे सहायक सेनाओंका आना प्रारम्भ हो गया। मीर जुमलाने भी नये उत्साह और उद्योगसे शुजाको घेरना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही अभागे शाह शुजाको राजमहलका किला खाली करके ढाकाकी ओर भाग जाना पड़ा। मीर जुमलाने फिर भी पिण्ड न छोड़ा। हारते हुए राजकुमारको पुराने सहायक और सलाहकार भी त्यागने लगे। उधर औरंगज़ेब मीर जुमलाकी मददके लिए और कुमुक भेज रहा था। इन सब अवस्थाओंने शुजाकी हिम्मत तोड़ दी, उसे भारतकी सीमाके अन्दर सिर छुपानेका कोई स्थान दिखाई नहीं दिया, तब लाचार होकर वह थोड़ेसे साथियों और परिवारके साथ अराकानके राज्यमें चला गया।

इसके आगे शुजाका क्या हुआ, यह निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। कुछ दिनोंतक शुजाका भूत लोगोंके सिरपर सवार रहा। औरंगज़ेबने बहुत दिनोंतक खोज जारी रखी। दो साहसिक आदमियोंने शुजाके नामसे विद्रोह खड़े करनेका भी यत्न किया, परन्तु कुछ फल न निकला। अधिक सम्भव यह है कि अराकानके हिन्दू राजाके आतिथ्यका दुरुपयोग करके शुजाने उसके राज्यकी मुसलमान प्रजाको बहकाकर विद्रोहके लिए खड़ा करना चाहा, जिससे रुष्ट होकर राजाने शुजाको या तो समूल नष्ट कर दिया, और या उसे निर्वासित कर दिया, और शुजा और उसका परिवार जंगली शिकारियों या जंगली जन्तुओंका शिकार हुआ।

इस प्रकार दिल्लीकी गद्दीके दूसरे उम्मेदवार राजकुमार शाह शुजाका अन्त हुआ।

२३—मुग़लोंका महाभारत

७—दारा-परिवारका दारुण वध

हमने शाहजहाँ, मुरादबख्श और शुजाका अन्त देख लिया। अब हम मुग़लोंके महाभारतका अन्तिम दृश्य, जो समयमें अन्तिम न होता हुआ भी महत्त्वमें अन्तिम ही है, पाठकोंके सामने रखते है। दाराके परिवारका दारुण वध दारुणता और गिरावटमें अपनी उपमा नही रखता। इसकी क्रूरता और रूखेपनने महाभारतके अन्तिम दृश्योंको भी परास्त कर दिया। इस एक ही घटनाने दुनियाको बतला दिया, कि राजलक्ष्मीके प्रलोभन और स्वार्थमूलक विद्वेषके वशभूत होकर एक ही गोदमें पले हुए भाई एक दूसरेके क्रूर शत्रु कैसे बन जाते हैं, मज़हबका दम भरनेवाले पुरुष राक्षसका रूप कैसे धारण कर लेते है, दासवृत्तिको स्वीकार कर लेनेवाले वीरोंकी मनुष्यता और उदारता कैसे कुण्ठित हो जाती है और दुष्ट दुर्दैव शाहोंको कंगाल और कंगालोंको शाह कैसे बना देता है।

दाराने आगरेसे भागकर दिल्लीमें केवल उतने दिन लगाये, जितने वहाँका ख़ज़ाना ख़ाली करने और लड़ाईका सामान इकट्ठा करनेके लिए अत्यावश्यक थे। उस कार्यको पूरा कर, वह लाहौरकी ओर रवाना हो गया। लाहौर उसका अपना प्रान्त था। उसका शासक दाराका अधीन और अनुगृहीत था। इसके अतिरिक्त काबुलके सूबेदार महाबतख़ाँसे भी दाराको सहायताकी आशा थी, क्योंकि वह शाहजहाँका पुराना साथी, और सेवक था। दाराको उसपर भरोसा था। लाहौरमें दाराने लगभग डेढ़ मास व्यतीत किया। इस समयमें खाली कोषको भरनेके अतिरिक्त उसने नई भर्ती भी ज़ोर शोरसे की।

औरंगज़ेबने आगरेपर कब्जा करके पहला काम तो यह किया कि मुरादबख्शको सलीमगढ़के सुपुर्द कर दिया, और दूसरा काम

यह किया कि बहुतसी सेना दाराका पीछा करनेके लिए भेजी। वह अभागा युवराज लाहौरमें शक्ति-संचय करनेका यत्न कर रहा था। जब उसे औरंगज़ेबकी सेनाके पंजाबकी ओर बढ़नेका समाचार मिला, तब उसने अपने सेनापतियोंको सतलुजके रास्ते रोकनेके लिए रवाना कर दिया। जैसे चूहोंके सब मनसूबे तभीतक कायम रहते हैं जब तक बिल्लीका सामना न हो, उसी प्रकार सम्पूर्ण घरू संग्राममें दाराके सब संकल्परूपी बालूके घर तभीतक जीवित रहते थे जबतक औरंगज़ेबका धक्का न लगे। औरंगज़ेबका भाग्य दाराके भाग्यपर छाया गया था। जहाँ दोनोंकी टक्कर हुई, कि दाराका भाग्य डगमगाया। औरंगज़ेबकी सेनाके सतलुजके पार होते ही दाराकी सेना व्यास नदीका किनारा रोकनेके लिए भागी, और जब औरंगज़ेबके सेनापति व्यास नदीपर पहुँचे, तो दाराके सेनापति लाहौरकी ओर मुँह करके सरपट गतिसे रवाना हो गये।

मार्ग निष्कंटक देखकर औरंगज़ेबकी सेनायें लाहौरकी ओर घिरने लगीं। मुरादको निपटा, और अपने आपको बादशाहकी गद्दीपर बिठाकर औरंगज़ेब भी सेनाओंके पीछे पीछे दाराको परास्त करनेके लिए चला आ रहा था। दारा काँप गया। वह अपने छोटे भाईसे डरने लगा था। उसका आत्म-विश्वास जाता रहा था। अभी औरंगज़ेबकी बू भी लाहौरमें न पहुँची थी, कि दारा धन-दौलत और परिवारको हाथियों और ऊँटोंपर लादकर लगभग १२ सहस्र सेनाके साथ मुल्तानकी ओर भाग खड़ा हुआ। यहाँसे एक अद्भुत मृगयाका प्रारम्भ हुआ। आगे आगे भारतकी राजगद्दीका उत्तराधिकारी युवराज दारा डरी हुई हरिनीकी भाँति कुलाँचें मारता चला जाता था, और पीछे पीछे औरंगज़ेबकी सेना व्याधोंकी तरह कमानपर तीर चढ़ाये हुए दौड़ी जा रही थी। दाराका वेग प्रशंसनीय था, तो शिकारियोंकी लगन और ढिठाई साधुवादके योग्य थी। लाहौरसे मुल्तान, मुल्तानसे भक्खर, और भक्खरसे ठट्ठा—पंजाबसे सिंध, और सिन्धसे कच्छ—इस प्रकार यह शिकारकी-भाग दौड़ लगभग ५ महीनोंतक जारी रही। न

शिकार ही हाथ आया, और न शिकारियोंने ही उसे चैनसे बैठने दिया।

दारा सिन्धसे भागकर कन्दहारमें आश्रय पाना चाहता था, परन्तु उसके परिवारने और साथियोंने उस जंगली जातियोंकी गुफामें जानेसे इन्कार कर दिया। तब आखिर उसे कच्छके रास्ते गुजरातकी ओर मुड़ना पड़ा। उस बेचारेकी किश्तीको हवाका झोंका जिधर ले जाता था, उसी ओर चल देती थी। उसका एक ही लक्ष्य था कि वह डूबने न पावे। हवाका झोंका आया, और दाराकी किश्तीको गुजरातमें ले गया।

गुजरातमें जाकर उसके भाग्य कुछ समयके लिए चमके। औरंगज़ेब शुजाके समाचार सुनकर दिल्लीको लौट गया था। उसकी छायाके दूर होते ही दाराका सितारा कुछ क्षणके लिए चमक उठा। कच्छके राजाने उसे सहारा देकर गुजरातमें पहुँचा दिया। गुजरातमें पहले जामनगरके जाम साहिबने उसका स्वागत किया, फिर गुजरातके सूबेदार, औरंगज़ेबके श्वशुर शाह नवाज़खाँने उसके प्रति मित्रताका हाथ बढ़ाया। अहमदाबादके क़िलेमें जो खज़ाना था, उसका द्वार दाराके लिए खुल गया। आशाकी बेल फिर हरी हुई, दिल्लीकी राजगद्दीका स्वप्न फिर दिमाग़पर सवार हो गया। नई सेनाकी भर्ती होने लगी। इसी समय एक और मंगल-सूचना प्राप्त हुई। जोधपुरके महाराज जसवन्तसिंहने दाराको प्रेमभरा पत्र लिखा, जिसमें युवराजको अजमेरमें निमन्त्रण देते हुए आशा दिलाई कि राजपूत सरदार औरंगज़ेबके हाथसे गद्दी छीननेमें हर प्रकारसे दाराकी सहायता करेंगे। बड़ा जबर्दस्त प्रलोभन था। दारा जानता था कि राजपूतोंकी सहायताका क्या अभिप्राय है। उसे यह भी मालूम था कि राजपूत राजा औरंगज़ेबसे असन्तुष्ट हैं। राजा जसवन्तसिंहका पत्र उसके लिए मानो अमृतका सन्देश था—प्यासेके लिए मेघकी गर्जना थी। राजपूतों और नई भर्ती हुई सेनाकी सहायतापर भरोसा करके उसने फिर

एक बार अपनी नय्याका लंगर खोल दिया। नय्या भाग्योंकी धारके साथ राजपूतानेके केन्द्र, अजमेर नगरकी ओर बढ़ चली।

शुजाकी शक्तिको खजवाके युद्धमें परास्त करके औरंगज़ेब दिल्लीमें आया, तो उसे दाराके भाग्य-परिवर्तनके समाचार मिले। उसे दाराको गुजरातके सूबेदार, और जसवन्तसिंहकी सहायता मिलनेका वृत्तान्त भी विदित हुआ। अनथक औरंगज़ेबकी तीव्र प्रतिभाने गुजरातसे आती हुई उस नई आपत्तिका प्रतिकार सोचने और करनेमें विलम्ब न किया। राजा जसवन्तसिंह एक निर्बल व्यक्ति था। बड़े दुःखके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि उसने अपनी दुरंगी चालों और राजनीतिक-कलाबाजियों द्वारा राजपूतोंके नाम और यशको बहुत नीचा दिखाया। यदि वह राजपूती मान-मर्यादाकी रक्षाके लिए मुग़लोंके घरू संग्रामसे बिलकुल अलग रहता, तो बहुत अच्छा होता। यदि यह सम्भव नहीं था, तो उसने दाराकी बाँह पकड़ी थी, अन्ततक उसीका साथ निभाता। फिर उसे छोड़कर औरंगज़ेबका साथी बना था, तो राजा जयसिंहकी तरह गुलामीमें ही विश्वासपात्र बना रहता। न उसने स्वाधीनताकी ही शान रखी, और न गुलामीका ही मान रखा। जिसे आज वचन दिया, कल उसे धोखा दे दिया। धोखा देकर भी शिक्षा ग्रहण न की, और फिर उसीके पाँव चूमे। यद्यपि राजा जयसिंहने अपने धर्मके द्वेषी औरंगज़ेबके आज्ञाकारी औज़ार बनकर हिन्दुओंको बड़ी हानि पहुँचाई, परन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उसने अपने पन और वचनको निभाकर आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया। यदि दूसरेका वशंवद ही बनना पड़े, तो विश्वासघाती वशंवद बननेकी अपेक्षा विश्वासपात्र वशंवद बनना ही बेहतर है। विश्वासघात जैसा महापाप किसी अंशमें यदि क्षन्तव्य हो सकता है, तो केवल उसी दशामें, यदि उसका परिणाम पराधीनताका नाश और स्वाधीनताकी प्राप्ति हो। महाराज जसवन्तसिंहने न स्वाधीनवृत्ति ही धारण की, और न विश्वासकी ही रक्षा की। दारा केवल उसीके वचनपर विश्वास करके गुज-

रातके सुरक्षित सूबेको छोड़कर अजमेरकी ओर रवाना हुआ था। अजमेर पहुँचनेसे पूर्व ही उसे समाचार मिल गया कि औरंगज़ेबकी प्रेरणासे राजा जयसिंहने जसवन्तसिंहको डरा और फुसलाकर दाराके पक्षसे तोड़ लिया है। दाराने कई दूत भेजे, अपने लड़केको भी भेजा, कि किसी प्रकार जसवन्तसिंह सहायताको आये, परन्तु सब यत्न व्यर्थ हुए। राजपूत अपनी बातसे टल गया। दाराकी कमर टूट गई।

परन्तु बेदिल होनेका अवसर नहीं था। क्रोधसे दाँत भींचे हुए, औरंगज़ेब, दाराकी किस्मतकी तरह उमड़ता हुआ अजमेरपर टूट रहा था। उसके साथ हिन्दुस्तानकी विजयिनी शक्ति थी। दाराके पास ले देकर २० हजारके लगभग सिपाही थे, परन्तु भागनेको भी जगह कहाँ थी? भागतेका साथ भाई भी नहीं देता। फँसे हुए शिकारकी तरह दाराने भी लड़ मरनेका निश्चय करके अजमेरसे ४ मील दक्षिणकी ओर देवरी नामक पहाड़ीकी किलाबन्दी की, और उसे अभेद्य दुर्ग बनाकर औरंगज़ेबके आक्रमणकी प्रतीक्षा करने लगा। दारा विजयकी आशासे नहीं, परन्तु निराशाके उद्वेगसे ही लड़ मरनेपर उतारू हो गया था। १२ मार्चको देवरीका संग्राम आरम्भ हुआ। ३ दिन तक गोलाबारीसे आकाश गूँजता रहा, और अजमेरकी घाटियाँ कम्पायमान होती रहीं। औरंगज़ेबकी सेनाओंने दाराके व्यूहको तोड़नेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु सफलता नहीं हुई। तीसरे दिन शामको औरंगज़ेबने युद्धका क्रम बदल दिया। सारे व्यूहपर आक्रमण करना छोड़कर समस्त शक्तिसे दाराके वाम पार्श्वपर आक्रमण किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यूह टूट गया। एक भागके टूटते ही साराका सारा पहाड़ी किला छिन्न भिन्न हो गया।

दाराने अपने परिवारको पहलेसे ही भागनेके लिए तैयार करके अनासागरके किनारे हाथियोंपर सवार करा छोड़ा था। विचार यह था कि यदि भागना ही पड़ा, तो दारा परिवारको साथ लेकर पहाड़ी रास्तेसे भाग निकलेगा, परन्तु पराजय इतनी ज़बर्दस्त

और बेदिली इतनी बढ़ी हुई थी कि दारा अजमेर तक जानेका साहस न कर सका। युद्धस्थलसे ही थोड़से साथियोंको लेकर भाग निकला। परिवारके लोग बेचारे अलग कई दिनों तक पहाड़ी रास्तोंमें भटका किये। दाराका सबसे बड़ा मददगार शाहनवाज़खाँ मारा गया, सेना तितर बितर हो गई, खज़ाना लुट गया, अधिक क्या कहें, उसके सँभलनेकी आशाका सर्वनाश हो गया।

अब दाराके लिए भारतकी राजगद्दीकी आशा या उमंग मर चुकी थी। उसकी भाग-दौड़ सफलताकी आशासे नहीं, केवल प्राणरक्षाके लिए थी। भारत-सम्राट्के युवराजकी उस आपत्ति-भरी भाग-दौड़को देखकर परायोंकी आँखोंसे भी आँसुओंकी धार वह निकलती थी। अजमेरसे भागनेके कई दिन पीछे दारा और उसका परिवार इकट्ठे हुए। आशा थी कि गुजरातमें सिर छुपानेको जगह मिलेगी। मुट्ठीभर मददगारोंको साथ लिये, अहमदाबादमें आश्रय पानेकी मृगतृष्णिकासे खिंचा हुआ अभागा युवराज धूप और गर्दमें ८ दिन निरन्तर सफर करके उस शहरके द्वारपर पहुँचा। वहाँ तो दुनिया ही पलट चुकी थी। दाराके पराजयका समाचार मुल्क भरमें फैल गया था। पराजित राजकुमारको आश्रय देकर विजेताके क्रोधका भाजन कौन बने? अहमदाबादके शासकने किलेके द्वार भगोड़े राजकुमारके लिए बन्द कर दिये।

इस समाचारने दाराके दलकी हिम्मत बिल्कुल तोड़ दी। स्त्रियोंने रोना आरम्भ कर दिया, सबके चेहरोंपर उदासी छा गई, बेचारे दाराको भी चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। दुर्दैव कटे पर नमक छिड़ककर अपने शिकारकी दुर्दशापर मुस्कराया करता है। दाराके दुर्दैवने भी पूरे हाथ दिखाये। उसकी प्यारी बीबी बीमार हो गई। उसके इलाजके लिए दाराने डा० बर्नियरको भी दलके साथ घसीटना आवश्यक समझा। उधर औरंगज़ेबने राजा जयसिंह और बहादुरखाँको दाराका पीछा करनेके लिए रवाना कर दिया। अब युवराजके पास सिवा दम खेंचकर

भागनेके कोई चारा नहीं था। केवल दो हाथियों और ५ घुड़सवारोंको साथ लेकर वह कच्छकी ओर भागा। समयका फेर ऐसा बली है कि जिस कच्छ-नरेशने पहले दाराको सहारा दिया था, उसने अब उसे सिन्धका रास्ता दिखा दिया। अब दाराको हिन्दुस्तानकी सीमा छोड़कर कन्दहारके रास्ते फारिसको भाग जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग दिखाई नहीं देता था। राजा जयसिंह और बहादुरख़ाँको हर जगह झुल देता हुआ वह कमानसे छूटे हुए तीरकी गतिसे सिन्धकी पूर्वीय सीमापर जा पहुँचा। भारतकी ममता छूट गई—और कन्दहारकी रेखापर पाँव पहुँच गया—यह समझकर पीछा करनेवालोंकी गति भी कुछ मन्द पड़ गई। दाराके दिलमें भी इस आशाका संचार होने लगा कि शायद शत्रुके पंजेसे छुटकारा मिल जायगा।

परन्तु विधाताको तो कुछ और ही अभीष्ट था। इस भाग-दौड़के कष्टको बर्दाश्त न कर सकनेके कारण उसकी बीबी नादिरा बानूने सिन्धमें पहुँचकर प्राण छोड़ दिये। वह उसकी तीनों सन्तानोंकी माँ थी। वह उसके सुख-दुःखकी संगिनी थी। वह उसकी बड़ेसे बड़े कष्टमें सलाहकार और वज़ीर थी। मनुष्यके जीवनको कई प्रकारकी आपत्तियाँ आती हैं, परन्तु सच्ची अर्धांगिनीके वियोगसे बढ़कर दुःखदायिनी आपत्ति कोई भी नहीं। इस आपत्तिसे प्राय. मनुष्यकी कमर टूट जाती है। जो आफतें पहले काग़ज़की सी हल्की प्रतीत होती थीं, वह अब पहाड़से भी अधिक भारी प्रतीत होने लगती हैं। दाराकी भी विवेकशक्ति लुप्त हो गई। यहाँ तक कि उसे अपने भविष्यकी भी चिन्ता न रही। सिन्धसे आगे बलूचोंके प्रान्तमें यादर नामका एक इलाका था। उसका सरदार मलिक जीवन दाराका पुराना अनुगृहीत था। दाराने बहुत पूर्व शाहजहाँके कोपसे उसकी प्राण-रक्षा की थी। मलिक जीवनने दाराको बुलावा भेजा। दाराकी बुद्धिपर पर्दा पड़ चुका था। उसने साथियोंकी सलाहके विरुद्ध बुलावेको स्वीकार कर लिया, और तीन दिन तक मलिक जीवनका मेहमान रहा। वहाँसे अपने

विश्वासपात्र संगियोंके साथ बेग़म नादिरा बानूकी लाश लाहौरके मीयाँ मीरमें दफनानेके लिए रवाना कर दी, और स्वयं सिपिहर शिकोहके साथ बिल्कुल अरक्षित दशामें कन्दहारके लिए चल दिया। ९ जूनका दिन था। दारा अभी एक पड़ाव भी आगे नहीं गया था कि मलिक जीवनने आक्रमण करके उसे कैद कर लिया, और बहादुरखाँको सन्देश भेज दिया कि दारा कैद कर लिया गया है, आकर कैदीको सँभाल लो। इस प्रकार धोखे और दुर्दैवका शिकार होकर दारा और उसका छोटा पुत्र अपने जाती दुश्मन औरंगज़ेबके पंजेमें फँस गये।

औरंगज़ेबको दाराकी गिरिफ्तारीका समाचार उस समय मिला, जब वह राज्यारोहणकी वर्षगाँठ मना रहा था। इससे उसकी संयमकी शक्ति मालूम होती है कि उसने समाचारको तब तक दबाये रखा, जब तक बहादुरखाँकी ओरसे उसका लिखित समर्थन नहीं पहुँचा। जब समर्थन पहुँच गया, तो शहरमें धूमधामसे खुशियाँ मनाई गईं। आनन्दोत्सवके समाप्त होते न होते कैदी दारा दिल्लीके समीप आ पहुँचा। वह औरंगज़ेबकी परीक्षाका समय था। वह बहादुर था, नीतिज्ञ था, भाग्यशाली था—यह सिद्ध हो चुका था, परन्तु वह महापुरुष भी था या नहीं, इस प्रश्नका उत्तर अभी मिलना था। विजय पाना सहल है, परन्तु विजयके समय मनुष्यता और उदारताका व्यवहार करना कठिन है। विजय पाना मनुष्यका धर्म है—परन्तु विजयमें उदारता दिखलाना महापुरुषों या देवताओंमें ही सम्भव है। मनुष्यकी असली प्रकृति या तो बहुत बड़ी आपत्ति या बहुत बड़ी सफलतामें परखी जाती है। औरंगज़ेबकी असली प्रकृतिकी परखका अवसर आ गया था। दुःख है कि औरंगज़ेब इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण हुआ। दारा और उसकी सन्ततिके साथ उसने जो सलूक किया, उसने सिद्ध कर दिया कि वह एक भाग्यशाली और चतुर सेनापति होते हुए भी महापुरुषोंकी कोटिमें नाम लिखाने योग्य नहीं था।

दाराको एक मैली और भद्दी हथिनीकी पीठपर नंगे हौदेमें बिठाया गया। उसके पास सिपिहर शिकोह बैठा था। दोनोंके पीछे एक

राक्षसकी सूरतका गुलाम नंगी तलवार हाथमें लिये पहरेपर तैनात था। चारों ओर नंगी तलवारोंका सख्त पहरा था। दारा शरीरपर मैले और मोटे कपड़े पहिने हुए था। यह करुणाजनक जलूस लाहौरी दरवाज़ेसे शहरमें घुसा और चाँदनी चौक तथा सादुल्लाख़ाँके बाज़ारसे होता हुआ पुरानी दिल्लीके एक किलेमें समाप्त हुआ। दोपहरकी धूपमें दाराकी उस शहरमें प्रदर्शिनी कराई गई, जहाँ किसी दिन उसका सिक्का चलता था। बाज़ारमें, घरोंकी छतोंपर, और गलियोंमें देखनेवालोंका ठठ्ठ जमा हुआ था। नरनारी दाराको देखते थे, और दुःखके आँसू बहाते थे। वह अभागा राजकुमार नीची आँखें किये इस अपमान और करुणाके दृश्यको बर्दाश्त कर रहा था। सारे मार्गमें केवल एक बार दाराने आँख उठाई। उसकी उदारता और दानशीलता मशहूर थी। जब सौभाग्यके दिनोंमें वह बाज़ारमें निकलता, तो जो भिखारी भीख माँगता, उसकी झोलीमें कुछ न कुछ पड़ ही जाता था। एक भिखारीने दाराकी हथिनीके पास आकर चिल्लाकर कहा कि 'ऐ दारा, पहले तो जब तू निकलता था, तब मुझे कुछ न कुछ देता ही था, पर आज तेरे पास देनेको कुछ नहीं है।' दाराने उसकी ओर आँख उठाई, एक ठँडी साँस ली, कन्धेपरसे दुपट्टा उतारा और उसकी ओर फेंक दिया। राजकुमारकी आँखें फिर नीची हो गईं। सारी जनताके मुँहसे वाह वाहकी ध्वनिके साथ दुःख और खेदकी एक चीख़ निकली, और आँखोंसे आँसू बह चले। शहरभरमें सनसनीसी फैल गई। औरंगज़ेबने तो जलूस इस लिए निकलवाया था कि दाराका मज़ाक़ उड़ाये: परन्तु यहाँ उलटा ही असर हुआ। प्रजामें उसके लिए सहानुभूतिका समुद्र उमड़ पड़ा। घबराकर जलूसको झटपट समाप्त कर दिया गया।

जलूस २९ अगस्तको निकाला गया था, उस दिन प्रजाके हृदयमें जो विक्षोभ पैदा हुआ वह ३० अगस्तको फूट पड़ा। दाराका पकड़नेवाला विश्वासघाती जीवन दरबारको जा रहा था। लोगोंने उसे पहिचानकर घेर लिया, और लगे उसपर और उसके साथियोंपर ईंट पत्थर बरसाने। औरतोंने घरोंकी छतोंपरसे राख

और मैला बरसाकर दाराके साथ सहानुभूतिका परिचय दिया। जीवनके कुछ साथी मारे गये, बहुतसे घायल हुए और उसका बचना भी असम्भव था, यदि शहर-कोतवाल उसकी सहायताके लिए न आ जाता।

उसी शामको औरंगज़ेबके ख़ास कमरेमें कौंसिल बैठी। अन्य सलाहकारोंके अतिरिक्त बादशाहकी कृपापात्र बहिन रोशनारा भी हाज़िर थी। दारापर बुत-परस्त और बुत-परस्तोंका मददगार होनेका दोष लगाया गया। वज़ीर दानिशमन्दने दाराकी प्राण-रक्षाके लिए बहुतसी अपील की; परन्तु एक ओर औरंगज़ेबकी मर्ज़ी, दूसरी ओर रोशनाराका आग्रह और तीसरी ओर बादशाहके जी-हुजूर क़ाज़ियोंका फतवा—एक दानिशमन्दकी क्या चल चल सकती थी। कौंसिलने फैसला किया कि दाराको प्राण-दण्ड दिया जाय।

दाराको मारनेका काम उसके एक पुराने दुश्मन नजरबेग नामके गुलामके सुपुर्द किया गया। दाराने औरंगज़ेबके पास एक दयाकी प्रार्थना भी भेजी थी, जिसके कोनेपर बादशाहने केवल इतना नोट किया था कि 'तूने ही पहले गद्दीपर कब्ज़ा किया, और तूने ही शरारत फैलाई।' दारा अपने पुत्र सिपिहर शिकोहके साथ बैठा बातें कर रहा था, जब उसके हत्यारे अन्दर जा पहुँचे। उन्होंने सिपिहर शिकोहको दाराके पाससे दूसरी जगह जानेका हुक्म दिया। बेचारा लड़का डरकर पिताकी टाँगोंको चिपक गया, और फूट फूट कर रोने लगाः परन्तु हत्यारोंको दया कहाँ? उसे घसीट-कर पितासे अलग कर दिया और दूसरे कमरेमें ले गये। दाराने समझ लिया कि अन्तिम समय आ गया। चुपचाप गर्दन झुकाकर प्राण देनेकी अपेक्षा हाथ पाँव हिलाते हुए मरना उचित समझकर उसने एक तेज़ चाकूसे हत्यारोंपर वार किया। कई ग़ुलाम घायल हो गये, परन्तु अन्तमें दाराको अधिक संख्यासे दबना पड़ना। दारा-ने चाकू इतने ज़ोरसे चलाया कि एक ग़ुलामकी हड्डीमें घुस गया और निकल न सका। तब उसने हाथोंसे ही अन्धाधुन्ध मारना आरम्भ किया, परन्तु कबतक? दीपककी ज्वाला टिमटिमाकर गुल

हो गई। अभागा दारा हत्यारोंकी चोटसे आहत होकर पृथ्वीपर लोट गया। इस प्रकार उस उदार, सुन्दर और बहादुर, परन्तु भाग्य-हीन राजकुमारकी ऐहिक यातनाओंका अन्त हुआ।

दाराका कटा हुआ सिर औरंगज़ेबके सामने दरबारमें पेश किया गया। उसे दरबारमें धुलवाकर साफ़ कराया गया ताकि निश्चय हो सके कि सिर दाराका ही है। निश्चय होनेपर सुनते हैं, औरंग-ज़ेबने दो चार आँसू भी निकाले थे। दाराका धड़ एक हाथीपर डालकर शहरमें घुमाया गया ताकि किसीको दाराकी मृत्युमें सन्देह न बना रहे।

दाराके पुत्रोंको कैदख़ानेमें सड़-सड़कर मरना पड़ा। सिपिहर शिकोह दाराकी मृत्युके पीछे ग्वालियरके किलेमें भेज दिया गया। उसका बड़ा भाई सुलेमान शिकोह भी गढ़वालमें गिरिफ्तार हो गया और १६६१ ई० के जनवरी मासमें ग्वालियरमें भेज दिया गया। ग्वालियरमें वह अभागे पिताका अभागा पुत्र एक वर्षके लगभग जीवित रहकर किलेदार द्वारा दिये हुए ज़हरका शिकार हुआ। वह और उसका चचा मुरादबख़्श समीप ही समीप किलेके पास दफ़नाये गये।

दाराकी लाशके साथ औरंगज़ेबने जो अन्याय किया, वह उसके अपराधको और अधिक बढ़ा देता है। उसके शरीरके टुकड़े, बिना स्नान कराये, हुमायूँके मकबरेमें एक मेहराबके नीचे गाड़ दिये गये। कर्मोंका फल अवश्यंभावी है। इस घटनाका वृत्तान्त देकर औरंगज़ेबके इतिहास-लेखक प्रो० जदुनाथ सरकारने लिखा है—

“दो सदियाँ गुज़र गईं, और तब मुग़लोंका प्रसिद्ध वंश इससे भी अधिक खूनी दृश्यके साथ समाप्त हुआ। १८५७ ईस्वीके सितम्बर मासकी २२ वीं तारीखको, उस स्थानके समीप ही, जहाँ दाराका कटा हुआ देह गाड़ा गया था, दिल्लीके आखिरी मुग़ल-सम्राट्के लड़कों और पोतोंको (मिर्ज़ा मुग़ल, मिर्ज़ा कुरैश सुल्तान, और मिर्ज़ा अबूबख़्तको) जिनमेंसे एक युवराज था, एक विदेशी सिपा-हीने गोलीका शिकार बनाया, और जब कि वह अपनी निर्दोषताको प्रमाणित करनेको तैयार थे, बिना सुनवाई किये उनकी हत्या कर

डाली। दाराकी लाशकी भाँति उन तैमूरवंशी राजकुमारोंकी लाशें भी पुलिसके दफ़्तरके बरामदेमें फेंक दी गईं, ताकि लोग उन्हें देख सकें। औरंगज़ेब भाईके रुधिरमें स्नान करके राजगद्दीपर बैठा, और उसकी सन्तानके रुधिरमें ही राज्याधिकार उसके वंशसे छीना गया।"

२४—रक्त-रंजित सिंहासनपर आरोहण

इस प्रकार मुग़लोंके महाभारतका अन्त हुआ। इस प्रकार पिताके सिरपर, और भाइयों तथा भतीजोंकी लाशपर पैर रखकर औरंगज़ेब सिंहासनपर आरूढ़ हुआ। देखनेमें वह विजयी हुआ। उसकी शक्ति अद्वितीय थी। उसकी धाक चारों दिशाओंमें बैठ गई थी। उसके रक्तरंजित सिंहासनकी जड़ें पाताल तक पहुँची हुई प्रतीत होती थीं, परन्तु अगला इतिहास हमें बतलायगा कि यह महाभारत ही मुग़लोंके अन्तका प्रारम्भ था। इस युद्धने औरंगज़ेबकी शानको बढ़ा दिया, परन्तु मुग़ल-वंशकी शानको घटा दिया। यदि शाहजहाँ कैद हो सकता है, यदि दारा नीचतम मुज़रिमकी तरह शहरमें घुमाया जा सकता है, और यदि मुरादबख़्श कैदखानेमें कुत्तेकी मौत मर सकता है, तो मुग़ल-वंशका गौरव कहाँ रहा? लोगोंने औरंगज़ेबके चढ़ते हुए सितारेके सामने सिर झुकाया, परन्तु उनके हृदयोंपर मुग़लोंकी आन और शानका जो सिक्का जमा हुआ था, वह जाता रहा।

१६५९ के जून मासमें औरंगज़ेबने बड़ी धूमधामसे अपने सिंहासनारोहणका उत्सव मनाया। उस धूमधामने शाहजहाँके दरबारोंके समारोहको भी भुला दिया। उस दरबारमें सब कुछ था, कमी थी तो केवल एक थी कि उन राजपूत सरदारोंका उसमें कोई भाग नहीं था, जो अकबरसे लेकर शाहजहाँ तकके राज्य-कालमें साम्राज्यके आधारस्तम्भ थे। वह लोग साम्राज्यकी ओरसे उदासीन हो गये थे।

महाभारतकी समाप्ति और औरंगज़ेबके रक्त-रंजित सिंहासनारोहणके साथ हम मुग़ल-साम्राज्यके क्षयके इतिहासके प्रथम भागको समाप्त करते हैं।

द्वितीय भाग

मुग़ल-साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण

१—चमकदार प्रारम्भ

वह मुग़ल-साम्राज्यकी अधिकतम महिमाका समय था। मुग़लोंका शासन काबुलकी उत्तरीय सीमासे लेकर विन्ध्याचल तक माना जाता था। दक्षिणको छोड़कर सारा भारतवर्ष दिल्लीकी आज्ञाके सामने सिर झुकाता था। विदेशोंमें रत्नपूर्ण भारतवर्षके शानदार बादशाहोंके किस्से अलिफ लैला और हातिमतायीके किस्सोंकी भाँति सुनाये जाते थे। शत्रु मुग़ल-सेनाके नामसे काँपते थे। जो मित्र उनकी छत्रच्छायामें आ जाते थे, वह अपने आपको अभेद्य दुर्गसे आवृत समझते थे।

ऐसे प्रभावशाली साम्राज्यको यदि औरंगज़ेब जैसा शासक मिल जाय, तो फिर क्या कहना है? औरंगज़ेबमें शासकके कौनसे

गुण थे, इसका परिचय सामयिक लेखकोंके लेखसे भली प्रकार हो सकता है। मीरात-ए-आलमके लेखकने बादशाहको अपनी आँखोंसे देखा था। उसने लिखा है—

"बादशाह ईश्वरका बड़ा उपासक है, और अपने धर्म-प्रेमके लिए मशहूर है।.........गुसल करनेके पीछे, बादशाह अपने समयका अधिकांश ईश्वरकी पूजामें व्यतीत करता है। वह पहले मसजिदमें नमाज़ पढ़ता है, और फिर घर जाकर हार्दिक दुआ करता है।...........अकेलेमें वह कभी राजसिंहासनपर नहीं बैठता। ....वह कभी ममलूह गिज़ा नहीं खाता और न कोई ऐसा काम करता है जो सेहतके लिहाज़से वर्जित हो।.........वह संगीत कभी नहीं सुनता ।.........वह दरबारमें दिनमें दो तीन बार आता है, और इन्साफ़ करता है। दिल्ली और दूसरे शहरोंमें बदमाश लोगोंको रहनेकी आज्ञा नहीं है।.........चरित्र और सदाचारकी दृष्टिसे बादशाह औरंगज़ेबका अकथनीय गौरव है।"

किसी साम्राज्यको उससे उत्तम शासक मिलना कठिन है। औरंगज़ेब सदाचारी था, धर्मात्मा था, बहादुर था, न्यायपरायण था, और परिश्रमी था। शराब और विषयासक्ति शासकोंके सबसे बड़े दोष हैं। औरंगज़ेब इनसे मुक्त था। फिर उसे शासनका भी पर्याप्त अनुभव था। उसके जीवनका अधिकांश राज-काज और संग्राममें ही बीता था।

एक अंशमें वह अपनेसे पहले तीनों बादशाहोंसे अधिक भाग्यशाली था। अकबरको साम्राज्य-भवनकी नींव तक तैयार करनी पड़ी थी, औरंगज़ेबने बने बनाये विशाल भवनमें प्रवेश किया था। जहाँगीर मदिरा और महिलाका गुलाम था, औरंगज़ेब इन दोषोंसे स्वाधीन था। शाहजहाँकी शक्तियोंको विलासिताने क्षीण कर दिया था, औरंगज़ेबको विलासिता छू तक नहीं गई थी।

सम्राट्के शत्रुओंका क्षय हो चुका था। कामयाबीपर कामयाबीके समाचार आ रहे थे। ३० अगस्त (१६५९) को दाराकी हत्या हो गई, मई (१६६०) में शुजा भारतसे निकाल दिया गया, मुराद-

बख्श और सिपिहर शिकोह ग्वालियरके किलेमें सड़ रहे थे, २८ दिसम्बर (१६६०) को दाराका पुत्र सुलेमान शिकोह गिरिफ्तार होकर दिल्ली आ गया था। अगले वर्ष (१६६१) मुराद और सुलेमान शिकोह जानसे मार डाले गये। एक शाहजहाँ शेष था। वह आगरेके किलेमें खूब मज़बूतीसे कैद था। भारत-साम्राज्यके भूतपूर्व सम्राट्के पक्षमें शब्द उठानेवाला एक पक्षी भी सारे देशमें मिलना कठिन था। इस प्रकार शासकके अनेक आवश्यक गुणोंसे विभूषित आलमगीर औरंगज़ेब बादशाहकी राजगद्दी राज्यारोहणके कुछ वर्ष पीछे ऐसी निष्कंटक और शत्रुहीन भूमिपर जमी हुई प्रतीत होती थी, जैसी भूमि भारतके शासकोंको सदियोंसे प्राप्त नहीं हुई थी।

विशाल और सुरक्षित साम्राज्य, औरंगज़ेब जैसा अनुभवी और पराक्रमी बादशाह और शत्रुओंका सर्वनाश, फिर चिन्ता किस बातकी थी? यदि किसी शासन-कालके निर्विघ्न होनेकी सम्भावना थी, तो वह औरंगज़ेबका शासन-काल था। यदि किसी व्यक्तिको शासनमें पूर्ण सफलता प्राप्त होनेकी सम्भावना थी, तो वह औरंगज़ेब था। आकाशमें बादलोंकी तो कथा ही क्या, धुन्ध भी नहीं दिखाई देती थी। विशुद्ध नील आकाशमें सूर्यकी किरणें जिस उज्ज्वलतासे चमकती हैं, आलमगीरके राज्यमें उसी उज्ज्वलतासे मुगलोंके प्रतापके चमकनेकी आशा थी।

आरम्भ भी बुरा नहीं हुआ। औरंगज़ेबके शासन-कालका श्रीगणेश कूचविहार और आसाम (कामरूप) के विजयसे हुआ। शाहजहाँके राज्य-कालमें कूचविहार और आसामके प्रदेश मुग़लोंकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे। जब मुग़ल-राजकुमार घरू संग्राममें जुट गये, तब अवसर पाकर कूचविहारके राजा प्राणनारायणने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी, और अहोमके राजाने आसामके उस हिस्सेको जीत लिया, जो मुग़ल-बादशाहके वशमें था। अहोम लोग शाह जातिके अवयव थे। उनका जन्म-स्थान उत्तरीय बर्माके उत्तर-पूर्व कोनेमें था। बहुत पूर्व उनके एक साह-

सिक राजाने जन्मस्थानकी सीमाओंका उल्लंघन करके ब्रह्मपुत्राकी घाटीमें अधिकार स्थापित किया था। अनुकूल अवसर पाकर अहोम जातिके शासक जयध्वजने कामरूपपर धावा कर दिया, और शीघ्र ही उसे अपने कब्जेमें कर लिया।

औरंगज़ेबने तबतक प्रतीक्षा की, जब तक उसका पाँव राजसिंहासनपर मज़बूतीसे जम जाय। पाँव जमनेपर उसने उन लोगोंको सज़ा देनेका निश्चय किया, जिन्होंने साम्राज्यकी अव्यवस्थासे लाभ उठाकर पराधीनताकी बेड़ियोंको तोड़नेका साहस किया था, या विद्रोहके लिए सिर उठाया था। कूचविहार और कामरूपको जीतनेके लिए औरंगज़ेबने अपने विश्वस्त मन्त्री मीर जुमलाको ४२ सहस्र सेना और एक लम्बे चौड़े नौकाओंके बेड़ेके साथ रवाना किया। मीर जुमला एक अनुभवी सेनापति था, उसे प्राणनाथ और जयध्वज जैसे छोटे छोटे राजाओंको परास्त करनेमें देर न लगी। मुगल-सेनाओंके समीप आनेपर कूचविहारका राजा राजधानीको छोड़कर भाग गया, और १६६२ ई० के दिसम्बर मासमें सारा प्रदेश मुग़ल-सेनापतिके वशमें आ गया।

कूचविहारकी राजधानीमें १६ दिन तक विश्राम करके मीर जुमला कामरूपके जीतनेके लिए आगे बढ़ा। जयध्वजने कामरूपको छोड़ दिया, परन्तु मुग़ल-सेनाओंने उसका आसामकी राजधानी गढ़गाँव तक पीछा किया। तीन मास व्यतीत होनेके पहले ही सारा आसाम मुग़ल-राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। विजेताओंके हाथ पुष्कल धन और युद्ध-सामग्री लगी। १६६२ ई० का मार्च मास समाप्त नहीं हुआ था, जब विजयसे फूली हुई मुग़ल-सेनाओंने आसामकी राजधानीमें गर्मियों और बरसातके लिए डेरे डाल दिये।

परन्तु वर्षाऋतुके साथ ही मुगल-सेनाओंकी आपत्तियोंका प्रारम्भ हुआ। उस प्रान्तमें वर्षा बे-हिसाब होती है। नदी और नालोंके बढ़ जानेसे जल-थल एक हो जाता है। जो कार्य जयध्वजकी सेनायें न कर सकीं, वह पानीने कर दिया। विजयिनी सेनायें

चारों ओरसे घिर गई। हिन्दुस्तानके रास्ते रुक गये। आसामी सिपाहियोंके गिरोह चारों ओर मँड़राने लगे। मीर जुमलाकी अजेय अक्षौहिणी शत्रुओंके घेरेमें घिरकर घबरा गई।

आपत्ति कभी अकेली नहीं आती। वर्षा और शत्रु-सेनाकी सहायताके लिए दुर्भिक्ष और रोग भी आ पहुँचे। आसाममें एक पर्वत है, जिसका नाम ज्वर-पर्वत है। उसकी ओरसे हवा चलते ही प्रदेशमें बुरी तरह बुखार फैलता है। सेनामें बहुत बुरी तरह बुखार फैल गया। प्रति दिन सैकड़ों मरने लगे। दवा-दारू कुछ काम नही करती थी। कहा जाता है कि उस वर्ष ज्वर इतने जोरसे फैला था कि आसाममें लगभग ढाई लाखके आदमी मर गये! रोगकी सहायता दुर्भिक्षने की। मुग़ल-सेना चारों ओरसे अहोम लोगोंसे घिर गई थी। हिंदुस्तानसे तो क्या, अपने बेड़ेके साथ मिलना जुलना भी असम्भव हो गया था। गेहूँ, घी, मीठा, अफीम और तम्बाकूका भण्डार बिल्कुल खाली हो गया, सेना-ओंको केवल स्थानीय चावलोंपर गुजारा करना पड़ता था। मनुष्योंके लिए उचित भोजन नहीं था, घोड़ोंके लिए चारेका अभाव था। उस समय हिन्दू और मुसलमान सभी अफीमके दास थे। उसके बिना उनका एक दिन भी नही गुजरता था। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंमें विजयके मदसे झूमती हुई मुग़ल-सेनाओंको पीठ दिखाकर लौटना पड़ा।

बरसातकी समाप्तिपर मुग़ल सेनायें कुछ सावधान होकर आगे बढ़नेका यत्न करने लगी, कुछ शहर जीते भी गये, परन्तु आपत्तियोंने सेना और सेनापति दोनोंहीको जर्जरित कर दिया था। मीर जुमला रोगी हो गया, परन्तु उसने मैदान नही छोड़ा। वह उसी दशामें सेनाओंके साथ आगे बढ़नेका यत्न करता रहा। परन्तु सिपाहि-योंके धैर्यका स्रोत सूख चुका था। उन्होंने आगे बढ़ने और लड़-नेसे इन्कार कर दिया। तब मीर जुमलाने जयध्वजसे सन्धि कर लेना ही उचित समझा। उस सन्धिद्वारा जयध्वजने आसामका कुछ भाग मुग़लोंको दे दिया। उसे बहुतसा जुर्माना भी देना पड़ा,

और लड़कीका डोला दिल्लीके लिए रवाना करना पड़ा, परन्तु किसी रूपमें राज्य बच गया, जयध्वजने यही ग़नीमत समझी।

आसाम-विजयके पश्चात् चटगाँवकी बारी आई। चटगाँव पूर्वीय बंगालका एक शहर है। पहले दिल्लीके अधीन था, परन्तु इधर साम्राज्यमें गड़बड़के कारण अराकानके शासकोंको मौका मिल गया, और उन्होंने उसपर कब्ज़ा कर लिया। चटगाँवका विशेष महत्त्व यह था कि वह समुद्रके किनारेपर बसा होनेके कारण सामुद्रिक शक्तिका आश्रय बन सकता था। अराकानके बर्मी शासकोंने पुर्तगालके समुद्री डाकुओंसे सुलह कर ली, और उनकी मददसे बंगालके समुद्र-तटस्थ शहरोंको लूटना आरम्भ कर दिया। डाकुओंके दल किनारेपर उतरकर मैदानमें भी लूटमार मचाते थे। उनकी दौड़ ढाके तक आ पहुँची थी।

औरंगज़ेबने अपने प्रसिद्ध और बहादुर सेनापति शाइस्ताखाँको चटगाँव-विजयके लिए भेजा। शाइस्ताखाँने खूब दूरदर्शितासे काम किया। पहला वर्ष भर सामुद्रिक बेड़ेको तैयार करनेमें लगाया। बंगालके सब छोटे छोटे बन्दरगाहोंपर किश्तियाँ बनने लगीं; वर्षके अन्तमें उस समयकी दृष्टिसे शानदार बेड़ा तैयार हो गया। १६६५ ई० के दिसम्बर मासमें चटगाँवपर चढ़ाई प्रारम्भ हुई। स्थल और जल दोनों मार्गोंसे मुग़ल-सेनाओंने चटगाँवको घेर लिया। जहाज़ी बेड़ेने अबू हसनकी अध्यक्षतामें सोनदीपको लेकर चटगाँवके सामुद्रिक मार्ग बन्द कर दिये, उधर फरहादखाँने मैदानकी दिशासे प्रवेश किया। १६६६ ई० के जनवरी मासमें चटगाँव मुग़ल-सेनाओंके कब्ज़ेमें आ गया। अराकान राजाके जेल-खानोंमेंसे सैकड़ों बंगाली रिहा कराये गये, जिससे सारे प्रान्तमें खुशीके संगीत सुनाई देने लगे। इस प्रकार राज्यके आरम्भमें ही चटगाँव भी मोतियोंकी उस लड़ीका एक हीरा बन गया, जो मुग़ल बादशाह औरंगज़ेबके गलेमें लटक रही थी।

इधर भारतके पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तपर कुछ समयसे अशान्ति फैली हुई थी। यूसफजाई तथा स्वात, और तीरातके निवासी सदा-

से लड़नेमें वीर, रहन-सहनमें जंगली और प्रकृतिमें स्वाधीन रहे हैं। ब्रिटिश राज्य भी उनकी उच्छृंखलताका पूरी तरह दमन नहीं कर सका। १६६७ ई० में उन लोगोंने मुग़लोंकी सीमाओंपर छापे मारने आरम्भ कर दिये। काबुल और भारतके मध्यमें जो व्यापार होता था, वह इन बहादुर लुटेरोंके आक्रमणोंसे बर्बाद सा हो गया। औरंगज़ेबने विद्रोहियोंका दमन करनेके लिए अटक, काबुल, और दिल्ली तीन ओरसे सेनायें भेजी। स्वात और तीराहके निवासी मुग़लोंके विरुद्ध यूसफजाई लोगोंसे मिल गये, और सम्मिलित शक्तिसे साम्राज्यकी सेनाओंका देर तक सामना करते रहे। मुग़लोंको दो तीन बड़ी ज़बर्दस्त चोटें लगी। काबुलका गवर्नर मुहम्मद अमिन ख़ाँ वज़ीर मीर जुमलाका लड़का था। वह योग्यताके कारण नहीं, प्रत्युत बड़े बापका बेटा होनेके कारण इतने ऊँचे पदपर पहुँच गया था। वह पेशावरसे काबुलको जा रहा था, जब अफ़रीदियोंने उसपर डाका डाला। उसकी सेनाका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इस युद्धमें उसके १०,००० आदमी मारे गये, २०,००० कैदी हुए, और २ करोड़का माल लुट गया। अमिन ख़ाँको पीठ दिखाकर पेशावरकी ओर भागना पड़ा।

औरंगज़ेबको जब यह समाचार मिला, तो वह आग बबूला हो गया। अमीनख़ाँको अपमानित करके गुजरात भेज दिया गया, और उसके स्थानपर महाबतख़ाँको रवाना किया गया, परन्तु उसके बुढ़ापेसे कोई आशा न रखकर बादशाहने शुजात ख़ाँ नामके एक बहादुर जवानकी अध्यक्षतामें विद्रोहको दबानेके लिए नई सेना रवाना की। अपनी प्रकृतिके अनुसार, एक सेनापतिपर विश्वास न करके उसने राजा जसवन्तसिंहको उसपर दृष्टि रखनेके लिए नियत कर दिया। इस नई जोड़ीकी भी वही दुर्गति हुई, जो अमीनख़ाँकी हुई थी। शुजातख़ाँने अभी नया नया नाम कमाया था। उसे अपनी वीरताका अभिमान था। जसवन्तसिंहकी सलाहकी उपेक्षा करके शुजातने पेशावरसे सीधे काबुलपर चढ़ाई कर दी। उसकी सेनायें बर्फ़ीली पहाड़ियोंमेंसे होकर आगे बढ़ने

लगीं। इधर अफ़गान लोगोंने उनके सामनेका रास्ता तो छोड़ दिया, और दोनों ओर पहाड़ियोंपरसे वे पत्थर तीर और गोलियोंकी बौछार करने लगे। सर्दीने शत्रुका हाथ बँटाया, परिणाम यह हुआ कि भग्न और पराजित सेनाओंके साथ शुजातख़ाँ चारों ओरसे घिर गया। स्वयं बहादुरीसे लड़ता हुआ मारा गया, परन्तु सिपाहियोंको न बचा सका। यदि जसवन्तसिंहके भेजे हुए ५०० राठौर ठीक समयपर आकर मुसलमान सेनाओंकी रक्षा न करते, तो उनमेंसे एक भी बच कर वापिस न आता।

इस दूसरे पराजयने औरंगज़ेबको अफ़गानिस्तानकी सीमापर ला बिठाया। उसने सीमाप्रान्तपर पहुँच कर सारी परिस्थितिका अनुशीलन किया। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि शीघ्र ही इस ठीक परिणामपर पहुँच गई कि अफ़गान लोग केवल शस्त्रयुद्धद्वारा पराजित नहीं किये जा सकते। वह स्वयं जन्मके लड़ाकू, निर्भयताके अवतार और कठोर शरीरके स्वामी हैं। उनका पहाड़ी देश निवासियोंकी संरक्षाके लिए आदर्श स्थान है। वह इकट्ठे होकर सीधी लड़ाई नहीं लड़ते, बिखर कर लड़ते है, शत्रु मारका शिकार ही होता है, परन्तु शत्रुको नहीं पा सकता। इन सीमाप्रान्तके कठोर निवासियोंको परास्त करनेका उपाय दूसरा है। वह है लोभद्वारा फूट पैदा करना। यह लोग पैसेके वशमें बहुत शीघ्र आ जाते है, क्यों कि उन सूखी पहाड़ियोंमें धन नहीं है। इन्हें जीतनेका उपाय यही है कि एक वंशको रिश्वत देकर दूसरेसे लड़ा दिया जाय। औरंगज़ेबने इसी शस्त्रका प्रयोग किया। थैलियोंके मुँह खोल दिये, वंशके पीछे वंश मुगलोंकी छत्रछायामें आने लगा।

भेद-नीतिके साथ साथ दण्डका भी प्रयोग किया। जो वंश अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न हुए, उनपर आक्रमण किये गये। दक्षिण भारत तो अनुभवी महारथियोंसे ख़ालीसा कर दिया गया था। अशगरख़ाँ और अमीरख़ाँने खूब नाम पैदा किया। विद्रोहियोंको कड़ी सजा दी गई। मुग़ल-सेनाओंको दो-तीन जगह फिर भी नीचा देखना पड़ा, परन्तु काबुलके नये गवर्नर अमीनख़ाँके योग्य शासनने अफ़गानिस्तानमें शान्ति स्थापित कर दी।

औरंगज़ेब (युवा)

२—पिताका शाप

उस तेजस्वी शासकका शासन-काल शानदार विजयोंके साथ आरम्भ हुआ तो आश्चर्य ही क्या है, आश्चर्यजनक तो यह हो सकता है कि उसका मध्य और अन्त ऐसा बुरा हुआ। परन्तु उसमें भी आश्चर्यकी कोई बात नहीं, क्योंकि औरंगज़ेबके सौभाग्य-घटके तलेमें पहलेसे ही कई ऐसे छिद्र हो रहे थे, जिनसे पानीका निकलना निरन्तर जारी रहता था। उसके स्वभाव और नीतिमें कुछ ऐसी त्रुटियाँ थी, और उसके सिंहासनारोहणका इतिहास इतना जटिलता-पूर्ण था, कि व्यवहारमें आकर सब गुण कुण्ठित-से हो जाते थे, प्रत्युत कही कही तो गुण ही अवगुणका रूप धारण करके असफलताको उत्पन्न कर देते थे।

औरंगज़ेबका राज्यारोहण उस सूर्योदयके समान नहीं हुआ था, जो प्राकृतिक नियमोंके अनुसार शान्तिपूर्वक हो जाता है। वह मुग़ल बादशाहका राज्यारोहण ही क्या हुआ, जिसके लिए दो चार युद्ध न हों, दो चार हत्यायें न हों। पहले दो मुग़ल बादशाहोंको छोड़ शेष सभीको रुधिरकी वैतरणीसे गुज़रकर गद्दीतक पहुँचना पड़ा, परन्तु औरंगज़ेबके राज्यारोहणने सभीसे बाज़ी मार ली। हम देख चुके हैं कि वह घरू युद्ध कितना भयानक हुआ। भाई और भतीजे तलवारके घाट उतार दिये गये। किसी रिश्तेदारको माफ नहीं किया गया, किसी दामादका निशान शेष न रखा गया। इस प्रकार निर्द्वन्द्व मैदान हो जानेपर औरंगज़ेबने आलमगीरकी उपाधि धारण की। यह परिस्थिति देखनेमें कितनी सन्तोषजनक थी, परन्तु उसकी तहमें कैसा गम्भीर खतरा भरा हुआ था। प्रजाने और सल्तनतके कर्मचारियोंने एक मुग़ल राजकुमारको दूसरे मुग़ल राजकुमारसे लड़ते देखा, कैद करते देखा, और जानसे मारते देखा। उनकी दृष्टिमें मुग़ल राजकुमारका कोई आदर न रहा। सल्तनतके छोटे छोटे सेनापतियोंने मुग़ल राजकुमारोंका शिकारके पशुओंकी नाईं पीछा किया, उन्हें अपने हाथोंसे कैद किया, और साधारण

अपराधियोंसे भी बुरी हालतमें रखा। मुग़ल-रक्तका आदर प्रजाके हृदयोंसे निकल गया। संसारमें न शस्त्रोंकी धाक स्थायी हो सकती है, और न नियमोंकी। स्थायी धाक तो नाम और पदवीके गौरवकी ही होती है। औरंगज़ेबने मुग़ल नाम और मुग़लोंकी पदवीके गौरवको बड़ा ज़बर्दस्त धक्का पहुँचा दिया।

शायद भाई-भतीजोंके साथ दुर्व्यवहारको प्रजा क्षमा कर देती, परन्तु औरंगज़ेबने अपने पिताको कैद करके मुग़लोंके गौरवको असह्य चोट पहुँचाई थी। एक मुग़ल बादशाह, जिसने दीर्घकाल तक एकच्छत्र राज्य किया, जिसे प्रजा प्यार करती थी, जिसके नामकी देशदेशान्तरमें धूम थी, पुत्रके कारागारमें बन्द हो गया। मुग़लोंका गौरव इससे अधिक नीचे नहीं जा सकता था। औरंगज़ेबने राज्य अवश्य ले लिया, परन्तु एक ऐसा दृष्टान्त स्थापित कर दिया, जिसने पिशाचकी भाँति तब तक मुग़ल-वंशका पीछा किया जब तक उसकी ईंटसे ईंट नहीं बज गई।

आगरेके किलेकी कोठरीमें बन्द शाहजहाँ औरंगज़ेबके यश, मान और गौरवके लिए सबसे बड़ा ख़तरा था। हम पहले भागमें देख आये हैं कि जेलमें शाहजहाँके साथ औरंगज़ेबके द्वारा साधारण शिष्टताका सलूक भी नहीं किया जाता था। उसे पानी तकके लिए तरसना पड़ता था। प्रारम्भमें उसे चिट्ठी-पत्री लिखनेकी थोड़ी बहुत स्वाधीनता दी गई थी, परन्तु धीरे धीरे उसमें भी रुकावटें पड़ने लगीं। औरंगज़ेबकी शिकायत थी कि शाहजहाँ मुराद और शुजाको चिट्ठियोंद्वारा युद्धके लिए भड़काता रहता है। सम्भव है, उसमें कुछ सचाई भी हो। पहले शाहजहाँ स्वयं पत्र लिख सकता था, कुछ समय पीछे लिखनेकी सामग्री नौकरोंके सुपुर्द कर दी गई और हुक्म दिया गया कि नौकर ही शाहजहाँके कथनानुसार पत्र लिखा करें। लिखी हुई चिट्ठियाँ खुली ही भेजनी पड़ती थीं। जबतक किलेदार जो उस समय जेल-दारोग़ाके स्थानपर था, उन्हें पढ़ नहीं ले, तब तक वह आगे न भेजी जा सकतीं थीं। प्रायः वह औरंगज़ेबके सामने उपस्थित होती थीं। इटलीका

लेखक मनूची प्रायः किलेमें जाता आता रहता था। उसने लिखा है कि शाहजहाँके चारों ओर कैदकी जंजीरें प्रतिदिन अधिकाधिक ज़ोरके साथ ही कसी जा रही थीं।

औरंगज़ेबके 'अविश्वासी स्वभाव' ने शाहजहाँके पत्र-व्यवहारको बन्द कर दिया, तो उसके अत्यन्त लोभने कैदी बादशाहका जीना भी कठिन कर दिया। शाहजहाँको आगरेके किलेमें कैद करते समय उसके होनहार पुत्रने किलेके बहुतसे हिस्सेको खुला छोड़ दिया था। कैदी उस भागमें घूम फिर सकता था, तख्ते-ताऊसको देखकर अपनी हसरत मिटा लेता था, जवाहिरातपर दृष्टि डालकर दिलके घावपर एक हल्कीसी मरहम लगा लेता था। दारा अपने पीछे कुछ रखैली स्त्रियाँ छोड़ गया था, जो गा-बजाकर शाहजहाँका चित्त प्रसन्न करती थीं। किलेके सब द्वार बन्द थे, ऐसी दशामें यह सब चीज़ें शाहजहाँको झूठे सन्तोषके सिवा क्या दे सकती थीं, परन्तु औरंगज़ेब उस झूठे सन्तोषको भी बर्दाश्त न कर सका। एक एक करके मनोविनोदके सब मार्ग बन्द कर दिये। तख्ते-ताऊस देनेके समय शाहजहाँ बहुत छटपटाया। कहा जाता है कि उसने तख्ते-ताऊसके अन्तिम दर्शनके बहानेसे आकर उसके जवाहिरातसे लदे हुए दो-एक भाग उठा लिये, और देनेसे इन्कार कर दिया। तब औरंगज़ेबने बलात्कार करनेकी धमकी दी, जिसपर शाहजहाँने इज्ज़त बचानेके लिए भाग्योंके सामने सिर झुका दिया।

धीरे धीरे उन सब कमरोंके ताले बन्द कर दिये गये, जिनमें जवाहिरात और कीमती सामान बन्द था। जो सामान इधर उधर बिखरा हुआ था, उसे एक गुसल-खानेमें बन्द करके ताली औरंगज़ेबके एक विश्वासी नौकरके पास रखी गई। प्रारम्भमें तो जेलरका काम औरंगज़ेबके बड़े लड़के राजकुमार मुहम्मदके सुपुर्द था, परन्तु फिर उसकी भी ज़रूरत न समझी गई। मुतामद नामका एक नौकर कैदका अध्यक्ष बना दिया गया। मसल मशहूर है कि 'प्यादेसे फर्ज़ी भयो टेढ़ो टेढ़ो जात।' जब किसी छोटे आदमीको बहुत

ऊँचा पद दे दिया जाय, तो उसके दिमाग़में हवा भर जाती है। वह अपने व्यवहारसे सिद्ध करना चाहता है कि मुझे छोटा मत समझो, मैं अवश्य बड़ा हूँ। मुतामदने भी शाहजहाँको यह दिखानेकी भरसक चेष्टा की कि 'क्या हुआ यदि मैं किसी रोज़ छोटा था। अब तो तुम छोटे और मैं बड़ा हूँ।' यह सिद्ध करनेके लिए वह जान-बूझकर कैदी बादशाहका अपमान करनेकी चेष्टा करता था। एक बार शाह-जहाँके बजानेके वायलन टूट गये। उसने बाँदीके हाथ मरम्मतके लिए मुतामदके पास भेजे, तो उसने कई दिन तक मरम्मत न कर-वाई और जब तकाज़ा हुआ तो तेज़ होकर बकने लगा।

औरंगज़ेबके लोभकी मात्रा प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। शाहज-हाँके पास एक तस्बी थी, जिसे वह प्रायः हर रोज काममें लाता था। उसमें एक सौ मोती थे, जिनके दाम चार लाख रुपयोंसे कम नहीं होंगे। औरंगज़ेबने वह माला माँग भेजी। शाहजहाँको इसपर बड़ा क्रोध आया। औरंगज़ेबने उससे वह हीरेकी अँगूठी भी माँग भेजी, जो बराबर उसकी अँगुलीमें रहती थी और कहला भेजा कि यह चीज़ें आपकी बन्दी अवस्थाके योग्य नहीं हैं, इस कारण उन्हें रखना आपकी शानके विपरीत है। शाहजहाँने जवाबमें कहला भेजा कि मैं दुआके समय तस्बीको काममें लाता हूँ। मैं इन्हें देनेसे पहले पत्थरसे चकनाचूर कर दूँगा।

प्रारम्भसे ही शाहजहाँ और औरंगज़ेबमें कड़वे पत्र-व्यवहारका सिलसिला जारी हो गया था। शाहजहाँका दिल जख्मोंसे भर गया था। वह कभी कभी अपनी आहको लेखनीबद्ध करके बर-खुरदार बेटेके पास भेज देता था। पत्रमें वह प्रायः अपनी दुःखित दशाका वर्णन करता, वैराग्यके भाव प्रकट करता और औरंग-ज़ेबको दुतकारता था। वह अपने पुत्रके हृदयमें पश्चात्तापकी अग्नि सुलगाना चाहता था, परन्तु औरंगज़ेब उस धातका बना हुआ नहीं था, जो पिघल जाय। यदि वह पिघलनेवाला पदार्थ होता, तो बापको कैद करके बादशाह ही कैसे बनता। उसने अपने हृदयको यह समझा लिया था कि मैंने जो किया है वह खुदाकी

मर्जीसे किया है। मेरा वाप वादशाहतके योग्य नही था, भाई भतीजे काफिर थे, इस लिए उन सवको नष्ट करके या निकम्मा बनाकर गद्दीपर वैठना मेरा धार्मिक कर्तव्य था। इस मन-समझौतेकी घोषणा वह हर समय करता रहता था। ऐसे आत्म-प्रतारणाके धनीको लज्जित करना या प्रायश्चित्तके लिए तैयार करना सरल नहीं था।

शाहजहाँकी शिकायतों और तानोंके उत्तरमें औरंगजेव लिखता है:—"जव तक सल्तनतकी वागडोर तुम्हारे हाथोंमें थी, मैंने तुम्हारी आज्ञाके विना कभी कुछ नहीं किया, न कभी अपने अधिकारसे आगे कदम रखा। अन्तर्यामी इसमें मेरा गवाह है। दाराने समस्त शक्ति छीन ली, हिन्दू मज़हवके वढ़ाने और इस्लामका नाश करनेके लिए वह कमर कसकर तैयार हो गया, और तुम्हारे हुक्मको एक ओर रखकर स्वयं वादशाह वन वैठा। शासन विगड़ गया। किसी नौकरमें यह शक्ति नहीं थी कि वह देशकी सही अवस्था तुम्हारे सामने रख सके।"............"मैंने आगरेकी ओर इस लिए प्रयाण नहीं किया था कि राजगद्दीको सँभालूँ। मेरा उद्देश्य तो दाराकी अनधिकार-चेष्टाका, इस्लामके त्यागका और सारे राज्यमें मूर्ति-पूजाके दौर-दौरेका नाश करना था। मुझे तो परलोककी चिन्ता छोड़कर यह सल्तनतका वोझ अपने कन्धोंपर उठाना पड़ा, और रियाया तथा किसानोंके हित-अनहितके देखनेमें लगना पड़ा।" एक दूसरे पत्रमें यह अपनी विजयको खुदा और इस्लामकी विजय समझता है। एक पत्रमें वह लिखता है "यदि तुम न्यायकी दृष्टिसे देखो तो तुम्हें कोई शिकायत नहीं हो सकती, क्यों कि मैंने तुम्हारे कन्धेसे ऐसा भारी वोझा उतारकर अपने कन्धोंपर रख लिया है, और अपने आपको हजारों चिन्ताओं और शारीरिक कष्टोंका शिकार वना लिया है।"

जो मनुष्य सल्तनतके छीननेको, दूसरेके वोझको अपने कन्धोंपर रखना समझ और कह सकता है; और भाई-भतीजोंकी हत्या और पिताके वन्दीपनको ईश्वरकी इच्छाका पालन या इस्लामकी

सेवाके नामसे पुकार सकता है, आत्म-प्रतारणामें उसे जीतना मुश्किल है। ऐसी प्रतारणामें यही दोष होता है कि वह अपने हृदयको तो खूब सन्तुष्ट कर लेती है, परन्तु दुनियाँको सन्तुष्ट नहीं कर सकती। एक महापुरुषका कथन है कि तुम कुछ लोगोंको थोड़ी देर तक धोखेमें रख सकते हो, परन्तु सब लोगोंको हमेशाके लिए धोखेमें नहीं रख सकते। औरंगज़ेब भी हमेशाके लिए सबको यह विश्वास नहीं दिला सकता था कि वह बिल्कुल दूधका धोया हुआ है। भूषण कविने शिवा-बावनीमें औरंगज़ेबके बारेमें निम्नलिखित पद्यमें सर्व साधारणके भावोंको ही प्रकाशित किया था:—

हात तसबीह लिए प्रात उठे बन्दगीको
आप ही कपटरूप कपट सुजपके।
आगरेमें जाय दारा चौकमें चुनाय लीन्हो
छत्र हू छिनायो मानो मरे बूढ़े बपके॥
कीन्हो है सगोत-घात सो मैं नाहिं कहौं फेरि
पील पै तोरायो चार चुगलके गपके।
भूषण भनत छरछन्दी मतिमन्द महा
सौ सौ चूहे खायके बिलारी बैठी तपके॥

सामान्य जनताका यही विचार था कि औरंगज़ेबने राज्यलोभसे सम्बन्धियोंका संहार किया है, और उसका खुदा या इस्लामकी दुहाई देना छलछन्दका दूसरा रूप है। उस जनतामें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। सर्व साधारण ऐसे भयानक व्यक्तिसे डरते थे, स्वार्थी लोग उसकी धर्म-भक्तिका स्तोत्र पढ़ते थे, और धर्मान्ध मुल्ला उसे ग़ाज़ी कहकर पुकारते थे, परन्तु उससे प्रेम करनेवालोंका अत्यन्त अभाव था।

अन्तमें दुःखी होकर शाहजहाँने औरंगज़ेबको चेतावनी दी कि मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही भरता है। मेरे साथ तुमने जो

सलूक किया है, वही तुम्हारी सन्तान तुम्हारे साथ करे, तो कोई आश्चर्य नहीं। यह शाप भी था, और चेतावनी भी थी। दुःखी-का शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह ठीक है कि औरंगज़ेव पुत्रकी जेलमें नहीं मरा, परन्तु उसकी मृत्यु अपने कैदी पिताकी मृत्युसे कहीं अधिक दुःख, और सन्तापसे पूर्ण थी। उसे जन्मभर पुत्रोंसे डरना पड़ा, उनपर अत्याचार करने पड़े, और फिर भी शान्त चित्तसे न मर सका। उसके पुत्र अकबरने तो उसे स्पष्ट शब्दोंमें पितृघातका अपराधी बतला दिया था। शाहजहाँकी झुकी हुई वृद्ध मूर्ति आगरेके किलेकी दीवारोंसे शाप देती हुई हमेशा उसकी आँखोंके सामने नाचती रहती थी।

३—पुत्रोंके विद्रोह

पिताके शापका परिणाम यह हुआ कि पुत्रोंपर औरंगज़ेबके हृदयमें अविश्वासका बीज बोया गया। पुत्रोंके प्रति ही क्या, उसके हृदयमें तो संसार भरके प्रति अविश्वासका भाव विद्यमान था। पापी हृदयके सन्तापसे विश्वासका जल सूख जाता है। चोरको सब जगह सिपाहीकी झलक दिखाई देती है। दुराचारी पुरुष अपनी सती साध्वी स्त्रीकी हरेक चेष्टाको सन्देहकी दृष्टिसे देखता है। औरंगज़ेबने पिता भाई और भतीजोंके साथ जो सलूक किया था, उससे उसके हृदयमें यह बात जमसी गई थी कि दुनियामें कोई किसीका नहीं। सब मतलबके यार हैं। समय पड़नेपर धोखा दे जायँगे। रात दिन उसके दिलमें खुटका बना रहता था।

यही कारण था कि औरंगज़ेबने अपने प्रायः सभी पुत्रोंपर बारी बारीसे विद्रोही होनेकी आशंका की, और थोड़ा बहुत दण्ड दिया। यही कारण था कि उसने प्रायः अपने सभी बड़े बड़े सेनापति-योंको सन्देहकी दृष्टिसे देखा, जिससे अन्तमें उनका दिल टूट गया।

यही कारण था कि बुढ़ापा आ जानेपर वह अपने आपको बिल्कुल अकेला पाने लगा था, और इसी कारण मृत्युका चेहरा दिखाई देनेपर उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिगोचर होने लगा।

औरंगज़ेबके सबसे बड़े पुत्रका नाम मुहम्मद सुल्तान था। जब चारों भाई शाहजहाँकी गद्दीके लिए लड़ रहे थे, उस समय मुहम्मद सुल्तान अपने चचा शुजासे जा मिला था। ८ महीनों तक विद्रोही रहकर वह फिर वापिस आ गया, परन्तु पिताके हृदयमें वापिस न आ सका। दयालु पिताने उसे ग्वालियरके किलेमें बन्द कर दिया। बेचारा १२ वर्षतक जेलमें सड़ता रहा। १६८२ में उसे दिल्लीके पास सलीमगढ़के किलेमें लाया गया, जहाँ पितासे उसकी मुलाकात हुई। उस समय औरंगज़ेबको अपने दूसरे लड़के मुहमम्द मुअज्ज़मका दिमाग सीधा करनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। मुहम्मद सुल्तानके बन्दी रहनेकी दशामें मुअज्ज़म ही युवराज समझा जाने लगा था। परन्तु औरंगज़ेबका अविश्वासी हृदय यह कैसे सहन करता कि उसका एक लड़का अपने आपको पक्का युवराज और राजगद्दीका अधिकारी समझने लगे। मुअज्ज़मके दिमाग़की हवा निकालनेके लिए सुल्तानके अपराध क्षमा किये गये, और उसे कुछ समयके लिए दयाका पात्र बनाया गया, परन्तु वह इस दयाकी स्थिरताकी परीक्षा न कर सका, ३८ वर्षकी आयुमें ही उसकी मृत्यु हो गई।

दूसरा पुत्र मुहम्मद मुअज्ज़म कुछ समय तक पिताका अत्यन्त विश्वासपात्र रहा। मुहम्मद सुल्तानके कैदी होनेपर वह एक प्रकारसे राजगद्दीका उत्तराधिकारी ही समझा जाने लगा था। जब मुहम्मद सुल्तानको ग्वालियरसे छोड़ा गया, तो मुअज्ज़मका सितारा बादलोंसे आच्छादित सा दिखाई देने लगा, परन्तु सुल्तानकी मृत्यु हो जानेपर उसका अधिकार निश्चित सा हो गया। उसे क्रमशः कई सूबोंका शासक बनाया गया, और शाह आलमकी उपाधिसे विभूषित किया गया, परन्तु यह आदर-सत्कार चिरकाल तक कायम न रहा। आखिर उसकी भी बारी आ गई। गोलकुण्डा-

के आक्रमणके समय औरंगज़ेबके हृदयमें उसके प्रति अविश्वासकी अग्नि प्रज्वलित हो गई। उसका पत्र-व्यवहार खोला जाने लगा, यह सन्देह किया गया कि वह शत्रुसे मिल गया है, रिश्वत या भेट लेकर उसपर नर्मी दिखाना चाहता है, और जीते हुए देशोंकी लूटका माल अपने पास रख लेता है। २१ फरवरी १६८७ को वह गिरिफ्तार हो गया, और सब पुत्रोंके साथ कैदमें डाल दिया गया। उसकी जायदाद ज़ब्त कर ली गई, और उसके अफसरों-पर सख्ती की गई ताकि वह अपने मालिकके छुपे हुए खज़ानेका पता दें।

सात वर्ष तक मुअज्ज़मको अविश्वासी पिताके क्रोधका शिकार बनकर रहना पड़ा। ७ वर्ष पीछे उसके अपराध क्षमा किये गये। १६९५ में उसे जेलसे मुक्त करके अफ़गानिस्थानका गवर्नर बना-कर भेज दिया गया। अफ़गानिस्थानकी गवर्नरी दूसरा कालापानी या जन्म-कैदकी सजा थी, परन्तु मुअज्ज़मकी अन्तरात्मा अब दब चुकी थी। उसने कालेपानीकी खुली हवाको ही ग़नीमत समझा, और पिताके मरनेतक वही आरामके दिन काटता रहा। ७ वर्षकी कैदने उसकी आत्माको इतना झुका दिया था कि स्वयं औरंगज़ेब उसे 'कायर' शब्दसे सम्बोधित करने लगा था।

तीसरा राजकुमार मुहम्मद आज़म बापका लाड़ला बेटा था। वह फारिसकी राजकुमारीकी सन्तान होनेसे अभिमानी और अक-ड़बाज़ था, इस कारण उसकी बड़े भाइयोंसे नही बनती थी। कई बार उसके झगड़े हुए, परन्तु यह आज़मके लिए प्रशंसाकी बात है कि वही एक लड़का था जिसे बापने कैद नही किया। उसका कारण यह था कि वह अक्खड़ और मुँहफट था। औरंगज़ेब बड़ा चतुर था। वह समझता था कि ऐसा आदमी कभी षड्यन्त्र नही कर सकता। आज़मका प्रेम और क्रोध दोनों स्पष्ट थे। वह ऊप-रकी सतहपर दिखाई देते रहते थे। उनसे औरंगज़ेबको कोई खतरा नहीं था। उसे भी अपने पिताकी कृपाका इतना भरोसा था कि उसने विद्रोह करनेका संकल्प ही नही किया।

चौथा पुत्र अकबर पिताका बहुत लाड़ला था। बचपनसे ही वह होनहार प्रतीत होता था। लगभग २० वर्षकी आयुमें ही उसे वायसरायके ऊँचे आसनपर बिठा दिया गया था। अगले वर्ष उसे युद्धमें सेनापतिका कार्य करना पड़ा। युवकके दिमागमें हवा भर गई। उसने पिताके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया और स्वयं बादशाह बननेकी घोषणा कर दी। वह किस प्रकार राजपूतोंकी शरणमें आया, राजपूत किस प्रकार उसे महाराष्ट्रके राजा सम्भाजीके पास छोड़ आये, और अन्तमें उसे किस प्रकार फारिसको भाग जाना पड़ा, यह आगामी परिच्छेदोंमें वर्णन किया जायगा। यहाँ तो इतना ही बतला देना पर्याप्त है कि औरंगज़ेबपर शाहजहाँके शापका ही प्रभाव था कि उसके अधिकांश पुत्रोंपर पिताकी अविश्वासभरी दृष्टि पड़ती रही, जिससे बाधित होकर उन्हें या तो विद्रोह करना पड़ा या जेलमें दिन काटने पड़े। अकबर बेचारा तो फारिसकी सीमापर बैठकर खुदासे प्रतिदिन यह प्रार्थना किया करता था कि 'या खुदा, मेरे बापको जल्द इस दुनियासे उठा ले जा।' जब यह खबर औरंगज़ेबको मिली, तो उसने मुस्कराकर कहा कि 'देखें हम दोनोंमेंसे कौन पहले मरता है, वह या मैं।' बेचारा अकबर पितासे पहले मर गया। उसकी मृत्युका समाचार पाकर औरंगज़ेबने एक सन्तोषकी आह भरते हुए कहा था कि 'आज हिन्दुस्तानके अमनका एक बड़ा दुश्मन मर गया।'

४—औरंगज़ेबका इस्लामी जोश

औरंगज़ेबकी प्रवृत्ति बालकपनसे ही मज़हबके प्रत्यक्ष रूपकी ओर झुकी हुई थी। इस्लामके जो दृश्यमान रूप हैं, उन्हें वह बड़ी संलग्नतासे पालता और पोसता था। कुरानको याद करना, उसे हाथोंसे लिखना, माला फेरना, तथा कट्टर मुसलमानके अन्य सब कर्तव्योंके पालन करनेमें वह सदा दत्त-चित्त रहता। शाहजहाँके राज्य-कालमें, जब वह सूबेका शासक

था, तब कई वार उसने पितासे यह विचार प्रकट किया कि "मै मक्के जाकर एक फकीरकी ज़िन्दगी वसर करना चाहता हूँ।" राजगद्दीका संग्राम प्रारम्भ होते ही उसने 'इस्लाम खतरेमें' का झण्डा खड़ा कर दिया। दारा अकवरकी उदार नीतिका माननेवाला था। वह उपनिपदोंका भक्त था। उसकी वेदान्ती (सूफ़ी) सम्प्रदायके फकीरोंमें श्रद्धा थी। औरंगज़बने कट्टर मुसलमानकी हैसियतसे अपने वड़े भाईपर काफिरका फतवा दायर कर दिया, और मुसलमानोंको जिहादमें सम्मिलित होनेके लिए आमन्त्रित किया। मुसलमानोंकी यह विशेपता है कि उन्हें कोई वस्तु ऐसी तीव्रतासे विचलित नहीं करती, जैसा मज़हवके नामसे की हुई अपील। जब औरंगज़ेबने मज़हबके नामपर अपील की, तो मुसलमानोंका जोश उमड़ पड़ा। दारा उदार होनेके कारण काफिर माना गया और जो युद्ध सांसारिक राजगद्दीको पानेके लिए प्रारम्भ किया गया था, वह जिहादके रूपमें परिणत हो गया। औरंगज़ेब सर्व साधारण मुसलमानोंकी दृष्टिमें इस्लामका सच्चा रक्षक समझा जाने लगा।

राजगद्दीपर बैठकर औरंगज़ेबके लिए आवश्यक हो गया कि वह इस्लाम-भक्तिका प्रत्यक्ष परिचय दे। मज़हवकी रूढ़ियोंमें उसकी जो स्वाभाविक भक्ति थी, राजनीतिक परिस्थितिने उसमें वह काम किया जो आगमें घी करता है। इस्लामकी मुख्यताको स्थापित करना, और यथासम्भव कुरानके अनुसार इस्लामी सल्तनतकी स्थापना करना उसका उद्घोपित लक्ष्य वन गया। उसने डंकेकी चोटसे यह घोषणा कर दी कि वह हिन्दुस्तानके राज्यको एक सोलहों आना विशुद्ध मुसलमान-राज्य वनाना चाहता है। दूसरे राजतिलकके पश्चात् निरन्तर वहुतसे ऐसे आज्ञापत्र जारी हुए, जिनका उद्देश्य इस्लामकी आज्ञाओंका पालन कराना था। निम्नलिखित आशयकी आज्ञाओंसे औरंगज़ेवकी शासन-नीतिका अनुमान लगाया जा सकता है—

(१) मुग़ल बादशाह अपने सिक्कोंपर कलमा लिखाया करते थे। इस चिह्नको वह मुबारिक समझते थे। औरंगज़ेबने यह रिवाज बन्द कर दिया, क्यों कि सिक्केके पैरके नीचे आनेका ख़तरा था। कलमाका पैरके नीचे लाना गुनाह है।

(२) मुग़ल बादशाह पारसियोंके वर्षारम्भ दिवसको नये वर्षका प्रथम दिन मानकर उत्सव किया करते थे। औरंगज़ेबने इस प्रथाको बन्द करके रमज़ानके दिनोंमें बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाना जारी कर दिया।

(३) लोगोंके जीवनोंको शरीयतके अनुसार चलाने और काफिरों तथा दहरियोंको दण्डद्वारा सीधे रास्तेपर लानेके लिए एक इख़लाक और मज़हबका निरीक्षक नियुक्त किया गया, जिसे मुहतासिब कहते थे।

(४) पुरानी मसजिदोंकी रक्षाके लिए बहुत कोशिश की गई। मरम्मत करवाई गई, चौकीदार और इमाम नियक्त किये गये, और मकतव खोले गये। केवल दिल्लीकी ६०० मसजिदोंकी रक्षाके लिए एक वर्षमें १ लाख रुपया खर्च किया जाता था।

(४) संगीतको दरबारसे 'अर्ध चन्द्र' दे दिया गया। इस्लामकी दृष्टिमें संगीत गुनाह है, इस लिए औरंगज़ेबने दरबारके सब गायकोंको जंगलका रास्ता दिखा दिया। लगभग १००० गायक बेरोज़गार हो गये।

गायकोंने भी चुपचाप मर जाना उचित न समझा। एक रोज़ जुम्मेके दिन, जब बादशाह मसजिदकी ओर जा रहा था, तो उसने दूरसे बहुतसे जनाज़ोंको जाते देखा। देखा कि लगभग १००० आदमी बीस जनाज़ोंको कन्धोंपर उठाये, छाती पीटते और रोते हुए जा रहे हैं। बादशाहको उनकी कातर दशापर आश्चर्य हुआ और उसने नौकरोंको कारणका पता लगानेके लिए भेजा। नौकरोंने आकर जवाब दिया कि 'हुज़ूर वह गवय्ये लोग हैं। वह रोकर

कह रहे हैं कि बादशाहके हुक्मसे संगीतकी मौत हो गई है, वह उसका जनाज़ा लिये जा रहे है।'

बादशाह न मुस्कराया और न दुःख प्रकट किया। उसने शान्तिसे कहा कि 'उनसे कह दो कि वह खूब गहरा दफ़नायें ताकि फिर जीवित होनेकी सम्भावना न रहे।'

(५) जहाँगीरने आगरेके किलेके हाथीपुलद्वारके दोनों ओर दो पत्थरके हाथी खड़े कराये थे। उनसे द्वारकी शोभा दस गुना हो रही थी। औरंगज़ेबने उन्हें शरीयतके विरुद्ध समझ कर हटा दिया।

(६) मुग़ल बादशाह अपने जन्मदिनपर सोने चाँदीसे तुला करते थे। यह प्रथा भी मज़हबके विरुद्ध होनेसे बन्द कर दी गई।

(७) १६६८ ई० में बादशाहने एक हुकम निकाला जिसके द्वारा देशभरके ज्योतिषी और नजूमी ज़मानतोंमें कस दिये ताकि वह जन्मपत्री बनाना या भविष्यकी बातें बताना छोड़ दें।

(८) धीरे धीरे दरबारसे आमोद प्रमोदके सब निशान उड़ा दिये गये। जन्मदिन या राज्यारोहणकी वर्षगाँठके उत्सव बन्द कर दिये गये। दरबारकी सजावट सादी हो गई, सोने चाँदीको सरकारी दफ्तरोंसे बिदा दी गई, और रईसोंकी डालियाँ लेना हराम समझा जाने लगा।

यहाँ कुछ नमूने दिये गये है। इनसे औरंगज़ेबके इस्लामी जोशका अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें सन्देह नही कि बादशाहकी अधिकांश आज्ञायें अपने आपमें बुरी नहीं थी। सादगी एक अच्छी चीज है। विलासिता-प्रेम साम्राज्य-शक्तिका सबसे बड़ा दुश्मन है। उसके निर्वासनका प्रयत्न तो अच्छा ही था। औरंगज़ेबके अन्य कई कार्य भी प्रशंसाके योग्य थे। उसने मदिराके पीने और बेचनेके विरुद्ध बहुत ज़ोरदार जिहाद किया। बरसों तक दिल्लीमें शराबकी दूकानों और कार-खानोंकी तलाशियोंकी धूम रही। कोतवालको कठोर आज्ञा थी

कि शरावकी दूकान करनेवालोंको गिरफ्तार करो, और उनका एक हाथ और एक पैर काट दो। औरंगज़ेवने भंगका वेचना और पीना भी वन्द कर दिया। वादशाहने यह भी हुक्म दे दिया कि सब वेश्यायें और नर्तकियाँ या तो शादी कर लें अथवा देशको छोड़कर दूसरी जगह चली जायँ। जुएको वन्द करनेके भी वहुत यत्न किये गये। १६७० के लगभग मुहर्रमके जलूस निकालने भी रोक दिये गये। काश्मीरके लोग ग़रीबीके कारण ऊपरसे नीचे तक केवल एक ही कपड़ा पहिनते थे, कमरमें कुछ नहीं वाँधते थे। औरंगज़ेवने हुक्म दिया कि पायजामा पहिना करें। कई ऐसे मुसलमान फकीरोंको मृत्युदण्ड तक दे दिया, जिन्हें औरंगज़ेवने इस्लामका विरोधी समझा।

इन आज्ञाओंमेंसे अधिकांश ऐसी थीं, जिनके विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु एक दोष भी था। वह दोप इन सव सुधारोंको दोषके रूपमें परिणत कर देता था। औरंगज़ेवने यह सव आज्ञायें इस लिए नहीं निकाली थीं, कि वह प्रजाका सुधार चाहता था, वल्कि इस लिए निकाली थीं कि वह उन्हें इस्लामकी शरीयतके अनुसार चलाना चाहता था। इस एक मौलिक भेदने दुनिया भरका भेद डाल दिया। किसी कार्यका वैसा स्थायी असर नहीं होता, जैसा उस कार्यके प्रेरक निमित्तका होता है। यदि संगीत या शरावका विरोध इस लिए किया जाता कि उनके कारण उस समयके रईसोंका सर्वनाश हो रहा था, तो वात ही दूसरी हो जाती। प्रतिक्रिया ऐसी ज़वर्दस्त न होती, परन्तु सव सुधारोंका मज़हवी कारण होनेसे आधारमें ही ज़हर पड़ गया।

ऊपर जिन आज्ञाओंकी ओर निर्देश किया गया है, उनमेंसे एक एक आज्ञा ऐसी थी, जिसके पालन करानेके लिए राज्यकी सारी शक्तिकी आवश्यकता थी। क्योंकि सेनाओंसे लड़ना आसान है, परन्तु मनुष्य-प्रकृतिके साथ लड़ना वहुत कठिन है। शराव, और जुएसे युद्ध मनुष्य-प्रकृतिके काले पहलूसे, और संगीतसे युद्ध मनुष्य-प्रकृतिके उज्ज्वल पहलूसे युद्ध है। औरंगज़ेव यदि

प्रजाके सुधारकी दृष्टिसे बुराइयोंके विरुद्ध आज्ञायें निकालता, तो उनके पालन होनेकी प्रतीक्षा करता। वह उतना ही खिलाता जितना पच सकता, परन्तु क्योंकि उसके हृदयमें इस्लामको फिर-से गद्दीपर बिठानेकी ज्वाला जल रही थी, इस लिए उसने न दायें देखा, न बायें, मशीनगनकी गोलियोंकी तरह आज्ञापर आज्ञा निकालता रहा, जिसका फल यह हुआ कि अधिकांश आज्ञायें काग़-ज़पर ही रहीं। देशभरमें उनका प्रचलित होना तो दूर रहा, राज-धानीमें भी दरबारसे थोड़ी दूरीपर शाही फरमानोंकी जी खोल-कर हत्या की जाती थी। दिल्लीकी गलियोंसे न संगीत ही निकला, और न शराब ही। न राजधानीसे नजूमी ही बाहिर गये, और न वेश्यायें ही। बड़े बड़े वज़ीर और शाह-परिवारके लोग हररोज़ रातको औरंगज़ेबकी आज्ञाओंका खून करते थे।

यदि औरंगज़ेब केवल प्रजाके हितकी दृष्टिसे सुधार करता, तो जहाँतक हम वर्णन कर चुके हैं, वहीं तक रह जाता, परन्तु क्योंकि उसका लक्ष्य मुसलमान प्रजाके सामने अधिकसे अधिक कट्टर मुसल-मानके रूपमें प्रकट होना, और फिरसे इस्लामी हुकूमतको वापिस लाना था, इस कारण शीघ्र ही वह सीमाका उल्लंघन कर गया। शीघ्र ही उसके प्रयत्न इस्लामके पक्षपोषणकी सीमाका उल्लंघन करके हिन्दुओंके विरोधके क्षेत्रमें चले गये। वह प्रयत्न कौनसे थे, और मुग़ल-साम्राज्यके भविष्यपर क्या प्रभाव पड़ा, यह अगले परिच्छेदोंका विषय है।

५—हिन्दुओंके दलनकी चेष्टा

१—मन्दिरोंका ध्वंस

यदि औरंगज़ेबका इस्लामी जोश केवल विधिरूपी प्रयत्नोंतक ही सीमित रहता, तो शायद उसके कोई भयंकर परिणाम न होते, परन्तु उस जोशने शीघ्र ही हिन्दू-विरोधीरूप धारण कर लिया। वह राज्यारोहणके कुछ समय पश्चात् ही अधिक सुशिक्षित और अधिक शक्तिशाली अलाउद्दीन खिल्जीका रूपान्तर प्रतीत होने

लगा। मुख्यतया इसके तीन कारण थे। प्रतीत होता है कि वह स्वभावसे ही मज़हबी प्रकृतिका आदमी था। उस प्रकृतिको राज्य-प्राप्तिके संग्रामने और अधिक भड़का दिया, और संग्रामने हिन्दू नरेशों या सेनापतियोंके प्रति औरंगज़ेबके हृदयमें जो वैमनस्य पैदा किया, उसने उस प्रकृतिको भीषण रूप दे दिया। औरंग-ज़ेबका हृदय अविश्वासी था। उसे अपने बेटों और पुराने वज़ीरों तक पर विश्वास नहीं था, तो भला हिन्दू सेनापतियोंपर विश्वास कैसे रह सकता था? यही कारण है कि उसका सुदीर्घ राज्यकाल अकबरके लिखेहुएपर हड़ताल फेरनेमें ही व्यतीत हुआ।

औरंगज़ेबके हिन्दू-विरोधी कानूनोंका इतिहास मनोरंजकतासे खाली नहीं है। वह छोटी छोटी बातोंसे प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे अधिक गम्भीर और तीव्र होता गया। राज्यारोहणके होते ही औरंगज़ेबने इस्लामी शासनके आदर्शोंकी स्थापनाका यत्न आरम्भ कर दिया था। प्रारम्भके फरमान दरबारकी रूढ़ियोंसे सम्बन्ध रखते थे, फिर सर्व साधारण प्रजाके आचार-विचारकी रक्षाका प्रयत्न होने लगा, धीरे धीरे उनमें हिन्दू-विरोधी भावोंका समावेश होने लगा। प्रारम्भमें वह भाव भी गौण बातोंमें ही प्रकट होते रहे। औरंगज़ेबसे पूर्व दरबारी लोग हाथको मस्तक तक उठाकर एक दूसरेको सलाम करते थे। यह हिन्दुओंका अनुकरण समझा गया। हुक्म हुआ कि आपसमें केवल 'सलाम आलेकुम' ही कहा जाय। कुछ दिनों पीछे वह भी रोक दिया गया, क्यों कि बादशाहकी उपस्थितिमें दरबारी लोग आपसमें सलाम दुआ करें, इसे शाहके गौरवका विरोधी समझा गया।

अकबरके समयसे यह प्रथा प्रचलित थी कि जब बादशाह किसी सामन्त हिन्दू राजाका राज-तिलक करता था, तो उसके माथेपर अपने हाथसे टीका लगाता था। औरंगज़ेबको इसमें मूर्ति-पूजाकी बू आई। पहले उसने हुक्म दिया कि वज़ीर ही टीका कर दे, बादशाहको कष्ट न दिया जाय, परन्तु शीघ्र ही वह भी

बन्द कर दिया गया, और नया राजा बादशाहके सामने सिर झुका दे, इतना ही पर्याप्त समझा गया।

मुग़ल बादशाह प्रतिदिन किसी समय किलेकी खिड़कीमेंसे प्रजाको दर्शन दिया करते थे। उस समय हज़ारोंकी भीड़ इकट्ठी होती थी, और बादशाहका अभिनन्दन करती थी। उसका नाम 'दर्शन' था। औरंगज़ेबने राज्यके ११ वें वर्षमें इस प्रथाको हिन्दूपनका परिणाम समझकर बन्द कर दिया।

होलीमें जो वाहियात और असभ्यतापूर्ण कार्य होते थे, उन्हें रोकनेके लिए भी औरंगजेबने कुछ आज्ञायें प्रचारित की थीं। १६६३ में एक हुक्म सती-दाहके विरोधमें प्रकाशित हुआ था। दोनों ही आज्ञायें प्रजाके लिए उपयोगी थीं, यदि यह हिन्दू-विरोधी आक्रमणका एक भाग न बन जाती, तो उनसे प्रजाका भला ही होता, परन्तु अब तो वह आज्ञाके रूपमें ही रहीं, हिन्दू यह समझकर कि यह भी बादशाहके इस्लामी जोशके फल हैं, उनकी यथाशक्ति उपेक्षा करते रहे। होली बराबर मनाई जाती रही और सती-दाह जारी रहा।

यद्यपि औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीतिका पूर्ण विकास कुछ समय पीछे हुआ, परन्तु उसका बीजारोपण तो प्रारम्भसे ही हो रहा था। राज्यारोहणसे पूर्व ही १६४४ में उसने अहमदाबादमें चिन्तामणिके मन्दिरमें गो-हत्या कराकर इस्लाम-प्रेमका परिचय दिया था। गुजरात और उड़ीसामें उसने कई मन्दिरोंको तुड़वाया था। नये मन्दिरोंका बनना तो बिल्कुल ही बन्द हो गया था। राज्यके प्रथम वर्षमें काशीके एक पण्डितको मन्दिरका पट्टा देते हुए औरंगजेबने उसे नये मन्दिर बनानेसे सर्वथा रोक दिया था।

१६६९ में औरंगज़ेबने गम्भीरतासे पूरी शक्तिके साथ हिन्दुओंके दलन और इस्लामी राज्यकी स्थापनाका प्रयत्न जारी कर दिया। इस्लामी धर्म-राज्यका आदर्श यह समझा जाता है कि उसके सब निवासी मुसलमान हों और कुरानमें बताये हुए राजनियमोंके अनुसार उनका शासन हो। आदर्श मुस्लिम-राज्यमें किसी

काफिरका रहना, धन-धान्ययुक्त होना, या किसी ऊँचे ओहदेपर पहुँचना असम्भव है। यदि कोई काफिर इस्लामी राज्यमें रहे, तो उसे गुलाम बनकर रहना चाहिए। वह मुसलमानोंकी बराबरी नहीं कर सकता। अलाउद्दीन खिल्जीके सामने कुरानके कानूनकी व्याख्या करते हुए क़ाज़ी मुग़ीसुद्दीनने बतलाया था कि "शरीयतके अनुसार हिन्दू ख़राज-गुज़ार (लगान देनेवाले) हैं। जब लगान वसूल करनेवाले उनसे चाँदी माँगें, तो उन्हें सोना हाजिर कर देना चाहिए। यदि अफसर उनके मुँहपर धूल फेंके, तो उन्हें मुँह खोलकर उसे ग्रहण करना चाहिए। इन क्रियाओंसे काफिरोंकी दीनता, और सच्चे मज़हबकी महिमा स्थापित होती है। खुदाने हुक्म दिया है कि काफिरोंको तब तक दबाओ जब तक वह अपने हाथसे जज़िया देकर अपमानित हों। रसूलने हमें काफिरोंको मारने, लूटने और कैद करनेकी आज्ञा दी है।"

यह था आदर्श इस्लामी राज्यका सिद्धान्त। औरंगज़ेब अकबर और शाहजहाँकी नीतिको इस्लाम-विरोधिनी मानता था। कुछ समय तक उसके विचार पकते रहे। भाइयों और पिताकी ओरसे निश्चिन्त होकर १६६९ में उसने आदर्श मुस्लिम-राज्यकी स्थापनाका कार्य पूरे ज़ोरसे जारी कर दिया। उस वर्ष देशभरमें निम्न आशयका फरमान जारी किया गया—

"काफिरोंकी सब पाठशालायें और मन्दिर नष्ट कर दिये जायँ, और उनकी मज़हबी तालीमको बन्द कर दिया जाय।"

इस आज्ञाका पालन जिस कठोरताके साथ कराया गया, उसे देख आश्चर्य होता है। पूरा इतिहास देना कठिन है। कस्बों या ग्रामोंमें छोटे छोटे मुसलमान-अफसरोंने प्रजापर जो अत्याचार किये होंगे, उनका तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। जिस मन्दिर-ध्वंसके उदाहरणोंका उस समयके लेखोंमें वर्णन मिलता है, यदि उतनेपर ही पूर्ण विश्वास किया जाय, तो रोमाच होता है। १६५९ का एक फरमान बनारसके सम्बन्धमें है, उसमें तो केवल नये मन्दिरोंका बनाना ही रोका गया है, परन्तु १६६९

की जो आज्ञा ऊपर दी गई है, उसमें तो नये पुरानेका सब भेद मिटा दिया गया है। उसके पीछे मन्दिरोंका तोड़ना हरेक अफ़सरका कर्तव्य हो गया, और उनमेंसे भी जो मन्दिरको तोड़कर उसके खंडहरोंसे मसजिद बना सके, उसका कार्य तो अत्यन्त प्रशंसनीय हो जाता था। बादशाहका प्यारा बननेका प्रधान उपाय मन्दिरोंका भंग था।

सोमनाथका प्रसिद्ध मन्दिर जिसे महमूद गज़नीने बरबाद किया था, फिरसे राजा भीमदेवके उद्योगसे आबाद हो गया था। औरंगज़ेबने अपने शासनके पूर्वकालमें फिरसे उसे तोड़ डाला था परन्तु इसपर उसे सन्तोष नहीं हुआ। कुछ वर्ष पीछे उसने गुजरातके शासकको लिखा कि यदि काफ़िरोंने फिरसे मन्दिरमें पूजा आरम्भ कर दी हो, तो उसे ऐसा उजाड़ो, ऐसा मिट्टीमें मिलाओ कि कोई निशान बाकी न रहे।

काशीमें विश्वनाथजीका मन्दिर हिन्दुओंका प्रसिद्ध पूजास्थान था। दूर दूरसे यात्री लोग इस मन्दिरके दर्शनोंके लिए एकत्र होते थे। जितना बड़ा मंदिर, उतना ही बड़ा क्रोध। औरंगज़ेबकी आज्ञासे वह मन्दिर गिरा दिया गया।

मथुराका केशवरायका मन्दिर एक अचंभेकी चीज़ थी। इस मन्दिरको वीरसिंहदेव बुन्देलाने ३३ लाख रुपये खर्च कर बनाया था। औरंगज़ेबके हुक्मसे उस मन्दिरको गिराकर उसके स्थानपर मसजिद बनवाई गई। उस समयका इतिहास-लेखक लिखता है कि इस मन्दिरके ध्वंसने हिन्दू राजाओंकी पीठ तोड़ दी। मूर्तियाँ सोने, चाँदी और जवाहिरातसे जड़ी हुई थीं। इन सबको आगरे लाकर जहानाराकी मसजिदकी सीढ़ियोंके नीचे दबा दिया गया, ताकि हरेक जाने आनेवालेके पाँवके नीचे कुचला जा सके।

मथुरापर औरंगज़ेबका कोप इतनेमें ही शान्त नही हुआ। यह नगरी हिन्दुओंका विख्यात तीर्थ होनेसे कट्टर मुसलमानके लिए अत्यन्त दुखदायिनी थी। उसके विशाल मन्दिरोंके गगनभेदी कलश आगरेके किलेसे दिखाई देते थे। दिल्लीसे आगरे जाते हुए

रास्तेमें यह रोड़ा अटकता था। औरंगज़ेवको मालूम हुआ कि दारा शिकोहने पत्थरकी एक रविश मन्दिरको भेंट की थी। इसपर १६७० में उसने हुक्म दिया कि न केवल मन्दिरको ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाय, मथुरा शहरको उजाड़कर उसकी जगह इस्लामावाद् वसाया जाय। उज्जैनकी भी यही गति हुई।

औरंगज़ेबके अफसरों और सेनापतियोंका जोश भी कुछ कम नहीं था। प्रत्युत वह तो मालिकको खुश करनेके लिए दो चार कदम आगे जानेको भी उद्यत थे। जिस समय मीर जुमला विजेताकी हैसियतसे कूचविहारमें प्रविष्ट हुआ, उसने सय्यद मुहम्मद सद्दीकको प्रधान न्यायाधीश बनाते हुए यह हुक्म दिया कि देशमें जितने भी मन्दिर हैं, उन्हे तोड़ दिया जाय। मीर जुमलाने स्वयं नजात हासिल करनेके लिए नारायणकी एक मूर्तिका भालेसे भंग किया। मालवेसे वज़ीरखाँने समाचार भेजा कि गादावेग नामके गुलामको ४०० सिपाहियोंके साथ आसपासके स्थानोंमें मन्दिरोंको तोड़नेके लिए भेजा था। गादावेग एक हिन्दू रावतके हाथसे मारा गया।

उड़ीसासे औरंगज़ेवको समाचार मिला कि मेदिनीपुरके समीप तिलकुटीमें एक नया मन्दिर बनाया गया है। उसी समय वहाँके फौजदारोंको हुक्म दिया गया कि उस मन्दिरका, और उसके पास घृणित काफिरोंद्वारा बनाये हुए अन्य मंदिरोंका बहुत शीघ्र ध्वंस कर दिया जाय। १० या १२ वर्षमें जितने मूर्तिगृह बनाये गये हैं, वह एकदम भूमिसात् कर दिये जायँ। १६७९ में खण्डेलाके राजपूतोंको सज़ा देनेके लिए दाराबख़ाँको भेजा गया, कि वह सब मन्दिरोंको तोड़-फोड़ डाले। ८ मार्चको उसने खण्डेला और सनूलाके सब मन्दिर गिरा दिये।

जोधपुरके साथ कई वर्षों तक औरंगज़ेवकी लड़ाई रही। जब उसकी सेनायें राजधानीमें प्रविष्ट हुईं, तो शाही हुक्मसे वहाँके सब बड़े बड़े मन्दिरोंका ध्वंस कर दिया गया। वहाँपर जो मूर्तियाँ थीं, वह ताँबा, सोना, चाँदी और जवाहिरातसे लदी हुई थीं। खाने-

जहान बहादुरको आज्ञा मिली कि उन सब मूर्तियोंको ठेलोंमें भर कर ले आये, और जुम्मा मसाजिदकी सीढ़ियोंके नीचे दबा दे, ता कि आने-जानेवाले उन्हें पाँवसे कुचलते रहें।

औरंगज़ेबकी उदयपुरके राणासे भी लड़ाई हुई। जब उसकी सेनायें राजधानीमें पहुँची, तो वहाँके राजकीय मन्दिरका नाश करना उनका अत्यावश्यक कर्तव्य समझा गया। वह मन्दिर बहुमूल्य धातुओं और रत्नोंसे भरा हुआ था। प्रायः सभी राणाओंने अपना अपना हिस्सा डाला था। उदयसागर झीलपर तीन मन्दिर थे। बादशाहने उन सबके नष्ट करनेका कड़ा हुक्म दिया। उदयपुरके आसपासके १८२ मन्दिर, और चित्तौड़के ६३ मन्दिर भी बादशाहके हुक्मसे नष्ट किये गये। १६८० में अबू तुराबने अम्बरसे दरबारमें आकर सूचना दी कि वह ६६ मन्दिरोंको तोड़कर आया है।

गुजरात और दक्षिणमें हिन्दू मन्दिरोंकी बहुतायत थी। इस कारण उन प्रान्तोंमें मन्दिर-ध्वंसके लिए औरंगज़ेबको कई बार आज्ञायें निकालनी पड़ी। बादशाह बननेसे पूर्व ही जब वह गुजरातका वायसराय था, तब उसने मन्दिरोंका गिराना आरम्भ कर दिया था। १६६५ में उसने फरमान निकाला कि "अहमदाबाद और उसके आसपासके परगनोंमें मैंने बहुतसे मन्दिर गिरवा दिये थे। उनकी मरम्मत करा दी गई है और मूर्तिपूजा आरम्भ हो गई है। फिर मन्दिरोंको गिरवा दो।" १६६९ में बादशाहने सब प्रान्तोंके शासकोंको मन्दिरों और पाठशालाओंके तुड़वानेका हुक्म दिया। गोलकुण्डाकी विजयके पश्चात् औरंगज़ेबने अब्दुर रहीमखाँ नामक व्यक्तिको मन्दिरोंको तोड़कर उनके स्थानपर मसजिदें बनवानेकी आज्ञा दी। १७०५ में बादशाहने मुहम्मद खलीलखाँको बुलाकर हुक्म दिया कि पंढरपुरके मन्दिरको नष्ट कर दो। शीघ्र ही आज्ञाका पालन किया गया।

६—हिन्दुओंके दलनकी चेष्टा

२—जज़िया

एक मुसलमान-राज्यमें, इस्लामके कट्टर सिद्धान्तके अनुसार केवल मुसलमान ही रह सकते हैं। विधर्मियोंको वहाँ रहनेका अधिकार नहीं है। यदि वह रहना चाहें, तो उन्हें काफ़िर होनेका जुर्माना देना पड़ेगा। इस जुर्मानेका नाम जज़िया है। मुसलमान-राज्यमें वही अमुसलमान रह सकता है, जो राज्य-द्वारा नियुक्त कर्मचारीकी सेवामें नियमपूर्वक और विनयपूर्वक जज़िया पेश करता रहे। जो जज़िया न दे, उसे देश छोड़ देना चाहिए। जज़िया कर देनेका यह नियम होना चाहिए कि देनेवाला अफ़सरके सामने कर लेकर स्वयं उपस्थित हो, और नम्रतासे पेश करे। मुहम्मद साहिबने स्वयं कहा था कि 'तब तक काफ़िरोंसे लड़ो जबतक वह नम्रतासे जज़िया देनेको तैयार न हो जायँ।' अल्लाउद्दीन खिल्जीके वज़ीरने उसे बतलाया था कि यदि शरीयतका ठीक पालन किया जाय, तो काफ़िरको मुसलमानके सामने हमेशा नम्र होकर रहना चाहिए। यदि मुसलमान अफ़सर उसपर धूल फेंके, ता उसे मुँह खोल देना चाहिए। यदि उससे चाँदी माँगी जाय, तो उसे सोना देनेके लिए उद्यत रहना चाहिए।

जज़ियाकी दर समय समयपर बदलती रहती थी। औरतों, बच्चों, गुलामों और फकीरोंको जज़ियासे मुक्त रखा जाता था। जब मुहम्मद कासिमने पहले पहल सिन्धको जीता था, तो उसने ब्राह्मणोंको भी छोड़ दिया था, परन्तु पीछेसे केवल उन्हीं ब्राह्मणों या साधुओंको मुक्त रखा जाता था, जिनके पास कोई सम्पत्ति न हो, और न जो किसी ऐसे मठ-मन्दिरसे सम्बन्ध रखते हों, जिसके पास सम्पत्ति हो। मठ या मन्दिरसे

सम्बन्ध रखनेवालोंका कर मठ या मन्दिरसे ही लिया जाता था। जिन अन्धों, अपांगों या पागलोंके पास आमदनीका कोई साधन हो, उनपर भी कर लगाया जाता था।

जज़िया लगानेके लिए प्रजाको ३ श्रेणियोंमें विभक्त कर दिया जाता था—

(१) साहूकार, कपड़ेके व्यापारी, ज़मीनदार, व्यापारी, तथा वैद्य सबसे ऊँची श्रेणीमें रखे जाते थे। इनसे वर्षमें कमसे कम ४८ दरहम या १३१≡) वसूल किये जाते थे।

(२) तीसरी श्रेणीमें दर्ज़ी, रंगरेज़, जूतेके व्यापारी तथा ऐसे ही अन्य कारीगरोंकी गिनती की जाती थी। उनपर १२ दरहम या ३१≡) का कर लगाया जाता था।

(३) दूसरी श्रेणी इनके बीचों बीच थी। उन्हें हम मध्यम श्रेणीके लोग कह सकते हैं। उनसे २४ दरहम या ६२≡) वार्षिक कर लिया जाता था।

सब सरकारी नौकर जज़ियासे मुक्त समझे जाते थे। मुसलमानोंके प्रारम्भ-कालसे ही किसी न किसी रूपसे हिन्दुओंपर जज़िया लगा दिया था। कभी कम और कभी अधिक। कभी वह वसूल किया जाता था, तो कभी राज्यके कुप्रबन्धके कारण वसूल नहीं हो पाता था; परन्तु राज-नियममें उसका आवश्यक प्रवेश था। अकबरने उसे उड़ा दिया। जहाँगीर और शाहजहाँने भी उस साम्राज्य-संस्थापककी नीतिका अनुसरण करते हुए करके सम्बन्धमें हिन्दू और मुसलमान प्रजामें कोई भेद उत्पन्न करना उचित न समझा। इस प्रकार तीन बादशाहोंके समयमें जज़िया बन्द रहा।

परन्तु प्रारम्भसे ही औरंगज़ेबको जज़िया न लगानेमें बुत-परस्तोंके साथ राजीनामेकी गन्ध आ रही थी। गद्दीपर बैठनेके २१वें वर्ष (१६७९ में) उसने आज्ञा दी कि सारे मुल्कमें हिन्दुओंपर जज़िया लगा दिया जाय। इस समाचारके फैलते ही हिन्दुओंमें हलचल मच गई। दिल्लीके हिन्दू समूहरूपसे अपनी फ़रि-

याद करनेकी ठानकर यमुनाके किनारे किलेकी खिड़कीके नीचे इकट्ठे हुए और दर्शनके समय बादशाहके आगे क्रन्दन करने लगे। उसका कोई असर न होता देखकर शुक्रवारके दिन जब औरंगज़ेब हाथीपर सवार होकर जुम्मा मसजिदकी ओर रवाना हुआ, तो हिन्दू जनताने रास्ता रोक लिया। बहुत रोये और बहुत धोये परन्तु उस चट्टानपर कोई असर न हुआ। जब हटानेसे भी भीड़ने रास्ता न छोड़ा, तो औरंगज़ेबका हाथी फरियादियोंको कुचलता हुआ मसजिदकी ओर बढ़ने लगा। बहुतसे लोग गिर गये, कइयोंको चोटें आईं, बीसियों बेहोश हो गये; परन्तु मज़हबी जोशका दीवाना टससे मस न हुआ।

जब हुक्मनामा दूर दूर तक फैला, तब अन्य स्थानोंसे भी प्रतिवादके सन्देश आने लगे। दिल्लीके प्रतिवादियोंके साथ जो सलूक हुआ, उसका समाचार भी चारों ओर फैल गया होगा, इस लिए हिन्दू प्रजाकी यह हिम्मत न हुई कि वह समूह रूपसे कोई असन्तोष प्रकट करती, परन्तु अन्दर ही अन्दर असन्तोषकी ज्वाला सुलगने लगी। स्वाधीन हिन्दू राजाओंमेंसे शिवाजी ही एक ऐसा था, जिसने समानताके दावेके साथ औरंगज़ेबको एक पत्र लिखकर जज़िया लगानेकी न्यायविरुद्धता समझानेकी चेष्टा की। शिवाजीका वह पत्र संयत परन्तु ओजस्विनी भाषाका एक बढ़िया नमूना है। उसका कुछ भाग नीचे उद्धृत किया जाता है—

"बादशाह आलमगीरकी सेवामें—

....

"मैंने सुना है कि मेरे साथ युद्ध करनेके कारण ख़ज़ाने ख़ाली हो जानेसे तंग आकर हुज़ूरने हिन्दुओंपर जज़िया नामका कर लगा दिया है ताकि शाही ख़र्च चल सके। जनाबे आली, जलालुद्दीन अकबर बादशाहने ५२ वर्षतक पूरी शक्तिके साथ राज्य किया। उसने ईसाई, यहूदी, मुसलमान, दादूपन्थी, फलकिया, मलकिया-अन्सारिया, दहरिया, ब्राह्मण और जैनोंके साथ समान व्यवहार जारी रखा। उसके हृदयका भाव यह था कि सब प्रजा प्रसन्न और

सुरक्षित रहे। इसी कारण वह 'जगद्गुरु' नामसे विख्यात हो गया था।

"उसके पश्चात् बादशाह नूरुद्दीन जहाँगीरने दुनिया और उसके निवासियोंपर २२ वर्षतक अपनी शीतल छाया फैलाये रखी। उसने अपना हृदय मित्रोंको और हाथ कार्यको सौंपा, जिससे उसे हरेक अभीष्ट वस्तु प्राप्त हुई। बादशाह शाहजहाँने ३२ वर्षतक राज्य किया और अनन्त जीवनका फल प्राप्त किया, जो नेकी और यशका दूसरा नाम है।..

"परन्तु हुजूरके राज्य-कालमें, बहुतसे किले और सूबे हाथसे निकल गये है, और शेष भी निकल जायँगे, क्योंकि मेरी ओरसे उनके नष्ट करनेमें कोई कसर न छोड़ी जायगी। आपके राज्यमें किसान कुचले गये हैं, हरेक गाँवकी आमदनी कम हो गई है, एक लाखकी जगह एक हज़ार और एक हज़ारकी जगह दस, और वह भी बहुत कठिनाईसे वसूल होता है।

"हुजूर, यदि आप इलहामी किताब और खुदाके कलामपर विश्वास रखते हों, तो वहाँ खुदाको रब-उल आलमीन (संसार भरका खुदा) कहा है, रब-उल-मुसलमीन (मुसलमानोंका खुदा) नहीं कहा। यह ठीक है कि इस्लाम और हिन्दूधर्म एक दूसरे-से विरुद्ध भावके प्रदर्शक हैं, वह असलमें चित्र भरनेके लिए केवल दो जुदा जुदा रंग है। यदि यह मसजिद है, तो वहाँ उसीको याद करनेके लिए दुआ की जाती है। यदि वह मन्दिर है, तो उसमें, उसीकी तलाशमें घण्टा बजाया जाता है। किसी भी मनुष्यके धार्मिक विश्वास या धार्मिक क्रिया-कलापके साथ दुश्मनी करना पवित्र पुस्तकके शब्दोंको बदलनेके समान है।................

"पूरे न्यायकी दृष्टिसे देखा जाय, तो जज़िया उचित नहीं है। राजनीतिक दृष्टिसे केवल उसी दशामें जज़ियाको माना जा सकता है, जब सुन्दर स्त्रियाँ आभूषणोंसे अलंकृत होकर राज्यके एक भागसे दूसरे भागमें जा सकें। परन्तु आज जब कि शहर भी लूटे जा रहे हैं, तब खुली आबादीका क्या कहना है? जज़िया केवल

अन्यायपूर्ण ही नहीं है, यह भारतमें एक नई वस्तु है, और समयके विरुद्ध है।

"यदि आप समझते हों कि हिन्दू प्रजाका दबाना और डराना धर्म है, तो आपको चाहिए कि आप राजा राजसिंहसे जज़िया कर वसूल करें, क्यों कि वह हिन्दुओंका शिरोमणि है। तब तो मुझसे भी जज़िया लेना कठिन न होगा, क्यों कि मैं आपका सेवक हूँ। परन्तु चीटियों और मक्खियोंको सतानेमें कोई बहादुरी नहीं है।

"मैं आपके नौकरोंकी अद्भुत स्वामिभक्तिपर आश्चर्यित हूँ कि वह आपको राज्यकी ठीक ठीक दशा नहीं बतलाते और आगको फूससे ढँकना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि आपके बड़प्पनका सूर्य आकाशमें चिरकाल तक चमकता रहे।"

प्रसिद्ध है कि कई अन्य हिन्दू राजाओंने भी औरंगज़ेबकी आँखें खोलनेकी चेष्टा की, परन्तु कुछ सफलता न हुई। जज़िया लगानेका हुक्म लेकर हरकारे चारों ओर फैल गये। ग़रीब प्रजाके लिए तो मानो मृत्युका सन्देश आ गया। सूबेके शासक अधिकसे अधिक जज़िया उगाहनेमें कारगुज़ारी समझने लगे। कर वसूल करनेके लिए प्रायः बलका प्रयोग आवश्यक हो जाता था, जिससे चारों ओर हाहाकार मच गया।

जज़िया कर लगानेके प्रत्यक्ष फल दो हुए। सरकारकी आय बढ़ गई, और नये मुसलमानोंकी संख्यामें वृद्धि होने लगी। बहुतसे स्थानोंमें ६ मासके अन्दर ही अन्दर सरकारी ख़ज़ानेकी आय चौगुनी हो गई। औरंगज़ेबने प्रान्त-शासकोंको लिख दिया था कि 'तुम्हें अन्य सब प्रकारके करोंको माफ करनेका अधिकार है, परन्तु जज़िया किसीको माफ़ नहीं किया जा सकता।' गुजरातमें केवल जज़ियासे जो आय थी, वह शेष सारी आयका लगभग ३१ फी सदी थी। इस प्रकार जज़िया लगानेका तुरन्त परिणाम यह हुआ कि राज्यकी आय बढ़ गई।

दूसरा परिणाम यह हुआ कि नौ-मुसलमानोंकी संख्या बढ़ने लगी। इस समयके इतिहास-लेखक मनूचीने लिखा है कि "बहु-

तसे हिन्दू, जो नहीं दे सकते थे, मुसलमान बन गये ।...........
औरंगज़ेब प्रसन्न होता था कि कठोर उगाहीसे हिन्दू लोग इस्लाम ग्रहण करनेके लिए बाधित होते थे।"

यह दोनों जज़ियाके प्रत्यक्ष, और तुरन्त परिणाम थे। परन्तु उसके जो अप्रत्यक्ष और अन्तिम परिणाम थे, वह इनसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थे। सोनेके अंडे देनेवाली चिड़िया ज़िन्दा रह कर अण्डा दे सकती है, यदि उसमेंसे एक बार ही सब अण्डे लेनेका यत्न किया जाय तो वह ही न रहेगी, फिर अण्डे कहाँसे आयेंगे। जज़ियाका बोझ पड़नेसे हिन्दू व्यापारी शहरोंको छोड़कर भागने लगे, क्यों कि शहरोंमें ही वसूलीका ज़ोर था। इससे व्यापार थोड़े ही दिनोंमें चौपट हो गया। छावनियोंमें विशेष दिक्कत होने लगी। हिन्दू व्यापारियोंके भाग जानेसे फौजोंको अन्न मिलना भी कठिन हो गया। जब प्रान्तोंके शासकों या सेनापतियोंकी ओरसे यह सिफारिश आती कि कुछ समयके लिए जज़िया वसूल न किया जाय, तो औरंगज़ेबका ज़ोरदार इन्कार पहुँच जाता। अन्तिम फल यह हुआ कि शहरोंका व्यापार उजड़ने लगा, जिससे केवल जज़िया करकी ही नहीं, प्रस्तुत हर प्रकारकी सरकारी आमदनी घटने लगी।

ज़बर्दस्तीसे धर्म-परिवर्तनद्वारा किसी धर्मकी शक्ति-वृद्धि नहीं होती। जो लाचार होकर मुसलमान बनेगा, वह सन्तुष्ट होकर वहाँ न रह सकेगा। वह अपनी नई अवस्थाको लाचारीका परिणाम समझकर उससे असन्तुष्ट रहे, तो आश्चर्य नहीं। बलात्कार या लाचारीद्वारा जिन लोगोंने इस्लामको ग्रहण किया, उनमेंसे अधिकांशसे यह आशा नहीं हो सकती थी, कि वह औरंगज़ेबसे प्रसन्न होंगे, या उसके मददगार होंगे।

ऐसे धर्म-परिवर्तनोंका दूसरा फल यह भी हुआ कि वणिज-व्यापार और कृषिको एक और धक्का पहुँचा। उस समय मुसलमान हिन्दुस्तानमें विजेताकी हैसियतसे रहते थे। वह व्यापारको

अपने लिए निन्दनीय समझते थे। व्यापार या कृषि अधिकांशमें हिन्दुओंका ही काम समझा जाता था। मुसलमान तो एक ही पेशा जानते थे और वह लड़ना था। वह या तो लड़ते थे, और या विलासिताके सागरमें डूब जाते थे। खड्ग और बोतल—यह दो ही उनके दोस्त हो गये थे।

कुछ पुश्तैनी काश्तकार जातियोंको छोड़कर शेष जो भी हिन्दू मुसलमान बनते थे, वह व्यापार या कृषिको अपने लिए लज्जाजनक समझने लगते थे। इससे जहाँ एक लड़ाई-पेशा लोगोंकी संख्या बढ़ने लगी, वहाँ व्यापार और खेतीका क्षय होने लगा। खानेवाले बढ़ गये, कमानेवाले घट गये। ऐसे घरका दीवाला निकल जाय, तो क्या अचम्भा है।

लड़ाकुओंकी संख्यामें वृद्धि होनेका एक और परिणाम हुआ, जो उन निठल्ले हिन्दुओंकी संख्या बढ़नेसे और भी अधिक गम्भीर हो गया; जो कारोबार तो छोड़ चुके थे, परन्तु मुसलमान नहीं बने। बेरोज़गार सिपाहीका निश्चित पेशा डाकाज़नी है। राहगीरों और डाकुओंकी संख्यामें वृद्धि हो गई। विद्रोहियोंकी संख्या इसी प्रकार बढ़ा करती है। जो रईस थोड़ा भी असन्तुष्ट हुआ, उसने ज़रासा प्रलोभन दिया, कि यह विस्तृत देशरूपी सागरमें इधर उधर घूमनेवाले मगर-मच्छ उसीके चारों ओर घिरकर राज्यका अंग-भंग करने लगते। उन निठल्ले लड़ाकुओं और बेरोज़गार किसानोंके ज़ोरपर विद्रोह करना आसान हो गया। राज्य-विप्लवका बीज हमेशा बेरोज़गारीसे बोया जाता है। जज़िया करने औरंगज़ेबका सबसे बड़ा अनिष्ट यह किया कि बेरोजगारोंकी संख्या बढ़ा दी। मुग़ल-साम्राज्यके क्षयको अत्यन्त शीघ्रतासे सम्पादित करनेमें जितना बड़ा भाग औरंगज़ेबकी इस भूलका था, उतना बड़ा अन्य किसी कारणका नहीं।

७—हिन्दू-विद्रोहकी चिनगारियाँ

औरंगज़ेब किसी कामको आधे दिलसे करनेवाला नहीं था। उसने जो कुछ किया, पूरे ज़ोरसे किया। कोई कसर नहीं छोड़ी। राजगद्दीको निर्द्वन्द्व करनेका विचार किया, तो पिता भाई और भतीजोंमेंसे कोई बाकी न रखा। जब एक बार हिन्दुस्तानमें इस्लामका साम्राज्य स्थापित करनेका संकल्प कर लिया, तो फिर पीछे मुड़कर या दायें बायें नहीं देखा। राज़ीनामेकी कोई गुंजायश बाकी नहीं रखी। अशक्तिके कारण कहीं राज़ीनामा हो गया हो तो दूसरी बात है, परन्तु जान-बूझकर औरंगज़ेबने कुफ़्रके साथ राज़ीनामा नहीं होने दिया।

औरंगज़ेबकी नीति यह थी कि हिन्दुओंके अधिकार मुसलमानोंसे इतने कम कर दिये जायँ, और हिन्दू रहना इतना महँगा और अपमानजनक बना दिया जाय कि वह लाचार होकर मुसलमान बन जाय। इस प्रकार थोड़े ही समयमें सारे हिन्दुस्तानके निवासी मुसलमान हो जायँगे, जिससे परलोक भी सुधरेगा और यह लोक भी। इसी भावनाके अनुसार औरंगज़ेबने मन्दिरोंका ध्वंस करवाया, और जज़िया कर फिरसे लगाया। यह तो दो बड़ी बड़ी चोटें थीं, परन्तु यदि इनका सामान्य नीतिपर असर न होता तो आश्चर्यकी बात होती। औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीति धीरे धीरे पुष्ट होती गई। ज्यों ज्यों उसे खुराक़ मिली, त्यों त्यों वह बढ़ती गई, यहाँ तक कि अन्तिम दिनोंमें औरंगज़ेबके हृदयमें एक ही भावना रह गई, और वह हिन्दुओंके प्रति रोष, अविश्वास और वैरकी भावना थी।

१० अप्रैल १६६५ को एक हुक्मनामा जारी किया गया, जिसके द्वारा बिक्रीके सब सामानपर मुसलमान दूकानदारोंके लिए २॥ फी सदी, और हिन्दू दूकानदारोंके लिए ५ फी सदी चुंगी लगाई गई। परन्तु औरंगज़ेबकी इतनेसे सन्तुष्टि न हुई। ९ मई १६६७

को मुसलमान दूकानदारोंद्वारा लाये गये मालपरसे महसूल बिल्कुल उठा दिया गया। इससे बादशाहका अभिप्राय यह था कि मुसलमान दूकानदारोंकी वृद्धि हो, और व्यापार उनके हाथमें आये, परन्तु असर उलटा ही हुआ। जो अशक्त या भोले भाले हिन्दू दूकानदार थे, उन्हें अवश्य कुछ हानि हुई, परन्तु चतुर व्यापारियोंको सरकारके साथ धोखा करनेमें कुछ भी दिक्कत न हुई। हिन्दू दूकानदार मुसलमानोंके नामसे माल मँगाने लगे। सरकारको ऐसी दशाओंमें ठगना कुछ भी कठिन नहीं है।

ठगाईकी वृद्धिके अतिरिक्त इस प्रकारके भेदजनक कानूनका प्रजापर सदा बुरा असर पड़ता है। जिनके साथ कठोरताकी जाती है, उनका असंतोष गहरा होता जाता है, और जिनके साथ रियायत की जाती है, उन्हें प्रमाद, आलस्य और अभिमान घेर लेता है। किसी जाति या मनुष्य-समूहको प्रमादी बनानेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसे मेहनत कम करनी पड़े, और लाभ अधिक दिखाई दे। ऐसी जाति या मनुष्य-समूहमें विशेष निर्बलता आ जाती है, जो उसकी शीघ्र समाप्तिमें सहायक होती है।

१६७१ में एक आज्ञा प्रचारित की गई जिसके द्वारा सब हिन्दू पटवारी, पेशकार और दीवानियन (खज़ाँची) सरकारी नौकरीसे पृथक् कर दिये गये और उनके स्थानपर मुसलमान लगाये गये। १६९५ में राजपूतोंको छोड़कर शेष सब हिन्दुओंका पालकीमें, हाथीपर या शानदार घोड़ेपर चढ़कर बाहिर निकलना, या हथियार बाँधकर घूमना बन्द कर दिया गया।

१६६८ में औरंगज़ेबने देशभरके तीर्थोंपर स्नानके मेले बंद कर दिये। धीरे धीरे होली और दीवालीकी भी मुमानियत हो गई। यदि कोई इन त्योहारोंको मनाना ही चाहे, तो वह बाज़ारसे बाहिर मना सकता था।

यह तो उन आज्ञाओंके कुछ नमूने हैं, जो हिन्दुओंके जीवनको कठिन और अपमानजनक बनानेके लिए निकाली गईं। असली

वस्तु तो वह नीति थी, जिससे इन आज्ञाओंका जन्म हुआ था। औरंगज़ेबकी नीतिका संक्षेप यह है कि यथासम्भव शीघ्र सारे देशमें हिन्दू एक भी न रहे, सब मुसलमान हो जायँ। इसे वह अपना लौकिक और धार्मिक कर्तव्य समझता था। यों तो उसे सारी दुनियापर अविश्वास था, अपने पिता और पुत्रोंको भी सदा अविश्वासकी दृष्टिसे देखता था, परन्तु हिन्दुओंपर तो उसका अविश्वास पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था। पहले तो वह राज्यके किसी बहुत बड़े ओहदेपर हिन्दूको रखना पसन्द नहीं करता था, और यदि किसीको रखता भी था तो उसके साथ एक दो मुसलमान अफसरोंको पहरेदारकी तरह लगा देता था, जिससे हिन्दू अफ़सर अपमानित भी होता था और अकृतकार्य भी।

इस प्रकार प्रत्येक सम्भव उपायसे औरंगज़ेबने हिन्दुओंके दलनकी चेष्टा की। आयुके साथ साथ उसका हिन्दू-विरोधी भाव भी दिनों दिन बढ़ता गया। साम, दान, दण्ड और भेद सभी उपायोंसे उसने हिन्दुओंको निर्वल करनेका यत्न किया। परन्तु क्या उसे सफलता हुई? इस प्रश्नका विस्तृत उत्तर इतिहासने दे दिया है। औरंगज़ेबका शानदार जीवन एक विशाल असफलताका जीता-जागता नमूना है। एक जाति मर सकती है, परन्तु मारी नहीं जा सकती, इस सिद्धान्तका प्रवल समर्थन आलमगीरके जीवनसे मिलता है। जो शक्तिशाली नरेश या राष्ट्र दूसरी जातिका अन्त करनेकी चेष्टा करते हैं, उन्हें औरंगज़ेबसे शिक्षा लेनी चाहिए। जाति अपने कर्मोंसे समाप्त हो सकती है, वह आत्महत्या कर सकती है, परन्तु बड़ीसे बड़ी चक्कीमें डालकर भी पीसी नहीं जा सकती। उसे जितनी ही पीसनेकी चेष्टा की जायगी, उसमें उतनी ही जीवन-शक्ति पैदा होगी। इतिहासके पृष्ठ ऐसी कहानियोंसे भरे पड़े हैं, जिनमें मरती मरती जातियाँ केवल इस लिए बच गईं कि उन्हें शीघ्र मारनेकी चेष्टा की गई। वह भी एक दुर्भाग्यपूर्ण क्षण था, जब औरंगज़ेबका सा वीर, निडर, परिश्रमी, बुद्धिमान्, और नीति-निपुण शासक अपनी प्रजाके एक भागका दलन करनेमें

प्रवृत्त हुआ, क्योंकि उसने उस प्रतिभासम्पन्न अभिनेताको एक दुःखान्त नाटकका पात्र बना दिया।

औरंगजबकी, हिन्दू-विरोधिनी नीतिका दिग्दर्शन हमने कर लिया। अब उसके परिणामोंकी कहानी सुनिए।

प्रारम्भसे ही औरंगज़ेब और हिन्दुओंके बीचमें एक अविश्वासकी खाई खुद गई थी। गद्दीपर बैठनेसे पूर्व ही मन्दिरोंके गिराने तथा अन्य कई कार्योंद्वारा वह अपने आपको प्रकाशित कर चुका था। इस कारण उसका और हिन्दुओंका सम्बन्ध शिकारी और शिकारका सा हो गया था। राजगद्दीके लिए जो संग्राम हुए, उनमें प्रायः हिन्दुओंकी सहानुभूति दाराके साथ रही। राजा जयसिंह और राजा जसवन्तसिंह आदि कुछेक स्वामिभक्त राजाओंने औरंगज़ेबका साथ दिया था, परन्तु उन्हें भी बीच बीचमें बादशाहके हिन्दू-विरोधी भावका शिकार बनना पड़ता था। राजा जसवन्तसिंहने तो कई बार झुँझलाकर निकल भागनेकी भी कोशिश की; परन्तु सामान्यतया हिन्दुओंकी और विशेषतया राजपूतोंकी नैसर्गिक विश्वसिताके कारण फिर स्वामिभक्तिके भावने विजय पाई, परन्तु यह कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि राजगद्दीके लिए युद्धमें हिन्दुओंकी अधिकांश सहानुभूति औरंगज़ेबके विरोधमें थी।

राज्यके प्रारम्भसे ही हिन्दू-विद्रोहकी चिनगारियाँ दिखाई देने लगी थीं। औरंगज़ेबके राज्य-कालके दूसरे ही वर्ष (१६५९ में) बहादुर पंचकोटि नामके सरदारका विद्रोह दृष्टिगोचर होता है। बहादुर पंचकोटि राजपूतोंका एक छोटासा सरदार था। उसने बायसबाड़ापर आक्रमण करके शहरको लूट लिया। मुग़ल सेनाओंने उसे वशमें करनेकी चेष्टा की। यह संघर्ष वर्षों तक चलता रहा। औरंगज़ेबके अन्तिम दिनोंमें हम शाही फौज़ोंको बायसबाड़ाके राजपूतोंसे उलझा हुआ पाते हैं।

१६६७ में मालवेमें भील ज़मीनदार चक्रसेनने विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया। भिलसाके पास चक्रसेनकी ज़मींदारी थी।

उसने सूबेदारके पास हाज़िर होना बन्द कर दिया, मालगुज़ारी रोक दी, और आसपासके ग्रामोंपर कब्ज़ा कर लिया। बादशाहकी ओरसे भगवन्तसिंह हाड़ाने चक्रधरपर चढ़ाई की और उसका किला अपने कब्ज़ेमें कर लिया। चक्रधर परास्त हो गया, परन्तु हारा नहीं, वह १६७० में विद्रोही दुर्जनसिंह हाड़ासे जा मिला, और दोनो मिलकर शाही सेनाओंसे लड़ने लगे। कुछ समय पीछे दोनोंको हथियार रख देने पड़े।

ईडरके राठौर शासक औरंगज़ेबके सम्पूर्ण राज्य-कालमें विद्रोही बने रहे। काश्मीरके दक्षिणमें किश्तावर नामकी एक छोटीसी रियासत थी। उसके राजाने १६७० के मई मासमें राज-कर देना बन्द कर दिया। १६७४ में राजा विट्ठलदासके पौत्र वीरसिंह गौरने विद्रोहका झण्डा खड़ा कर दिया। इसी प्रकारके अन्य भी बहुतसे छोटे छोटे विद्रोह, यद्यपि एक दूसरेसे असम्बद्ध-से थे, परन्तु उनका मूल कारण एक ही था। हिन्दुओंके कन्धोंपर मुग़ल-साम्राज्यका जुआ चुभने लगा था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँकी सहानुभूतिपूर्ण नीतिने उस जूएको कोमल बना दिया था। औरंगज़ेबके दुर्व्यवहारने उसे असह्य बना दिया।

इन छोटी छोटी विद्रोहकी चिनगारियोंको छोड़कर अब हम बड़े विद्रोहोंकी ओर झुकते हैं। बीकानेरके राजा राव करणने शाहजहाँके समयमें मुग़लोंकी अच्छी सेवा की थी। वह दक्षिणमें शाही सेनाओंके साथ चिरकाल तक रहा, और उसने युद्धमें नाम कमाया। दारा और औरंगज़ेबकी लड़ाईमें उसने दाराका पक्ष लिया था। औरंगज़ेब गद्दीपर बैठकर राव करणके इस अपराधको भुला न सका। उधर वह भी बिगड़ उठा। उसने दरबारमें हाज़िर होना छोड़ दिया। तब अमीरख़ाँके सेनापतित्वमें एक बड़ी सेना उसके दमनके लिए भेजी गई, अन्तमें राव करणको परास्त होकर बादशाहकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

पालामऊके राजा प्रतापरायका विद्रोह ऐसी आसानीसे शान्त नहीं हुआ। उसपर दिल्लीकी ओरसे १ लाखका वार्षिक राज-कर

लगाया गया था। उस छोटेसे राजाके लिए एक लाखकी रकम हर वर्ष देना असम्भव था। देनदारी बढ़ गई। औरंगज़ेबने इसे गुस्ताख़ी समझा, और दण्ड देनेके लिए बिहारके शासक दाऊदख़ाँको आज्ञा दी। दाऊदख़ाँके पास सेना और धनकी कमी न थी, और प्रतापराय एक निर्धनसी रियासतका स्वामी था, परन्तु लगभग ९ मास तक वह अड़ा रहा। उसकी सेनायें बहादुरीसे लड़ीं, परन्तु आखिर संख्याने विजय पाई। प्रतापरायने पराजय स्वीकार करनी चाही, उस समय दाऊदख़ाँ कठोर हो गया। प्रतापरायको पूरा दण्ड देनेका निश्चय हो चुका था, इस कारण लड़ाई जारी रखी गई। अन्तमें प्रतापराय पालामऊके किलेमें घिर गया। शाही सेनाओंने किलेपर गोलाबारी शुरू कर दी। आशा थी कि या तो प्रतापराय किलेके खण्डरातमें दब जायगा, या जीता बन्दी हो जायगा, परन्तु शाही सेनाओंको बड़ी निराशा हुई जब उन्हें पता चला कि रातके अँधेरेमें राजा बचकर निकल गया। पालामऊको बिहार प्रान्तका हिस्सा बनाकर उस प्रान्तके गवर्नरके अधीन कर दिया गया, परन्तु प्रतापरायका परिवार पालामऊके दक्षिणकी घाटियोंमें चिरकाल तक राज्य करता रहा।

८—बुन्देलखण्डके शेर

चम्पतराय और छत्रसाल

हरेक राज्यमें ऐसे लोग रहते हैं जिनका जी शासनमें रहनेको नहीं चाहता, और राजाकी शानको देखकर उनके हृदयमें यह इच्छा पैदा होती है कि क्यों न वह भी राज्यकी सुख-सामग्रीका उपभोग करें। ऐसे तेजस्वी या उद्दण्ड पुरुष सभी समयों और स्थानोंपर रहते हैं, परन्तु उन्हें सदा सफलता नहीं होती। मज़बूत और शक्तिपूर्ण राज्यमें ऐसे विद्रोही दबे रहते हैं, उन्हें अशान्तिका बीज बोनेका अवसर नहीं मिलता और यदि मिल भी जाय, तो खुराकके अभावसे बीज मर जाता है।

विद्रोहके बीजको अंकुरित करनेकी शक्ति प्रजाके असंतोषमें है। दो ही शासक अपने राज्यको विप्लवकी आगसे जलता हुआ देखते है—या तो वह जो बहुत निर्बल हों, या वह जो अपनी शक्तिके अभिमानमें प्रजाके सन्तोषकी सर्वथा उपेक्षा करें। जिस राज्यमें प्रजा बराबर असन्तुष्ट रहती है, वहाँ यदि बलवान्से बलवान् शासक भी चाहे तो चिरकाल तक विप्लवको आनेसे नही रोक सकता। औरंगज़ेब एक शक्तिसम्पन्न शासक था, परन्तु उसने अपने प्रजाके बहुत बड़े लगभग ९५ फी सदी भागके धार्मिक भावोंपर आघात किया, इसका परिणाम यह हुआ कि उमंगी और साहसिक तबीयतोंको विद्रोहका बीज बोनेका अवसर मिल गया और एक ही राज्य-कालमें लुटेरोंको राजा और भगोड़े विद्रोहियोंको प्रतापशाली शासक बनते देख लिया।

इलाहाबादके दक्षिण और मालवेके पूर्वमें बुंदेलखण्ड फैला हुआ है। उसकी स्थिति देशके मध्यमें है। वह हृदयके समीप है। औरंगज़ेब और उसके उत्तराधिकारियोंके शासन-समयमें यह प्रदेश कभी निष्फल और कभी सफल विद्रोहोंका केन्द्र बना रहा, यहाँतक कि अंतमें वह मुग़ल-साम्राज्यसे बिलकुल निकल गया। इस प्रान्तमें कामयाब विद्रोहका इतिहास दो नर-केसरियोंका इतिहास है। चम्पतराय और छत्रसालके नाम बुंदेलखण्डके इतिहासमें ही नहीं, प्रत्युत भारतके इतिहासमें अद्भुत साहस और ढिठाईभरी वीरताके लिए स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है। बुन्देला लोगोंकी पूज्या देवी विन्दवासिनी देवीके नामसे पुकारी जाती है। विन्ध्याचलके प्रदेशमें निवास करनेसे वह विन्दवासिनी देवी कहलाती है, और उसीके नामसे प्रदेशका नाम बुन्देलखण्ड है, अथवा वीर बुन्देलोंके पूर्वजोंने अपने रक्तकी बून्दोंसे देवीकी आराधना करके उससे वर प्राप्त किया था, इससे उनका नाम बुन्देला पड़ा, यह कौन कह सकता है? यदि दूसरा कारण ही ठीक हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। कमसे कम उस वीर-जातिकी सन्तानका तो यही दावा है।

परन्तु दुःख है कि यह वीर-कथा एक अत्यन्त लज्जाजनक विश्वासघातके साथ प्रारम्भ करनी पड़ती है। युवराज सलीमने

अपने शत्रु अबुल फज़लकी जिस राजाद्वारा हत्या करवाई थी, उसका नाम वीरसिंहदेव था। सलीम एक दिन मुग़ल गद्दीका अधिकारी बना, और जहाँगीर कहलाया, वीरसिंहको भी उससे लाभ पहुँचा, और उसे बुन्देलखण्डमें प्रभाव बढ़ानेका अवसर दिया गया, परन्तु यह समृद्धि चिरस्थायी न रह सकी। वीरसिंहदेव गद्दीपरसे उतार दिया गया, और उसका राज्य उसके एक निकट-सम्बन्धी देवीसिंहको दे दिया गया। परन्तु देवीसिंहके लिए भी शान्तिपूर्वक राज्य करना कठिन हो गया, क्यों कि ओर्छाके शासककी आज्ञाका प्रतिघात करनेके लिए महेबाके शासक खड़े हो गये। दोनों ही एक परिवारके थे, परन्तु जहाँ ओर्छाके शासक अपनी दासतापूर्ण स्थितिसे सन्तुष्ट थे, वहाँ महेबाके शासकोंका रक्त आगे बढ़कर नाम पैदा करने और स्वाधीन सत्ता कायम करनेके लिए उबल रहा था। महेबाके बुन्देलोंका अगुआ चम्पतराय था।

चम्पतराय वीरसिंहदेवके चचेरे परिवारमेंसे था। उसने वीरसिंहदेवके साथ भी काम किया था। आसपास उसका बड़ा रसूख़ था। १६३६ में उसने वीरसिंहदेवके नाबालिग़ पौत्र पृथ्वीराजको गद्दीपर बिठाकर स्वयं शासन करना आरम्भ कर दिया। साथ ही उसने अड़ोस-पड़ोसमें छापे मारनेका क्रम भी जारी रखा। समाचारोंके दिल्लीमें पहुँचनेपर सेनायें भेजी गईं, जिन्होंने चम्पतरायको परास्त कर दिया। कुछ वर्ष पीछे वह शाहजहाँके युवराज दाराकी सेनामें भर्ती हो गया। राजकुमारोंके घरू युद्धमें चम्पतराय पहले दाराका अनुयायी बनकर लड़ा, फिर औरंगज़ेबके विजयी होनेपर उसकी फौज़में भर्ती हो गया, और 'बारह हज़ारी' की पदवी तक पहुँच गया। औरंगज़ेब और शुजाका युद्ध आरम्भ होनेपर चम्पतरायने फिर रंग बदला, और शाही नौकरीका परित्याग करके आसपास लूट-मार जारी कर दी। इस समयसे लगभग दो वर्ष तक चम्पतरायकी मुग़ल-सेनाओंसे लड़ाई रही। वह कई बार हारा, और कई बार जीता, और अधिकतर

मुग़लोंकी बहुसंख्य और साधन-सम्पन्न सेनाके सामने उसे हार ही खानी पड़ी, परन्तु उसने कभी दिल नहीं तोड़ा, और बराबर दुश्मनोंके पंजेसे निकलता ही गया। अन्तमें वह लड़ाईमें—अपि मित्रोंके द्रोहसे ही मारा गया।

औरंगज़ेबने कण्टकसे कण्टकको निकालनेका ही प्रयत्न किया। उसने राजा देवीसिंह बुन्देला और शुभकरण बुन्देला आदि बुन्देला राजपूतोंको चम्पतरायके कुचलनेके लिए नियुक्त किया। मालवेके जिलेदार और सिपाही भी उसके विरुद्ध भेजे गये। चारों ओरसे घिरकर चम्पतरायने किलेके पीछे किला छोड़ना आरम्भ किया। दुश्मनोंने बड़ी सावधानतासे उसका पीछा किया। उसे दम लेने तककी फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। जहाँ वह सुबह जाकर डेरा डालता, वहाँ रात नहीं गुज़ार सकता था। कई बार तो खाना तक नसीब नहीं होता था। शिकारीसे अनुगत हरिणकी तरह कुलाँचें मारता हुआ वह भागा जा रहा था। उसका शरीर घावों और ज्वरसे अशक्त होता जा रहा था, परन्तु चित्तमें वही प्रचण्डता थी। इन सब आपत्तियोंमें चम्पतरायको एक ही सहारा था, और वह थी उसकी पतिपरायणा वीरसू पत्नी रानी कली कुमारी। इस वीरांगनाने शहरमें या जंगलमें, विजयमें या पराजयमें, कहीं भी अपने पतिका साथ न छोड़ा। छायाकी भाँति साथ ही साथ रही। शेष सब साथी बिछुड़ते गये। अपनोंने भी अपनापन बिसार दिया। चम्पतरायका पुत्र छत्रसाल अपनी बहिनके पास आश्रय ढूँढ़नेके लिए गया, वह उस समय तीन दिनका भूखा था; परन्तु बहिनको शाही सेनाओंका इतना भय था कि उसने भाईको शरण न दी।

चारों ओरसे घिरकर, निराश्रय होकर, चम्पतरायने सहराके राजा इन्द्रमनके पास आश्रय लेनेका निश्चय किया। राजाके प्रतिनिधि साहिबराय धँधेरेने आश्रय देना स्वीकार कर लिया और दो प्रतिनिधियोंको दो सौ घुड़सवारोंके साथ अगुवानीके लिए रवाना किया। चम्पतराय और उसके साथी थकानसे चूर और व्यथित-

चित्त-दशामें थोड़ासा विश्राम लेनेकी तैयारी कर रहे थे कि इतनेमें घोड़ेकी टाप सुनाई दी। आपत्तियाँ मनुष्यको विह्वल कर देती हैं, उसकी मानसिक दशा डावाँडोल हो जाती है। व्याधियों और आधियोंने चम्पतरायके विवेकपर भी कुछ प्रभाव डाला था। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ और अपने पुराने धनुषकी प्रत्यंचाको खेंचने लगा, पर वह जर्जरित प्रत्यंचा टूट गई। चम्पतरायके पुत्र छत्रसालने अपनी तलवार म्यानसे निकाल ली और वह मरने कटनेको तैयार हो गया। पति-परायणा कलीकुँअरकी कमरमें कटार लटक रही थी, उसने कटार खेंच ली, और पतिके सामने रास्ता रोककर खड़ी हो गई। धँधेरे घुड़सवार पास पहुँचे। कलीकुँअरने अंगारेकी तरह जलती हुई आँखोंसे उनकी ओर देखा और पुकारकर कहा कि "तुम कौन हो जो इस निर्भयतासे आगे बढ़े आते हो? मैं जब तक अपने प्राणोंकी आहुति न दे लूँगी, चम्पतरायको न छोड़ूँगी, उसकी रक्षा करूँगी। मुझे मारकर फिर तुम चाहे कुछ कर सकते हो।" धँधेरा-पार्टीके नेताने उसे आश्वासन दिलाया कि हम चम्पतरायको मारने नहीं, बल्कि आश्रय देने आये हैं। इस आश्वासनपर चम्पतरायने परिवारसहित आत्म-समर्पण कर दिया।

राजा इन्द्रमनने कुछ समय तक तो वचनका पालन किया, परन्तु शीघ्र ही शाही सेनाके समीप पहुँचनेपर उसका हृदय काँप गया, और बादशाहको खुश करके इनाम पानेका लोभ उसके मनपर सवार हो गया। चम्पतराय २०० धँधेरे सिपाहियोंकी संरक्षामें मोरनगाँव नामके सुरक्षित गाँवको जा रहा था कि अपने राजाकी गुप्त आज्ञाके अनुसार संरक्षक सिपाहियोंने भक्षकका काम किया। विश्वासघाती लोग रोग और मानसिक कष्टोंसे जीर्ण चम्पतरायपर टूट पड़े, और उसे मार डाला। ठकुरानीने जब अपने पतिको खतरेमें देखा, तो घोड़ेपरसे कूद पड़ी, और एक क्षण भरमें शत्रुओंसे जूझ गई। परन्तु बेचारी अकेली क्या करती? एक द्रोहीकी कटारने उसका भी काम तमाम कर दिया। इस प्रकार पति और पत्नीकी वह वीर जोड़ी एक ही समयमें स्वर्गकी यात्राके लिए रवाना

हुई। केवल सौभाग्यवती वीर-पत्नियोंको ही ऐसी मृत्यु नसीव होती है।

इस प्रकार शेर और शेरनी मित्रद्रोहके शिकार हो गये, परन्तु शेरका पुत्र द्रोही गीदड़ोंको दण्ड देनेके लिए जीवित रह गया। छत्रसाल बच निकला। वह उस समय केवल ११ वर्षका था। वह अपने ५ भाइयोंमें चौथा था। उसे जीवित छोड़ते हुए उन द्रोहियों और उनके मालिकको क्या पता था कि वह एक ऐसे वालकको घायल करके छोड़ रहे है, जो निराश्रय और अनाथ दशासे उठकर छत्रधारी राजाकी पदवीतक पहुँचेगा, शक्तिशाली मुग़ल-साम्राज्यको लगभग आधी सदी तक अँगूठा दिखायगा, बुन्देलखण्डको मुसलमानोंसे छीन लेगा, और पिताकी हत्याका पूरा पूरा वदला चुकाकर भारतके वीरता-पूर्ण इतिहासमें अपना नाम अमर कर जायगा।

चम्पतरायने लूट-मार और आक्रमणोंके द्वारा सारे बुन्देलखण्डको शत्रु वना लिया था। उसकी सन्तानको आश्रय कौन दे? सव भाई समुद्रमें विचरते हुए काष्ठकी तरह कभी इधर और कभी उधर भटकने लगे। उन दिनों मिर्ज़ा राजा जयसिंहका नाम वहुत विख्यात हो रहा था। वह औरंगज़ेवका मुँहचढ़ा दरवारी और वहादुर सेनापति समझा जाता था। छत्रसाल और उसके वड़े भाई अंगदने जयसिंहसे सरकारी नौकरीमें प्रविष्ट होनेकी प्रार्थना की, जो स्वीकार की गई। जयसिंह उन्हें दक्षिणकी युद्ध-यात्रामें अपने साथ ले गया। कहा जाता है कि पुरन्दरको मुग़लोंके लिए जीतनेवाला छत्रसाल ही था। वीजापुर और देवगढ़के आक्रमणोंमें भी छत्रसालने वाँकी वीरता दिखाई, और नाम कमाया; परन्तु वह वीरता, और वह कीर्ति थोड़े ही समयमें उस वीर-पुत्रको अखरने लगी। उसके हृदयमें उमंग थी, परन्तु जव वह देखता था कि उसकी सव वीरता केवल अपने सधर्मियोंको परास्त करनेके काम आती है, वड़ा काम करके भी पूरा नाम और मान नहीं मिलता, तव उसका हृदय असन्तोषसे उवल उठता। वह उत्साही युवक सोचता कि

क्या मैं जन्म भर इसी भाड़ेकी गुलामीमें पड़ा रहूँगा, और स्वतन्त्र नाम न कमा सकूँगा? साथ ही जब उसकी दृष्टि उस शत्रुकी ओर पड़ती थी, जिसके साथ लड़ना उसका कर्तव्य बन गया था, तब उसके हृदयमें गुदगुदी-सी उठती थी। वह शिवाजीसे लड़ रहा था। शिवाजीने एक छोटेसे जागीरदारका पुत्र होकर स्वाधीन राष्ट्रकी स्थापना की और मुग़ल बादशाहसे नाकों चने चबवाये। उसकी अन्तरात्मामें यह प्रश्न उठने लगा कि जो कुछ शिवाजीने किया है, क्या मैं नहीं कर सकता? क्या हिन्दू-धर्मका रक्षक बनना मेरे लिए असम्भव है? शिकारके बहानेसे छत्रसाल शाही फौजसे विदा होकर गुप्तरूपसे शिवाजीके शिविरमें पहुँचा, और हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिए उसने अपनी सेवा उपस्थित की। शिवाजी स्वयं एक उच्च अभिलाषाओंसे पूर्ण हृदय रखता था, इस कारण वह छत्रसालकी हवसको समझ सकता था। वह समझ गया कि यह बुन्देला शेर नौकरीके पिंजरेमें बन्द होने योग्य नहीं है। उसने नवयुवकको बुन्देलखण्डमें लौटकर मुग़लोंके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा करनेकी सलाह दी। छत्रसालको वह सलाह पसन्द आई। अपने जन्मस्थानमें स्वतन्त्र राज्यकी स्थापनाका संकल्प करके वह दक्षिणसे लौटा।

मुग़ल-राज्यसे लड़ना हँसी-ठट्ठेका काम नहीं था। कहाँ निराश्रय निर्धन अकेला छत्रसाल, और कहाँ अगणित सेनाओं और अगणित सम्पत्तियोंका स्वामी औरंगज़ेब। एक समझदार योद्धाकी भाँति छत्रसालने साथियोंकी तलाश की। पहले वह औरंगज़ेबके कृपापात्र शुभकरण बुन्देलाके पास गया, और उसे अपना साथी बनाना चाहा, परन्तु उसके दिमाग़पर गुलामीकी मुहर लग चुकी थी। उसने छत्रसालके विचारको एक भद्दा स्वप्न बतलाकर टाल दिया और छत्रसालको आशा दिलाई कि वह उसे मुग़ल-सेनामें ऊँचा पद दिला देगा। छत्रसालने इस कृपाको ठुकरा दिया।

परन्तु सारा बुन्देलखण्ड शुभकरणोंसे ही नहीं भरा हुआ था। वहाँ ऐसे लोग भी थे, जो मुग़ल-राज्यसे उकताये बैठे थे। छत्र-सालके संकल्पको सुनकर ओर्छाके राजभक्त राजा सुजानसिंहने उसे गुप्तरूपसे कहला भेजा कि हम लोग स्पष्ट साथ न दे सकें, तो भी दिलसे तुम्हारी सफलता चाहते हैं; औरंगाबादके दीवान बलदेवने छत्रसालको आशा दिलाई कि जब समय आयगा तब वह सेनासहित सहायताको पहुँच जायगा। वह सब लड़ाके, जो चम्पतरायकी ध्वजाके नीचे धावे किया करते थे, छत्रसालकी सेनामें भर्ती होनेके लिए उत्सुक थे।

यह आश्चर्यकी बात प्रतीत होगी कि अभी उस दिन चम्पत-रायको बेमौत मरते हुए देखनेवाले लोग इतना शीघ्र उसके विद्रोही पुत्रकी सहायताके लिए फिर तैयार हो गये, वह मुग़ल-सम्राट्की अतुल शक्तिको भूल गये; परन्तु यदि तारीखोंपर ज़रा दृष्टि डाली जाय, तो कोई आश्चर्य बाकी न रहेगा। छत्रसालने १६७१ में विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। १६६९ में औरंगज़ेबने हिन्दू-मन्दिरों और पाठशालाओंका ध्वंस करनेकी आज्ञा दी थी। १६७० में मथुराके मन्दिरोंको तोड़कर इस्लामाबाद बसानेका हुक्म दिया गया। १६६५ में हिन्दू और मुसलमान व्यापारियोंपर भिन्न भिन्न कर लगाये गये। हिन्दुओंपर मुसलमानोंकी अपेक्षा विक्रेय मालपर दुगना कर लगाया गया। १६७१ में राज्यके सब ताल्लुकेदारोंको हुक्म हुआ कि सब हिन्दू पेशकारों, गुमाश्तों या दीवानियनोंको हटाकर उनके स्थानपर मुसलमान रखे जायँ। इन सब घटनाओंसे देश-भरके हिन्दुओंमें हाहाकर मच गया था। हज़ारों हिन्दू बेरोज़गार हो गये थे। मन्दिरोंके ध्वंसपर अस-न्तोषकी ज्वाला बड़े वेगसे भड़क उठी थी। बुन्देलखण्डमें उस ज्वालाका विशेष प्रभाव हुआ। ग्वालियरके शासक फिदाईख़ाँने ओर्छाके मन्दिरको तोड़नेका यत्न किया, तो धर्मांगदके नेतृत्वमें बुन्देलखण्ड और मालवेके लोगोंने युद्ध करके मन्दिरकी रक्षा की। इन सब कारणोंसे वीर बुन्देला लोग विद्रोहके लिए बिल-

कुल तैयार थे। उन्हें केवल एक नेताकी आवश्यकता थी। चम्पतरायके सुपुत्र छत्रसालको उठता देखकर असन्तुष्ट प्रजाने प्राभातिक सूर्यकी भाँति उसे प्रणाम किया, और उसका नेतृत्व अंगीकार किया।

परन्तु यह सब कुछ एकदम नहीं हुआ। जिस समय १६७१ में २१ वर्षकी आयुका वह नवयुवक केवल ५ घुड़-सवारों और २५ पैदल सिपाहियोंके साथ नर्मदाको पार करके अपने समयके सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न सम्राट् औरंगज़ेबको परास्त करनेकी इच्छासे बुन्देलखण्डमें प्रविष्ट हुआ, उस समय उसके हितैषी और बन्धु भी अविश्वास और अश्रद्धाके कारण घबराते थे। उसका भाई रतनशाह १८ दिनतक प्रतीक्षा करनेके बाद उसकी सेनामें शामिल हुआ। कुछ समय पीछे बलदेव कुछ सेनाको साथ लेकर छत्रसालसे आ मिला। एक पठान डाकू, जिसका नाम बकीख़ाँ था, लूटमारका अच्छा मौका देखकर इस विद्रोही सेनामें आ मिला। इतने संग्रहके पश्चात् सेना गिनी गई, तो उसमें ३५ घुड़-सवार और ३०० पैदल हुए। सबने मिलकर छत्रसालको विद्रोही सेनाका सरदार चुना और शर्त यह लगाई कि जितनी लूट आये, उसका ५५ फी सदी छत्रसालको मिले, और शेष ४५ फी सदी बलदेवको। शेष छोटे सरदारोंको जो कुछ मिले वह उनका। ऐसे शुभ संकल्पको लेकर इतिहास-प्रसिद्ध छत्रसालने स्वाधीनताका संग्राम प्रारम्भ किया।

हम वीर छत्रसालके जीवनकी सब घटनाओंका वर्णन नहीं करेंगे। उस समयके कवियोंने, बुन्देलखण्डके उस नर-सिंहके चमत्कारी जीवनसे प्रभावित होकर बहुतसी कवितायें की हैं। उनमें एक योद्धाको जैसी पराजयरूपी वैतरणीमेंसे गुज़रकर विजयरूपी स्वर्गमें पहुँचना पड़ता है, उसका बढ़िया चित्र अंकित है। कवितामें अत्युक्ति अवश्य है, परन्तु जिस चरित्रमें अत्युक्तिको उत्पन्न करने योग्य चमत्कार न हो, उससे कविता उत्पन्न ही नहीं होती। छत्रसालमें चमत्कार था। वही कवियोंकी कृतिमें प्रतिबिम्बित हुआ।

उसके धैर्यपूर्ण साहससे भरे हुए जीवनकी विस्तृत कथाको छोड़ कर हम केवल परिणामपर दृष्टि डालकर ही सन्तोष करेंगे।

छत्रसालने थोड़े ही दिनोंमें इतनी काफ़ी शक्ति पैदा कर ली कि आसपास आक्रमण कर सके। उसने मराठोंकी युद्ध-नीति देख ली थी। उसीका अनुकरण किया। वह आसपासके इलाकोंमें जाकर लूट-मार करता, और लूटका माल लेकर अपने ठिकानेपर आ जाता। जो इलाका या शहर अपने स्थायी लगानका एक चौथाई, जिसे मराठाशाहीमें चौथ कहा जाता था, देना स्वीकार कर लेता, उसे छत्रसाल अपना सामन्त मानकर लूटनेकी परिधिसे अलग छोड़ देता। कुछ ही वर्षोंमें उसका प्रभाव वहुत दूर तक फैल गया, और उसकी तलवारकी छाप विरोधियोंके पराजयसे कलंकित माथेपर लग गई। कई बार छत्रसालको परास्त भी होना पड़ा, परन्तु अन्तमें वह पराजयमेंसे विजयको निकाल लेता था।

वहुतसे शाही अफसरोंको छत्रसालकी कृपाणका शिकार होना पड़ा। छत्रसालके चरित-गायक लाल कविने वर्णन किया है कि बीसियों सेनापतियोंको उसके चरित-नायकके सामने हार माननी पड़ी। खलीक युद्धमें कैद कर लिया गया, और ३० हजार रुपया जुर्माना देनेपर छूट सका। केशोराय बुन्देला जानसे मारा गया। मालवेके फौजदार मुख्तारख़ाँको पराजय स्वीकार करनी पड़ी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, छत्रसालका विजय-क्षेत्र विस्तृत होता गया। उधर औरंगज़ेव दक्षिणकी उलझनमें अधिकाधिक फँसता गया। इससे छत्रसालको बुन्देलखण्ड और मालवेको अपने प्रभाववमें लानेमें वहुत आसानी हो गई। साम्राज्यकी सम्पूर्ण शक्ति दक्षिणमें खिंचकर चली गई, जिससे उत्तरीय भारतके विद्रोहियोंको खुला मैदान मिल गया। १७०५ में उसकी शक्ति इतनी विस्तृत और दृढ़ हो गई कि औरंगज़ेबने उससे सुलह करनी आवश्यक समझी, उसे मालवा और बुन्देलखण्डका सबसे बड़ा सरदार और 'चार हज़ारी' अफसर स्वीकार कर लिया गया। छत्रसालने भी अपना अधिकार स्वीकृत हो जानेपर कुछ समयके लिए तलवार

ध्यानमें रख ली, और दक्षिणमें जाकर औरंगज़ेबसे भेंट भी की। १७०९ में औरंगज़ेबकी मृत्यु हो गई। उस समय तक छत्रसाल शान्त रहा। बादशाहकी मृत्यु होनेपर वह फिर बुन्देलखण्डमें वापिस आ गया, और अपने राज्यकी सीमाओंको बढ़ानेका उद्योग करने लगा।

इस प्रकार औरंगज़ेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिने भारतके मध्यमें विद्रोहकी अग्नि प्रज्वलित कर दी, जिससे साम्राज्यका शरीर केन्द्र-भागके निर्बल हो जानेसे क्षीणताकी ओर सरपट चालसे भागने लगा।

९—जाटोंका अभ्युदय

अत्याचारमें मिलानेकी अद्भुत शक्ति है। जिनपर अत्याचार किया जाता है, उनका परस्पर प्रेम हो जाता है। इतना ही नहीं, पीड़ित व्यक्ति या समाजपर दर्शक लोग भी सहानुभूति करने लगते हैं। इस प्रकार प्रायः दमनकी नीतिसे दमन करनेवालेकी इच्छाके विरुद्ध ही असर होता है। औरंगज़ेबकी दमन नीतिने बहुतसे बिखरे हुए मोतियोंकी मालायें बना दीं, और बहुतसे मार्गमें पड़े हुए काँटोंको ताजके रूपमें परिणत कर दिया। जाटोंका अभ्युदय भी उस योग्य और बहादुर, परन्तु धर्मान्ध बादशाहकी अदूरदर्शितापूर्ण नीतिका परिणाम था।

जाट कहाँसे आये, और पहले पहल कहाँ बसे, इस विवादमें पड़ना व्यर्थ है। हमारे कार्यके लिए इतना जान लेना पर्याप्त है कि जबसे जाटोंका कोई इतिहास मिलता है, तबसे वह भारतवर्षमें ही रहते हैं। यदि कहीं भारतसे बाहिर उनका निशान पाया जाता है, तो उसका भी मूल स्थान भारतमें ही मिलेगा। उनकी सबसे प्रथम ऐतिहासिक चर्चा भारतपर अरबोंके आक्रमणके साथ आरम्भ होती है। जाट लोग फारिसकी सीमातक फैले हुए थे। अरबके निवासी उस समय हिन्दुस्तानियोंमेंसे जाटोंको ही जानते

थे, इस कारण वह सभी हिन्दुस्तानियोंको जाट नामसे पुकारते थे। वह एक प्रकारसे उससे पूर्व वढ़ते हुए भारतीय आधिपत्यकी सफ़रमैना पलटनके सिपाही थे। अपनी बहादुरी, साहसिकता, और धार्मिक उदारताके कारण वह आगे बढ़नेके योग्य भी थे। जब भारतपर मुसलमान टूटे, तब उन्हें सीमाप्रान्तके कदम कदम-पर जाटोंसे टक्कर लेनी पड़ी। सीमाप्रान्त और उससे आगे तक बढ़े रहनेका ही परिणाम था कि जाट जातिके आचार-व्यवहारमें बहुत सी विशृंखलता पाई जाती थी, और अब भी पाई जाती है। वह पूरी तरह ब्राह्मणोंके दास न उस समय बन सके, और न अबतक हैं। यही कारण था कि वह हिन्दुओंके मध्यकालीन कृत्रिम सामाजिक जीवनमें बहुत निचले दर्जेपर रखे जाते थे। ह्युयेन साँगने सातवीं शताब्दीमें उन्हें शूद्रोंकी श्रेणीमें रखा था। जिस समय भारतपर मुसलमानोंका आक्रमण आरम्भ हुआ, जाट लोग सिन्धमें बसे हुए थे। वहाँके ब्राह्मण राजाने जाट-प्रजाके सम्बन्धमें निम्नलिखित नियम बन रखे थे—

"वह (जाट लोग) असली तलवार न बाँध सकें, शाल मखमल या रेशमका कपड़ा न पहिन सकें, घोड़ोंपर काठी जमाकर न बैठ सकें, सिर और पैर नंगे रखें। उन्हें यह भी आज्ञा थी कि जब वह लोग बाहिर घूमने जायें, तो अपने कुत्तोंको साथ ले जायें। ब्राह्मणाबादके शासकके लिए लकड़ियाँ ढोना उनका कर्तव्य था। उनको रास्ता दिखाने या गोइन्देका काम सौंपा जाता था।"

जब मुहम्मद कासिमने सिन्धको जीत लिया, तब उसने हिन्दू वज़ीरसे जाटोंकी दशाके सम्बन्धमें पूछा, तो उसने बतलाया कि "उनमें (जाटोंमें) बड़े और छोटेमें कोई भेद नहीं हैं। उनकी प्रकृति जंगलियोंकीसी है। वह राजाओंके विरुद्ध विद्रोह करनेमें प्रवीण है, और काम सड़कोंपर लूटना, और डाके डालना है।"

इन उद्धरणोंसे दो बातें पाई जाती हैं। प्रथम तो यह कि जाटोंमें ऊँच-नीचका कोई भेद न होनेसे वह लोग शूद्रोंमें गिने जाते थे, और दूसरी यह कि वह प्रायः राज्यके विरुद्ध विद्रोही रहा करते थे। सदियाँ गुज़र गई हैं, और कई सल्तनतें भारतकी रंगस्थलीपर

अपना अपना अभिनय करके चली गई हैं, परन्तु जाटोंकी कुछ विशेषतायें अब भी शेष हैं। आज भी वह सामाजिक दृष्टिसे अन्य हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द हैं, और आज भी एक अल्हड़पनसे युक्त वीरता, और भोलेपनसे मिश्रित उद्दंडता उनके अन्दर विद्यमान है। उन्हें प्रेमसे वशमें लाना जितना सरल है, आँखें दिखाकर दबाना उतना ही कठिन है। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिसे वह अन्य हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक स्वाधीन हैं और सदा रहे हैं। लड़ना उनका पेशा है। मनमानी करनेमें, और अपनी बातकी आनकी ख़ातिर अपना घर बिगाड़ देना या जानको खतरेमें डाल देना जाटकी विशेषता है।

ऐसी जाति थी, जिसपर औरंगज़ेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिने बिजली-का-सा असर किया। यह जाति पंजाबके सीमाप्रान्तसे लेकर हैद्राबाद सिन्ध, भोपाल, अजमेर और गंगाको मिलानेवाली रेखाके मध्यमें दूर तक फैली हुई है। पंजाबके जाट सिक्खधर्मके असरमें आ चुके थे, उनकी कथा दूसरे परिच्छेदमें सुनाई जायगी, यहाँ हमें जाटोंके उस भागकी कथा सुनानी है जो मथुरा और आगरेके आसपास बसे हुए थे। औरंगज़ेबकी कट्टर नीतिने कई अद्भुत चमत्कार किये थे। उसने कई मुर्दोंको जिला दिया, कई रंकोंको राजा बना दिया, कई डाकुओंको सरदारके रूपमें परिवर्तित कर दिया। वह तो एक पारस पत्थर साबित हुआ जिसके संसर्गसे अनेक लोहेके टुकड़े स्वर्ण बन गये। जाटोंपर भी उसका अद्भुत प्रभाव पड़ा।

औरंगज़ेबसे पूर्व मुसलमान बादशाहोंके साथ कभी कभी जाटोंकी टक्कर लग जाया करती थी। सुल्तान महमूद गज़नी जब सोमनाथकी लूटसे वापिस आ रहा था, तब जाटोंने उसके काफिलेके पिछले हिस्सेको लूट लिया, जिस अपराधका दण्ड देनेके लिए उस विजेताको एक विशेष आक्रमण करना पड़ा। बाबरको स्यालकोटके पास जाटोंसे वास्ता पड़ा। जो लोग बाबरसे मिलने आ रहे थे, उन्हें जाटोंने लूट लिया। बाबरने लुटेरोंको पकड़वाकर

कठोर दण्ड दिया। तैमूरको भी इन अक्खड़ सिपाहियोंसे वास्ता पड़ा। यह तो छोटी छोटी टक्करें थीं। औरंगज़ेबके समयमें हिन्दुओंमें जो अशान्ति और जागृति उत्पन्न हुई, उसका जाटोंपर अद्भुत असर पड़ा। जो लोग केवल लुटेरे समझे जाते थे, वह थोड़े ही दिनोंमें शासक होनेका दम भरने लगे। जाटोंके अभ्युदयका इतिहास राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिए बड़ा मनोरंजक है, क्यों कि वह स्पष्टतासे दिखला रहा है कि शासकोंके अत्याचार प्रायः प्रजाके लिए अमृत सिद्ध होते हैं, विष नहीं।

मथुरा और आगरेके जाटोंकी अधिक संख्या खेती-बाड़ीका काम करती थी। उनमें और सल्तनतमें मालगुज़ारीके सम्बन्धमें प्रति वर्षका लेन-देनका व्यवहार था। अकबरके नीति-पूर्ण, जहाँगीरके उपेक्षापूर्ण, और शाहजहाँके विलासितापूर्ण शासनके समय वह गाड़ी बेखटके चलती रही, परन्तु औरंगज़ेबकी कठोर नीतिने देशके सब प्रान्तोंकी तरह जाटोंके इलाकेमें भी असन्तोष उत्पन्न कर दिया। उस इलाकेके निवासियोंको मुसलमान हाकिमोंका बहुत कड़वा अनुभव था। मुर्शिद कुली ख़ाँ तुर्कमान नामका एक फौजदार देर तक वहाँ रहा। वह जिस किसी गाँवमें जाता, वहाँकी सुन्दर स्त्रियोंको अपने हरममें डाल लेता। 'मसीरुल उमरा' नामकी किताबमें उसके बारेमें लिखा है—

"कृष्णके जन्म-समयपर मथुरासे जमनाके दूसरे पार गोवर्धनपर हिन्दू पुरुषों और स्त्रियोंका भारी जमाव होता है। ख़ान धोती पहिनकर और माथेपर तिलक लगाकर हिन्दूकी सूरतमें वहाँ घूमा करता। जहाँ उसने किसी चाँदको लजानेवाली खूबसूरत औरतको देखा कि वह बाघकी तरह लपका और पहलेसे जमनामें खड़ी हुई नौकापर बैठकर आगरेकी ओर भाग गया। औरतके रिश्तेदार शर्मके मारे प्रकट नहीं करते थे, कि उनके साथ क्या हुआ।"

१६६० में औरंगज़ेबने अबुल नबीख़ाँको मथुराका फौजदार नियुक्त करके भेजा। वह कट्टर मज़हबी आदमी था, उसमें मुर्शिद

कुलीख़ाँकी-सी चरित्रसम्बन्धी बुराइयाँ तो नहीं थीं, परन्तु उसे कुफ़्रको मिटाने और इस्लामको बढ़ानेकी बहुत चिन्ता थी। मथुराके मध्यमें एक विशाल मन्दिर था। अबुल नबीने पहला काम यह किया कि उस मन्दिरको गिराकर उसके खंडहरोंपर जामा-मसजिदका निर्माण किया। केशवरायके प्रसिद्ध मन्दिरमें दारा शिकोहने पत्थरका एक जंगला लगवाया था। नबीने औरंगज़ेबके हुक्मसे उसे तुड़वा दिया। जाट ज़मीनदारोंसे मालगुजारी वसूल करनेमें भी सख़्ती होने लगी।

इन धार्मिक अन्धेपनके चमत्कारोंका परिणाम वही हुआ, जो प्राकृतिक नियमोंके अनुसार हुआ करता है। १६६९ में मथुराके इलाकेके जाट उठ खड़े हुए। उनका मुखिया कान्हरदेव (उपनाम गोकुला) जाट था। गोकुला तलपत गाँवका रहनेवाला था। उसने शाहावाद नामके गाँवको लूट लिया। अबुल नबी विद्रोहीको दण्ड देनेके लिए बुशारा नामके ग्रामपर चढ़ गया। गोकुलाकी जीत हुई। युद्धमें अबुल नबी गोलीका शिकार हुआ। शाही फौज भाग निकली।

अब तो औरंगज़ेबको चिन्ता हुई। उसने रदेदाज़ख़ाँ और हसन अलीख़ाँकी अध्यक्षतामें एक बड़ी सेना गोकुलाके विद्रोहको दबानेके लिए रवाना की। उस युद्धमें गोकुलाके झंडेके नीचे २० हज़ार जाट लड़ रहे थे। कहा जाता है कि शाही सेनाके ४ हजार आदमी मारे गये, परन्तु तोपख़ाने और हथियारोंका मुकाबिला केवल संख्या या शूरतासे न हो सका। गोकुला पकड़ा गया, उसके पक्षके ५ सहस्र आदमी मारे गये और ७,००० कैद किये गये। गोकुलाको आगरेकी कोतवालीके सामने लाया गया, जहाँ उसका एक एक अंग काटकर जनताको विद्रोहसे डरानेका यत्न किया गया। उसके परिवारको ज़बर्दस्ती मुसलमान बना दिया गया।

इस प्रकार जाटोंका पहला विद्रोह समाप्त हो गया, परन्तु वह अपने पीछे काफ़ी गड़बड़ छोड़ गया। १६७० से १६८५ तक

बराबर आगरा और मथुराके इलाकोंमें छोटे-मोटे झगड़े होते रहे। आगरा और मथुराके फौजदारोंको चैनसे न बैठना मिला। इधर औरंगज़ेब दक्षिणकी दलदलमें अधिक ही अधिक उलझता गया। लगभग २० वर्ष तक वह उत्तरकी ओर न आ सका। सब राजकुमार और प्रधान सेनापति दक्षिणहीमें इकट्ठे हो गये थे। उत्तरीय भारतमें तो केवल समाचार पहुँचते थे, और वह भी शाही सेनाकी आपत्तियोंके ही समाचार थे। कभी राजकुमार अकबरके विद्रोही होनेका समाचार पहुँचता, तो कभी मराठोंकी सफलताकी अफवाहें फैलती। उत्तरीय भारतके लोग अशुभ समाचारोंको सुनते और प्रति वर्ष इधरसे धन और सेनाको दक्षिणकी ओर बहता देखते। वह प्रतिदिन विजयी औरंगज़ेबके लौटनेकी राह देखते, परन्तु उनकी आँखें थक गईं, औरंगज़ेब न लौटा। उत्तरके सब सूबे छोटे और अनुभवहीन अफसरोंके अधिकारमें रह गये। न उन अफसरोंके पास धन था, और न शक्ति थी। धर्मान्धताकी नीतिसे जनता असन्तुष्ट हो चुकी थी। असन्तोषने उत्तर और दक्षिण भारतमें समान रूपसे अग्नि प्रज्वलित कर दी थी। औरंगज़ेब उस स्वयं प्रज्वलित की हुई अग्निमें जल रहा था।

उत्तरीय भारतमें विद्रोहके बीजको तैयार भूमि मिल गई। असन्तोषी जाटोंको तो मानो मुँहमाँगी मुराद मिली। दिल्ली और आगरेसे जो ख़ज़ाना दक्षिणकी ओर भेजा जाता था, उसे जाटोंके इलाक़ेमेंसे होकर गुज़रना पड़ता था। कमज़ोर कुबेरपर किसकी लार नहीं टपकती? ख़ज़ाने लुटने लगे। जिस छोटेसे ज़मीनदारने कुछ लड़ाकुओंकी सहायतासे एक भी ख़ज़ाना लूट लिया, वह तर गया, वह सरदार बन गया। लड़ाकू लोग चारों ओरसे इकट्ठे होकर उसकी फौजमें भर्ती होने लगे। दो चार डाकोंमें उसका राजा बन जाना क्या आश्चर्यजनक था? उस युगमें अरक्षित या अर्धरक्षित ख़ज़ानोंने कितने ही लुटेरोंको सरदार और राजा बना दिया।

गोकुला जाटकी मृत्युके १५ वर्ष पीछे जाटोंमें एक नया नायक उत्पन्न हुआ, जिसने बिखरे हुए मोतियोंको मालामें पिरोनेका यत्न किया। वह सिन्सानीका ज़मीनदार राजाराम था। सौगर गाँवके ज़मीनदार रामचेहराने उसकी सहायता की। राजारामने जाटोंके जत्थोंको सेनाके रूपमें परिणत कर दिया। लाठी और तलवारका प्रयोग तो प्रायः सभी जाट जानते थे, राजारामने उन्हें बन्दूकें दीं, और नियन्त्रणमें लाकर सिपाही बना दिया। थोड़े ही कालमें फ़ौजके दस्ते तैयार करके उसने शाही रास्तोंको रोक दिया। आगरेके आसपास मुग़लोंकी सेनाओं तकका जाना आना बन्द कर दिया। आगरेका फ़ौजदार अपनी ही चार-दीवारीमें घिर गया। जाट लोग चारों ओर लूट-मार मचाने लगे। राजारामने कई नये किले बना दिये थे, जिनमें लूट-मारका माल सँभालकर रख दिया जाता था।

राजारामके उपद्रवने आगरेके शासक साफीख़ाँका नाकमें दम कर दिया। हर रास्तेपर जाट-जत्थे लूट-मारके लिए मड़राते रहते थे। एक बार तो राजाराम अकबरके मकबरे (सिकन्दरे) पर इस आशयसे चढ़ गया कि उसे लूट ले। फ़ौजदार मीर अबुल फ़ज़लने ज़ोरकी लड़ाई लड़ी, जिससे उस समय तो राजारामको लौटना पड़ा, परन्तु दो वर्ष पीछे फिर वह सिकन्दरेपर चढ़ गया, और उसे जी भरकर लूटा। कोई कीमती माल मकबरेमें न छोड़ा। मुग़ल-सम्राट्के लिए इससे बढ़कर अपमानजनक चपत और कौनसी हो सकती थी, कि वह अपने पूर्व पुरुषाओंकी समाधियों तककी रक्षा न कर सका।

तूरानी सेनापति अग़ारख़ाँ बादशाहके हुक्मसे बीजापुरसे काबुल जा रहा था। धौलपुरके पास जाट लोग उसकी बारबरदारीपर जा टूटे। ख़ानको जब ख़बर मिली तो उसने जोशमें आकर थोड़ेसे सिपाहियोंको साथ ले जाटोंके पीछे घोड़े डाल दिये। जाटोंने डटकर सामना किया। ख़ान, उसका बेटा और ४० सिपाही खेत रहे। अब तो औरंगज़ेब घबराया, और नयेसे नये,

और प्रसिद्धसे प्रसिद्ध सेनापतियोंको जाटोंके दमनके लिए भेजने लगा। खाने-जहान, कोकल्ताश, जफरजंगके पीछे राजकुमार आज़मको भेजा गया, पर उसकी गोलकुण्डामें ज़रूरत हो गई, तो राजकुमार बेदारबख्तको भेजा गया। उन दिनों बगथारियाकी ज़मीनके लिए चौहान और शेखावत राजपूतोंमें परस्पर झगड़ा चला हुआ था। चौहान राजपूतोंने राजारामकी सहायता प्राप्त कर ली। अच्छा अवसर पाकर शेखावतोंकी सहायताके लिए मुग़ल फौजदार जा पहुँचे। दोनों पक्षोंमें घोर संग्राम हुआ। घमासान युद्धमें वृक्षकी आड़में छिपे हुए एक मुग़ल बन्दूकचीने राजारामके गोली मार दी, जिससे जाटोंके अग्रणीका देहान्त हो गया। (१६८८)।

राजारामकी मृत्युके पीछे उसके बूढ़े पिता भज्जासिंहने जाटोंकी शक्तिको सँभालनेका यत्न किया। बादशाहने जाटोंके दलनका कार्य राजा मानसिंहके पुत्र अम्बरनरेश राजा बिशनसिंह कछवाहेके सुपुर्द कर दिया। भज्जासिंहने शक्तिभर लड़ाई की। सामनेकी लड़ाईमें समर्थता न देखकर दुर्गोंका आश्रय लिया, और घेरनेवाली मुग़ल-सेनाओंका रातको आक्रमण करके जीना मुश्किल कर दिया। सिन्सानीका किला कई महीनोंके घेरे, और घमासान युद्धके पीछे राजा बिशनसिंहके हाथमें आ गया। अगले वर्ष मुग़ल-सेनाओंने सौगरका किला भी जीत लिया। जाटोंके नेता प्रधान दुर्गोंके छिन जानेपर फिर एक बार अज्ञातवासमें चले गये। किसान लोग तलवारको म्यानमें रखकर हल जोतने लगे। इस प्रकार जाटोंकी शक्ति योग्य नेताके अभावसे चार वर्ष तक सोई रही।

१६९५ में राजारामके छोटे भाई चूड़ामन जाटने विद्रोहका झण्डा अपने मज़बूत हाथोंमें सँभाला। चूड़ामन गोकुला और राजाराम दोनोंहीसे अधिक योग्य था। प्रो० जदुनाथ सरकारने लिखा है कि उसमें जाटोंके अड़ियलपनके साथ मराठोंकी धूर्तता मिली हुई थी। लोकसंग्रह और संगठनके साथ साथ शत्रुकी निर्ब-

लतासे लाभ उठानेकी योग्यता चूड़ामनमें अन्य जाट-नेताओंसे विशेष थी। वह लड़ाकू भी था, और राजनीतिज्ञ भी। 'शत्रुसे भी विश्वासघात न करो' हिन्दुओंके इस प्रसिद्ध सिद्धान्तको वह नहीं मानता था। वह बहादुर सिपाहीकी तरह लड़ता था, परन्तु केवल बहादुर सिपाहीकी तरह भावुकताको नीतिपर विजयी नहीं होने देता था। उसका दिमाग़ सदा ठण्डा रहता था। वीरता और नीतिमत्ता इन दो गुणोंका ही मेल था, जिसने चूड़ामन जाटको इस योग्य बनाया कि वह जाटोंकी विद्रोही शक्तिको राज्यशक्तिके रूपमें परिणत करे।

एक तत्कालीन लेखकने चूड़ामनके सम्बन्धमें लिखा है कि "उसने अपना कार्य लुटेरोंके नेताके रूपमें प्रारम्भ किया, काफलों और इक्कों दुक्कोंको लूटकर थोड़े ही समयमें उसने ५०० घुड़-सवार और १ हजार पैदल सिपाही तैयार कर लिये। जब केवल व्यापारियोंके काफिलोंकी लूटसे जो पैदावार होती थी, वह इतने बड़े डाकू-सैन्यके लिए कम होने लगी, तो चूड़ामनने परगनोंको लूटना आरम्भ किया। इस समय उसने आगरेसे ४० कोसकी दूरीपर दलदल और घने जंगलके मध्यमें रक्षाका एक स्थान बनाया जिसके चारों ओर गहरी खाई खोदी। वही स्थान अन्तमें भरतपुर कहलाया।" वहाँ वह लूट-मारका सब सामान रखा करता था। ख़ज़ानेकी रक्षाके लिए जाटोंका पूरा भरोसा न करके वह बाहिरसे कुछ चमार परिवारोंको लाया, और उन्हें रक्षाका कार्य सौंपकर किलेमें बसा दिया। धीरे धीरे उसकी सेना १४ हज़ार तक पहुँच गई। तब उसने भरतपुरकी रक्षाका बोझ अपने एक भाईपर डाला, और स्वयं कोटा और बूँदीकी ओर धावे मारने प्रारम्भ किये। उसने अपनी सेनामें बन्दूकची भी भर्ती किये। उसने जिन लोगोंको लूटा, उनमेंसे कई औरंगज़ेबके वज़ीर भी थे। सूबोंसे दिल्लीको जो लगानका रुपया भेजा जाता था, वह तो उसने कई बार लूटा।

औरंगज़ेबकी मृत्युके पीछे चूड़ामनने अपने हाथ-पाँव दूर दूर तक फैला दिये। उसके जीवनका अन्तिम भाग शाही खज़ानोंके लूटनेमें और जाट-शक्तिको स्थिर नींवपर स्थापित करनेमें व्यतीत हुआ। वह कहानी तीसरे भागमें सुनाई जायगी। यहाँ तो हमने जाट-शक्तिके अभ्युदयका ही दिग्दर्शन किया है। मुगल-साम्राज्यके क्षय और पतनका इतिहास संसारके राजनीतिक इतिहासमें एक विशेष स्थान रखता है। जो व्यक्तिगत महती शक्तियाँ उदारताके साथ सम्मिलित होकर साम्राज्योंकी स्थापनाका साधन बनती है, वही शक्तियाँ विशालाकार धन-धान्यपूर्ण सुरक्षित साम्राज्यको चकनाचूर कर देनेके लिए अनुदारताका हाथ बँटाती हैं। यदि औरंगज़ेब इतना अधिक साहसी, वीर, बातका धनी, और मज़बूत इच्छाशक्तिवाला न होता, तो मुग़ल-साम्राज्यके कलेवरमें इतने शीघ्र विद्रोहके कीड़े न फैलते। कोई दूसरा शासक प्रजाको इतना अधिक रुष्ट करनेका, और फिर रुष्ट प्रजाकी पर्वा न करके दक्षिणमें विजय प्राप्त करनेके लिए निरन्तर बैठनेका साहस न करता। देखिए तो, कितने अद्भुत साहसका कार्य है। प्रत्येक प्रान्तमें हिन्दू विद्रोही सिर उठा रहे है, और सम्राट्का खेमा देशके दक्षिणी सीमा-प्रान्तसे नहीं हिलता। विद्रोही दब जायँगे, एक ही मारमें पिस जायँगे, जब दक्षिणसे छुट्टी मिलेगी—यह आत्म-विश्वास था, जो औरंगज़ेबको सहारा दिये हुए था। ऐसा आत्म-विश्वास असाधारण वीरताके बिना उत्पन्न नहीं होता। औरंग-ज़ेब जैसे दुर्दान्त वीर ही विशाल विद्रोहोंको पैदा किया करते हैं। जाटोंका उत्थान इस उपर्युक्त सिद्धान्तका जीवित दृष्टान्त है।

१०—सतनामी विद्रोह

सतनामी विद्रोह इतिहासके उन विद्रोहोंमेंसे हैं, जो अपने आपमें बहुत छोटे—कुछ नहीके बराबर—होते हैं, परन्तु राष्ट्ररूपी शरीरमें स्थानीय फोड़े, या नाककी नकसीरके समान रोगको सूचित करते है। 'सतनामी' नामसे उत्तरीय भारतमें

कमसे कम तीन सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। जिस सम्प्रदायके फकीरोंने औरंगज़ेबकी राजधानीपर आक्रमण करनेकी ठानी थी, और जिसके डरसे मुग़ल-सम्राट्का जंगी तोपख़ाना बहुत समयतक दिल्लीकी दीवारोंके बाहिर रास्ता रोकनेके लिए खड़ा रहा, उनको साध भी कहते थे। वह सम्प्रदाय रैदासियोंकी शाखा समझा जाता था। यह लोग मुँह-सिरके सब केश, यहाँ तक कि भँवोंके बाल भी क्षौर करा देते थे, इस कारण 'मुण्डिये' भी कहलाते थे। इस सम्प्रदायका गढ़ नारनौलमें है। यह स्थान दिल्लीसे ७५ मील दक्षिण पश्चिमकी ओर है।

सतनामी लोग फकीरोंका वेष पहिनते थे, परन्तु भीख नहीं माँगते थे। वह गृहस्थोंकी तरह ज़मीनमें हल जोतते और अनाज काटते थे। इतिहास-लेखक खाफ़ीख़ाँ सतनामियोंके विषयमें लिखता है—"यद्यपि सतनामी लोग फकीरोंका-सा वेष पहिनते हैं, परन्तु वह खेती करते हैं, और छोटा मोटा व्यापार भी करते हैं। अपने विश्वासके अनुसार वह भले मानुसोंकी तरह जीना चाहते हैं, और बेईमानीसे पैसा पैदा नहीं करना चाहते। यदि कोई उनपर अत्याचार करना चाहे, तो वह सहन नहीं कर सकते। वह प्रायः हथियार बाँधते हैं।"

वह लोग धार्मिक सम्प्रदायोंकी संकुचित मनोवृत्तिसे भी बहुत कुछ रहित थे। खान-पानके बन्धनों तकको वह स्वीकार नही करते थे। इतिहास-लेखक ईश्वरदासने अपने विचारोंके अनुसार उनके सम्बन्धमें लिखा है—"सतनामी बहुत गन्दे और बुरे है। अपने नियमोंमें वह हिन्दू और मुसलमानमें कोई भेद नहीं करते, और सूअर तथा अन्य गन्दे जानवरोंको खा जाते हैं। यदि कुत्तेका मांस उनके सामने रखा जाय, तो भी वह घृणा प्रकाशित नहीं करते। पाप उनके लिए कोई चीज़ नहीं है।"

ऐसे वह फकीर थे, जिन्होंने कुछ समयके लिए आलमगीरके तख़्तको हिला दिया था। वह खेती करते थे, जो चाहते थे खाते थे, शस्त्र धारण करते थे, और आपसमें मिलकर रहते थे। बातकी

बातमें वह टिड्डी-दलकी तरह इकट्ठे हो गये, और उन्होंने एक बार तो औरंगज़ेबकी गम्भीर मुद्राको भी तोड़ ही डाला।

बात ज़रासी घटनापर बढ़ गई। सतनामियोंका अड्डा नारनौल-के पास था। वहीं एक गाँवमें खेतपर एक सतनामी किसानका किसी सरकारी पियादेसे झगड़ा हो गया। झगड़ेमें पियादेने लाठी-से किसानका सिर तोड़ दिया। इसपर सतनामी दल इकट्ठा हो गया और पियादेको इतना पीटा कि वह मर गया। जब यह ख़बर वहाँके शिकदार (पटवारी) को पहुँची, तो उसने कुछ पियादे उन लोगोंको गिरिफ्तार करनेके लिए भेज दिये। पियादोंके स्वाग-तके लिए और अधिक सतनामी इकट्ठे हो गये, और सिपाहियोंको पीट-पीटकर बिछा दिया। कई सिपाही बुरी तरह घायल हो गये। सभीके हथियार छीन लिये गये। चारों ओरसे सतनामियोंके दल इकट्ठे होने लगे।

शीघ्र ही इस झगड़ेने धार्मिक रंग पकड़ लिया। औरंगज़ेबकी धर्मान्ध नीतिसे हिन्दू अत्यंत असन्तुष्ट थे। सिपाहियों और सत-नामियोंके झगड़ेको मुसलमानोंके हिन्दुओंपर आक्रमणका रूप मिल गया। यदि औरंगज़ेबकी नीतिने हिंदुओंके हृदय कलुषित न कर छोड़े होते, तो राईका पहाड़ न बनने पाता। एक बूढ़ी साधुनी किसी कोनेमेंसे निकल आई, और सतनामियोंको भड़काने लगी। उसने कहा कि मेरे वरदान और जादूसे अनगिनत हिन्दू सेना रात ही रातमें पैदा हो जायगी, सतनामियोंको कोई परास्त न कर सकेगा, यदि एक सतनामी मरेगा तो उसकी जगह ८० और पैदा हो जायँगे।

सतनामी लड़ाके चींटियोंकी तरह बिलोंमेंसे निकल आये, और उन्होंने सरकारी चौकियोंपर आक्रमण आरम्भ कर दिये। विद्रोह इतना अचानक था कि शाही दबदबा एकदम उड़ गया। ५,००० के लगभग सतनामियोंने आफत मचा दी। स्थानीय अफ़सरोंने फौजके कई छोटे छोटे दस्ते भेजे, पर वह सब परास्त हो गये। सफलतासे हिम्मत बढ़ा करती है। एक कामयाबी एकको दस बना देती है।

सतनामियोंकी भी हिम्मत बढ़ गई, जिससे उनकी संख्या और शक्ति दिनों दिन बढ़ने लगी।

अब उपेक्षा करनी कठिन हो गई। नारनौलका फौजदार सेनायें लेकर सतनामियोंपर चढ़ आया। सतनामी भी जी तोड़-कर लड़े, और उसे बुरी तरह परास्त करके भगा दिया। सत-नामी दल नारनौलका मालिक बन गया। सब मसजिदें गिरा दी गईं, सरकारी ख़ज़ाना लूट लिया गया और हिन्दू राज्यकी स्थापना कर दी गई। आसपासके ज़मींदारों और राजपूतोंने मुग़ल-सरकारको लगान देना बन्द करके सतनामी सरकारको अंगीकार कर लिया, और उन्हींको लगान दे दिया।

सतनामियोंका साहस और अधिक बढ़ गया। वह आगे बढ़ने लगे। उनके दिलमें यह निश्चय हो गया कि कोई दैवी शक्ति उनके साथ है, और वह शीघ्र ही सल्तनतपर कब्ज़ा कर लेंगे। इधर विद्रोहका समाचार दिल्लीमें भी पहुँचा, और समाचारके साथ ही साथ अफवाहें पहुँचीं। दिल्लीमें मशहूरहो गया कि सतनामियोंके पास जादू है। उनपर शस्त्र कोई असर नहीं कर सकता। वह फकीरी ज़ोरपर लड़ते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जब औरंगज़ेबने सेनापतियोंसे विद्रोहको दबानेके लिए कहा, तो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी सरदार आनाकानी करने लगे। जादूसे लड़नेके लिए कोई तैयार न होता।

अब तो सतनामी दिल्लीसे ३२ मीलकी दूरीपर थे। आधा रास्ता तो तय हो ही गया था। औरंगज़ेब कुछ तो इतना समीप विद्रोह होनेसे ही घबराया हुआ था, सेनापतियोंकी आना-कानीने उसे और अधिक घबराहटमें डाल दिया। तब उसने १०,००० के लगभग सेना तैयार की, और रदन्दाज़ख़ाँको उसका सेनापति बनाया। कई अनुभवी जनरल, एक बड़ा तोपख़ाना, और बादशाहके अपने शरीर-रक्षक रदन्दाज़ख़ाँकी मददको दिये गये। औरंगज़ेब स्वयं 'जिन्दा पीर' माना जाता था। जादूके असरको दूर करनेके लिए उसने अपने हाथसे काग़ज़ोंपर कुरा-

-नकी आयतें लिखकर फौजके झण्डोंसे बाँध दी, जिससे सिपाहि-योंकी हिम्मत न टूटे। इस प्रकार हरेक हर्बेसे सुसज्जित होकर शाही फौज सतनामियोंके विद्रोहका दमन करनेके लिए आगे बढ़ी।

सतनामी सेना बड़ी हिम्मतसे लड़ी। बे-सरोसामान होनेपर भी उन्होंने महाभारतके दृश्य दिखानेका उद्योग किया। खूब जन-संहार हुआ, परन्तु तीरोंसे लड़नेवाले फकीर तोपोंका सामना कहाँ तक करते। लगभग २,००० सतनामी योद्धा धराशायी हुए। शाही-फौजके २०० आदमी मारे गये, बहुतसे घायल हुए। बाकी फकीर तितर-बितर हो गये। उनमेंसे भी जितने मुग़ल सेनाओंके हाथ आये, वह तलवारके घाट उतार दिये गये। इस प्रकार सत-नामी विद्रोहका अन्त हुआ। जिन सेनापतियोंने इस भयानक विद्रोहका दमन किया था, औरंगज़ेबने उन्हें पुष्कल पारितो-षिक दिया।

यह विद्रोह छोटासा था, परन्तु औरंगज़ेबके राज्य-कालमें, और इतिहासमें भी उसे अत्यधिक महत्त्व मिल गया है। इसका कारण यही है कि यह स्वयं भयानक रोग न होता हुआ भी भयानक रोगका चिह्न अवश्य था। यदि सतनामी विद्रोह किसी ऐसे समयमें पैदा होता, जिसमें प्रजाके अन्दर असन्तोषकी ज्वाला न जल रही होती, तो हरे घासमें गिरी चिनगारीकी भाँति वह क्षण-भर चमककर बुझ जाता, परन्तु औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीतिने हिन्दू प्रजाको ऐसा असन्तुष्ट कर रखा था कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म चोट भी उसे झुँझला देनेके लिए पर्याप्त हो जाती थी। एक किसानकी सिपाहीसे लड़ाई हुई और उसने एक धार्मिक युद्धका रूप धारण कर लिया।

इस विद्रोहका दूसरा महत्त्व यह था कि इसमें दोनों ही ओरसे धार्मिक भ्रान्तियोंसे लाभ उठाया गया। एक ओर एक बुढ़िया जादूगरनीने उत्तेजना दी, तो दूसरी ओर स्वयं आलमगीरको बुद्धि-

थाका अभिनय करना पड़ा। औरंगज़ेबके कट्टर मज़हबी कानूनोंने प्रजाकी मनोवृत्ति बिगाड़ दी थी। यदि बिगाड़ी न होती, तो युद्धमें जादू-टोनों और कुरानकी आयतोंकी सहायता लेनेकी आवश्यकता न होती। बिगड़े हुए वातावरणका ही परिणाम था कि इतनी आसानीसे तिलका ताड़ बन गया। अकबरके समयमें सतनामी विद्रोह असम्भव था।

११—सिख-शक्तिका जन्म

सिख-धर्मके जन्म, विकास और परिवर्तनका इतिहास धर्म और राष्ट्रके विद्यार्थीके लिए अत्यन्त शिक्षादायक और मनोरंजक है। उसका जन्म भक्तकी भावनासे हुआ, विकास गुरुओंके गुणोंसे और उनके विचारोंकी उदारतासे हुआ, और परिवर्तन मुग़ल शासकोंकी अदूरदर्शितापूर्ण पक्षपात-नीतिसे हुआ। मुग़ल-साम्राज्यके कर्णधारकी धर्मान्धता-पूर्ण नीतिने देशमें जो प्रतिक्रियायें पैदा कीं, उनमेंसे दो मुख्य थी। एक प्रतिक्रिया तो पंजाबमें हुई जिसके प्रत्यक्ष स्थूलरूप गुरु तेग़बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह थे, और दूसरी प्रतिक्रिया दक्षिणमें उत्पन्न हुई, जिसका फल मराठाशाहीके रूपमें प्रकट हुआ। पहले हम उत्तर भारतमें उत्पन्न हुई प्रतिक्रियाके सम्बन्धमें निर्देश करेंगे।

उस प्रतिक्रियाका जन्म एक भक्तकी भावनासे हुआ। गुरु नानकका जन्म पंजाब प्रान्तके तलवंडी नामके ग्राममें सन् १४६८ में हुआ। उनके पिताका नाम कालू था। उस समय भी आजकलकी भाँति पंजाबके खत्री व्यापारका काम करते थे। कालू भी जन्मका खत्री था। उसने अपने लड़केको व्यापारके लिए तैयार करना चाहा। परन्तु नानककी प्रवृत्ति बचपनसे ही व्यापारकी ओर नहीं, वैराग्यकी ओर थी। न तो बालक नानकने चटशालामें पढ़नेपर ध्यान दिया, और न व्यापारकी ओर ही प्रवृत्ति दिखाई। धार्मिक ग्रन्थों-

का सुनना तथा पढ़ना और सन्तोंका संग करना ही उसका मुख्य कार्य था। एक हिन्दूके लिए पुराणोंका सुनना आवश्यक और काफ़ी समझा जाता था, परन्तु नानककी धर्मकी ओर नैसर्गिक प्रवृत्ति पुराणों तक परिमित न रह सकी। पड़ोसमें सय्यद हसन नामका एक मुसलमान रहता था। नानकने उससे कुरानकी बातें सुनीं, और इस्लामके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंकी शिक्षा पाई। नानकने हिन्दू धर्मशास्त्रोंको भी सुना और इस्लामकी तालीम भी पाई। उन दोनोंहीमें उसे बहुत कुछ अच्छा और बहुत कुछ बुरा—दोनों ही अंश मिले। उसने देखा कि हिन्दू-धर्ममें जीवनकी पवित्रता तो है, परन्तु देवी देवताओंके जंजालमें पड़कर और रिवाजोंके दास होकर हिन्दू निकम्मे, कायर और कमज़ोर हो गये है। उसने यह भी देखा कि जहाँ मुसलमान एक ईश्वरमें दृढ़ विश्वास रखनेके कारण मज़बूत और शक्तिशाली है, वहाँ उनमें पवित्रता और मनुष्यताका अभाव हो रहा है। दोनों ही ओरसे उसकी दृष्टि हटने लगी। उसने दोनोंहीमेंसे सचाई लेकर बुराईको छोड़ने और उड़ानेका यत्न किया।

गुरु नानकने व्यापारका रास्ता पहले ही त्याग दिया था। एक छोटीसी सरकारी नौकरी थी, वह भी छोड़ दी, और सचाईकी तलाशमें घर-बार छोड़कर वह फकीरोंकी संगतमें पड़ गये। कई वर्षों तक दरवेशों और फकीरोंका आदेश मानकर तपस्या भी करते रहे, अन्तमें उनकी आँखें खुलीं, और इस परिणामपर पहुँचे कि न कोरी तपस्यामें धर्म है, और न सिर्फ पूजा-पाठ या कुरानके बाँचनेमें। धर्म तो जीवनकी पवित्रतामें है और परमात्माकी सच्ची भक्तिमें है। यह निश्चय होते ही गुरुने शरीरको कष्ट देनेका रास्ता छोड़ दिया, और घर वापिस आकर पत्नी और बच्चोंमें रहने और धर्मका उपदेश करने लगे।

गुरु नानकने जिस धर्मका उपदेश किया, उसके मुख्य मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

ईश्वर एक है। हिन्दुओंमें उस समय भी अनेक देवताओंकी आराधना प्रचलित थी। गुरु नानकने एक ओंकारकी उपासनापर ज़ोर दिया। ग्रन्थसाहिबके निम्नलिखित पद एकताके भावको ज़ोरदार ढंगपर सूचित करते हैं—

एको एक कहै सब कोई दउमें गरब बियापै,
अन्तर बाहिर एक पछाणै एहु घर महल सिजापै।
प्रभ नेडे हर दूर न जानहु एको सुमर सबाई,
एकैकार अवर नहिं दूजा नानक एक समाई॥

ईश्वरसे उतरकर दूसरा स्थान गुरुका रखा गया था। गुरु नानक अन्य भक्तोंकी भाँति सद्गुरुमें गहरा विश्वास रखते थे। ग्रन्थ-साहिबका निम्नलिखित वाक्य उनके भावको सूचित करता है—

बलिहारी गुरु आपणे दिउहाड़ी सद वार।
जिन माणस ते देवते कोई करत न लागी वार॥
जो सउ चन्दा उगवहि सूरज चढ़हि हजार।
एते चानण होदियाँ गुर विन घोर अँधार॥

आसाकी वार।

हिन्दू जातिमें नीच और ऊँचका जो जाति-भेद है, उसके सम्बन्धमें गुरु-नानकका विचार बहुत उदार था। वह जाति-भेदको स्वीकार नहीं करते थे। ग्रन्थसाहिबके निम्नलिखित वाक्य इस भावको सूचित करते हैं—

जोर न सुरती ज्ञान विचार, जोर न जुगती छूटै संसार।
जिसु हथ जोर करवेखै सोय, नानक उतम नीच न कोय।

—जपुजी

हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेको बुरा कहते थे, परन्तु परस्पर झगड़ा असूलोंपर नहीं, बाहिरके दिखावटी रीति-रिवाजपर

ही पैदा होता था। गुरु-नानक दोनों ही धर्मोंकी गौण और व्यर्थ बातोंसे असन्तुष्ट थे। वह धर्मके रहस्यको, उसके असली और नकली रूपको पहिचानते थे। उनका सिद्धान्त था कि न केवल हिन्दुओंके दिखावटी धर्मसे मनुष्यका उद्धार हो सकता है, और न मुसलमानोंके रिवाजी मज़हबसे। दोनों ही धर्म मुल्लाओं और पण्डितोंने बिगाड़ छोड़े हैं। गुरु नानकके कुछ वाक्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तपनाउ।
असंख ग्रन्थ मुखि वेदपाठ। असंख जोग मन रहहि उदास।
असंख भगत गुणज्ञान विचार। असंख सती असंख दातार।
असंख सूर मुह भावसार। असंख मोनि लिव लाय तार।
कुदरति कवण कहा विचार। वारि आ न जावा एक वार।
जो तुझ भावै सोई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार।

—जपुजी

इसी भावको लेकर दूसरे स्थानपर हिन्दुओंके पण्डित और मुसलमानोंके मुल्लाओंकी अल्पज्ञताकी निन्दा की गई है।

वेद न पाइया पंडिती जित होवे लेख पुराण।
वखत न पायो कादिया जि लिखन लेख कुरान॥
थिति वार न जोगी जाणै सति मार न कोई।
जा करता सिरठी कउ साजै आपै जाणै सोइ॥

—जपुजी

गुरु नानक सब धर्मोंसे ईश्वरकी भक्ति और सदाचारको ही ऊँचा स्थान देते थे। उनके मनमें वही असली धर्म था। कहा है—

तेरी भगति तेरी भगति भंडारजी भरे बे अन्त बे अन्ता
तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधजी हरि अनेक

अनेक अनन्ता।........से भगतसे भगत भले
जन नानकजी जो भावहि मेरे हरि भगवन्ता।

गुरू नानक भक्त थे और सुधारक थे। भक्त तो इस लिए कि वह परमात्माकी भक्तिको धर्मके गौण क्रिया-कलापसे ऊँचा स्थान देते थे, और सुधारक इस लिए कि उस समय प्रचलित जात-पाँतके भेद-भावको मिटानेका यत्न करते थे। उनसे पूर्व चैतन्य, कबीर आदि जो भक्त लोग हो चुके थे, उनमें और गुरु नानकमें दो बड़े भेद थे। पहला भेद तो यह था कि गुरु नानकने ईश्वरकी आराधनाके लिए संसारके सर्वथा त्यागको आवश्यक नहीं ठहराया। वह स्वयं गृहस्थ बने और दूसरोंको गृहस्थ रहते हुए ईश्वर-भक्त और धर्मात्मा बननेका उपदेश किया। जहाँ अन्य भक्त लोगोंके सदुपदेश केवल चुने हुए ऐसे लोगोंतक ही पहुँच सके, जो संसार-त्याग करनेको उद्यत हों, वहाँ गुरु नानकका धर्म सबके लिए समान था। कई पूर्व भक्तोंसे गुरु नानकका दूसरा भेद यह था कि गुरुने लोक-भाषा पंजाबीमें उपदेश किया। रामानुजादि आचार्योंने विचार-धाराको सुधारनेका यत्न किया, परन्तु उनके ग्रन्थ संस्कृतमें थे। संस्कृत केवल विद्वानोंकी भाषा थी। विद्वानोंकी भाषाके आधारपर किसी सार्वजनिक धर्मकी स्थापना नहीं हो सकती। गुरु नानककी वाणी अनपढ़से अनपढ़ ग्रामीणके हृदय तक भी पहुँच जाती थी।

गुरु नानकने देशदेशान्तरमें भ्रमण करके सदुपदेश सुनाया। उनके उपदेश हिन्दू और मुसलमान दोनोंको भाते थे। कबीरकी भाँति वह जातीय पक्षपातसे हीन थे। कहते हैं कि अपने वेशमें भी वे प्रायः दोनों धर्मोंके निशान रखते थे। जहाँ जाते वहाँ लोक-भाषामें भक्ति-मार्गका उपदेश करते और मोटी मोटी कुरीतियोंकी ओरसे जनताको हटानेका यत्न करते। प्रचार करते करते वह मक्केमें भी पहुँचे। वहाँपर उन्हें कहाँतक सफलता प्राप्त हुई, यह कहना तो कठिन है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मृत्युके समय

उनके शवपर दावा रखनेवाले हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। उनके सदुपदेशोंसे दोनों ही जातियोंके लोग आकृष्ट हुए।

गुरु नानकने उन अर्थोंमें किसी नये सम्प्रदाय या धर्मकी बुनियाद नहीं डाली, जिन अर्थोंमें धर्मका इतिहास लिखनेवाले लोग 'बुनियाद डालना' शब्दका प्रयोग करते हैं। नये धर्मकी बुनियाद डालनेके लिए प्रायः नये दार्शनिक आधारकी आवश्यकता होती है। गुरु नानकने किसी नये दार्शनिक आधारकी कल्पना नहीं की, हिन्दू धर्मके दार्शनिक विचारोंको ही स्वीकार कर लिया। पुनर्जन्म, ब्रह्म, माया, जीव, कर्मफल, मृत्यु और मोक्षके सम्बन्धमें हिन्दू धर्मके सर्वसम्मत विचार ही ग्रन्थसाहिबमें स्वीकार किये गये है। वह भक्त सुधारक थे। ईश्वर-भक्तिके उपदेशके साथ साथ सामाजिक कुरीतियोंको दूर करना उनका उद्देश्य था। यह ठीक है कि अपने अनुयायियोंको गुरुने शिष्य या सिख कहा, और उसीसे सिख-धर्मका नाम करण हुआ, परन्तु गुरुके वाक्योंसे या जीवन-साखीमें वर्णित घटनाओंसे यदि कुछ सिद्ध होता है तो यही कि गुरु नानक अपने आपको हिन्दू भक्त या हिन्दू फकीर समझते और कहते थे।

परन्तु उन्हें मुसलमानोंसे कोई द्वेष नहीं था। न मुसलमान शासकोंहीने उन्हें अपना शत्रु समझा। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उन्हें श्रद्धासे देखते थे। गुरुने दोनों ही धर्मोके आचार्योंकी शठताकी निन्दा की है, इस कारण दोनों ही पक्षके कट्टर लोग उनको बुरी निगाहसे देखते हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

७० वर्षकी आयुमें गुरु नानकका देहान्त हुआ। उस समय वह हिन्दू और मुसलमान भक्तोंसे घिरे हुए थे। दोनोंमें होड़ हो रही थी कि उनकी लाशपर किसका क़ब्ज़ा हो। दोनों ही ओरसे उनकी अर्थीपर फूल चढ़ाये गये।

नानकके पीछे उनके शिष्य अंगदने गुरुकी गद्दी सँभाली। गुरु नानकके पुत्र श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द उसी समयसे अलग हो गये, और उनसे उदासी सम्प्रदायका प्रारम्भ हुआ। गुरु अंगदसे

लेकर गुरु गोविन्दसिंह तक ९ गुरु गद्दीपर बैठे। इतने समयमें सिखोंमें जो परिवर्तन आया, वह इतिहासकी एक अद्भुत और शिक्षादायक घटना है। गुरु अंगदने १५३९ ई० में गद्दी सँभाली, और गोविन्दसिंहने १५७५ ई० में गुरुकी पदवी धारण की। इन ३६ वर्षोंमें सिख-धर्मकी काया ही पलट गई। यदि यह कहें कि ३६ वर्षोंमें गौने व्याघ्रका रूप धारण किया, तो अनुचित न होगा। गुरु नानकका भक्ति-मार्ग गुरु गोविन्दसिंहके क्षात्र धर्मसे नामकी उपमा अवश्य रखता है, परन्तु अन्य अंशोंमें दोनोंमें दिन रातका भेद हो गया है। मूल सिद्धान्तोंमें अधिक भेद न होते हुए भी उद्देश्य, संगठन, और बाह्य रूपमें आकाश पातालका अन्तर हो गया है।

मुग़ल-साम्राज्यके विनाशके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए हमें सिख-धर्मके रूपपरिवर्तनके इतिहासपर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस परिच्छेदमें हम गुरुओंके जीवनोंकी अन्य घटनाओं-पर विशेष ध्यान न देकर इस परिवर्तनकी ही विस्तृत विवेचना करना चाहते है। परिवर्तन और उसके कारणोंका मुगल-साम्रा-ज्यके क्षयसे विशेष सम्बन्ध है।

गुरु अंगदने १४ वर्ष तक सिखोंका नेतृत्व किया। उनके जीवन-की विशेष घटना यह है कि उस समय पंजाबी भाषाको लिखनेके लिए गुरुमुखी अक्षरोंका प्रयोग होने लगा। प्रतीत होता है कि पंजाबमें उस समय देवनागरीके अक्षर बिगाड़कर लिखे जाते थे। ग्रामीण लोगोंमें उन्हीं अक्षरोंका प्रचार था। गुरु अंगदने उस लिपिके ३५ अक्षरोंको नियमित रूप देकर गुरुमुखी वर्णमालाको जन्म दिया। अलग वर्णमाला, और लोकभाषाके साथ विशेष सम्बन्ध हो जानेसे गुरु नानकके उत्पन्न किये विचार-प्रवाहको सम्प्रदायका रूप धारण करनेमें सहूलियत हुई।

गुरु अंगदके पीछे उनके सेवक अमरदासको गुरुकी गद्दीपर बिठाया गया। तीसरे गुरुमें सबसे बड़ा गुण उनकी नम्रता थी।

उन्होंने लगभग २२ वर्ष तक सिखधर्मकी वागडोर हाथोंमें सँभाले रखी।

चौथे गुरु रामदास गुरु अमरदासके दामाद थे। वह ऊँचे दर्जेके धर्मात्मा और सज्जन थे। गुरु नानकके सम्बन्धमें रिवायत है कि बादशाह बाबर उनका भक्त था, और उनसे मिला भी था। बाबरके उत्तराधिकारी अकबरने गुरु रामदासकी ईश्वर-भक्तिके समाचार सुने, तो उसके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हुई। अकबरकी ओरसे गुरु रामदासको वह जमीनका टुकड़ा प्राप्त हुआ, जहाँ अमृतसर बसा हुआ है। पहले वहाँ एक छोटासा कच्चा तालाब था, आसपास झोपड़े बने हुए थे। उसका नाम रामदासपुर रखा गया। शिष्य लोग वहाँ एकत्र होने लगे।

पाँचवें गुरु अर्जुनदेवके साथ सिखधर्मके इतिहासमें नया परिच्छेद प्रारम्भ होता है। वह एक प्रतिभासम्पन्न नेता थे। उनका शरीर लम्बा चौड़ा, सुन्दर और बलवान् था, उनकी प्रतिभा तीव्र और विस्तीर्ण थी। सिखधर्मको एक संगठितरूप देनेका सर्वाधिक श्रेय अर्जुनदेवको है। गुरु अर्जुनदेवका सबसे अधिक स्मरणीय कार्य ग्रन्थसाहिबका संकलन है। गुरु नानकके अतिरिक्त अन्य अनेक भक्तोंकी वाणियोंका संग्रह करके उनके साथ बहुतसी अपनी वाणियाँ मिलाकर गुरु अर्जुनदेवने भक्तिका वह सागर तैयार कराया, जो पीछेसे 'आदि-ग्रन्थ'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ग्रन्थसाहिबमें संगृहीत वाणियाँ हिन्दी और पंजाबीमिश्रित भाषामें हैं।

गुरु अर्जुनदेवका दूसरा अत्यावश्यक कार्य दरबार साहिबकी बुनियाद डालना था। जहाँ आज अमृतसरका शानदार दरबार साहिब विराजमान है, वहाँ उस समय एक छोटासा तालाब था। गुरु अर्जुनदेवने तालाबको विस्तृत करवानेके अतिरिक्त पक्का बनवाया, और उसके अन्दर हर-मन्दिरकी स्थापना की। इसी तालाबके नामपर उस नगरीका नाम अमृतसर पड़ा। ग्रन्थ साहबके

संकलन और हर-मन्दिरके निर्माणका यह परिणाम हुआ कि सिख-धर्मके शरीरका अस्थि-पंजर तैयार हो गया। जिस भक्ति-मार्गका गुरु नानक साहिबने एक भक्तकी भाँति उपदेश किया था, गुरु अर्जुनदेवने उसे स्थूल शरीरके जामेमें लाकर पन्थका स्वरूप दे दिया।

सिखोंमें स्वयं शासन करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेका श्रेय भी गुरु अर्जुनदेवको ही है। अबतक सिख लोगोंमें यह प्रथा थी कि वह वर्षमें एक या दो बार गुरुकी सेवामें उपस्थित होकर भेंट चढ़ा जाया करते थे। गुरु अर्जुनदेवने भेंटको वसूल करनेकी दूसरी ही प्रथा जारी की। उसने सिखोंकी दुनियाको कई हलकोंमें बाँट दिया, जिनका नाम मसनद रखा गया। मसनदपर जो लोग रहते थे, वह गुरुके एजेण्टका काम करते थे। सिखोंसे नियमपूर्वक भेंट-की रकम वसूल करके गुरुके पास पहुँचा देना उनका कर्तव्य था। इस प्रकार जो प्रारम्भमें केवल भेंट थी, वह अन्तमें मालगुज़ारीकी तरह वसूल की जाने लगी।

सांसारिक बड़प्पनकी बहिनका नाम डाह है। जब तक गुरु-नानकके स्थानापन्न केवल भक्तिमार्गका प्रचार करते रहे, उन्हें किसीने नहीं छेड़ा। कहा जाता है कि बाबर और अकबरने उनकी तपश्चर्याका वृत्तान्त सुनकर प्रसन्नता प्रकट की, परन्तु ज्यों ही गुरु अर्जुनदेवने बिखरे हुए अनुयायियोंको एक समूहमें बाँधनेकी चेष्टा की, त्यों ही डाह करनेवाले लोग पैदा हो गये। जिस समय अकबरकी राजगद्दीके उत्तराधिकारका झगड़ा चल रहा था, जहाँ-गीरके लड़के खुसरोको गुरु अर्जुनदेवने आश्रय दिया था। जहाँ-गीरने गद्दीपर बैठकर गुरुको हुक्म भेजा कि वह राजकोषमें जुर्मानेके रूपमें दो लाख रुपया दाखिल करे। वह दो लाख रुपया जमा नही कराया गया। चन्दू जहाँगीरका दीवान था। उसकी लड़कीकी सगाई गुरुके लड़केसे हो रही थी। जब चन्दूको यह बात मालूम हुई, तो उसने भरी सभामें सम्बन्धसे नाराज़गी ज़ाहिर

करते हुए गुरुके प्रति अपमानजनक शब्द कहे। परन्तु हिन्दुओंकी पद्धतिके अनुसार सगाईका होना आधे विवाहके बराबर समझा जाता है। चन्दूकी इच्छा न रहते भी विवाहका होना लाज़मी था, परन्तु अब गुरुको उत्तर देनेका अवसर मिला। गुरुने स्पष्ट शब्दोंमें चन्दूकी लड़कीको लेनेसे इन्कार कर दिया। इस घोर अपमानसे चन्दू उबल उठा। उसने जहाँगीरके कान भरे, और दो लाख रुपये न देनेके अपराधमें गुरुको क़ैद करा दिया। जेलर स्वयं चन्दू बना। उस नराधमने गुरुपर घोर अत्याचार किये। गर्म रेत नंगे शरीरपर डाला गया, जलते हुए लोहेपर बिठाया गया, और जली हुई जगह-पर गर्म पानी छोड़ा गया। गुरुने सब कुछ बर्दाश्त किया, परन्तु उफ़ तक न की। अन्तको एक दिन सिपाहियोंके पहरेमें रावीपर-स्नानके लिए जाकर गुरु अर्जुनदेवने जलमें ऐसी डुबकी लगाई कि वह फिर न निकले। राज्यका क़ैदी मृत्युके मार्गसे क़ैदख़ानेका ताला तोड़कर भाग निकला।

गुरु अर्जुनदेवकी कुर्बानीके साथ सिख-धर्मके इतिहासका नया परिच्छेद प्रारम्भ होता है।

१२—सिख-शक्तिका विकास

गुरु अर्जुनदेवकी कुर्बानीने सिखोंमें जो नैतिक परिवर्तन पैदा किया था, गुरु हरगोविन्द उसके पहले फल और नमूने थे। अर्जुनदेवकी मृत्युके समय बालक हरगोविन्दकी आयु केवल ११ वर्षकी थी। बचपनमें हृदयपर जो संस्कार जम जाते हैं, वह बहुत प्रबल होते है। हरगोविन्दके कोमल हृदयपर उस समयके मुसलमान शासकोंके अत्याचारोंका प्रभाव पड़ जाना स्वाभाविक था। पिताके वधका बदला लेनेकी भावना इतनी प्रबल हो उठी कि नये गुरुके समयमें गुरु नानकके धार्मिक पन्थने एक राजनीतिक सम्प्रदायका रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया।

यह कहना तो कठिन है कि बालक हरगोविन्दने स्वयं पिताके शत्रु चन्दू शाहको मारा या मरवाया, परन्तु नये गुरुके गद्दीपर बैठते ही उस सरकारी पिट्ठूका मारा जाना अवश्य ही जनतापर यह असर पैदा करनेका कारण बना कि अर्जुनदेवका उत्तराधिकारी केवल माला फेरकर या भक्तिका उपदेश देकर ही सन्तुष्ट न होगा, प्रत्युत वह पन्थ-शत्रुओंको दण्ड भी देगा। युवावस्था तक पहुँचते पहुँचते हरगोविन्दने सिखोंकी धार्मिक बागडोरके साथ साथ उनकी राजनीतिक बाग़डोर भी सँभाल ली। सिखोंके गुरुका डेरा थोड़े ही समयमें सेनाके उपनिवेशके रूपमें परिणत हो गया। मालाका स्थान तलवारने ले लिया, डेरेपर घोड़ों और घुड़सवारोंकी चहल पहल रहने लगी, सल्तनतके डरसे भागे हुए डाकू और लुटेरे पन्थके उपनिवेशमें इकट्ठे होने लगे। ८०० घोड़ोंसे भरा हुआ अस्तबल, ३०० घुड़सवार और ६० बन्दूकची गुरुकी लड़ाऊ तबीयतको सूचित करनेके लिए सदा साथ रहते थे।

कुछ समय तक गुरु हरगोविन्दका बादशाह जहाँगीरसे ख़ासा दोस्ताना रहा। शाही कैम्पके साथ काश्मीरकी सैरमें जाना सूचित करता है कि जहाँगीरके चित्तमें गुरुके लिए कोई विशेष वैर-भाव नहीं था। परन्तु गुरु स्वाधीन तबीयतका आदमी था। उसे शिकारका शौक़ था। जिन लोगोंसे वह घिरा हुआ था, वह भी निडर और लड़ाके थे। वह दोस्ती देर तक न निभ सकी, तो कोई आश्चर्य नहीं। जहाँगीरने असन्तुष्ट होकर हरगोविन्दको ग्वालियरके किलेमें क़ैद कर दिया। सिखोंके सुलगते हुए मुस्लिम-विरोधी भावपर इस क़ैदने घीकी आहुतिका काम दिया। ग्वालियरका किला सिख-भक्तोंके लिए तीर्थस्थान बन गया। उनके समूहके समूह आकर किलेकी दीवारोंके नीचे एकत्र होते और रोया करते। १२ वर्ष तक ग्वालियरसे सिखोंकी आहें उठती रहीं, और जहाँगीर तक पहुँचती रहीं। आखिर जहाँगीरका दिल पसीज गया। कहा जाता है कि किसी मुसलमान फकीरने सम्रा-

ट्से सिफारिश भी की। गुरु हरगोविन्द ग्वालियरकी कैदसे छोड़ दिये गये।

जहाँगीरका १६२८ में देहान्त हो गया। उसकी मृत्युके पीछे लाहौरके शासकोंके साथ गुरुकी अनबन हो गई। छोटी मोटी कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें गुरुका हाथ ऊँचा रहा। सिख लेखकोंका कहना है कि आपसके झगड़ेमें लाहौरके काज़ीको नीचा दिखानेके लिए गुरुने उसकी लड़कीको उड़ा लिया था, जिससे लड़ाई और भी अधिक जोशसे होने लगी। जब १६४५ में सतलुजके किनारे कीरतपुर नामके ग्राममें हरगोविन्दने शरीर छोड़ा, तब सिख-समुदाय लाहौरके शासकोंपर हावी हो चुका था। सल्तनतके ओहदेदारोंको यह मान लेना पड़ा था कि सिख-गुरु भी एक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

गुरु हरगोविन्दके पीछे हरराय और हरकिशन क्रमसे गद्दीपर बैठे। उनके समयमें सिवा इसके कोई वर्णनयोग्य घटना नहीं हुई कि हररायने दारा और औरंगज़ेबके राज्य-प्राप्तिके लिए किये गये घरू युद्धमें दाराका पक्ष लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि औरंगज़ेबने उसके बड़े लड़के हरकिशनको जमानतके तौरपर अपने कब्ज़ेमें रखा। हररायकी मृत्युपर औरंगज़ेबने हरकिशनको गुरुकी गद्दीपर बैठाया, परन्तु वह दिल्लीसे चल ही रहा था कि मौतने आ दबाया। १६६४ में उसका देहान्त हो गया।

हरकिशनके पीछे तेगबहादुर गुरुकी गद्दीपर बैठे। वह गुरु हरगोविन्दके सबसे छोटे लड़के थे, बड़े भाईके गद्दीपर बैठ जानेपर एकान्त कोनेमें दिन काट रहे थे। वहीं उन्हें निमन्त्रण पहुँचा। तेगबहादुरपर अपने पिताके लड़ाकू जीवनका पूरा असर था। उनकी तबीयत शान्त, परन्तु हृदय वीरतापूर्ण था। उस समय औरंगज़ेब अपने सब भाइयोंको ठिकाने लगाकर सिंहासनपर कब्ज़ा कर चुका था, और चारों ओर प्रभाव बढ़ानेकी चेष्टा कर रहा था। उसने रामरायको गुरुकी गद्दीके लिए चुना था। इधर

पन्थने तेग़बहादुरको अपनी किश्तीका माँझी बना लिया, इससे रुष्ट होकर औरंगज़ेबने गुरुको दिल्लीमें पेश होनेका हुक्म भेजा। दिल्लीमें पहुँचनेपर तेग़बहादुर कठिन भँवरमें फँस जाते, अगर सवाई महाराज जयसिंहकी सहायता न मिल जाती। जयसिंहने औरंगज़ेबके पास तेग़बहादुरकी सिफ़ारिश की और अपनी ज़मानतपर वह उन्हें आसामकी लड़ाईमें ले गया।

आसामसे लौटकर गुरु तेग़बहादुरने पंजाबमें डेरा जमाया। उस समय औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीति यौवनपर आ चुकी थी। मन्दिरोंके गिरने और हिन्दुओंके सरकारी नौकरियोंसे अलग किये जानेपर चारों ओर हाहाकार मच रहा था। गुरुके हृदयपर प्रजाके आर्त्तनादने अपना असर पैदा किया। उनका हृदय विद्रोही हो उठा। गुरुके हृदयमें उत्पन्न हुई चिनगारी सम्पूर्ण सिख-समुदायमें फैल गई, और सिख सिपाही जत्थे बाँधकर सल्तनतके दुश्मन बनकर घूमने लगे। सरकारी आदमियोंके घरोंमें लूट-मार करना, और सल्तनतको हानि पहुँचाना उनका दिन-रातका पेशा हो गया। कई इतिहास-लेखक यह बतलाते हैं कि उस समयके सिख किसान आम तौरपर लुटेरे हो गये थे। यह विचार निर्मूल है। उनकी लूट-मार उस विद्रोह भावका ही नतीजा थी, जो औरंगज़ेबके अत्याचारोंने सिखोंके हृदयोंमें उत्पन्न कर दिया था।

औरंगज़ेब तक सिख-विद्रोहके समाचार पहुँचनेमें देर न लगी। उसे यह भी बतलाया गया कि सिख-गुरु अपने आपको 'सच्चा पातशाह' नामसे पुकारते है। उस अविश्वासी बादशाहकी हृदय-ज्वाला भड़क उठी, और उसने तेग़बहादुरको दूसरी बार दिल्लीमें हाज़िर होनेका हुक्म भेजा। गुरुने समझ लिया कि यह हुक्म हाज़िरीका नहीं मौतका है। काश्मीरके हिन्दुओंको मुसलमान शासक बड़ी तेज़ीसे इस्लाममें लानेका यत्न कर रहे थे। गुरु तेग़बहादुरने उसके विरुद्ध यत्न किया था। इस अक्षन्तव्य अपराधके लिए दिल्ली पहुँचनेपर गुरुको जेलमें डाल दिया गया। सिख

दुनियामें यह अशुभ समाचार बिजलीकी तरह फैल गया। चारों ओरसे भक्तोंके गिरोहके गिरोह राजधानीकी ओर उमड़ने लगे। हिन्दुओंमें सामान्यतः ज़बर्दस्त खलबली मच गई।

औरंगज़ेबकी दृष्टिमें हिन्दुओं तथा सिखोंमें असन्तोषका उत्पन्न होना गुरु तेग़बहादुरके जुर्मको बढ़ानेवाला था। गुरुको मृत्यु-दण्डका हुक्म हुआ। जिस समय हत्याके लिए गुरुको दरबारमें बुलाया गया, उस समय औरंगज़ेबने उनसे कहा कि फकीर लोग मोजज़े किया करते हैं। तुम अपने आपको फकीर कहते हो। यदि तुम्हारा दावा सच है, तो इस समय कोई मोजज़ा करके दिखाओ। गुरु तेग़बहादुरने उत्तर दिया कि भक्तका काम परमात्माकी भक्ति करना है, फिर भी मैं एक काग़ज़पर लिखा हुआ मन्त्र अपने गलेसे बाँध लेता हूँ। इसके असरका तुम्हें जल्लादकी तलवार चल चुकनेके पीछे पता लगेगा। बादशाहका हुक्म पाकर जल्लादने तलवार उठाई और एक ही वारमें सिर धड़से अलग कर दिया। उस समय गलेमें बँधा हुआ काग़ज़ खोला गया। उसपर निम्न-लिखित शब्द लिखे हुए थे—

"सिर दिया, सर न दिया।"

अर्जुनदेवकी कुर्बानीने जिस शक्तिका बीज बोया था, तेग़ बहादुरकी कुर्बानीने उसे अंकुरित कर दिया। सिखोंका भक्त-सम्प्रदाय इन दो कुर्बानियोंके प्रभावसे राजनीतिक संघके रूपमें परिणत होने लगा। इस परिवर्तनके कारणोंका जो सरसरी निरी-क्षण हम ऊपर कर आये हैं, उससे विदित होगा कि मुसलमान शासकोंने अपने सलूकसे ही सिखोंको मित्र बनाये रखा, और अपने सलूकसे ही उन्हें अपना शत्रु बना लिया। बाबरके राज्य-कालमें नानकने एकेश्वरवादका उपदेश किया, हुमायूँ और अक-बरके समयमें सिख-सम्प्रदायका विस्तार हुआ, और जहाँगीर-तथा शाहजहाँके शासनमें उसका संगठन मज़बूत हुआ। जहाँगीर-के समय सिख-गुरुओंका सल्तनतके साथ पहला संघर्ष हुआ। उस समयसे ही गुरु नानकके भक्तिमय पन्थने राजनीतिकरूप

धारण करना आरम्भ कर दिया। ज्यों ज्यों मुग़ल-शाहोंकी नीति मज़हबी कट्टरपनके रंगमें अधिकाधिक रंगी जाने लगी, त्यों त्यों सिखोंकी राजनीतिक भावना बढ़ने लगी। औरंगज़ेबकी अनुदार-नीतिने सिखोंपर रंगका आखिरी ब्रश फेरकर उसे सफ़ेदसे लाल कर दिया, नानकका शान्त धर्म तेग़बहादुरकी कुर्बानीके पीछे एक प्रसिद्ध लड़ाकू पन्थ बन गया।

१३—पंजाबमें राज्यक्रान्ति

यदि यह सत्य है कि महापुरुष समयके निर्माता होते हैं, तो यह भी सत्य है कि समय महापुरुषोंको जन्म देता है। विशेष समय विशेष व्यक्तियोंको उत्पन्न कर देते हैं। जब भाग्यका घण्टा बजता है, तब मानों शून्यमेंसे शक्तिशाली व्यक्ति पैदा होकर भाग्य-निर्माणमें सहायक हो जाते हैं। महापुरुष उस शक्तिशाली शासक—दैव—के औज़ार हैं।

भारतके इतिहासमें वह समय भाग्यपूर्ण था। तख़्ता पलट रहा था। औरंगज़ेब उस समयका सबसे पहला और सबसे बड़ा निर्माता था। उसने एक विशेष समयको उत्पन्न कर दिया। जहाँगीर और शाहजहाँ केवल समयके परिणाम थे, उनका व्यक्तित्व इतना बड़ा नहीं था कि भाग्यके निर्माता बन सकते। औरंगज़ेब एक बलिष्ठ व्यक्ति था। उसने अपनी असाधारण शक्तियोंसे भारत-वर्षमें असाधारण परिस्थिति पैदा कर दी। असाधारण परिस्थितिमें मानों शून्य आकाशमेंसे असाधारण व्यक्ति उत्पन्न हो जाते हैं, जो भाग्यके समय-विभागको पूरा करनेमें औज़ारका काम देते हैं। गुरु गोविन्दसिंह भी उन असाधारण व्यक्तियोंमेंसे एक थे।

भूमिको खोदकर बीज डाल देने मात्रसे अन्न पैदा नहीं हो जाता। मौसमके बिना बीज महीनों तक तैयार भूमिमें पड़ा हुआ भी अंकुरित नहीं होगा, परन्तु मौसम आनेपर शायद भूमि अंकुरको ऊपर फेंकनेके लिए खोदनेकी भी प्रतीक्षा नहीं करती। बीज गिरा

और दो तीन रोज़में अंकुर निकल आया। वह शताब्दी महापुरुषोंके अंकुरित होनेके लिए फसलके समान सिद्ध हुई। औरंगज़ेब, शिवाजी, छत्रसाल, गोविन्दसिंह, अकेले भारतने इतने महापुरुष उसी शताब्दीमें पैदा कर दिये। इन महापुरुषोंने लगभग आधी शताब्दीमें देशका तख़्ता पलटकर रख दिया।

गुरु तेग़बहादुरकी मृत्युके समय गोविन्दसिंहकी आयु केवल १२ वर्षकी थी। उसके संरक्षकोंने यही उचित समझा कि सल्तनतकी बुरी नज़रसे उसे बचाया जाय। लगभग २० वर्ष तक वह युवा हिमालयकी तलैटीमें शस्त्र और शास्त्रकी शिक्षा पाता रहा। उसने भारतका प्राचीन इतिहास पढ़ा और मनन किया। शस्त्र-विद्यामें उसकी क्षत्रिय-कुमारोंकी भाँति शिक्षा हुई। तीर और तलवारमें वह खूब निपुण हो गया। इन २० वर्षोंतक गोविन्दसिंहके हृदयमें 'बदले'की भयानक ज्वाला जलती रही। पिताकी शहादतका चित्र उसके हृदयपटपर खिंच गया था। जिस हुकूमतने पिताकी हत्या की, उसे नष्ट करनेका सकल्प वीर-पुत्रके हृदयमें उत्पन्न हो, तो आश्चर्य ही क्या है? प्रतिहिंसाके भावने तेजस्वी गोविन्दकी प्रतिभारूपी धारको मानों शानपर बढ़ाकर पैना कर दिया था। आयु, अनुभव और शिक्षाके हथियारोंसे सन्नद्ध होकर भरे हुए यौवनमें जब गोविन्दसिंह नेता और गुरुके रूपमें संसारके सम्मुख प्रकट हुआ, उस समय वह सर्वांगसम्पन्न योद्धा बन चुका था।

गुरु गोविन्दसिंहने कार्यमय जीवनका प्रारम्भ एक बड़ी तपस्या और विशाल यज्ञके साथ किया। वे नैनामें जा बैठे, और जैसे कौरवोंके ध्वंसके लिए अर्जुनने हिमाचलमें घोर तप किया था, उसी प्रकार गोविन्दसिंहने भी किया। तपकी समाप्तिपर गुरुके हृदयमें प्रेरणा हुई कि धर्म-युद्धका प्रारम्भ एक विशाल यज्ञके साथ किया जाय। काशीसे एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर देवी दुर्गाका यज्ञ रचाया गया। यज्ञकी समाप्तिपर गुरुके हृदयमें भान हुआ कि देवी मानो मनुष्यकी बलिके लिए लपलपा रही है। गुरुने अपने

अनुयायियोंसे पूछा कि क्या उनमेंसे कोई धर्मप्रेमी ऐसा वीर है कि वह देवीके सम्मुख अपने सिरकी भेंट चढ़ा सके? प्रश्न सुनते ही पचीस वीर खड़े हो गये, और उन्होंने अपने सिर पेश कर दिये। गुरु उनमेंसे केवल एकको चुनकर अपने साथ तम्बूके अन्दर ले गये। थोड़ी देरमें लहूसे लाल तलवारको हाथमें लिये गुरु गोविन्दसिंह तम्बूमेंसे निकले, और एक और सिरकी कुर्बानी माँगी। फिर पचीस तीस वीर एक साथ उछल पड़े। गुरुने उनमेंसे भी एकको चुन लिया। इसी प्रकार गुरुने पाँच वार देवीके लिए बलि माँगी और पाँचों वार सन्तोषजनक उत्तर पाया। रक्त-रंजित खड्गको देखकर भक्तोंका हृदय कम्पित नहीं हुआ, अपि तु अधिकाधिक उत्साहित होता रहा। जब पाँच बलिदान हो चुके, तब तम्बूके द्वारमेंसे गुरुके पीछे पीछे वह पाँचों वीर आते हुए दिखाई दिये, जो देवीको भेंट देनेके लिए गये थे। उन वीरोंकी परीक्षाके साथ साथ सम्पूर्ण शिष्यवर्गकी भी परीक्षा हो गई, जिसमें सब परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो गये। गुरुने अपनी तलवार मनुष्योंके खूनसे नहीं, बकरीके खूनसे रंगी थी।

इस प्रकार शिष्योंकी परीक्षा लेकर, और उन्हें खरा सोना पाकर गुरु गोविन्दसिंहने अवस्थाके अनुसार सिख-धर्मके नये संस्कारका उपक्रम किया। गुरु नानकका सिख-धर्म भक्तोंका धर्म था। जब तक दिल्लीकी गद्दीपर समझदार शासक बैठते रहे, तब तक सिख-पन्थ भी भक्तिमार्ग तक परिमित रहा, परन्तु ज्यों ही दिल्लीके शासकोंके हृदयमें धर्मान्धताका विषवृक्ष अंकुरित हुआ, त्यों ही गुरु नानकके शान्तिप्रिय अनुयायियोंमें वीरधर्मका संचार होने लगा। जैसा जैसा अन्याचार बढ़ता गया, वैसे ही वैसे उसके प्रति प्रतिक्रिया भी गहरी होती गई। गुरु गोविन्दसिंहके समयमें वह प्रतिक्रिया अपने पूर्ण यौवनको प्राप्त कर रही थी।

गुरु गोविन्दसिंहने एक नवीन सिख-पन्थको जन्म दिया। गुरु-नानकका सिख धर्म ब्राह्मण था, तो गुरु गोविन्दसिंहका क्षत्रिय था। इस नये धर्मका नाम 'खालसा' अर्थात् 'ख़ालिस', 'विशुद्ध'

रखा गया। खालसामें प्रवेश करनेके लिए गोविन्दसिंहने 'पहुल' की प्रथा जारी की। पहुलकी प्रथाके अनुसार प्रत्येक शिष्यको खालसामें प्रवेश करते हुए गुरुके हाथसे मीठा पानी स्वीकार करना पड़ता था। गुरु उसे शिष्यके सिरपर छिड़क देता था। गुरुने पाँच प्यारोंको प्रारम्भमें पहुल दिया। इन पाँच प्यारोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र यह तीनों वर्ण सम्मिलित थे। पाँचोंको पहुल देकर गुरुने उनके हाथसे स्वयं भी दीक्षा ग्रहण की। किसी भी जातिका शिष्य हो, पहुल लेकर वह सोलह आने सिख बन जाता था। खालसामें प्रवेश कर लेनेपर सब व्यक्ति एक समान थे। उनमें कोई भेद नहीं समझा जाता था। इस प्रकार गोविन्द-सिंहके नये संगठनने सिखोंमेंसे ऊँच नीचके भावको बिलकुल निकाल दिया।

खालसामें प्रवेश कर लेनेपर प्रत्येक सिखके लिए निम्नलिखित चिह्नोंको धारण करना आवश्यक कर दिया गया—

(१) केश (२) खांडा या कृपाण (३) कंघा (४) कड़ा और कच्छ।

यह पाँचों वस्तुयें क्षात्रिय-धर्मका चिह्न थीं। इनको धारण करने-वाला सिख 'सिंह' शब्दका अधिकारी हो जाता था। गुरुने अपना नाम गोविन्ददाससे गोविन्दसिंह करनेके साथ ही साथ अपने शिष्योंको भी सिंह उपपदसे विभूषित किया। उस समयसे सब सिखोंका नाम सिंह शब्दके साथ समाप्त होता है। सिख एक दूसरेका मिलनेके समय 'वाह गुरुजीका खालसा' इन शब्दोंसे सत्कार करते थे। गुरु नानकसे लेकर अबतकके गुरु-वाक्योंका संग्रह करके और उनके साथ अपनी हिन्दी कविता-ओंको भी जोड़कर गुरु गोविन्दसिंहने ग्रन्थ साहिबको उसका वर्त-मानरूप प्रदान किया, और उसके सामने सिर झुकाना, उसका पाठ करना, प्रत्येक सिखके लिए आवश्यक रखा गया।

गुरु गोविन्दसिंहकी कल्पना-शक्ति बहुत तीव्र थी, और उनकी नेतृत्वशक्ति बहुत उत्कृष्ट थी। जहाँ उपर्युक्त परिवर्तनोंने सिखों-

के भक्त-सम्प्रदायको एक लड़ाकू जत्थेके रूपमें परिणत कर दिया, वहाँ साथ ही उनकी अपनी अद्भुत नेतृत्वशक्तिने सिख-समुदायको उत्साहकी प्रचण्ड अग्निसे उद्दीप्त कर दिया। गुरुकी ध्वजाके नीचे पंजाबके बाँके वीर मुगल-साम्राज्यके अभेद्य दुर्गसे टक्कर खानेको उद्यत हो गये।

इधर औरंगज़ेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिने देशभरके हिन्दुओंमें एक नई जागृति उत्पन्न कर दी थी। चोट खाये हुए अजगरकी तरह सोई हुई हिन्दू जाति झुँझलाकर अँगड़ाई ले रही थी। गोविन्दसिंहने समयकी भावनासे लाभ उठाया और खालसाकी शक्तियोंको भक्ति-मार्गसे खेंचकर राज-मार्गपर लगा दिया। राज्य-शक्तिके साथ सिखोंके सुदीर्घ संघर्षका प्रारम्भ एक छोटीसी लड़ाईसे हुआ, जो एक हिन्दू राजाके साथ ही लड़ी गई थी। नाहनके राजाको गुरुसे शिकायत थी। उसने अड़ोस पड़ोसके हिन्दू और पठान सरदारोंकी सहायतासे गोविन्दके साथ लड़ाई करनेकी ठानी। कई छोटे मोटे संग्राम हुए, जिनके अन्तमें गुरुके शत्रुओंको नीचा देखना पड़ा। जम्मूसे गढ़वालके श्रीनगर तकके राजाओंके साथ गुरुका इसी प्रकार बार बार संघर्ष होता रहा, जिससे खालसाको ही अन्तिम सफलता होती रही।

उन सफलताओंने बादशाह औरंगज़ेबके चित्तमें चंचलता पैदा कर दी। बरसाती कीड़ोंकी भाँति विद्रोही लोग उस समय ज़मीनके बिलोंमेंसे पैदा हो रहे थे। औरंगज़ेबका सन्देहशील हृदय गुरु गोविन्दसिंहकी सफलताओंका समाचार सुनकर कैसे शान्त रह सकता था? दिल्लीसे लाहौरके मुसलमान गवर्नरको हुक्म हुआ कि वह गोविन्दसिंहका दमन करनेके लिए रवाना हो। गुरुको जब दुश्मनके बढ़नेका समाचार मिला, तो उसने आनन्दपुर नामक ग्राममें आश्रय लिया।

आनन्दपुरमें दुश्मनोंने कई धावे किये। पहाड़ी राजा मुसलमान सिपहसालारोंकी मददसे गुरुको परास्त करनेके लिए आये। आनन्दपुर पाँच बार घेरा गया। गुरुने कई बार शत्रुओंको परास्त

किया, परन्तु अन्तमें अधिक संख्याके सामनेसे कदम पीछेकी ओर हटाना पड़ा। आनन्दपुरको छोड़कर गुरु कीरतपुर, निर्मोह और रोपड़ होते हुए चमकौरमें पहुँचे। शत्रुओंने वहाँ भी पीछा किया। चमकौर चारों ओरसे घिर गया। सिख-नेताके साथ केवल ४० सिपाही शेष थे। गुरुने हिम्मत नहीं हारी। जहाँ तक हो सका, सामना किया, परन्तु दुश्मनोंका दबाव बढ़ता गया। गुरुके दो बेटे उनकी आँखोंके सामने धराशायी हुए। ऐसी दशामें गुरुने चमकौरसे निकल जानेका निश्चय किया, और अन्धेरी रातमें गुप्त मार्गसे कुछ मुसलमानोंकी सहायता पाकर निकल भागे। इसके पश्चात् कई वर्षों तक गुरुने भटिण्डाके जंगलोंमें दौरा लगाया, और अपने आपको दुश्मनोंकी नज़रोंसे बचाये रखा। शिष्योंका एक बड़ा समूह उनके चारों ओर इकट्ठा हो गया था। इन्ही दिनों गुरुके दो बेटे सरहिन्दमें मुसलमान सेनापतिके हाथ आ गये, जिन्हें उसने जीते जी दीवारमें चुनवा दिया।

गुरुकी कुर्बानियोंका प्याला इस समय लबालब भर चुका था। ज्यों ज्यों मुसलमानोंकी ओरसे उनपर और खालसापर अत्याचार हुए, त्यों त्यों गुरु नानकके ईश्वरभक्त शिष्योंमें सिपाहियाना भाव पैदा होते गये। भक्तोंकी श्रेणी एक कट्टर लड़ाकुओंकी सेना बनती गई। उन्हीं दिनों बादशाह औरंगज़ेबने गुरु गोविन्दसिंहको अपने सामने हाजिर होनेके लिए बुला भेजा। गुरुने एक करारा जवाब देते हुए अपनी मुसीबतों, और मुसलमान शासकोंके अत्याचारोंका वर्णन करते हुए शाही दरबारमें जानेसे निषेध कर दिया।

उत्तरीय भारतमें स्थितिको असह्य देखकर गुरु गोविन्दसिंहने अपने शिष्योंके साथ दक्षिणकी यात्राका संकल्प किया, और कई महीने यात्रामें गुज़ारे, परन्तु इन्ही दिनों दक्षिणमें औरंगज़ेबकी मृत्यु हो गई। मार्गके सबसे बड़े कण्टकको निकला जानकर गुरु उत्तरीय भारतमें लौट आये, और मुग़ल-राजपुत्रोंके सिंहासन-निमित्त संग्राममें उन्होंने बहादुरशाहकी सहायता की। बहादुरशाहके गद्दीपर बैठ जानेपर गुरु उसके मित्र बन गये, और शाही सेनामें

भर्ती हो गये। लगभग एक वर्ष तक मुग़ल-सेनाके साथ दक्षिणमें रहनेके पीछे एक पठानके हाथों उनका वध हो गया। कहा जाता है कि घोड़ेके एक पठान व्यापारीको, उसकी उद्दंडतासे क्रुद्ध होकर गुरुने तलवारके घाट उतार दिया था। पठानकी सन्तान उस चोटको न भूली, और उस व्यापारीके पुत्रोंने अकेलेमें पाकर सोये हुए गुरुको छुरेका शिकार बनाया। छुरेकी चोट खाकर गुरुने आँखें खोलीं, तो उन पठानोंको सिखोंके पंजेमें कसा हुआ पाया। कारण पूछनेपर हत्यारोंने अपने पिताकी हत्याका किस्सा सुनाते हुए कहा कि हमने उसका बदला लिया है। गुरुने उनकी बातोंको शान्त भावसे सुनकर उनके भावकी सराहना करते हुए अपने शिष्योंको आज्ञा दी कि हत्यारोंको कोई दण्ड दिये बिना छोड़ दो। आज्ञाका पालन किया गया। इस प्रकार अपने सब पुत्रोंको आँखोंके सामने कुर्बान कराकर गुरु गोविन्दसिंहने अन्तमें अपने आपको भी बलि-वेदीपर चढ़ा दिया।

औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीतिने एक ईश्वरभक्तोंके समाजको योद्धाओंकी श्रेणीके रूपमें परिणत कर दिया। सिखोंकी जमात, इस समयसे मुग़ल-साम्राज्यकी कट्टर दुश्मन बन गई। गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, और गुरु गोविन्दसिंहकी कुर्बानियोंने पंजाबको मुस्लिम-राज्यका एक विद्रोही अंग बना दिया।

१४—राजपूतोंसे टक्कर

१—प्रारम्भ

मित्रोंको दुश्मन बना लेना बादशाह औरंगज़ेबके बायें हाथका खेल था। इस्लामी सल्तनत कायम करनेकी धुनने उसे अन्धा कर दिया था। वह हरेक कार्यके सही परिणामको नहीं देख सकता था। जहाँ एक शत्रु बननेकी भी सम्भावना न हो, वहाँ सैकड़ों शत्रु बना लेनेका यही कारण था। मारवाड़का

राज्य मुसलमान बादशाहोंका पुराना दोस्त था। जोधपुर-नरेश चिरकालसे किसी न किसी मुसलमान बादशाह या मुसलमान-राजकुमारका मित्र रहा। राजा जसवन्तसिंहने अपने जीवनमें कई पक्ष बदले—कभी दारा शिकोहकी ओरसे लड़ा तो कभी औरंगज़ेबके समर्थनमें तलवार उठाई। पक्षमें परिवर्तन आ गया हो, परन्तु मुसलमान शाहका साथ किसी समय नहीं छोड़ा। फिर जबसे औरंगज़ेब भारतका निर्द्वन्द्व शासक बन गया, तबसे तो महाराजा जसवन्तसिंह निरन्तर उसका पक्षपाती रहा। मृत्युके समय महाराजा जसवन्तसिंह अपनी मातृभूमि मारवाड़से कहीं दूर खैबरघाटीमें मुगल-साम्राज्यकी सेवा कर रहा था। वहाँका जलवायु राजपूतोंके अनुकूल न पड़ा। बहुतसे बहादुर अपने महाराजके साथ ही परलोकके यात्री बन गये। औरंगज़ेबकी सेवा करते हुए मारवाड़-नरेशने अपने प्राण दे दिये।

औरंगज़ेबने महाराजकी सेवाओंका जो इनाम दिया, वह शासकोंकी कृतघ्नताके इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है। मारवाड़पर चिरकालसे मुग़ल बादशाहोंके दाँत थे। इसके कई कारण थे। मारवाड़ राजपूतानेकी मुख्य रियासत थी। दिल्लीसे अहमदाबाद तकका छोटेसे छोटा व्यापारिक मार्ग मारवाड़मेंसे होकर गुज़रता था। जोधपुरके राठौर योद्धा बहादुरीके नमूने थे। उन्हें सल्तनतका अवयव बनाना औरंगज़ेबको बहुत लाभदायक प्रतीत होता था। महाराज जसवन्तसिंहकी मृत्युका समाचार पहुँचनेपर औरंगज़ेबने समझा कि इस सुअवसरसे लाभ उठाना चाहिए।

महाराज जसवन्तसिंह मृत्युके समय निःसन्तान थे। विरासतके नियमके अनुसार गद्दीका अधिकार महाराजके भाई अमरसिंहके पुत्र इन्द्रसिंहको प्राप्त होता था, परन्तु प्रतीत होता है कि औरंगज़ेबने मारवाड़को सल्तनतका अन्तरंग हिस्सा बना लेनेका निश्चय चिरकालसे कर रखा था। जसवन्तसिंहकी मृत्युका समाचार मिलते ही औरंगज़ेबने मारवाड़के लिए मुसलमान फौजदार, किले-

दार, कोतवाल, अमीन आदि नियत करने प्रारम्भ कर दिये। १० दिसम्बर १६७८ के दिन महाराज जसवन्तसिंहकी मृत्यु हुई, और और ९ जनवरी १६७९ को बादशाहने अजमेरकी ओर प्रस्थान किया। इस प्रस्थानका उद्देश्य मारवाड़के राजपूतोंको त्रासमें लाकर रियासतपर पूरा कब्ज़ा कर लेना था। इस लक्ष्यकी पूर्तिमें औरंगज़ेबको कोई कठिनता न हुई। जसवन्तसिंहके अनुभवी और विश्वासी सरदार अफगानिस्थानमें फँसे हुए थे। जो लोग पीछे रह गये, वह अशक्त थे। ख़ान-ए-जहाँ बहादुरको बादशाहने हुक्म दिया कि रियासतपर क़ब्ज़ा कर ले, सब मन्दिरोंको तोड़ फोड़ डाले, और महाराजकी सम्पत्तिपर अधिकार जमा ले। उस जोशीले मुसलमानने बड़ी मुस्तैदीसे शाही हुक्मकी तामील की। बहुत थोड़े समयमें सारा मारवाड़ बादशाहके कदमोंमें पड़ा हुआ दिखाई देने लगा। सम्पूर्ण रियासतको सर करनेमें बादशाहको ४ मासके लगभग समय लगा। अप्रैलमें मारवाड़को मुसलमान अफसरोंके सुपुर्द करके बादशाह दिल्लीको लौट गया।

देखनेमें मारवाड़ फतह हो गया, परन्तु पंजाबमें वह नटराज नया अभिनय तैयार कर रहा था। महाराज जसवन्तसिंहका परिवार अफगानिस्तानसे लौटकर लाहौर आया। फरवरी मासमें महाराजकी दो रानियोंने पुत्रोंको जन्म दिया। गद्दीका जो अधिकार अबतक ख़ाली प्रतीत होता था, उसके दो दावेदार आ गये, परन्तु बादशाहके लिए ऐसी छोटीसी घटना क्या कीमत रखती थी? वह अपने मार्गपर बेरोक-टोक चलता गया। मई मासमें जोधपुरसे तोड़े हुए मन्दिरोंकी मूर्तियोंके टुकड़े कई बैलगाड़ियोंमें भरे हुए दिल्ली पहुँचे, तो उन्हें बड़ी धूमधामसे किले और मसजिदकी सीढ़ियोंके नीचे दबाया गया, ताकि मुसलमानोंके पैरोंके नीचे आकर वह पाक हो जायँ।

महाराज जसवन्तसिंहका जवान लड़का जगत्सिंह अफगानिस्तानमें ही मर गया था। लाहोरमें जो दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनमेंसे भी एक कुछ सप्ताह पीछे मृत्युकी भेंट चढ़ गया। अब केवल

एक पुत्र शेष था, जिसका नाम अजितसिंह रखा गया। मारवाड़के सरदारोंने दिल्ली पहुँचकर बादशाहसे प्रार्थना की कि वह अजितसिंहको गद्दीका उचित अधिकारी करार दे, और उसीके नामपर मारवाड़का शासन चलाया जाय। बादशाहने इस प्रार्थनाको अस्वीकार करते हुए उनके सामने एक दूसरा प्रस्ताव रखा। बादशाहका प्रस्ताव था कि अजितसिंहको औरंगजेबके हवाले कर दिया जाय, वह जिस तरह चाहे उसका पालन पोषण करे। सरदारोंको यह सन्देह था कि राजकुमारको बादशाहके हाथमें दे देनेका दोमेंसे एक परिणाम होगा। या तो राजकुमार जानसे मारा जायगा, या जबर्दस्ती मुसलमान बना दिया जायगा। राजपूत और रानियोंमेंसे कोई भी राजकुमारको ऐसे ख़तरेमें नहीं डालना चाहता था। उधर औरंगज़ेबका आग्रह बढ़ रहा था। वह अजितसिंहको स्वीकार करनेसे पूर्व अपने क़ब्ज़ेमें लेना चाहता था। इस रस्साकशीमें रानियोंका पक्ष देखनेमें निर्बल था। एक ओर हिन्दुस्तानका शाहन्शाह—दूसरी ओर निर्बल विधवायें और उनके कुछ सेवक। दोनोंका क्या मुकाबिला हो सकता था, परन्तु उन राजपूतोंकी छोटीसी सेनामें एक ऐसा असाधारण पुरुष था जिसने केवल अपनी स्वामिभक्ति, वीरता और दृढ़ताके चमत्कारसे सारे हिन्दुस्तानके शाहका मान मर्दन कर दिया। एक प्रतिभासम्पन्न वीर साँसारिक शक्तियोंको कैसे परास्त कर सकता है, यदि इसका दृष्टान्त देखना हो तो वीर दुर्गादासके चरित्रको पढ़ो। यदि यह सत्य है कि संसार भरमें विशुद्ध वीरताका आदर्श राजपूतोंपर समाप्त है, तो यह भी सत्य है कि राजपूती वीरताका आदर्श राठौर दुर्गादासपर समाप्त है। इस वीरका सिक्का राजपूताने भरने माना है। उस दिनसे आज तक राजपूतानेमें माताओंके लिए यही एक उपदेश दिया जाता है कि—

'ऐ माता पूत ऐसा जन जैसा दुर्गादास'

दुर्गादास महाराज जसवन्तसिंहके वज़ीर आसकरनका पुत्र था। वह अपने स्वामीके साथ अफगानिस्तान गया था। इस

समय रानियों और राजकुमारोंकी रक्षाका बोझ उसीपर था। औरंगज़ेबने दुर्गादासको अपने दरबारमें कई बार बुलाया, और राजकुमारको लानेके लिए कहा। दुर्गादास यह कहकर टालता रहा कि बच्चा अभी बहुत छोटा है, कुछ बड़ा हो जायगा, तो ले आऊँगा। बादशाह पहले तो चुप होता रहा, परन्तु शीघ्र ही उसके दिलमें सन्देह पैदा होने लगा। उसने राजकुमारको बलात्कारसे अपने क़ब्ज़ेमें लेनेका निश्चय किया। १५ जुलाईको औरंगज़ेबने शहर-कोतवालको बहुत सी सेनाके साथ यह हुक्म देकर भेजा कि रानी और बच्चेको गिरिफ्तार करके किलेमें क़ैद कर दिया जाय।

कोतवाल सिपाहियोंको लेकर राजपूतोंके डेरेपर पहुँचा, तो उन लोगोंको तैयार पाया। राठौरोंने राजकुमारकी रक्षापर आत्म-समर्पणका निश्चय कर लिया था। दोनों ओरसे गोली चलने लगी। कोतवालने जब रंग-ढंग बदले हुए देखे, तो उसने भी आक्रमण करके बच्चेको छीन लेनेका निश्चय कर लिया। उधर राजपूत भी कसम खा चुके थे। जोधपुरका भाटी सरदार रघुनाथ, एक सौ मर मिटनेवाले बाँके बहादुरोंको साथ लेकर पहले मन्दिरमें गया, देवतासे आशीर्वाद प्राप्त किया, फिर राजपूतोंकी प्यारी अफीमकी एक एक गोली गलेके नीचे उतारी, और हाथमें भाला और आँखोंमें मृत्युको लेकर कोतवालकी सेनापर टूट पड़ा। थोड़ी देरके लिए इस बिजलीकी चोटने मुसलमान सिपाहियोंको हिला दिया। उनके पाँव डगमगा गये। इस गड़बड़से लाभ उठाकर दुर्गादासने राजकुमारको मुसलमान सिपाहियोंके घेरेसे बाहिर निकाल लिया। पुरुष-वेषमें रानियाँ भी उसके साथ थीं। यह मण्डली वायु-वेगसे घोड़ोंको सरपट भगाती हुई मारवाड़के रास्तेपर रवाना हुई।

रघुनाथ भाटीने गज़बकी लड़ाई लड़ी, एक एक राजपूतने बीसियों दुश्मनोंपर हाथ साफ किये। दिल्लीके बाज़ारोंमें लहूकी धारा बह निकली, परन्तु वह छोटासा जत्था कबतक लड़ सकता था। भाटी सरदार और उसके ७० साथी वीरताका चमत्कार दिखाकर दिल्लीके बाज़ारोंमें धराशायी हुए। वह मर गये, परन्तु इतने समयमें

दुर्गादास रानियों और राजकुमारको लेकर नौ मील दूर निकल गया था। मुसलमान सेना शिकारको हाथसे निकला देखकर वेग-से उस ओर झपटी, परन्तु अभी राजपूतोंका अन्त नहीं हुआ था। रनछोड़दास जोधाके मुट्ठी भर राजपूतोंने फिर मुग़ल-सेनाका रास्ता रोक दिया। जो मरनेपर तुला बैठा हो, वह आसानीसे नहीं मरा करता। जोधा सरदारको रास्तेसे हटानेमें मुग़ल-सेनाको घण्टों लग गये। जबतक एक भी राजपूत जिन्दा रहा, मुसलमान सिपाही दुर्गादासका पीछा न कर सकें। आखिर सब स्वामिभक्त अपने स्वामीकी रक्षामें स्वाहा हो गये।

इस दूसरे विघ्नके दूर हो जानेपर मुसलमान सेनाके घोड़े राज-पूतोंकी लाशोंपर पाँव रखते हुए आगे बढ़े। परन्तु वहाँ ५० राठौर वीरोंके साथ स्वयं दुर्गादासको मौजूद पाया। दुर्गादासने समय पाकर रानी और राजकुमारको आगे चला दिया था, और वह स्वयं रास्ता रोककर खड़ा हो गया था। यह संघर्ष बड़ा भयानक था। राजपूत योद्धा अपनी औरतोंको अग्निदेवके समर्पण करके आये थे। उधर मुसलमानोंको बादशाहका सख्त हुक्म था कि राजकुमारको छीन कर लायें। दोनों जी तोड़कर लड़े। मुसलमान सिपाही संख्या-में बहुत अधिक थे, परन्तु एक तो पहली दो लड़ाइयोंकी थकान, फिर राजपूतोंकी असाधारण वीरता, उनकी हिम्मत टूट गई। दुर्गादासके ४३ वीर काम आ चुके थे। केवल ७ साथियोंकी तल-वारें चमक रही थीं। जब 'मरूँ या करूँ' की धारणासे वह आठ तलवारें दुश्मनकी पंक्तिको चीरती हुई आगे बढ़ीं, तो किसीकी हिम्मत न हुई कि उन्हें रोके। दुर्गादास और उसके ७ वीर मुगल-सेनाको पीटकर पार हो गये, और कोई उनका पीछा न कर सका। वीर दुर्गादास बीसों घाव शरीरमें लेकर शीघ्र ही अपने स्वामीसे जा मिला। इस प्रकार दुश्मनकी छातियोंपर अपनी अमर वीरता और स्वामिभक्तिकी कहानी लिखकर राजपूतोंने राजकुमार अजित-सिंहकी रक्षा कर ली।

१५–राजपूतोंसे टक्कर

२–युद्ध

इस प्रकार कई राज्योंकी निरन्तर शान्तिके पीछे औरंगज़ेबकी अनुदार नीतिके कारण मुगल-साम्राज्यके साथ राजपूतोंका घोर संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अकबरकी नीतिने राजपूतोंको साम्राज्यका दोस्त और आधारस्तम्भ बना लिया था। जहाँगीर और शाहजहाँने न्यूनाधिक सफलताके साथ उसी नीतिको जारी रखा। इन तीन उदार और दूरदर्शी शासकोंने जिस साम्राज्य-भवनकी नीवको बहादुर राजपूतोंके रुधिरसे मज़बूत बनाया था, औरंगज़ेबकी अनुदार नीति उसे खोखला करने लगी। देशके कोने कोनेमें भुनगोंकी तरह साम्राज्यके शत्रु पैदा हो रहे थे। इस संकटके कालमें राजपूती तलवार साम्राज्यकी पहरेदार बन सकती थी, परन्तु यह बादशाहको मंजूर नहीं था। वह तो एकदम कुफ्रका सिर तोड़नेपर तुला बैठा था। जोधपुरके राजकुमारकी दुर्घटनाने सुलगती हुई विद्रोहाग्निमें घीका काम दिया। राजपूतानेके जंगलोंमें विद्रोहकी दावाग्नि प्रचण्ड वेगसे जलने लगी।

दुर्गादासने राजकुमारको तो आबूकी कन्दराओंमें छुपी हुई एक सन्तकी कुटियामें रख दिया, और उसके पालन-पोषणका उचित प्रबन्ध करके स्वयं मारवाड़में स्वाधीनता-युद्धका शंख बजा दिया। राजकुमारके इस प्रकार हाथसे निकल जाने और दुर्गादासके मारवाड़में पहुँच जानेसे बादशाह एकदम झुँझला उठा। जोधपुरके फौजदार ताहिरख़ाँको इस अपराधपर अधिकारच्युत कर दिया गया कि वह दुर्गादासको देशमें आनेसे न रोक सका। सर बुलन्दख़ाँके सेनापतित्वमें एक विशाल सेना मारवाड़-विजयके लिए रवाना की गई, और स्वयं बादशाहने दूसरी बार शत्रुके बलको तोड़नेके लिए अजमेरके लिए प्रस्थान किया।

बादशाहने मारवाड़को सर करनेके लिए दूर दूरके प्रान्तोंसे शक्ति एकत्र की। सिपाही और धनकी नदियाँ बहा दीं। मुगल-सेना बाढ़की तरह बढ़कर जोधपुरपर चढ़ चली। कई मोर्चोंपर राठौरोंने उसे रोकनेका यत्न किया, प्राणोंकी ममता छोड़कर लड़े, एक एक घाटीपर सैकड़ों राजपूत न्योछावर हो गये, परन्तु उस सिन्धुके वेगको कौन रोक सकता था। राजकुमार अकबरके सेनापतित्वमें मुगल-सेना सारे मारवाड़पर छा गई। जोधपुर, डीडवाना, रोहित आदि बड़े शहर बिल्कुल तबाह कर दिये गये। किले तोड़ दिये गये, मन्दिरों और मूर्तियोंको चकनाचूर कर दिया गया, और यथाशक्ति यह यत्न किया गया कि हिन्दू शासनका कोई अंश भी शेष न रह जाय। रियासतका सम्पूर्ण शासन बादशाहने अपने हाथोंमें ले लिया। बादशाहने अगस्तमें अजमेरमें डेरा जमाया था, नवम्बर समाप्त होनेसे पूर्व सारा मारवाड़ प्रत्यक्ष रूपमें उसके चरणोंमें लोट रहा था। चर्म-चक्षुओंसे बादशाहने देखा कि राजपूतानेके सिरताज मारवाड़ने मुगलोंकी अधीनता स्वीकार कर ली है।

परन्तु सच यह है कि संसारके जय-पराजय केवल सेना और धनकी राशियोंकी गणनापर अवलम्बित नहीं हैं। जनताके हृदयपर केवल लाठी या तलवार ही शासन नहीं कर सकती। एक वस्तु है, जिसका नाम 'भाव' है, वह 'भाव' ही हृदयोंद्वारा संसारका शासन करता है। औरंगज़ेबके बनते हुए कामके रास्तेमें वही 'भाव' दीवार बनकर खड़ा हो गया। मेवाड़के महाराणा राजसिंहने पड़ोसी रियासतका मर्दन होता देखकर उसकी स्वाधीनताके लिए लड़ जानेका निश्चय किया। सीसोदियाका रक्त राठौरकी आपत्तिको देखकर उबल पड़ा। राजसिंहके सामने अपना भविष्य स्पष्ट रूपसे नाच रहा था। मारवाड़के पतनके पीछे मेवाड़की स्वाधीन सत्ता असम्भव थी। दोनों रियासतोंकी सीमायें दूरतक मिलती चली गई हैं। मेवाड़के महाराणाओंने जिन पर्वतोंकी संरक्षामें रहकर अपनी स्वाधीनताको बचाया था, मारवाड़के परा-

धीन होते ही वह पर्वत दुश्मनकी चोटके लिए खुल जाते। इधर हिन्दूधर्मपर घोर संकट आ रहा था। पड़ोसियोंमें जो एक स्वाभाविक प्रतिस्पर्धा होती है, उसे धर्म और आत्मरक्षाके 'भाव' ने दबा दिया, और मेवाड़के महाराणाने मारवाड़की स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपनी तलवार म्यानसे बाहिर निकाल ली।

अब वह युद्ध मारवाड़ और दिल्लीका न रहा। उसने मुग़लों और राजपूतोंकी अन्तिम बल-परीक्षाका रूप धारण कर लिया। मेवाड़ और मारवाड़की—सीसोदिया और राठौरकी—सम्मिलित शक्तिसे मुसलमान शासकोंका संघर्ष बहुत कम हुआ था। महाराणा प्रतापसिंहके पीछे दिल्ली और मेवाड़में एक प्रकारसे हथियारबन्द सुलहका सम्बन्ध रहा। राणा स्वयं कभी मुग़ल-दरबारमें हाज़िर नहीं हुए, परन्तु प्रतिनिधियोंद्वारा दोनों राज्योंका लेन-देन जारी रहा। राणाकी ओरसे भेंट जाती रही, और बादशाहकी ओरसे ख़िलत आती रही। यदि उस समय औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीतिने प्रत्येक हिन्दू शासकके हृदयमें अविश्वासका बीज न बो दिया होता, तो शायद राणाको युद्धमें कूदनेकी ज़रूरत न पड़ती, परन्तु उस समय तो देशका वातावरण ही बिगड़ रहा था। मन्दिरोंके ध्वंस, जज़िया कर और हिन्दू त्योहारोंके प्रतिरोधसे जो अशान्ति फैली थी, उसको महाराजा जसवन्तसिंहके राजकुमारवाली दुर्घटनाने अधिक गम्भीर कर दिया। परिणाम यह हुआ कि मुग़ल-सम्राटको राजपूतोंकी दो प्रबलतम शक्तियोंके विद्रोहका सामना करना पड़ा।

औरंगज़ेबकी सावधानता गज़बकी थी। वह शत्रुपर पहली चोट करनेमें चूकनेवाला नहीं था। योरपके तोपचियोंद्वारा संचालित तोपख़ानेसे सुरक्षित मुग़ल-सेनाने अजमेरसे ३० नवम्बर १६७९ को उदयपुर-विजयके लिए प्रस्थान किया। वह विशाल सेना नदीकी बाढ़की भाँति मेवाड़के मैदानोंपर छाती हुई आगे बढ़ने लगी। राजपूतोंने कहींपर रास्ता नहीं रोका। घाटीपर घाटी और किलेपर किला औरंगज़ेबके हाथ पड़ता गया, यहाँ तक

कि रियासतकी राजधानी उदयपुरमें जब मुगल-सेना पहुँची, तो वहाँके प्रसिद्ध और सुन्दर मन्दिरकी रक्षाके लिए २० से अधिक योद्धा उपस्थित नहीं थे। वह २० योद्धा मन्दिरके द्वारपर अड़ गये, और अपनेसे कई गुना दुश्मनोंको मारकर कुर्बान हो गये। उदयपुरके आसपासके १७३ मन्दिर तोड़ डाले गये। उनकी मूर्तियोंके टुकड़े बैल-गाड़ियोंमें लादकर दिल्लीकी मसज़िदोंकी सीढ़ियोंके नीचे दबानेके लिए रवाना कर दिये गये। राजधानीपर मुग़ल-सेनापति हसन अलीख़ाँका क़ब्ज़ा हो गया।

मैदानको छोड़कर राजपूत पहाड़ोंमें चले गये थे। वह प्रकृतिके दिये हुए उसी किलेमें जा बैठे थे, जिसने राणा प्रतापकी रक्षा की थी। हसनअलीख़ाँने पहाड़ोंमें राणाका पीछा करना चाहा। उदयपुर सर हो चुका था, चित्तौड़ भी मुगलोंके हाथमें आ गया। राणाकी सेना रियासतके सब हिस्सोंसे इकट्ठी होकर केवल अरावलीकी चोटियोंपर केन्द्रित हो गई थी। शेष सारा राज्य औरंगज़ेबके हाथमें आ गया था। स्वयं बादशाहने उदयपुरमें पहुँचकर मेवाड़-विजयका उत्सव धूमधामसे मनाया। मेवाड़के आसपासके १७३ मन्दिरोंका ध्वंस करके बादशाहके हृदयने यह गवाही दे दी कि मेवाड़में दीनकी फतेह हो गई। राजकुमार अकबरको रियासतके शासन और रक्षाका कार्य सौंपकर औरंगज़ेब उदयपुरसे अजमेरके लिए रवाना हो गया। इस प्रकार थोड़ेसे समयमें जोधपुर और उदयपुरके मैदान फतेह हो गये। दोनों रियासतोंके मध्यमें जो अरावली नामकी पर्वतमाला है, केवल वह राजपूतोंके क़ब्ज़ेमें रह गई। उनपर अधिकार करना शेष था। औरंगज़ेबने अनुभवी और योग्य सेनापतियोंको एकत्र करके अरावली-विजयका उपक्रम किया।

परन्तु अरावलीकी चोटियाँ लोहेके चनोंसे भी कठोर साबित हुईं। उन्हें आसानीसे न चबाया जा सका। उस समय युद्ध-क्षेत्रकी हालत यह थी कि मुगल-सेना उदयपुर और जोधपुरपर क़ब्ज़ा किये हुए थी। मेवाड़ और मारवाड़के मैदान शाही सेनाओंके

हाथोंमें थे। उन दोनों मैदानोंके बीचमें अरावलीकी चोटियाँ थीं। उन चोटियोंपर राजपूतोंका कब्ज़ा था। राजपूतोंको परास्त करनेके लिए मुग़ल-सेनाओंका अरावलीपर कब्ज़ा आवश्यक था। औरंगज़ेबका विचार यह था कि दोनों ओरसे घेरकर पहाड़ोंपर धावा किया जाय, जिससे राजपूतोंको निकलनेका मार्ग तक न मिले, परन्तु यह कार्य था बड़ा दुष्कर। मेवाड़की सेनाओंका मारवाड़की सेनाओंसे यदि कोई सम्बन्ध हो सकता था, तो उसके लिए पहाड़ोंका लम्बा घेरा डालना पड़ता था, जिसमें कई सप्ताह व्यतीत हो जाते थे। वह राजपूतोंका घर था। वह उसके कोने कोनेकी जानकारी रखते थे। मुगल-सेना उन रूखे और उजाड़ जंगलोंमें ऐसी घबरा गई जैसे कोई भूतोंके घरमें घबरा जाता है। बादशाहके अजमेर जाते ही मुसलमान सेनाओंके कष्ट आरम्भ हुए। मुसलमान सिपाही आगे बढ़नेसे डरते थे। उन्हें हरेक घाटी और जंगलमें सीसोदिया या राठौरकी तलवार दिखाई देती थी। राजपूतोंने भी मौका पाकर छापे मारने आरम्भ कर दिये। कभी कैम्पपर लूट-मार करते तो कभी शाही सेनाके लिए आती हुई रसद लूट लेते। राजपूतोंका मुसलमान सेनाओंपर ऐसा डर बैठा कि सेनापतिका हुक्म पाकर भी सिपाही आगे बढ़नेसे इन्कार कर देते थे। उनके दिल काँप रहे थे।

औरंगज़ेब राजपूतानेकी विजयके लिए उतावला हो रहा था। वह विलम्बसे झुँझला उठा। उसने अकबरपर क्रोध दिखानेके लिए उसे मेवाड़से हटाकर मारवाड़में भेज दिया, और मेवाड़का सेनापतित्व राजकुमार आज़मको सौंप दिया। दोनों राजकुमारोंकी सहायताके लिए तहव्वरख़ाँ और हसनअलीख़ाँ जैसे वीर और अनुभवी योद्धा भेजे गये थे। दोनों ही मैदानोंमें फुटकर लड़ाइयाँ होती रहीं; जिनमें जहाँ मुगल-सेनायें कभी किसी गाँवपर कब्ज़ा कर लेती थीं, वहाँ राजपूत सेनायें उन्हें निरन्तर और स्थायी नुकसान पहुँचानेमें सफल हो जाती थीं।

राजकुमार अकबरने विपरीत अवस्थायें होते हुए भी काफी बहादुरी और दृढ़तासे युद्ध किया, परन्तु उसकी सफलताके दो शत्रु थे। एक तो राजपूतोंकी वीरता, और दूसरे राजपूतानेकी दुर्गमता। इन दो कठिनाइयोंके साथ तीसरी एक और कठिनाई भी शामिल हो गई थी। राजकुमारका मुख्य सलाहकार तहव्वरख़ाँ अन्दर ही अन्दर राजपूतोंसे मिल गया था। लड़ाईके शुरूसे ही तहव्वरख़ाँकी सुस्तीकी शिकायतें बादशाहके पास पहुँचती थीं। वह एक पुराना तजुर्बेकार सेवक था, इस कारण उसपर अविश्वास करना आसान नही था। बादशाह उसे वार वार चेतावनी देकर ही सन्तोष करता रहा। इसी बीचमें उसने राजपूतोंसे मेल-जोल कर लिया।

पहले तो राजकुमार अकबर तहव्वरख़ाके प्रमादपर नाराज़ होता रहा, परन्तु जब बादशाहने उसपर भी नाराज़गी प्रकट की, और अपने स्वभावके अनुसार नाकामयाबीके लिए उसीको डाँटना और उससे अविश्वासका व्यवहार करना आरम्भ किया, तब राजकुमारका दिल भी डोल गया। तहव्वरख़ाँके बनाये हुए जालमें वह भी फँस गया। उसने राजपूतोंके साथ मिलकर औरंगज़ेबको गद्दीसे उतारने और स्वयं बादशाह बननेका मन्सूबा पक्का कर लिया। १ जनवरी १६८१ के दिन उसने मारवाड़से ही एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें अपने आपको दिल्लीका बादशाह घोषित करते हुए औरंगजेबके पदच्युत होनेकी सूचना दी। दूसरे ही रोज़ बादशाह अकबरने राजपूत-सेनाओंकी सहायतासे औरंगज़ेबके विनाशके लिए अजमेरकी ओर प्रस्थान किया। अकबरके इस साहसिक कार्यको आज हम पागलपन कह सकते हैं, और वह अन्तमें पागलपन ही सिद्ध हुआ भी, परन्तु उस समय राजकुमारको आशा दिलानेवाली कई बातें विद्यमान थीं। प्रथम तो उसके सामने औरंगज़ेबका दृष्टान्त विद्यमान था, जिसने अपने पिता शाहजहाँके विरुद्ध सफल विद्रोह करके राजगद्दीपर अधिकार जमाया था, दूसरे मेवाड़ और मारवाड़की मिली हुई ताक-

तका भरोसा कुछ कम नहीं था। तीसरे उसे यह भी मालूम था कि बादशाह दक्षिणके युद्धमें फँसा हुआ है, उसके पास पूरी ताक़त नहीं है। तहव्वरख़ाँ पुराना और अनुभवी योद्धा था। उसकी प्रतिभा और युद्ध-निपुणतापर अकबरको बड़ा भरोसा था। इन्हीं सब कारणोंसे प्रभावित होकर उसके दिमाग़ने दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेका विचार किया, और हृदयने सफल होनेकी आशा बाँधी।

परन्तु अकबर औरंगज़ेब नहीं था, और औरंगज़ेब शाहजहाँ नहीं था। जहाँ औरंगज़ेबने प्रारम्भसे ही युद्धक्षेत्रमें यश कमाया था, वहाँ अकबरको राजपूतानेमें सिवा पूरी नाकामयाबीके कुछ नहीं मिला। उधर औरंगज़ेबमें न शाहजहाँवाला मायावी मोह था, और न उसका विषयी प्रमाद। जब अकबर अपनी आशापूर्ण युद्ध-यात्रा समाप्त करके अजमेरके पास पहुँचा, तो उसका दिल टूट गया। जिस समय वह राजपूतानेसे चला था, तब औरंगज़ेबके पास केवल १० हज़ार सिपाही थे, और राजकुमारके पास कमसे कम ५० हजार सिपाही। बीचमें केवल १२० मीलका अन्तर था। यदि राजकुमार एकदम अजमेरपर आ टूटता, तो औरंगज़ेबका बचना मुश्किल था, परन्तु उसने १२० मीलोंके सफरको १५ दिनमें तै किया। परिणाम यह हुआ कि जब वह अजमेरके पास पहुँचा, तो बादशाहको लड़ाईके लिए बिल्कुल तैयार पाया।

औरंगज़ेबने अकबरकी सेनाओंके समीप पहुँचनेका समाचार पाकर अजमेरसे ५ मीलकी दूरीपर देवराई नामक स्थानपर मोर्चा जमाया था। यह वही स्थान था, जहाँ औरंगज़ेबने दारा शिकोहको परास्त किया था। अकबर इस आशाको लेकर आया था, कि औरंगज़ेब डरकर अजमेरकी चार दीवारीके अन्दर छिपकर लड़ेगा, परन्तु यहाँ दूसरा ही रंग देखा। अकबरकी सुस्तीसे लाभ उठाकर औरंगज़ेबने चारों ओरसे सेना इकट्ठी कर ली थी, और अजमेरकी मोर्चाबन्दी कर ली थी। अकबर सहम गया। उसने कुछ दूरीपर डेरा डाल दिया। उसके अनुयायी भी आसानीसे

विजय पानेकी आशा रखते थे। उन्होंने अकबरकी घबराहटको देखा, तो उनके दिल टूट गये। औरंगज़ेबकी शक्ति और क्रोधको वह जानते थे। मुसलमान सेनापति और सिपाही आँख बचाकर भागने और औरंगज़ेबकी सेनामें मिलने लगे। अकबरकी सेना धूपमें बर्फ़की तरह पिघलने लगी।

अकबरका सबसे बड़ा सहारा तहव्वरख़ाँ था। तहव्वरख़ाँने भी सारी स्थितिको देखा, और समझ गया कि साँप निकल गया है, अब ज़मीनपर लाठीको पीटनेसे लाठी ही टूटेगी। द्रोहीका दिल अपने अपराधके चित्रसे काँप गया। उसे लड़ाईमें हारकर औरंगज़ेबके क्रोधकी जिन ज्वालाओंमें जलना पड़ेगा, उनका ध्यान आया, डरने उसके साहसको तोड़ दिया। उसने अकबरकी किश्तीको मँझदारमें छोड़कर औरंगज़ेबकी शरणमें जानेका निश्चय कर लिया। तहव्वरख़ाँके इस द्रोहने उसका भी नाश किया और अकबरका भी। तहव्वरख़ाँ जब औरंगज़ेबके दरबारमें जाने लगा, तब सन्तरियोंने उससे हथियार उतार देनेके लिए कहा। उसने इन्कार किया। औरंगज़ेबका हुक्म इस विषयमें सख्त था। वह हथियारोंके साथ तहव्वर जैसे द्रोहीको दरबारमें आनेकी आज्ञा नहीं दे सकता था। सन्तरियों और तहव्वर ख़ाँमें कहा-सुनी हो गई। किसी सन्तरीने उसे सख्त शब्द कह दिया, जिसे वह सह न सका, और सन्तरीके मुँहपर चपत दी और तलवारकी मूठपर हाथ डाला। इतना इशारा पाते ही सिपाही तहव्वरपर टूट पड़े, वह भागा, पर पाँव फँसनेसे गिर गया, चारों ओरसे उसपर बौछार होने लगी। एक सिपाहीने तलवार निकालकर एक ऐसा हाथ मारा कि दुहरे द्रोहीका सिर धड़से अलग हो गया। इस प्रकार अकबरकी आशाओंके आधार तहव्वरख़ाँका अन्त हुआ।

उधर अकबरके डेरेपर दूसरी ही खलबली मची हुई थी। औरंगज़ेबने राजपूतोंको तोड़नेके लिए एक जाल रचा, जो कामयाब हो गया। उसने राजकुमार अकबरको एक पत्र लिखा, जिसका

आशय यह था कि 'तुमने जिस खूबसूरतीसे राजपूतोंको उल्लू बनाकर मेरे क़ब्ज़ेमें ला डाला है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ, और आशा रखता हूँ कि जिस कार्यको आरम्भ किया है, राजपूतोंके सर्वनाशद्वारा उसे पूर्ण करोगे।' औरंगज़ेबने ऐसे ढँगसे उस पत्रको अकबरके डेरेमें भेजा कि वह राजपूतोंके हाथमें पड़े। राजपूतोंको जब वह पत्र मिला, तो वह आग-बबूला हो गये। जवाब-तलबीके लिए कुछ सरदार राजकुमारके डेरेपर पहुँचे, तो नौकरोंने उत्तर दिया कि राजकुमार सो गये हैं, उठाये नहीं जा सकते। वहाँसे निराश होकर और झुँझलाकर राजपूत सरदार तहव्वर खाँकी तलाशमें चले। उसके डेरेपर जाकर मालूम हुआ कि बहुत देर हुई, वह भाग गया है। अब तो राजपूतोंको निश्चय हो गया कि उन्हें छला गया है। विलम्बमें विनाश होगा, यह सोचकर राजपूतोंने उसी समय कूचका डंका बजा दिया, और राजपूतानेका रास्ता लिया।

प्रातःकाल जब राजकुमार अपनी विलास-निद्रासे जागा, तो अपने चारों ओर केवल २५० के लगभग सिपाहियोंको पाया। मुसलमान सेनायें बादशाहकी शरणमें चली गई थीं, और राजपूत अपनी जन्मभूमिकी ओर लपके जा रहे थे। वह निराश और दुःखसे कातर होकर सिर पीटने लगा। सिंहासन और ताजकी आशा रातभरकी अय्याशीमें काफ़ूर हो गई। उसने चारों ओर देखा तो सिवा अपने पिताके क्रोधकी ज्वालाओंके कुछ दिखाई न दिया। उन ज्वालाओंसे बचनेका केवल एक ही उपाय था, और वह था राजपूतोंका आश्रय। लज्जाको ताकमें रखकर अकबर परिवार-सहित घोड़ोंपर सवार होकर राजपूतोंके पीछे भागा। दुर्गादासको जब मालूम हुआ कि उन्हें औरंगज़ेबने धोखा दिया, तो स्वयं पीछे लौटकर राजकुमारको साथ ले लिया, और राजपूतानेकी ओर वेगसे प्रस्थान किया।

अकबरके विद्रोहने औरंगज़ेबको तो गद्दीसे नहीं उतारा, परन्तु राजपूतानेके युद्धको शान्त कर दिया। औरंगज़ेबकी शक्तियाँ पह-

ले तो अकबरका पीछा करनेमें लग गई। वह उसे गिरिफ्तार करना चाहता था, पर वीर दुर्गादासने उसकी बाँह पकड़ी थी। राजपूती आवका यदि कोई उज्ज्वल दृष्टान्त था, तो वह दुर्गादास था। अब राजपूतोंको अकबरसे कोई आशा नहीं थी। जब उसे अपनाया था, तो आपत्तिमें छोड़ना राजपूतकी शानके योग्य नहीं था। दुर्गादासने उसके साथ जैसी निभाई, कोई क्या निभायगा। यह समझकर कि राजपूतानेमें राजकुमारको शाही कोपसे बचाना कठिन बल्कि असम्भव होगा, दुर्गादासने उसे दक्षिणमें राजा सम्भाजीके पास पहुँचा देनेका मंसूबा बाँधा, और वह केवल ५०० राठोर वीरोंको साथ लेकर इस दुष्कर कार्यके लिए राजपूतानेसे निकल पड़ा।

औरंगज़ेबके हरकारे चारों ओर पहुँच गये थे। राजकुमारके लिए सब रास्ते बन्द थे। जिधर जाते, उधर ही सामने दुश्मन दिखाई देता, परन्तु दुर्गादासने साहस न छोड़ा। कई प्रान्तोंका चक्कर काटकर और कई नदियाँ पार करके लगभग दो महीनेकी दौड़-धूपके पीछे वह राजकुमारको कोंकणमें सम्भाजीके पास पहुँचा सका।

अकबरके राजद्रोहके पीछे मेवाड़के साथ मुग़ल-बादशाहकी सुलह हो गई। महाराणा राजसिंहका इसी बीचमें देहान्त हो गया था। नये राजा जयसिंहमें न राजसिंहका सा अनुभव था, और न युद्ध-कला थी, इस कारण उसने सुलह करनेमें ही भला समझा।

मारवाड़के साथ मुग़ल-सेनाओंकी लगभग ३० वर्षतक छेड़-छाड़ रही; परन्तु औरंगज़ेबकी सम्पूर्ण शक्ति दक्षिणमें मराठोंके साथ लड़नेमें ख़र्च हो रही थी, इस लिए राजपूतोंका मार्ग बहुत कुछ निष्कंटक हो गया था। मारवाड़के साथ मुग़लोंके युद्धका अन्त १७०९ में हुआ जब महाराजा अजितसिंह धूमधामसे जोधपुरमें प्रविष्ट हुआ, और उसके आधिपत्यको दिल्लीके बादशाहने स्वीकार किया।

१६—सह्याद्रिकी ज्वाला

महाराष्ट्रके इतिहास-लेखक मि० ग्राण्ट डफने महाराष्ट्रोंके अभ्युदयकी सह्याद्रिकी अग्निज्वालाके साथ उपमा दी है। सह्याद्रिके रुखे पहाड़ोंमें जब अग्निकी शिखा दिखाई देती है, तो यह कहना कठिन होता है कि यह कब और कैसे प्रारम्भ हुई। ग्राण्ट डफकी दी हुई उपमा ठीक भी है, और बेठीक भी। ठीक तो इस प्रकार है कि महाराष्ट्रका उत्थान उग्रता और असह्यताकी दृष्टिसे प्रचण्ड अग्निकी शिखाओंकी अपेक्षा कम भयानक नहीं था। जहाँ अन्य विद्रोहोंने मुग़ल-साम्राज्यके विशाल वृक्षको केवल धक्के देकर कमज़ोर किया था, वहाँ महाराष्ट्रसे उठी हुई विद्रोहाग्निने उसे भस्मसात् कर दिया। बेठीक इस लिए है कि जहाँ सह्याद्रिमें प्रदीप्त दावाग्निका कारण जानना कठिन है, और उसे आकस्मिक कह सकते हैं, वहाँ महाराष्ट्रकी स्वाधीनता और साम्राज्य स्थापनाके कारणोंको हम कई सदियोंकी गहराईमें तलाश कर सकते हैं। उसे हम आकस्मिक नहीं कह सकते।

अब तक हमने जिन विद्रोहोंकी चर्चा की है, वह मुग़ल साम्राज्यके विशाल भवनके लिए छोटे छोटे धक्कोंके समान थे। उनसे भवनकी दीवारें कमज़ोर तो हुईं, परन्तु गिरी नहीं। हम जिस विद्रोहकी कहानी अब कहेंगे, वह बाबरद्वारा स्थापित साम्राज्यका यम साबित हुआ। दक्षिणकी अभेद्य दीवारने औरंगज़ेबकी निर्विघ्न विजय-यात्राको रोक दिया। दक्षिणकी भूमि मुग़ल आधिपत्यकी क़ब्र साबित हुई।

परन्तु इस भारी विद्रोहको आकस्मिक उपज नहीं कह सकते। महाराष्ट्रकी भूमि विद्रोहके बीजको ग्रहण करके अंकुरित करनेके लिए देरसे तैयार हो रही थी। उस भूमिमें, और भूमिपर निवास करनेवालोंमें कुछ ऐसी विशेषतायें थीं, जिससे जो असन्तोष देश भरमें केवल वायुकी भाँति बहता रहा, वह महाराष्ट्रमें अंधड़के रूपमें प्रकट हुआ।

जिस प्रान्तको उस समय महाराष्ट्र कहा जाता था, उसका बहु-तसा हिस्सा पथरीला और ऊसर था। जहाँ पूर्वीय हिस्सोंमें पानी और हरियावलकी बहुतायत है, वहाँ पश्चिम भाग बहुत रूखा है। उस प्रान्तके निवासी गंगा और यमुनाके तीरपर रहनेवाले लोगोंकी तरह आसानीसे हल जोतकर अन्न नहीं पा सकते थे। उन्हें बहुत मेहनत करनी पड़ती थी, बहुत पसीना बहाना पड़ता था, तब कहीं पेट भरता था। इस कारण उस समय महाराष्ट्र-प्रान्तमें आबादी भी छीदी थी। बड़े शहर या मालदार मण्डियोंका अभाव था। अधिकतया दो ही पेशे लोगोंको प्यारे थे। वह या तो खेती करते थे, और या फौजमें भर्ती होकर लड़ते थे। प्रकृतिने यत्नसाध्य ज़मीन देकर उनको परिश्रमी, सादा और अपनेपर भरोसा रखनेवाला बनाया था।

दक्षिणके निवासियोंकी स्वाधीन प्रकृतिकी रक्षा एक दूसरे कारणसे होती रही। भारतपर मुसलमानोंके आक्रमणका मार्ग उत्तरके पर्वतोंमेंसे है। उसी रास्तेपर आक्रमणकारियोंकी बाढ़के पीछे बाढ़ आती रही। वह बाढ़ पंजाबमें बहुत प्रबल रहती, मध्य प्रदेशोंतक उसका ज़ोर बना रहता, परन्तु दक्षिणतक पहुँचते पहुँचते उसका ज़ोर जाता रहता। जब उत्तरीय भारतमें मुग़ल-साम्राज्यका दौरदौरा हो गया था, तब भी दक्षिणमें विजयनगर जैसा ज़बर्दस्त स्वाधीन राज्य लहलहा रहा था। सदियों तक दक्षिणमें मुसलमान विजेता स्थायी रूपसे पाँव न जमा सके, जब पाँव जमानेका यत्न भी किया तो दक्षिणमें कई छोटी छोटी रियासतें कायम हो गईं, जो वहाँके हिन्दू निवासियोंकी आत्माको कुचलनेकी जगह, उनके सहारेपर जीवित रहनेका उद्योग करती थीं। बीजापुर, गोलकुण्डा या अहमदनगरके शासकोंको अपनी शक्तिके कायम रखनेके लिए मराठा सरदारों और मराठा सिपाहियोंसे सहायता लेनी पड़ती थी। दक्षिणमें मुसलमान राज्यकी जड़ें गहराई तक नहीं गई थीं। उन्होंने अपनी प्रजाकी अन्तरात्मापर असर नहीं किया था।

कठोर भूमिपर रहनेके कारण, और आक्रमणके द्वारसे दूर होनेके कारण महाराष्ट्रके निवासियोंमें एक विशेष चरित्र पैदा हो गया था। उस चरित्रकी विशेषतायें थीं—स्वाधीनतासे प्रेम, निर्भयता, सादगी, और शारीरिक फुर्ती। जीवशास्त्रके पण्डितोंका कहना है कि एक ही जातिकी सन्ततिकी अपेक्षा जाति-मिश्रणसे उत्पन्न होनेवाली सन्तति अधिक शक्तिशाली होती है। उसमें दोनोंकी विशेषताओंका मिश्रण हो जाता है। महाराष्ट्र लोग भी आर्य और द्रविड़ जातियोंके मिश्रणसे उत्पन्न हुए थे। इस कारण उनमें दोनोंकी ख़ासीयतें आगईं थीं। उनमें जहाँ आर्योंकी सामाजिकता आ गई थी वहाँ प्राचीन निवासियोंकी उद्दंडताका भी अभाव नहीं था।

सामान्यतया ऐसे महाराष्ट्र निवासी थे, जिनमें मुग़ल-साम्राज्यके प्रति विद्रोहका बीज बोया जानेवाला था। बीज बोनेके लिए भूमि भी खूब तैयार की गई थी। हम देख आये हैं कि दाक्षिणके निवासी गंगा और जमनाके शस्यशाली मैदानोंके निवासियोंकी अपेक्षा अधिक कठोर और सादा तबीयतके थे। उनके धार्मिक विचारोंपर भी सादगीका असर था। उस समयके हिन्दू धर्मको जाति-बन्धनके कड़े कृमियोंने रोगी बना रखा था। धर्मपर ब्राह्मणोंकी ठेकेदारी समझी जाती थी। देशकी रक्षा करना केवल क्षत्रियोंका कर्तव्य समझा जाता था। और किसीको देशसे कोई वास्ता नहीं था। इस भेद-भावका ही यह परिणाम था कि भारतवासी विरोधी आक्रमणका सामना नहीं कर सकते थे। महाराष्ट्रमें कई सदियोंसे ऐसे भक्त और उपदेष्टा पैदा हो रहे थे, जिन्होंने वहाँके निवासियोंको ब्राह्मण-धर्म क्षत्रिय-धर्म आदि पृथक पृथक् धर्मोंके उपदेशके स्थानपर महाराष्ट्र-धर्मका उपदेश देकर राष्ट्रीय एकताको उत्पन्न करनेका यत्न किया था। पठानोंके राज्य-कालसे ही धर्म और नीतिके ऐसे सुधारक उत्पन्न हो रहे थे, जो महाराष्ट्रको एक बनानेके साधन हुए।

महाराष्ट्रके उस युगके सुधारक भक्तोंमेंसे प्रथम नाम ज्ञानदेवका है। ज्ञानदेवका जन्म उस समय हुआ था जब महाराष्ट्रमें

देवगिरिके यादव राजाओंका राज्य था। उस समयसे लेकर शिवाजीके जन्म-काल तक लगभग ५०० वर्ष होते हैं। इन ५०० वर्षोंमें लगभग ५० ऐसे भक्त और सन्त पैदा हुए, जिन्होंने जनतामें विचार-क्रान्ति पैदा की। मि० रानडेने अपने स्मरणीय ग्रन्थ 'मराठोंके उत्थानमें' उनमेंसे निम्नलिखित नामोंको मुख्यता दी है—
१ चांगदेव, २ ज्ञानदेव, ३ निवृत्ति, ४ सोपान, ५ मुक्ताबाई, ६ जनी, ७ अकाबाई, ८ वेणुबाई, ९ नामदेव, १० एकनाथ, ११ रामदास, १२ तुकाराम, १३ शेख मुहम्मद, १४ शान्ति ब्राह्मणी, १५ दामाजी, १६ उद्धव, १७ भानुदास, १८ कूर्मदास, १९ बोधले बाबा, २० सन्तोबा पोवार, २१ केशव स्वामी, २२ जयराम स्वामी, २३ नरसिंह सरस्वती, २४ रघुनाथ स्वामी, २५ चोखा मेला, २६ नरहरि सोनार, २७ सावता माली, २८ बहिराम महार, २९ गणेशनाथ, ३० जनार्दनपन्त, ३१ माधोपन्त, ३२ और ३३ दोकु महार।

इन भक्तोंमेंसे आधे ब्राह्मण थे। कुछ स्त्रियाँ थीं, कुछ मुसलमानसे हिन्दू बने हुए थे, शेषमें कुनबी, दर्ज़ी, माली, कुम्हार, सुनार, वेश्या, और महार (चाण्डाल) तक शामिल थे। इन सब भक्तोंने हरिनामकी महिमाका गान करते हुए भक्तिमार्गका उपदेश किया। लोगोंने यह नहीं देखा कि कौन गा रहा है, उन्होंने यही देखा कि क्या गा रहा है। यदि किसी भक्तकी जातिको नीच समझकर ब्राह्मणोंने उसका विरोध किया, तो दैवी चमत्कारोंने उसका समर्थन किया। भक्तकी जीत रही, और ब्राह्मणोंको हार माननी पड़ी। जातिकी उतनी महिमा न रही, जितनी हरिनाम, और श्रेष्ठ कर्मकी। इन सब सन्तोंने महाराष्ट्रकी लोकभाषामें ही ग्रन्थ लिखे, कवितायें कीं, या उपदेश सुनाये। परिणाम यह हुआ कि कई सदियोंके निरन्तर और परोक्ष प्रयत्नके पीछे महाराष्ट्र देशमें एक उदार महाराष्ट्र-धर्मकी बुनियाद पड़ गई। ब्राह्मणोंकी मुख्यतापर अवलम्बित अनुदार हिन्दू-धर्मका ढाँचा बहुत कुछ शिथिल हो गया। जाति परस्पर मिलकर महाराष्ट्रकी एकसत्ताके लिए लड़नेके लिए तैयार हो गई।

महाराष्ट्रकी एकताको पण्ढरपुरके देवमन्दिर तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली वार्षिक यात्राओंसे भी बहुत लाभ पहुँचा। पण्ढरपुरमें देव-स्थापनाकी कहानी खूब मनोरंजक है। उस स्थानपर एक पुण्डलीक नामका आदमी था। उसके माता और पिताका नाम सत्यवती और जनदेव था। पुण्डलीक अपनी स्त्रीका इतना वशंवद था कि उसकी प्रेरणासे माता-पिताको असह्य कष्ट देता था। उन वेचारोंका दिन घरमें झाड़ू देने, वरतन साफ़ करने और गाली खानेमें ही व्यतीत होता था। एक वार किसी यात्रामें जाते हुए पुण्डलीकने रातके समय स्वप्नमें गंगा और जमनाको देखा। उन दोनोंने पुण्डलीकको उसके पापोंके लिए वहुत लताड़ा। पुण्डलीकके दिलपर चोट लगी, और वह माता-पिताका सेवक बनकर घर वापिस आ गया।

तबसे पुण्डलीक माता-पिताका अनन्य सेवक बन गया। एक बार श्रीकृष्ण भगवान् रुक्मिणीके साथ कलिकालमें जगत्की लीला देखते हुए उधर आ निकले। पुण्डलीकको भगवान्के पधारनेकी सूचना मिली, पर वह माता-पिताकी सेवामें लगा हुआ था। माता-पिताकी सेवाको उसने भगवान्की सेवासे भी ऊँचा समझा। भगवान्का आदर रखनेके लिए केवल इतना किया कि एक ईंट खिड़कीमेंसे वाहिर फेंक दी और भगवान्को इशारा कर दिया कि इसपर खड़े हो जाइए। भगवान् पुण्डलीककी पितृ-पूजासे इतने प्रसन्न हुए कि उसे आशीर्वाद दिया, और यह भी आदेश किया कि तुम मेरी विठोवा (ईंटपर खड़ा होनेवाला) के रूपमें पूजा किया करो। कुछ समय पीछे उस स्थानपर एक विशाल मन्दिर बन गया, जिसमें पुण्डलीकद्वारा फेंकी हुई ईंटपर कृष्ण भगवान्की मूर्ति स्थापित की गई थी। यह पवित्र स्थान महाराष्ट्रका सबसे बड़ा तीर्थ बन गया। ज्ञानदेवसे लेकर रामदासके समय तक जितने सन्त हुए उन्होंने पण्ढरपुरको अपनी भक्तिका केन्द्र बनाया। सामान्यतया पतित या अछूत समझे जानेवाले बहुतसे हरिभक्त पण्ढरपुरमें पहुँचकर पवित्र हो गये

और पूजे गये। हजारों नर-नारी प्रतिवर्ष विठोबाकी पूजाके लिए पण्ढरपुरमें एकत्र होने लगे, जिससे उनके अन्दर एकताके भाव जागृत होने लगे।

भक्तों और सन्तोंने लोकभाषामें कवितायें बनाईं और उपदेश दिये। वह लोक-भाषा महाराष्ट्रभरकी मराठी बन गई। एक भाषा, एक धार्मिक प्रवृत्ति, और एकसे सामाजिक संस्कारोंने मिलकर महाराष्ट्र प्रान्तको उस राज्य-क्रान्तिके लिए तैयार कर दिया, जिसे हम मुग़ल-साम्राज्यके विध्वंसका प्रधान कारण कह सकते है।

१७—मराठा-राज्यका बीजारोपण

भोंसला वंशके लम्बे इतिहासमें न जाकर हम महाराष्ट्र-केसरी शिवाजीके जीवनसम्बन्धी ऐतिहासिक निरीक्षणको शाहजी भोंसलासे ही आरम्भ करते हैं। शाहजी भोंसला उन मराठे वीरोंका एक नमूना था, जिन्होंने अपनी बहादुरी और चतुरतासे दक्षिणकी मुसलमानी रियासतोंमें ऊँचा पद प्राप्त किया था। शाहजीका जन्म १५९४ में हुआ था। उसका विवाह अहमदनगरके अत्यन्त प्रतिष्ठित हिन्दू सरदार लखाजी जादवकी पुत्री जीजाबाईसे हुआ था। जवान होनेपर उस समयके हिन्दू लड़ाकोंकी रीतिका अनुसरण करते हुए शाहजीने दक्षिणके मुसलमान विजेता मलिक अम्बरकी सेनामें भर्ती होकर नाम कमाना शुरू किया। दक्षिणकी रियासतोंमें शीघ्र ही बहुतसी उथल-पुथल जारी हो गई। उस समय दक्षिणमें मुसलमानोंकी तीन मुख्य रियासतें थीं—अहमदनगर, बीजापुर, और गोलकुण्डा। यह तीनों रियासतें ऊपर लिखे क्रमसे स्थापित हुईं, और शक्तिशाली बनी। दक्षिणके आधिपत्यके लिए इनकी प्रतिस्पर्धा चलती रही। इस प्रतिस्पर्धासे दो शक्तियोंने लाभ उठाया। एक तो उन हिन्दू सरदारोंने, जो मुसलमानी राज्योंकी परस्पर प्रतिस्पर्धाके बलपर

ही शक्तिशाली बन सकते थे, और दूसरे मुग़ल बादशाहोंने, जो इन रियासतोंके संघर्षसे लाभ उठाकर दक्षिणमें साम्राज्यका विस्तार करना चाहते थे।

शाहजी एक साहसिक और वीर योद्धा था। उसने अपने आसपास काफ़ी लड़ाके सिपाही एकत्र कर रखे थे। रियासतोंकी छीना-झपटीसे लाभ उठानेके लिए जिस चतुराईकी आवश्यकता थी, शाहजीमें वह पूर्णरूपसे विद्यमान थी। शाहजीने परिस्थितिसे पूरा लाभ उठाया। उसने अहमदनगरकी ओरसे कार्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। जब निज़ामशाही राज्यकी गिरावटका समय आया, तब शाहजी मुग़ल बादशाहके साथ जा मिला, फिर उसे भी त्याग दिया। पहले बीजापुरकी रियासतसे लड़ाई की, फिर उसीमें नौकरी कर ली। बीजापुरकी रियासत उस समय मुग़ल-साम्राज्यके साथ उलझी हुई थी। बीजापुरके बादशाह मुहम्मद आदिलशाहको सहायताकी आवश्यकता थी। शाहजी जैसे अनुभवी और धूर्त सेनापतिको पाकर वह प्रसन्न हुआ। मुग़ल बादशाह दो पीढ़ियोंसे दक्षिणको जीतनेका प्रयत्न कर रहे थे। शाहजहाँने बहुत समय दक्षिणमें बिताया था, और औरंगज़ेबका तो भाग्य-निर्माण ही दक्षिणमें हुआ था। मुग़ल बादशाहोंको यही धुन थी, कि किसी तरह सारे दक्षिणको साम्राज्यमें शामिल किया जाय। मुग़ल सेनायें कभी बीजापुरसे उलझती थीं तो कभी गोलकुण्डासे। इस समय बीजापुर और मुगल-सेनाओंमें खटपट चल रही थी।

शाहजीने बीजापुरके शाहको उकसाकर दौलताबादपर धावा कर दिया। उधर मुग़ल-सेनापति महाबतख़ाँ दौलताबादपर आक्रमण कर रहा था। दोनों सेनाओंकी लड़ाईमें मुग़लोंकी जीत हुई। शाहजीको हार माननी पड़ी, परन्तु अब उसे यह चिन्ता हुई कि बीजापुरमें जाकर मुहम्मद आदिलशाहके क्रोधका शिकार बनना पड़ेगा। शाहजीने अपने बचावका बहुत साहसपूर्ण उपाय सोचा। राजवंशके एक छोटेसे लड़केको किसी

कोनेमेंसे निकालकर अहमदनगरका साधिकार शासक करार दे दिया, और स्वयं उसका संरक्षक बनकर मुग़लोंसे लड़ने लगा। कुछ दूरतक उसे सफलता भी हुई, परन्तु शीघ्र ही शाहजहाँने ४० हज़ार सेनाओंके साथ स्वयं रंगस्थलमें प्रवेश किया। उसने बीजापुर और शाहजी दोनोंहीपर आक्रमण करके उन्हें नष्ट करनेका निश्चय कर लिया था। देरतक युद्ध जारी रहा, मुग़ल-सेनापति ख़ान ज़मानने शाहजीका पीछा किया, परन्तु मराठा सरदारकी चतुरतापूर्ण युद्ध-नीतिके आगे हार खानी पड़ी। शाहजी हाथ न आया, और न पूरी तरह परास्त हुआ। परन्तु उधर बीजापुरने शीघ्र ही मुग़लोंसे हार मान ली, और शाहजीकी निजी रियासतपर क़ब्ज़ा करनेके लोभसे वह मुग़लोंसे मिल गया। अब शाहजीको मुगल और बीजापुर दोनोंसे युद्ध करना पड़ा, परन्तु धन्य थी वह वीरता, कि सहजहीमें हार माननेको तैयार न हुई। मुगलोंकी और बीजापुरकी सेनाने शाहजीको देरतक और दूरतक पीछा किया। अद्भुत वीरतासे दोनोंको छकाता और अपनेको बचाता हुआ वीर कोंकण तक चला गया, परन्तु शत्रुओंकी संख्या बहुत अधिक थी, आखिर शाहजीको हार माननी पड़ी। जिस लड़केको उसने बादशाहकी गद्दीपर बिठाया था, उसे शत्रुओंको सौंप देना पड़ा और वह स्वयं फिर बीजापुरकी नौकरीमें चला गया। इस समय शाहजीको पूना और सूपाकी जागीरें, जो पिछले युद्धमें छिन गई थीं, वापिस मिल गईं।

शाहजीको बीजापुरकी नौकरीमें छोड़कर अब हम पूना और सूपाकी जागीरोंकी ओर झुकते है। शाहजीका पहला विवाह जीजाबाईके साथ हुआ था। जीजाबाईकी पहली सन्तानका नाम शम्भाजी था। शम्भाजी अपने पिताके साथ ही रहता था। बड़ा होनेपर वह एक लड़ाईमें मारा गया। जीजाबाईकी दूसरी सन्तान शिवनेरके किलेमें हुई। पुत्रका नाम शिवाजी रखा गया। कहा जाता है कि पुत्रकी उत्पत्तिके पश्चात् स्वप्नमें शाहजीको देवताकी ओरसे आदेश हुआ था कि अपनी नई सन्तानको शिवजीका अव-

तार समझो। जीजाबाई एक श्रद्धालु महिला थी। पुत्रका नाम-करण भी उसके श्रद्धाभावका सूचक है। आराध्य देव शिवके नामपर ही पुत्रका नाम शिवजी रखा गया।

उधर उस समयके सरदारोंकी पद्धतिके अनुसार शाहजीने दूसरी शादी कर ली। जीजाबाई एक कुलीन और मानिनी स्त्री थी। वह सौतके साथ रहना स्वीकार न कर सकी। शाहजीको आयेदिनकी लड़ाईके कारण आवारागर्दीका जीवन बिताना पड़ता था। इस कारण भी जीजाबाईको पतिसे देरतक अलग ही रहना पड़ता था। शाहजीको जब शिवजीके जन्मका समाचार शिवनेरसे पहुँचा, तो उसने पूनाकी जायदादके मैनेजर दादाजी कोंडदेवको लिखा कि वह माता और बच्चेको शिवनेरसे पूना ले जाय, और वहाँ हर प्रकारके आराम दे। इस प्रकार पिताकी उपे-क्षाने होनहार शिवाजीको उस स्थानपर पहुँचा दिया, जो मरा-ठोंके साम्राज्यकी राजधानी बननेवाला था। कभी कभी देखनेमें प्रतिकूल घटनायें दैवयोगसे ऐसी अनुकूल पड़ जाती हैं कि पछिसे आश्चर्य होने लगता है।

शिवाजी अपनी माता और दादाजी कोण्डदेवकी देख-रेखमें शिक्षा पाने लगा। यद्यपि उसे पुस्तक-विद्या प्राप्त करनेका अधिक अवसर नहीं मिला, तो भी उत्तम माता और सज्जन गुरुके संगसे शिवाजीको शस्त्रविद्याकी शिक्षाके साथ धर्म और राष्ट्रीय इति-हासकी शिक्षा भी मिल गई। महाभारत और रामायणके महा-रथियोंकी कहानी सुन-सुनकर बालक शिवाजीके हृदयमें उमंगें पैदा होती थीं। आयुकी वृद्धिके साथ उसकी दृष्टि भी फैलती गई। युवावस्था तक पहुँचते पहुँचते वह होनहार बालक ऊँची उमंगों और अद्भुत शक्तियोंका केन्द्र बन गया।

दादाजी कोण्डदेवने शिवाजीका दिल बहलानेके लिए बहुतसे समवयस्क साथी भी एकत्र कर दिये थे। उनमें तानाजी मालूसरे, बाजी फसाल्कर, येसाजी कंकके नाम इतिहासमें स्मरणीय हैं। सूर्योदयसे पहले ही पूर्व दिशामें अरुणाई दिखाई देते लगती है।

शिवाजीका भावी जीवन भी उसके बाल्य-कालमें प्रतिबिम्बित हो रहा था। कहते हैं कि अपने पिताके साथ बीजापुरके दरबारमें जानेपर जब उस मानी बालकको सिर झुकाकर सलाम करनेको कहा गया, तो उसने इन्कार कर दिया। पूनाके चारों ओर पर्वत हैं। भिन्न भिन्न राजाओंके बनाये हुए किले उनकी चोटियोंपर विराजमान है। पर्वतोंके जंगली निवासी मावली कहलाते हैं। बालक शिवाजी अपने मित्रोंके साथ जब उन पर्वतोंमें घूमनेके लिए निकलता, तो उन किलोंको देखकर स्वायत्त करनेके मन्सूबे बाँधता और मावलियोंके साथ मेल-जोल पैदा करता था।

१६ वर्षकी आयु तक पहुँचते पहुँचते शिवाजीके विचार कार्यमें परिणत होने लगे। किशोरावस्थामें ही मनमें स्वाधीन राज्य स्थापित करनेका मन्सूबा दृढ़ हो गया, और शिवाजी आसपासके किलोंपर कब्ज़ा करने लगे। लगभग १२ वर्षकी आयुमें शिवाजीने एक मुहर बनवाई थी, जिसपर, यह शब्द थे—

"यद्यपि पहला चन्द्र बहुत छोटा होता है, परन्तु वह धीरे धीरे बढ़ जाता है। यह मुहर शाहजीके पुत्र शिवाजीके योग्य है।"

शिवाजीका जन्म १६२७ ई० में हुआ था, बीसवाँ वर्ष समाप्त होनेसे पहले १६४६ में आपने तीनों बाल-सखाओं और १ हज़ार सिपाहियोंको साथ लेकर बीजापुरके प्रसिद्ध दुर्ग तोरणापर धावा बोल दिया। वहाँका सेनापति कुछ सामना न कर सका। मशहूर था कि उस किलेमें कहीं बड़ा भारी ख़ज़ाना जमा है। शिवाजीके खुदवानेपर सचमुच ख़ज़ाना निकल आया, जिसे उन धर्मके श्रद्धालुओंने भवानीकी कृपाका फल समझा। किला बिना विरोधके हाथ आ गया और उसमेंसे कीमती ख़ज़ाना निकल आया, यदि इन दो बातोंसे भी विश्वासी पुरुष शिवाजीको शिवजीके अवतार होने, अथवा उनपर भवानीकी परम कृपाका अनुमान न लगाते, तो आश्चर्यकी बात होती। वह ख़ज़ाना तो मानो भूखेका अन्नका दाना मिल गया।

तोरणाकी चढ़ाई शिवाजीकी पहली संघटित चढ़ाई थी। उसने शिवाजीके जीवन-मार्गका निश्चय कर दिया। उस नवयुवकके सामने दो मार्ग खुले थे। एक प्रेयका मार्ग था, दूसरा श्रेयका। प्रेयका मार्ग यह था कि उस समयके अन्य उत्साही हिन्दू युवकोंकी भाँति वह भी बीजापुर या दिल्लीकी सेनामें भर्ती होकर नाम कमाता। वह मुसलमानोंकी चाकरी होती—परन्तु उसमें वीर युवकको बड़ी आसानीसे ऊँचे उठनेका अवसर मिल जाता। दूसरा मार्ग श्रेयका था। वह मार्ग यह था कि स्वाधीन राज्यकी बुनियाद डाली जाती। मुसलमान शक्तिके उस दौरदौरेमें, एक छोटीसी जागीरके स्वामीका २० वर्षकी उम्रमें स्वाधीन राज्यकी स्थापनाका स्वप्न लेना एक शेखचिल्लीके मनमोदकसे अधिक मूल्य नहीं रखता था। वह अत्यन्त दुष्कर कार्य था। शिवाजीने उसी बीहड़ मार्गको चुना। कोण्डदेवने अपने शिष्यको कंटीले मार्गमें जाते देखकर रोकनेका बहुत यत्न किया, परन्तु हठी शिष्य चुने हुए मार्गसे कब टलनेवाला था। तब कोण्डदेवने अपने मालिक शाहजीको शिकायती चिट्ठी भेजी, परन्तु उसका भी कुछ फल न हुआ। शाहजीने उधर ध्यान न दिया।

शिवाजीने तोरणाके किलेमें पाये हुए खज़ानेको अड़ोस-पड़ोसके अन्य दुर्गोंकी मरम्मतमें लगाया। ६ मीलकी दूरीपर एक पहाड़ी थी, जिसपर शिवाजीने राजगढ़ नामका एक नया किला बनाया। बहुतसा धन नई सेनाओंकी भर्तीमें खर्च किया गया। पूनेके जागीरदारके इन साहसिक कार्योंकी प्रसिद्धि चारों ओर हो गई। साहसिक नवयुवक योग्य नेताके चारों ओर घिरने लगे। कुछ ही दिनोंमें शिवाजी नवयुवकोंकी आशाओं और सेनाओंका केन्द्र बन गया।

हठी शिष्यके व्यवहारसे उदास वृद्ध कोण्डदेवने शरीर त्याग दिया। अब तो शिवाजी खुल खेले। कुछ ही समयमें सूपा, चाकण, पुरन्दर और कोंकणके दुर्ग, कोई युद्धसे, कोई धूर्ततासे, और कोई पैसेसे शिवाजीने अधीन कर लिये। इस प्रकार केन्द्रको

शिवाजी

मज़बूत बनाकर मराठा वीरने उत्तरीय कोंकणकी ओर दृष्टि उठाई। मराठा सेनायें कल्याण, कोलाबा आदि जिलोंमें फैल गईं, और आधा दर्जन किलोंपर, जिनमें प्रसिद्ध रायगढ़ भी शामिल था, अधिकार जमानेमें सफल हो गईं। वह प्रदेश पूनेके सरदारकी जागीरमें शामिल कर लिया गया।

आखिर शिवाजीके कारनामोंके समाचार बीजापुरके दरबार तक पहुँच गये। शाहजी बीजापुरकी सेनामें नौकर था, और शिवाजी बीजापुरके किलों और शहरोंपर क़ब्ज़ा करता जा रहा था, आखिर यह परस्पर विरोधी काम कबतक चल सकते थे। बीजापुर-नरेशने एक चिट्ठी अपनी ओरसे शिवाजीको भिजवाई, जिसमें उसे समझाया, धमकाया और पुचकारा गया था, और दूसरी चिट्ठी शाहजीसे लिखवाई। शिवाजीने दोनों पत्रोंका उत्तर दिया। बादशाहको तो उसने लिखा कि यदि मेरी जीती हुई सब जागीर मुझे दे दी जाय, तो मैं खुद दरबारमें हाज़िर हो सकता हूँ। पिताको उसने यह उत्तर दिया कि मैं अब बच्चा नहीं हूँ, अपने भले-बुरेको खुद सोच सकता हूँ, मैंने जो प्रदेश अपनी शक्तिसे जीता है, उसे मैं अपना समझता हूँ, और छोड़ना नहीं चाहता।

शिवाजीके उत्तरसे आदिलशाहको सन्तोष न हुआ। बीजापुर-दरबारमें शाहजीके शत्रुओंकी संख्या कम नहीं थी। उन्होंने आदिलशाहके कान खूब भरे। शाहने यही समझा कि शिवाजी जो कुछ कर रहा है, शाहजीकी मर्ज़ीसे कर रहा था। कई प्रामाणिक लेखकोंकी राय है कि शाहजीने गुप्त रूपसे दूतद्वारा शिवाजीको कहला भेजा था कि मेरे लिखे हुए पत्रोंकी पर्वा न करो, और अपना काम जारी रखो। आदिलशाहने धोखेसे शाहजीको पकड़ लिया, और बीजापुरमें कैद करके उसे आज्ञा दी कि वह शिवाजीको विद्रोही बननेसे रोके। शाहजी बराबर यही कहता रहा कि शिवाजीके विद्रोहमें मेरा कोई हिस्सा नहीं है। इसपर रुष्ट होकर बादशाहने शाहजीकी कैद-कोठरीकी दीवारें ऊपर तक

चुनवाकर बन्द कर देनेकी आज्ञा दी। कारीगर ईंटोंकी श्रेणियाँ चुनता जाता था, और शाहका प्रतिनिधि शाहजीसे अपराध स्वीकार करनेको कहता जाता था। दीवार मुँह तक पहुँच गई, तो भी शाहजी इन्कार ही करता गया। तब बादशाहको भी सन्देह होने लगा कि शायद शाहजीका कहना ठीक हो। दीवारकी चुनाई बन्द ही कर दी गई, और शाहजीसे शिवाजीके नाम एक और पत्र लिखवाया गया।

शिवाजीको जब पिताका पत्र बीजापुरके सब समाचारोंके साथ मिला, तब वह अजब उलझनमें पड़े। यदि माफी माँगनेके लिए बीजापुरमें हाजिर हों, तो मृत्यु-दण्डका भागी बने, और यदि बीजापुर न जाय, तो पिताकी मृत्युके लिए उत्तरदाता बने। शिवाजीके दिमाग़ने इस उलझनका एक बढ़िया हल निकाला। शिवाजीने मुग़ल बादशाह शाहजहाँको एक चिट्ठी भेजी, जिसमें अपनी और शाहजीकी सेवायें मुग़ल राज्यके अर्पण करते हुए प्रार्थना की कि इस समय शाहजीको बीजापुरकी जेलसे छुड़ाया जाय। शाहजहाँ तो दक्षिणमें अपने पाँव पसारना ही चाहता था। उसे छेड़-छाड़ शुरू करनेका अच्छा अवसर मिला। शाहजहाँने शाहजीके नाम एक सीधा पत्र भेजा, जिसमें उसके पहले अपराधोंको क्षमा करते हुये उसे अपनी नौकरीमें भर्ती कर लिया। यह पत्र आदिलशाहके सिरपर वज्रकी तरह गिरा। शिवाजीकी नीति कामयाब हो गई। शाहजीको जेलसे छुटकारा मिल गया, और शिवाजीको बीजापुर न आना पड़ा।

शाहजीके छूट जानेपर शिवाजीने मुग़ल बादशाहको लिखा कि मैं मुग़ल-सेवामें आनेको तयार हूँ बशर्ते कि मुझे जुन्नर और अहमदनगरके इलाकोंका भी अधिकार दे दिया जाय। शाहजहाँ एकदम इस शर्तको स्वीकार न कर सका, इस कारण शिवाजी मुग़लोंकी नौकरीमें भर्ती न हो सका।

१८—विरोधियोंका ध्वंस

तोरणा दुर्गकी विजयके साथ जिस राज्यका बीजपात हुआ था, शीघ्र ही वह वृक्षरूपमें परिणत होने लगा। शिवाजीका सुख-स्वप्न स्थूल रूपमें परिणत होने लगा। शाहजी तक भी यह समाचार पहुँचते रहते थे। यद्यपि प्रकाशमें वह शिवाजीको बीजापुरके प्रति विद्रोही न बननेकी शिक्षा ही दे रहा था, परन्तु अन्दरसे उसका हृदय पुत्रकी सफलतापर फूल रहा था। शिवदिग्विजय बखरमें शाहजीके शिवाजीके नाम भेजे गये एक पत्रका अंश उद्धृत किया गया है। वह शाहजीकी हार्दिक अभिलाषाओंको सूचित करता है। शाहजीने लिखा—

"जो कार्य तुमने आरम्भ किया है, उसे अवश्य पूर्ण करना। भगवान्‌की कृपा हो कि तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियाँ अपने शोकाश्रुओंमें स्नान करें। परमात्मा तुम्हारी आशाओंको सफल करे और समृद्धिको बढ़ाये। घोरपड़ेने मुझपर बड़े एहसान किये हैं, उसे खूब इनाम देना।"

घोरपड़ेसे शाहजीकी शत्रुता थी। अन्तिम वाक्यके व्यंग और पहले वाक्योंमें दिये गये साधुवादको शिवाजीने खूब समझ लिया और उसका पालन भी किया।

इधर बीजापुरकी सरकारने सीधे मार्गसे लड़नेका साहस न देखकर छलसे स्वाधीनताके उठते हुए नेताका अन्त करनेकी चेष्टा की। मुहम्मद आदिलशाहने एक बाजी शामराज नामक व्यक्तिको गुप्त रूपसे शिवाजीकी हत्या करनेके लिए रवाना किया। बाजी शामराजका कार्य बड़ा कठिन था। विना प्रबल सहायकके उसे सफलताकी आशा नहीं हो सकती थी। तलाश करनेपर उसे एक सहायक भी मिल गया। जावलीका सरदार चन्द्रराव मोरे मुहम्मद आदिलशाहका सामन्त था। वह भोंसला वंशको अपनेसे बहुत घटिया समझता था। शामराजने उससे अपने षड्-

यन्त्रकी पूर्तिके लिए स्थान माँगा, चन्द्ररावने दे दिया। परन्तु शिवाजी भी सोया हुआ नहीं था। उसके गुप्त दूतोंने बाजी शामराजके सम्बन्धमें पूरे समाचार शिवाजी तक पहुँचा दिये। छलिया अपने शस्त्रसे ही मारा गया। शिवाजीके भेजे हुए सिपाहियोंने उसे अकस्मात् घेर लिया और मार-मारकर जावलीमें धकेल दिया।

षड्यन्त्र तो असफल हो गया, परन्तु उसके सहायकोंको बहुत कड़ी सज़ा भोगनी पड़ी। शिवाजीने चन्द्ररावके सामने दो प्रस्ताव रखे। वह स्वयं जवाली गया, और मोरेसे कहा कि या तो तुम मेरे साथ शामिल हो जाओ, या लड़ाईके लिए तैयार हो जाओ। मोरेने उस अपीलका जवाब यह दिया कि खुफिया तौरसे शिवाजीको क़ैद करनेका यत्न किया, परन्तु शिवाजी आसानीसे काबूमें आनेवाला नहीं था। वह मोरेको तरह देकर निकल गया, और अपने प्रस्तावोंके उत्तर लेनेके लिए राघो बल्लाल अत्रे, और सम्भाजी कावजी नामके दो दूतोंको चंद्ररावके पास भेजा। दोनों दूतोंने मोरेको समझानेकी बहुत कोशिश की, परन्तु वह किसी तरह भी शिवाजीका साथ देनेको तैयार न हुआ। उल्टा उसने शिवाजीके दूतोंको अपमानित करनेकी चेष्टा की। तकरार बढ़ गई, अन्तमें दोनों ओरसे तलवारें चल गईं। चन्द्रराव मोरे मारा गया, और शिवाजीके दूत मोरेके सिपाहियोंकी श्रेणीको काटते हुए निकल भागे। शिवाजीका कैम्प भी पास ही पड़ा हुआ था। चन्द्ररावकी मृत्युने उसे अमूल्य अवसर दे दिया। उसने शीघ्र ही जावलीपर क़ब्ज़ा कर लिया। मोरे वंशने चिरकालमें जो ख़ज़ाना इकट्ठा किया था, शिवाजीने उसे स्वायत्त कर लिया, और बहुत सा धन व्यय करके प्रतापगढ़ नामक प्रसिद्ध किलेकी बुनियाद डाली। मोरेकी मृत्युकी घटनाको, कई इतिहास-लेखकोंने, जिनमें एक डा० जदुनाथ सरकार भी हैं, शिवाजीके विरुद्ध राय बनानेमें दृष्टान्तरूपसे पेश किया है; परन्तु सम्पूर्ण घटनाको ऐतिहासिक दृष्टिसे देख जानेपर यह जान लेना कठिन है कि शिवाजीके व्यवहारमें विश्वासघातको कहाँ तलाश किया जा सकता है। विश्वास-

घातका यत्न तो दो बार हुआ, परन्तु वह चन्द्ररावकी ओरसे ही हुआ, शिवाजीकी ओरसे नहीं।

जावलीका इलाका शिवाजीके राज्यमें मिला लिया गया। मोरे-वंशको उसके द्रोहकी सज़ा मिल गई, परन्तु शिवाजीका कार्य उतनेसे पूरा नहीं हुआ। हत्याके लिए बाजी शामराजका भेजा जाना इस बातका सूचक था कि बीजापुर-सरकारने म्यानमेंसे तलवार निकाल ली है, फिर चोट वह उस तलवारको कपड़ोंमें लपेटकर चलानेका कितना ही उद्योग करे। शिवाजीने भी म्यान-से तलवार निकालना उचित समझा। कोंकणके समुद्र-तटसे लग-भग २० मीलकी दूरीपर एक छोटासा द्वीप था, जिसे अरबी लोग जज़ीरा कहते थे। मलिक अम्बरने उसे अपनी सामुद्रिक शक्तिके संगठित करनेका ठिकाना बनाया था। इस समय वह बीजापुरके क़ब्ज़ेमें था। उसके सेनापतिका नाम फतेहख़ाँ था। शिवाजीके प्रसिद्ध किले राजगढ़से वह समीप ही पड़ता था। शिवाजीने उसी समय यह अनुभव कर लिया था कि जिस राज्यकी सीमा समुद्र-तटसे मिलती हो, उसकी रक्षा और वृद्धि सामुद्रिक शक्तिके बिना नहीं हो सकती। इसी विचारसे उसने अपने ब्राह्मण पेशवा शामराज नीलकण्ठकी कमानमें एक बड़ी सेना जंजीरा (जज़ीरेका मराठी अपभ्रंश) को स्वाधीन करनेके लिए भेजी। पेशवा युद्ध-कलामें प्रवीण नहीं था, उसे फतेह ख़ाँने परास्त कर दिया। तब उसके स्थानपर राघो बल्लाल अत्रेको सेनापति बनाया गया, जिसकी युद्ध-कुशलतासे फतेह ख़ाँका हाथ नीचे आने लगा। उसे यह चिन्ता होने लगी कि वह मराठोंसे जंजीरेको बचा सकेगा या नहीं।

परन्तु शिवाजीका ध्यान शीघ्र ही दूसरी ओर खिंच गया। बीजापुर-सरकारने भी अब पूरी तरह अनुभव कर लिया कि इस नये उठते हुए शत्रुकी उपेक्षा करना असम्भव है, और इसे अधूरे प्रयत्नसे नष्ट नहीं किया जा सकता। बीजापुरका शासक अभी बच्चा ही था। वह अपनी माता बड़ी साहिबाकी सलाहसे

राज्य करता था। माताने बेटेको यही सलाह दी कि मुग़लोंके घरू झगड़ोंके कारण रियासतको जो आराम मिला है, उससे लाभ उठाकर शिवाजीकी शक्तिका दलन कर दो। दिल्ली और आगरा उस समय शाहजहाँके सुपुत्रोंके गृह-कलहके केन्द्र बने हुए थे। दक्षिण-विजेता औरंगज़ेब भाइयोंके नाशका संकल्प करके उत्तरीय भारत-पर छा रहा था। यह समय छोटे मोटे शत्रुओंके ध्वंसके अनुकूल है, ऐसा निश्चय करके बीजापुरके शासकने अपने सरदारोंको इकट्ठा किया, और पूछा कि शिवाजीको कौन परास्त करेगा? इस प्रश्नके उत्तरमें एक लम्बा चौड़ा बलिष्ठ जवान खड़ा हो गया। उस जवानका नाम अफज़ल ख़ाँ था। वह रानीका भतीजा था। उसने बड़े दर्पके साथ इस आशयका दावा किया कि मैं उस पहाड़ी चूहेको थोड़े ही दिनोंमें कैद करके बीजापुरमें ले आऊँगा।

अफज़लख़ाँकी दर्पोक्ति कुछ असम्भव भी नहीं प्रतीत होती थी। व्यक्तिगत रूपसे उसका शरीर शिवाजीके नाटे शरीरसे दुगना था। शिवाजीका शरीर यद्यपि दृढ़ और फुर्तीला था, परन्तु केवल देखनेसे वह साधारण ही प्रतीत होता था। उस तेजस्वी शरीरकी असाधारणता घुटनोंतक लम्बी भुजाओं, और लोहेके समान मज़बूत पट्ठोंसे जानी जा सकती थी, किन्तु मोटी नज़रसे वह नाटासा शरीर अफज़ल ख़ाँके दानव-तुल्य कायके सामने बौना ही प्रतीत होता था। फिर अफज़ल ख़ाँ पुराना और अनुभवी योद्धा था। वह कई युद्ध-क्षेत्रोंमें जयमाल पहिन चुका था। बीजापुरके १२,००० चुने हुए सिपाही ऐसे अनुभवी और बलिष्ठ सेनापतिकी देख-रेखमें एक नाटेसे पहाड़ी सरदारका मान मर्दन करनेके लिए रवाना हुए। शिवाजी उस समय जंजीरेपर आक्रमण करनेकी तयारियोंमें लगा हुआ था। उसने ज्यों ही अफज़लख़ाँकी युद्ध-यात्राका वृत्तान्त सुना, जंजीरा आक्रमण करनेवाली सेनाका नायकत्व सेनापतियों-पर छोड़कर प्रतापगढ़की ओर प्रस्थान किया।

अफज़ल ख़ाँका विजय-मार्ग निष्कंटकसा ही प्रतीत होता था। उसने सबसे पहले शिवाजीके राज्यकी दक्षिण सीमामें प्रवेश करके

शीघ्रतासे पूनातक पहुँचनेका विचार करके तुलजापुर नामक किले पर आक्रमण किया। वहाँ भवानीका मन्दिर था। अफज़ल ख़ाँने उस मन्दिरको अपवित्र करनेका निश्चय किया। पुजारी पहलेसे साव-धान थे। वह मूर्तिको दूसरे स्थानपर ले गये, परन्तु इससे अफ-ज़लका चित्त शान्त नहीं हुआ। उसने मन्दिरमें एक गौका वध कराया, और उसका रुधिर सारे मन्दिरमें छिड़का दिया। इधर शिवाजीने जब अफज़लकी यात्राके मार्गका निश्चित समाचार पा लिया, तो राजगढ़से जावलीमें आकर युद्धकी तैयारी आरम्भ की। अफज़ल ख़ाँने जब देखा कि शिवाजीने स्थान बदल लिया है, तो वह दक्षिणकी सीमाको छोड़, पश्चिमकी सीमासे आगे बढ़ने लगा। भीमा नदीको पण्ढरपुरके समीप पार किया, और विशेष सावधा-नतासे पण्ढरपुरके मन्दिरको अपवित्र किया। पुण्डलीककी मूर्तिको नदीमें फेंककर अपने इस्लामी जोशको शान्त करता हुआ वह वाई नामक स्थानपर पहुँचा। वाईमें पहुँचकर अफज़ल ख़ाँने कुछ विश्राम किया। उस विश्रामके कालमें उसने लोहेका एक पिंजरा तैयार करवाया, और दर्पके साथ घोषणा की कि वह पहाड़ी चूहे-को उस पिंजरेमें बन्द करके बीजापुर ले जायगा।

इस समयतक अफज़लख़ाँकी युद्ध-नीति यह थी कि या तो शिवाजीको नींदकी हालतमें किसी किलेमें घेरकर कैद कर लिया जाय, या मन्दिरोंको भ्रष्ट करके उसे इतना उत्तेजित किया जाय कि वह पहाड़ी इलाकेको छोड़कर मैदानकी लड़ाईमें उतर आये। अफज़लको भरोसा था कि वह मैदानकी लड़ाईमें मराठे सिपाहियोंको गाजर-मूलीकी तरह काट डालेगा। इन दोनों ही मनसूबोंमें उसे नाकामयाबीका मुँह देखना पड़ा। शिवाजीकी चेतनता कमाल दर्जेतक पहुँची हुई, उसका दूत-जाल बीजापुर, तक पहुँचा हुआ। बीजापुरमें पत्ता हिलता था तो शिवाजीके कानमें आवाज पहुँच जाती थी, अपनी सीमाओंकी तो बात ही क्या। ऐसे चौकन्ने शत्रुको सोते हुए दबोचना असम्भव है। अफ-ज़लका यह संकल्प भी सफल न हुआ कि शिवाजीको पहाड़ी

इलाकेसे बाहिर ले चले। शिवाजी सीधा सादा राजपूत नहीं था, जो चालमें आ जाता। वह एक चतुर खिलाड़ी था, जो दुश्मनकी कमजोरी और अपनी शक्तिको खूब पहिचानता था। इन दोनों चालोंमें सफलता प्राप्त करनेसे निराश होकर अफज़लखाँने तीसरे मार्गका अनुसरण करनेका निश्चय किया। उसने धोखेसे शिवाजी-को गिरिफ्तार करनेके लिए षड्यन्त्रका जाल फैलाया। शिवा-जीका विश्वस्त दूत विश्वासराव छद्म वेष धारण करके अफज़लके कैम्पमें घुस गया, और वहाँसे यह समाचार लाया कि अफज़लखाँ छल या बलसे शिवाजीको गिरिफ्तार कर लेना चाहता है।

उधर शिवाजीके सहायक घबरा रहे थे। अभीतक मराठा-से-नाओंने मुसलमान सेनाओंसे सामनेका संग्राम नहीं किया था। अभीतक तो वह छोटे छोटे किलोंपर ही आक्रमण कर रहे थे। अफज़लखाँ एक मशहूर सेनापति था। उसकी सेना सुशिक्षित थी। उसका मार्ग अप्रतिहत था। शिवाजीके सहायकोंके हृदय हटने लगे। शिवाजी चिन्तामें पड़ गये। एक ओर सहायकोंकी सलाह, दूसरी ओर वीरका हृदय, आखिर द्विविधाका नाश दैवी सहायतासे हुआ। रातको स्वप्नमें भवानीने दर्शन देकर शिवाजी-को आश्वासन दिया, और लड़ जानेकी प्रेरणा की। प्रातःकाल फिर सभा हुई, जिसमें शिवाजीने अपने संकल्पकी सूचना देते हुए युद्धकी घोषणा कर दी।

अफज़लखाँने कृष्णाजी भास्करको दूत बनाकर शिवाजीके पास भेजा। दूतने शिवाजीकी सभामें ख़ानकी ओरसे कहा कि "तुम्हारा पिता मेरा पुराना दोस्त है। तुम भी मेरे लिए अजनबी नहीं हो। मुझसे आकर मिलो। मैं अपनी ओरसे पूरा ज़ोर लगा-ऊँगा कि आदिलशाह तुम्हें वह किले और कोंकणके प्रदेश दे दे, जो अब तुम्हारे कब्ज़ेमें है। यदि तुम दरबारमें जानेको तैयार हो, तो तुम्हारा स्वागत किया जायगा, परन्तु यदि तुम स्वयं दरबारमें न जाना चाहो तो उसकी भी ज़रूरत न होगी।"

शिवाजीने कृष्णाजी भास्करका दूतोचित आदर सत्कार किया, और वह अकेलेमें जाकर उससे मिला। कृष्णाजीने हिन्दूके नातेसे शिवाजीको इशारेसे बतला दिया कि अफ़जलखाँका निमन्त्रण एक धोखा है। असलमें वह शिवाजीको अकेलेमें पाकर गिरिफ्तार कर लेना चाहता है। शिवाजीने ख़ानके असली आशयको जानकर भी ऊपरसे वैसा ही व्यवहार रखा, जैसा मित्रसे रखा जाता है। उसने उत्तरमें कहला भेजा कि 'मै इस कृपाके लिए ख़ानका धन्य· वाद करता हूँ, और मिलनेको उत्सुक हूँ।' कृष्णाजीके साथ शिवाजीने अपने दूतके तौरपर पन्तोजी गोपीनाथको भेजा, जिसने अफ़ज़लख़ॉको पूरी तरहसे विश्वास दिला दिया कि शिवाजी डरा हुआ है, और क्षमा माँगनेको तैयार है।

शिवाजीने अफज़लख़ाँको यह भी कहला भेजा कि वाई तक जानेमें मुझे वहुत डर लगता है, इस कारण मैं चाहता हूँ कि आप और मैं दोनों अपने अपने स्थानोंसे आगे वढ़कर मध्यमें मिलें। अफज़लख़ॉको अपने और अपनी सेनाके वलपर विश्वास था। उसे यह भी निश्चय था कि उसका षड्यन्त्र खूब गुप्त है। उसने शिवाजीके नियत किये स्थानपर जाकर मिलना स्वीकार कर लिया। वह स्थान वाई और प्रतापगढ़के बीचमें पाट नामक ग्रामके पास था और ऊँचाईपर था। शिवाजीके हुक्मसे वह लम्बा चौड़ा मैदान साफ किया गया था, जिसमें गलीचों और गद्दोंपर सुनहरी झालरें चमचमा रही थी।

सन्ध्याका समय था। अफज़लख़ाँ एक हजार सिपाहियोंके ठाठ-बाटके साथ मिलनेके स्थानकी ओर रवाना हुआ। इतिहास-लेख-कोंका कहना है कि उसका मार्ग अपशकुनोंसे घिरा हुआ था, परन्तु वह तो विजयकी आशामें मस्त था। उसको अपने वलपर भरोसा था। सय्यद वाँदा नामका एक सिपाही तलवार चलानेमें परम प्रवीण था। वह अफज़लकी पालकीके साथ साथ चल रहा था। जव पालकी शामियानेके समीप पहुँची, तव कृष्णाजी भास्करने ख़ानको सलाह दी कि यदि वह शिवाजीको धोखा देकर कब्ज़ेमें

लेना चाहता है, तो इतनी बड़ी सेनाको साथ ले जाना अच्छा न होगा, केवल दो एक सिपाहियोंको साथ रखना पर्याप्त होगा। अफज़लख़ाँने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। सेनायें पीछे छोड़ दी गईं। उन्हें यह आज्ञा दे दी गई कि वह बिल्कुल तैयार रहें। इशारा पाते ही शामियानेके पास आ पहुँचें। अफज़लख़ाँके साथ केवल दो आदमी थे—एक सय्यद बाँदा, और दूसरा शरीर-रक्षक, परन्तु उसको अपने बाहुबलका, और मनुष्यके बराबर लम्बी तलवारका भरोसा था। शामियाना बहुमूल्य वस्तुओंसे सजाया गया था। उन्हें देखकर अफज़लख़ाँ झुँझला उठा और कहने लगा कि 'एक ग़रीब जागीरदारके लड़केके पास ऐसा कीमती सामान कहासे आया?' गोपीनाथने नम्रतासे उत्तर दिया कि 'हुजूर, यह सब सामान जल्द ही आपके साथ बीजापुर-दरबारमें पहुँच जायगा।'

खान तो पहुँच गया, पर अभी शिवाजीके पहुँचनेमें देर थी। गोपीनाथको भेजा गया कि वह आगे बढ़कर शिवाजीको शीघ्र ही लानेका यत्न करे। शिवाजीकी रात्रि तैयारीमें व्यतीत हुई थी। उसने घण्टों तक भवानीकी आराधना की। दिन चढ़नेपर उसने सब मंत्रियोंको बुलाकर आदेश किया कि यदि मैं धोखेसे मार डाला जाऊँ, तो मेरे स्थानपर नेताजी पालकर पेशवाकी हैसीयतसे शासन करेंगे, और शम्भाजी गद्दीका उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकार राज्यके भविष्यकी ओरसे निश्चिन्त होकर शिवाजी अफज़लख़ाँसे भेट करनेको प्रस्तुत हुए। सिरपर लोहेका शिरस्त्राण धारण कर उसपर पगड़ी बाँध ली। सारे शरीरपर जंजीरी कवच धारण कर लिया, और ऊपरसे लम्बा सुनहरे कामवाला अंगरखा पहिन लिया। बायें हाथकी अंगुलियोंमें तारोंसे व्याघ्र-नख नामके फौलादी नश्तर सजा लिये, और दायीं आस्तीनमें बिछुआ छुपा लिया। इस प्रकार आक्रमणसे बचनेके लिए तैयार होकर शिवाजी कुछ विश्वस्त और वीर साथियोंको लेकर प्रतापगढ़से प्रस्थानके लिए उद्यत हुए। चलनेसे पूर्व जो अन्तिम कार्य किया, वह यह था कि माता जीजाबाईकी सेवामें उपस्थित होकर आशीर्वाद माँगा।

स्नेहमयी वीर माताने सिरपर हाथ रखकर कहा कि 'बेटा, सावधान होकर जाना, और अपने भाई शम्भाजीकी मृत्युका बदला लेना। तुम्हें अवश्य विजय प्राप्त होगी।' इस आशीर्वादसे बल धारण करके शिवाजी जीवाजी महला और शम्भूजी कावजी नामके दो तलवारके धनी सिपाहियोंको साथ लेकर उस स्थानके लिए रवाना हुए जहाँ अफज़लखाँ प्रतीक्षा कर रहा था। समीप जाकर शिवाजीने खानके पास सय्यद बाँदाको खड़ा देखा। शिवाजी ठहर गये, और कहला भेजा कि मुझे सय्यद बाँदासे बहुत डर लगता है। उसके पास रहते आगे बढ़नेका हियाव नहीं होता। अफज़लखांने देखा कि शिवाजी बिल्कुल बेहाथियार है, तब डरकी क्या बात है। उसने सय्यद बाँदाको दूर भेज दिया। तब एक डरे और झुके हुए आदमीकी तरह शिवाजी शामियानेमें हाजिर हुए।

अफज़लखाँ ऊँचे मंचपर बैठा हुआ था। शिवाजीने ऊपर चढ़ते हुए झुककर सलाम किया। खाँ खड़ा हो गया और उसने शिवाजीको गले लगानेके लिए दोनों हाथ फैला दिये। शिवाजीका शरीर खाँसे आधा था। वह मुश्किलसे उसके कंधोंतक आया। अफ़-ज़लखाँने नाटेसे मराठा सरदारकी गर्दन बायें हाथसे दबा ली और दूसरे हाथसे लम्बी और पैनी कटार निकालकर शिवाजीकी बगलमें मार दी। उस समय छुपा हुआ कवच काम आया। कटारकी धार मुड़ गई। परन्तु उस दैत्यके हाथसे गर्दन निकालना आसान नहीं थी। शिवाजीका सिर घूम गया। एक क्षणके लिए उसके होश गुम हो गये; परन्तु दूसरे ही क्षणमें सँभलकर शिवा-जीने अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ाया, और व्याघ्र-नखकी तेज़ नोकें खानके पेटमें घोप दी। पेटकी आँतें खुल गईं। खानका बायाँ हाथ ढीला पड़ गया, उससे लाभ उठाकर शिवाजीने दायें हाथसे बिछुआ अफज़लकी बगलमें घुसेड़ दिया। मर्माहत होकर शत्रुने शिवाजीको छोड़ दिया। कई इतिहास-लेखकोंने लिखा है कि उस समय अफज़लखाँने अपनी मनुष्यकी लम्बाईकी तलवार खेंचकर शिवाजीके सिरपर चलाई। उसका वेग इतना प्रचण्ड था कि वह

लोहेके शिरस्त्राणको काटती हुई सिरको छू गई। यदि सिरपर शिरस्त्राण न होता तो शिवाजीके सिरके दो टुकड़े हो जाते। परन्तु प्रतीत होता है कि अफज़लख़ाँ तलवारका हाथ नहीं चला सका। जिस तलवारने शिवाजीका शिरस्त्राण काटा, वह सय्यद् बाँदाकी थी। शिवाजीने जीवाजी महलासे तलवार ले ली और वह सय्यद् बाँदाका हाथ रोकने लगे। इतनेमें जीवाजी महलाने तलवारका एक हाथ ऐसा मारा कि सय्यद् बाँदाकी तलवारवाली भुजा कट कर गिर गई। सय्यद् बाँदा वहीं मर गया।

उधर ख़ान चिल्ला रहा था—'धोखा हुआ, मार दिया, पकड़ो पकड़ो।' पालकीवालोंने घायल ख़ानको पालकीमें डालकर भागना शुरू किया। शम्भुजी कावजीने तलवारके वारोंसे उनकी लातें छेद डालीं। डोली रखकर वह भागे। उस समय शम्भुजीने ख़ानका सिर धड़से अलग कर दिया, और लाकर शिवाजीके सामने उपस्थित कर दिया। जीवाजी महलाका शंख इस समय जंगलोंको गुंजा रहा था। उधर शंखका इशारा पाकर प्रतापगढ़की तोप गर्ज रही थी। शिवाजीने आसपासकी झाड़ियोंमें सैकड़ों सिपाही छुपा रखे थे। उन्हें यह आज्ञा थी कि शंखका शब्द सुनते ही दुश्मनोंपर टूट पड़ना। खूब ही मार-काट हुई। अफज़लख़ाँकी सेनाका बड़ा हिस्सा नष्ट हो गया। शिवाजीके जयकी दुन्दुभि चारों ओर बजने लगी। दुन्दुभिका नाद इतना ऊँचा था कि वह जहाँ एक ओर बीजापुरके राज-दरबारकी दीवारोंसे जा टकराया, वहाँ साथ ही उसकी प्रतिध्वनि दिल्लीके लाल किलेकी फसीलसे भी सुनाई दी। मराठा सरदारकी ख्याति मुग़लोंकी राजधानी तक फैल गई।

शिवाजीको इस काण्डमें पूरी विजय मिली। अफज़लख़ाँ मारा गया। ख़ानके दो लड़के, एक मुसलमान सरदार, दो मराठे सरदार, ६५ हाथी, ४,००० घोड़े, १२०० ऊँट, और बहुतसे कपड़ोंके अतिरिक्त १० लाख रुपया विजेताके हाथ आया। प्रतापगढ़के नीचे जो मैदान था, उसमें युद्धके उपलक्ष्में एक विराट् उत्सव मनाया गया। दुश्मनके जो सेनापति या सिपाही गिरिफ्तार हुए

थे, वह छोड़ दिये गये, उन्हें घर जानेके लिए खर्च, भोजन और इनाम देकर रवाना किया गया। शत्रुकी औरतें और ब्राह्मण आदर-पूर्वक घरोंको भेज दिये गये। बहादुर मराठा सिपाहियोंको इनाम बाँटे गये। जो मारे गये थे, उनके परिवारके लिए पेन्शनका प्रबन्ध किया गया। दुश्मनसे लूटे हुए हाथी घोड़े तथा अन्य माल सेना-पतियोंमें बाँट दिये गये। इस प्रकार बीजापुरकी विजयिनी सेनाका प्रतापगढ़की तलैटीमें अन्त हुआ और शिवाजीने समीप-वर्ती शत्रुका नाश करके मुग़ल बादशाहके हृदयमें कँपकँपी पैदा की।

बीजापुरमें तो मातम छा गया। राज-माताने कई दिनोंतक अन्न नहीं खाया। दरबारमें शोक मनाया गया। आदिलशाहने शिवा-जीसे बदला लेनेकी बहुतसी चेष्टायें कीं। सीदी जौहर, बहलोल ख़ाँ आदि कई सेनापतियोंको विशाल सेनाओंके साथ विजयके लिए भेजा, परन्तु शिवाजीके पराक्रम और चातुर्यके सामने उन सबको परास्त होना पड़ा। अन्तमें बीजापुर-दरबारको हार माननी पड़ी। शाहजीकी मार्फ़त बीजापुर-दरबारने शिवाजीसे सुलह कर ली। शाहजी बड़े ठाठके साथ अपने यशस्वी पुत्रके पास बीजापुरका दूत बनकर आया। पिता पुत्र प्रेमसे मिले। बीजापुरकी ओरसे शिवाजीका उस सब प्रदेशपर अधिकार मान लिया गया, जो उस समय उसके क़ब्ज़ेमें था। बदलेमें शिवाजीने मुग़ल बादशाहके विरुद्ध बीजापुरको सहायता देना स्वीकार किया।

१९—शाइस्ताख़ाँको सज़ा

इस प्रकार बीजापुर रंगस्थलीसे बाहिर चला गया, और भारतकी वक्षःस्थलीपर खेले जाते हुए उस घोर नाटकके दो मुख्य अभिनेता एक दूसरेके आमने सामने आकर खड़े हुए। वह दो अभिनेता औरंगज़ेब और शिवाजी थे। बीजापुरको परास्त

करके, और उससे परस्पर-सहायक-सन्धिद्वारा निश्चिन्त होकर शिवाजीने मुग़ल-साम्राज्यकी ओर ध्यान दिया।

यहाँपर इस प्रश्नपर थोड़ासा विचार करना असंगत न होगा कि शिवाजीके इन सब आक्रमणों और युद्धोंका प्रेरक कारण कौनसा था? क्या शिवाजी केवल विजयकी, लूटकी या ख्यातिकी इच्छासे प्रेरित होकर ही यह युद्ध कर रहे थे? या केवल हिन्दू-धर्मकी रक्षा ही उनका लक्ष्य था, अथवा एक स्वाधीन राष्ट्रकी स्थापनाके लिए उनका उद्योग था? कभी कोई बड़ा भाव या लक्ष्य एकदम नहीं पका करता। मनुष्यकी मानसिक और उसके कारण उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण शक्तियोंकी उन्नतिके साथ साथ लक्ष्यके बाहिरी रूपमें भी परिवर्तन आता है। भारतमें व्यापार करनेका चार्टर लेनेके लिए जो अंग्रेज़ व्यापारी नम्रतापूर्वक मुग़ल-राजाओंके दरबारमें हाजिर हुए थे, उनके हृदयमें भारतके साम्राज्यका भाव छाया रूपमें भी न था, परन्तु हाँ, भारतसे आर्थिक लाभ उठानेका भाव अवश्य विद्यमान था। वही बीज बनकर भारतकी भूमिमें बोया गया। ज्यों ज्यों भारतकी कमज़ोरीसे अंग्रेज़ोंका उत्साह बढ़ता गया, त्यों त्यों उनका लक्ष्य भी फैलता गया। यहाँतक कि अन्तमें वह भारतकी पूर्ण पराधीनतामें परिणत हुआ। बीज रूपमें जो विचार कार्यके प्रारम्भका कारण बनता है, अनुकूल भूमि पाकर वही अन्तमें एक विशाल वृक्षके रूपमें परिणत हो जाता है।

शिवाजीका मूल विचार 'स्वाधीनता' था। यह ठीक है कि प्रारम्भिक शिक्षाके प्रभावसे शिवाजीका विशाल हृदय धर्म-भक्तिका निवासस्थान बन गया था, परन्तु वह धर्म-भक्ति 'स्वाधीनता'के मौलिक विचारकी केवल सहायिका हुई। बचपनसे ही जो एक व्यापी आदर्श, शिवाजीके अन्य सब विचारों या यत्नोंपर हावी मालूम देता है, वह 'स्वाधीनता' का है। शिवाजीके लिए दूसरेकी अधीनतामें रहना असम्भव था। हिन्दू-धर्ममें शिवाजीकी अगाध श्रद्धा थी। हिन्दू-धर्मकी पराधीनताका कारण, भारतमें

मुसलमानोंका राज्य था। इस कारण शिवाजीका प्रारम्भिक लक्ष्य मुसलमानोंकी अधीनतासे मुक्त होकर ऐसे राज्यकी स्थापना करना था, जिसमें हिन्दू-धर्म सुरक्षित हो। शिवाजीने प्रारम्भमें दुर्गोंपर जो छोटे छोटे आक्रमण किये, वह एक ओर स्वाधीनताके भावसे प्रेरित थे, तो दूसरी ओर मुसलमानोंके धर्म-विरोधी भावोंके विरोध-द्वारा प्रेरित थे। औरंगज़ेब और उसके सलाहकारों तथा सरदारोंकी हिन्दू-धर्म-विरोधिनी नीतिका ही परिणाम था कि देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई थी। शिवाजीका विद्रोह उसी प्रतिक्रियाका उग्ररूप था।

शिवाजीकी चतुरता और विक्रमकी पहली मुठभेड़ बीजापुरके सठियाये हुए राज्यके साथ हुई। बीजापुरकी दीवारें थोड़ीसी चोट खाकर ही गिरने लगीं। महाराष्ट्रकी सेनायें विजयपर विजय पाने लगीं। विजयने विजय-भावनाको और भी अधिक उत्तेजित कर दिया। शिवाजीके हृदयमें स्वभावतः जो स्वाधीनताकी चाह थी, उसके साथ हिन्दू-धर्मकी इस्लामके आक्रमणोंके प्रति प्रतिक्रिया-का मेल होकर जिस विद्रोह या क्रान्तिका आरम्भ हुआ था, सुलभ सफलताने उसे विस्तृत कर दिया। अनिश्चितसे विद्रोहके भावने निश्चत विजयाकांक्षा और हिन्दू-राज्य-स्थापनाका रूप ग्रहण किया। जो बीज केवल एक स्वतन्त्र जागीरकी स्थापनाके रूपमें बोया गया था, वह शीघ्र ही महाराष्ट्र-राज्यके आकारमें दिखाई देने लगा।

मुग़लोंके साथ टक्कर लगनेके समय शिवाजीके हृदयमें महाराष्ट्रमें एक हिन्दू-राज्यकी स्थापनाका भाव दृढ़ हो चुका था। उस भावमें भारतभरके एक हिन्दू-साम्राज्यकी कल्पना थी या नहीं, इसपर विवाद करना व्यर्थ है, क्यों कि यह मनुष्य-प्रकृतिके ही विरुद्ध है कि वह लाभकी आशा होनेपर अधिकसे अधिक लाभकी ही अभिलाषा न रखे। औरंगज़ेबके समयमें जितने विद्रोह खड़े हुए, उन सबमें और शिवाजीके विद्रोहमें बड़ा भारी भेद यह था कि जहाँ अन्य सब विद्रोह कल्पना और देश दोनोंमें

परिमित थे, वहाँ शिवाजीका विद्रोह वृद्धिशील था। जोधपुरका विद्रोह जोधपुरकी सीमासे बाहिर जानेका साहस नहीं करता था, पर शिवाजीकी तलवार चारों ओर बरसती थी। स्थानकी सीमा उसे बाँध नहीं सकती थी। शिवाजीकी मुद्राओंपर जो श्लोक लिखा रहता था, वह महाराष्ट्रकी बढ़ती हुए भावनाओंका अच्छा प्रतिबिम्ब था। वह निम्नलिखित था—

प्रतिपच्चन्द्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते।

प्रतिपदाके चाँदकी रेखाकी भाँति निरन्तर बढ़नेवाली, संसार-द्वारा सादर स्वीकार की गई, शाहजीके पुत्र शिवाजीकी यह मुद्रा कल्याणके लिए शोभायमान होती है।

इस श्लोकमें विशेष ध्यान देने योग्य शब्द 'वर्धिष्णु' है। शिवाजीकी हरेक कल्पना समयके साथ साथ बढ़ती गई। मुग़ल-बादशाहके साथ मराठोंका संघर्ष यहींसे प्रारम्भ होता है। इस स्थानपर यह देख लेना आवश्यक था, कि वह संघर्ष क्यों पैदा हुआ? वह केवल मराठा सरदारकी लूट-मारकी अभिलाषासे पैदा नहीं हुआ, और न अकस्मात् ही पैदा हुआ। शिवाजीका लक्ष्य वर्धिष्णु था। वह जागीरसे बढ़कर राज्यका और राज्यसे बढ़कर साम्राज्यका रूप धारण कर रहा था। एक ओर मुग़लोंका इस्लामी-साम्राज्य और दूसरी ओर महाराष्ट्रके हिन्दू-साम्राज्यकी कल्पना—दोनोंमें संघर्ष स्वाभाविक था।

संघर्षके लिए कारण विद्यमान ही थे। शिवाजीने मुलाना अहमदसे कल्याण नामका दुर्ग जीता था। उसे बीजापुरके साथ उलझा हुआ देखकर मुग़ल सेनाओंने कल्याणपर क़ब्ज़ा कर लिया था, इस अपराधकी सज़ा देनेके लिए शिवाजीने सेनाकी दो टुकड़ियोंको अहमदनगर और औरंगाबादके मध्यवर्ती स्थानपर छापे मारनेके लिए भेजा। दक्षिणका सूबेदार औरंगज़ेबका मामा शाइस्ताख़ाँ था। शाइस्ताख़ाँ एक पका हुआ बहादुर सेनापति

और शासक था। उसने पहाड़ी चूहोंको सज़ा देनेके लिए कुछ सेनायें भेजी। कहते हैं कि उनकी सेनाध्यक्षा राय बागिन नामकी एक स्त्रीको बनाया। स्त्रीको सेनापतित्व देकर उसने यह सूचित करना चाहा कि वह दक्षिणके सिपाहियोंको घृणा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता है। कहाँ विश्वविजयी मुग़ल सरकार और कहाँ नाटे कदके मराठे सरदारके नाटे नाटे घुड़-सवार। इन्हें तो एक औरत ही बस है। परन्तु यह नाटे घुड़-सवार बहुत कड़े निकले। वह साहसिक स्त्री कैद हो गई, और शाइस्ताखाँकी सेनाको मुँहकी खानी पड़ी।

मराठे घुड़सवार मुग़ल-राज्यपर छापे मार रहे हैं, यह समाचार औरंगज़ेब तक पहुँचा। उसे यह भी खबर मिली कि जो सेना उनके दमनको भेजी गई थी, वह नष्ट हो गई। औरंगज़ेबने शाइस्ता-ख़ाँको हुक्म भेजा कि केवल रक्षात्मक युद्धसे काम न चलेगा। तुम दक्षिणपर चढ़ाई करो और शिवाजीके जीते हुए प्रदेशोंको मुग़ल-राज्यकी सीमाओंमें मिला लो। शाइस्ताख़ाँकी सहायताके लिए जोधपुरके राजा जसवन्तसिंहको भेजा गया। दोनों प्रसिद्ध सेना-पतियोंकी अध्यक्षतामें, २५ फरवरी (१६६०) के दिन एक भारी मुग़ल-सेना शिवाजीको दण्ड देनेके लिए रवाना हुई।

हम सम्पूर्ण युद्ध-यात्रामें शाइस्ताखाँका साथ नहीं दे सकते, और न यहाँ उन सब प्रयत्नोंका ही वर्णन कर सकते हैं, जो उस आक्रमणको रोकनेके लिए शिवाजीकी ओरसे किये गये। संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि शिवाजीको मुग़ल-सेनाओंके सामनेसे बराबर हटना पड़ा। मुग़ल-सेनायें किलेके पीछे किला लेती गईं। कुछ ही महीनोंमें शाइस्ताख़ाँने पूना तकका मार्ग निष्कंटक कर लिया, और कोंकणके भी एक बड़े हिस्सेपर क़ब्ज़ा कर लिया। चाकणको सर करनेमें कुछ देर लगी, परन्तु अन्तमें वह भी मुग़लोंके हाथ आ गया। चाकणका सेनापति फिरंगजी नरसाल एक वीर लड़ाका था। शाइस्ताख़ाँने उस किलेके फतेह हो जानेपर फिरंगजीकी प्रशंसा की, और उसे अपनी सेनामें भर्ती करनेकी इच्छा प्रकट

की, परन्तु फिरंगजीने इन्कार कर दिया। शाइस्ताख़ाँने उसे सेना-सहित शिवाजीके पास लौट जानेकी आज्ञा दे दी।

लगभग दो वर्षतक शाइस्ताख़ाँ शिवाजीके अधिकारसे लिए हुए प्रदेशका मालिक रहा। इस बीचमें छोटी मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं। मराठा फौजकी टुकड़ियाँ मुग़लोंकी छावनियोंपर छापे मारती रहीं, नेताजीके घुड़-सवार शाइस्ताख़ाँको तंग करते रहे, परन्तु इससे दोनों शक्तियोंकी परिस्थितिपर कोई असर नहीं पड़ा। पूनेपर, चाकणपर, और कोंकणके एक बड़े भागपर शाइस्ताख़ाँका क़ब्ज़ा रहा। वह सेनापति शिवाजीकी राजधानी पूनामें डेरा डालकर पड़ा हुआ था। शिवाजीके रहनेके महलोंको पर्दे और कनातें लगाकर मुसलमान नवाबके रहनेके योग्य बनाया गया था। वहाँ बैठकर शाइस्ताख़ाँ शिवाजीके शेष किलोंको जीतनेके मन्सूबे बाँधा करता था।

मुग़ल-सेनापतिकी सुख-निद्रामें अकस्मात् ज़ोरदार धक्का लगा। रातके बारह बजे होंगे। रमज़ानके दिन थे। महलोंमें नींदका सन्नाटा था। केवल कुछेक बावर्ची सुबहके लिए खाना तैयार कर रहे थे। जिस महलमें नवाब सो रहा था, उसके पिछवाड़ेकी दीवार कुछ छोटी थी। कोई ४०० आदमी उस दीवारको लाँघ-कर महलके अन्दर घुस गये। पहला काम उन लोगोंने यह किया कि बावर्चीख़ानेमें जो रसोइये थे, उनके मुँहमें कपड़ा ठूँस दिया, या तलवारके घाट उतार दिया। रसोई-घरसे अन्तःपुरमें जानेके लिए एक छोटासा दरवाज़ा था। शाइस्ताख़ाँने पर्देको पूरा कर-नेके लिए उसे बन्द करवा दिया था। क्योंकि वह अपने पूरे हरम-के साथ पूनेमें विश्राम कर रहा था। कुछ आदमी उस दरवाज़ेमें लगी हुई ईंटोंको निकालने लगे।

ईंटें गिरनेसे जो आवाज़ हुई, उसने कुछ नौकरोंको जगा दिया। उन्होंने गहरी नींदमें सोये हुए नवाबको जगानेकी चेष्टा की। नवाबने आँखें खोले विना ही नौकरोंको चुप रहनेकी धमकी दी, और वह करवट बदलकर सो गया। इतनेमें दरवाज़ेमेंसे बहुत

सी ईंटें निकल गईं, जिससे अन्दर तक जानेका मार्ग बन गया। शिवाजी और चिमनाजी बापू २०० सिपाहियोंके साथ उस मकानमें धड़ाधड़ कूद पड़े। अन्तःपुर पर्दों और कनातोंसे भरा पड़ा था। उन्हें तलवारसे चीरते फाड़ते वह लोग नवाबके शयनागारमें पहुँच गये। डरी हुई औरतोंने शाइस्ताखाँको जगाया, परन्तु वह हथियार सँभाले, इससे पूर्व ही शिवाजीने उसपर तलवारसे वार किया। शाइस्ताखाँ अन्धेरेके कारण बच गया, पर उसका अँगूठा उड़ गया। इतनेमें किसी औरतने कमरेकी रोशनी गुल कर दी। अन्धेरेमें दोस्त और दुश्मनको पहिचानना कठिन हो गया। अवसरसे लाभ उठाकर दो औरतोंने शाइस्ताखाँको घसीटकर कमरेसे बाहिर छुपा दिया।

इधर मराठे सिपाहियोंने हत्याकाण्ड जारी रखा। जो सामने आया, मारा गया। पहरेदार सोये पड़े थे। उन्हें चिमनाजीने ठोकरें मार-मारकर यह कहते हुए जगाया कि क्या तुम इसी प्रकार पहिरा देते हो? जो जागा वही मारा गया। शाइस्ताख़ाँका पुत्र अबुल फतेह पिताकी सहायताके लिए लपका। उसने दो शत्रुओंको मार गिराया, परन्तु इससे आगे न चल सका और शत्रुकी खड्गका शिकार हो गया। इसी मार-काटमें नवाबका एक कप्तान भी काम आया।

अन्धेरा बहुत गहरा था। शाइस्ताखाँकीसी लम्बाई चौड़ाईका एक मुसलमान सिपाही दीवार चढ़ रहा था। उसे शाइस्ताखाँ समझकर मराठोंने काट डाला। शिवाजीको जब समाचार मिला, तो काम पूरा हुआ जानकर उसने कूचकी आज्ञा दे दी। जितनी देरमें मुसलमान फौज यह समाचार पाकर कि उनके सेनापतिपर आक्रमण हो रहा है, सहायताके लिए आती, मराठा-सेना अपने नेताके साथ मुख्य द्वारसे निकलकर सिंहगढ़की ओर रवाना हो गई।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि मुसलमान पहरेदारों द्वारा सुरक्षित राजमहलमें यह मराठे सिपाही कहाँसे टपक पड़े। शाइ-

स्ताखाँने पूनाकी रक्षाका बहुत कड़ा प्रबन्ध किया था। अफ़ज़ल-ख़ाँकी दुर्गतिकी स्मृतिने उसे बहुत सावधान बना दिया था। उसने अपनी नौकरीमें जितने मराठे घुड़सवार थे, उन सबको बरख़ास्त कर दिया था। शहरके पहरेदारोंको कठोर आज्ञा थी कि बिना भलीप्रकार देख-भालके किसी हिन्दूको अन्दर न आने दें। कुछ मराठे पैदल सिपाही इस लिए रहने दिये थे कि सेनाकी ताकत बहुत कम न हो जाय। ऐसे फौलादी पहरेमें नवाबको आशंका भी नहीं हो सकती थी कि कोई दुश्मन घुस आयगा।

परन्तु मराठा सरदारकी चतुराईने सब रुकावटोंको जीत लिया। शिवाजी और उसके साथी वेष बदलकर किसी हिन्दू पैदल सिपाहीकी बारातके रूपमें पूनामें प्रविष्ट हुए। अन्धेरा होनेके समय धूमधामसे बारात निकली। ढोल और नफ़ीरीके शोरमें जब बाराती लोग राजमहलके पाससे गुज़रे, तो शिवाजी और उसके साथी चुपकेसे उससे अलग हो गये, और दीवार फाँदकर महलोंमें घुस गये।

चतुराई और निर्भय वीरताके इस करिश्मेने जहाँ शिवाजीकी ख्याति और प्रतिष्ठाको बहुत बढ़ा दिया, वहाँ शत्रुओंके हृदयमें त्रास पैदा कर दिया। हिन्दू प्रजा तो उसे देवता समझने लगी। कोई स्थान उससे अगम्य नहीं। कोई शत्रु उसकी चोटसे बच नहीं सकता। हिन्दू प्रजाकी दृष्टिमें शिवाजी और शिवजीमें कोई भेद न रहा। मुग़ल-सेनाओंके हृदयोंमें एक अवर्णनीय आतंक छा गया। यदि महलोंमें सोया हुआ सम्राट् औरंगज़ेबका मामा सुरक्षित नहीं, तो बेचारे साधारण सिपाहियोंकी बात ही क्या है? उन्हें हर घर और दीवारके पीछे शिवाजी दीखने लगा।

यह घटना ५ अप्रैल १६६३ के दिन हुई। बादशाह औरंगज़ेब काश्मीरकी सैरके लिए रवाना हो रहा था। उस समय यह समाचार दरबारमें पहुँचा। लज्जा और क्रोधसे बादशाह और उसके सलाहकारोंके हृदय क्षुब्ध हो गये। शाइस्ताख़ाँ दक्षिणकी सूबे-

दारीके अयोग्य समझा जाकर बंगालमें नियुक्त किया गया। दक्षिणकी सूबेदारी राजकुमार मुअज़्ज़मको दी गई। बेचारा शाइस्ताख़ाँ दुःख और शर्मका मारा हुआ पूनेसे औरंगाबादके लिए विदा हो चुका था। नवाबमें और उसके सहायक राजा जसवन्तसिंहमें इस घटनासे वैमनस्य इतना बढ़ गया था कि जब राजा नवाबके पास सहानुभूति प्रकट करने आया, तो नवाबने उसे ताना देते हुए कहा कि 'जब दुश्मनने मुझपर आक्रमण किया, तब मैं तो यही समझा था कि तुम दुश्मनके हाथों मर चुके हो।' मुसलमान सेनामें यह किंवदन्ती फैली हुई थी कि शिवाजीने राजा जसवन्तसिंहके साथ मिलकर ही नवाबपर आक्रमण किया था। इस प्रकार शाइस्ताख़ाँ दक्षिणसे सज़ा पाकर विदा हुआ।

२०—सूरतपर धावा

शाइस्ताख़ाँको सज़ा देकर शिवाजीकी हिम्मत सौगुना हो गई। मराठे सिपाहियोंको विश्वास हो गया कि आखिर मुग़ल-सेना भी अजेय नहीं है, और मुग़ल-सेनापति भी मनुष्य हैं। शिवाजीने शत्रुके घरमें घुसकर लड़ाई लड़नेका निश्चय किया। उस समय सूरतकी बन्दरगाह बहुत समृद्ध हालतमें थी। वहाँ अंग्रेज़ों और डचोंके कारख़ाने थे। अरबको जानेवाले मुसलमान यात्री सूरतसे जहाज़पर सवार होते थे। पश्चिमके साथ व्यापारका वह द्वार था। वहाँके धनी मशहूर थे। शिवाजीने मुग़ल-सेनापतियोंके आक्रमणोंका उत्तर सूरतपर प्रत्याक्रमणद्वारा देनेका मनसूबा बाँधकर अपने दूतोंद्वारा भौगोलिक और नैतिक स्थितिका पता लगाया। मशहूर तो यह है कि शिवाजी स्वयं फकीरके भेसमें सूरत पहुँचा और उसने आक्रमणका मान-चित्र तैयार किया।

वह ख़तरेका काम था। अपने केन्द्रसे सैकड़ों मीलकी दूरीपर शत्रुके पेटमें घुस जाना, और औरंगज़ेब जैसे ज़बर्दस्त और ज़ह-

शीले आदमीको छेड़ना आगसे खेलनेके समान था, परन्तु साहस ही सफलताका मूल है। शिवाजी कब अपनी ४,००० घुड़सवारोंकी सेना लेकर रवाना हुआ, और कब सूरतके पास पहुँचा, मुग़लोंको उसका पता न चला, जबतक मराठा-सेनायें सूरतसे २८ मीलकी दूरीपर नहीं पहुँच गईं। ५ जनवरी १६६४ के प्रातःकाल शहरमें ख़बर फैल गई कि शिवाजी मराठा शहरको लूटनेके लिए आ रहा है। चारों ओर त्रास फैल गया। हरेकको जान बचानेकी चिन्ता हो गई। तापती नदीके किनारेपर सूरतका किला था। वह काफ़ी मज़बूत था। धनी लोग रक्षाके लिए उधर भागने लगे। किलेदारने भी खूब रिश्वत खाई। जिसने मुट्ठी गर्म की, उसे किलेमें ठौर मिल गया। ग़रीब बेचारे घर छोड़-छोड़कर भागने लगे।

शहरका प्रबन्ध इनायतख़ाँ नामक सरदारके हाथमें था। उसका साहस टूट गया। वह भागकर किलेमें छुप गया, और नगरवासियोंको शत्रुके हाथोंमें सौंप गया। शिवाजीने गवर्नरके पास एक दूतद्वारा यह सन्देश भेजा था कि यदि वह शहरके तीन चार धनी व्यापारियोंको साथ लेकर आये, और मेरी माँगको पूरा कर दे, तो मैं बाहिरसे ही लौट जाऊँगा, अन्यथा शहरमें घुसकर अपनी माँग पूरा करनेके सिवा कोई उपाय नहीं। इस सन्देशका गवर्नरकी ओरसे कोई उत्तर नहीं मिला। मराठा कैम्पमें यही ख़बर पहुँची कि इनायतख़ाँ, और सब धनी व्यापारी किलेमें जा छुपे हैं, और शहरको अरक्षित छोड़ गये हैं।

शिवाजीकी सेनाओंने सूरतको खूब लूटा। ४ दिन और ४ रातें सूरत-निवासियोंके लिए प्रलयकी रातें थीं। कई धनियोंके घरोंसे जवाहिरातकी भरी हुई बोरियाँ लूटी गईं। लूट और आगका साथ है। अग्निकी ज्वालाओंने रातको दिन बना दिया। रुपये जवाहिरात और गहने खुले हाथों लूटे गये। करोड़से अधिक रुपयोंका माल मराठा सरदारके हाथोंमें पड़ा।

शिवाजीने अंग्रेज़ और डच व्यापारियोंको भी कहला भेजा कि रुपया लेकर उपस्थित हों, अन्यथा उनके कारखानोंको लूट लिया जायगा। योरपियन लोगोंने अपनी लाज रख ली। उन्होंने कर देनेसे इन्कार कर दिया और वे कारखानेकी रक्षाके लिए सन्नद्ध हो गये। शिवाजीने थोड़ीसी रकमके लिए बहुतसी सेनाओंको कटवाना उचित न समझा, और कारखानोंको छोड़ दिया। लूटके समय शाही गवर्नर इनायतखाँ, और विदेशी व्यापारियोंके व्यवहारमें जो भेद दिखाई दिया, उसने दोनों जातियोंके भविष्यकी सूचना दे दी। दिन प्रतिदिन एकका कदम पीछे ही पीछे हटता गया, और दूसरेका आगे ही आगे बढ़ता गया।

५ वें दिन शिवाजीको ख़बर मिली कि मुग़ल-सेना सूरतको बचानेके लिए आ रही है। वह आँधीकी तरह आया था, आँधीकी तरह ही चला गया। लूटका सब माल घोड़ोंपर लादकर मराठा सेनाने वायुके वेगसे प्रस्थान किया, और इससे पूर्व कि मुग़ल-सेना उसका रास्ता रोकती, लूटका सब माल रायगढ़के किलेमें सुरक्षित कर दिया गया। सूरतकी लूटके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न सम्मतिके रखनेवाले लेखकोंने अपनी सम्मतियोंके अनुसार शिवाजीको विशेषित किया है। उस समयके मुसलमान लेखकोंने तो इतिहासमें शिवाजीको 'लुटेरा' उपनामसे ही याद किया है। कुछ योरपियन लेखकोंने सूरतपर आक्रमण करनेके कारण शिवाजीको बहुत दोषी ठहराया है। उन लोगोंकी राय है कि यदि मुग़ल लोग सेनायें लेकर शिवाजीके किलोंपर चढ़ आयें, और उन्हें लूट लें, तो यह युद्ध है, परन्तु यदि शिवाजी उनके राज्यके किसी शहरपर चढ़ जाय, और वहाँसे धन इकट्ठा करे, तो वह लूट है। इस बातपर बहुत जोर दिया जाता है कि मराठा सिपाहियोंने सूरतके घरोंको आग लगाई। युद्धमें शत्रुके शहरको क्या, अपने शहरों तकको आगके समर्पण किया जाता है। युद्ध स्वयं एक बुरी वस्तु है—परन्तु जब युद्ध आरम्भ हो जाय, तो लूटना उसका अंग समझा जाता है। योरपके महासंग्रामके मध्यमें तथा उसके

पीछे किस देशने शत्रुके देशको लूटनेका प्रयत्न नहीं किया? योरपके जले हुए घर और उजड़े हुए गाँव इसके बातकी गवाही दे रहे थे कि युद्ध सब जगह एक ही नियमोंसे लड़ा जाता है। फिर शिवाजीके समयकी राजनीति और युद्धनीति ही दूसरी थी। उसमें तो औरंगज़ेबका अपने सब भाई-भतीजोंकी हत्या कर डालना भी जायज़ समझा जाता था। जब मुग़लोंने गोलकुण्डा रियासतको जीता था, तब लूटनेमें क्या कसर छोड़ी थी? अच्छे और बुरेका पैमाना हर समयके लिए एक होना चाहिए। हमें तो केवल यह देखना है कि शिवाजी और मुग़ल-सम्राटमें लड़ाई थी या नहीं? यदि थी तो दूसरा प्रश्न यह है कि क्या सूरत मुग़लोंकी सल्तनतके अन्तर्गत एक शहर था या नहीं? यदि इस प्रश्नका उत्तर भी हाँमें है, तो उस समयकी युद्ध-नीतिके अनुसार शिवाजीका सूरतपर आक्रमण करना भी सर्वथा उचित था।

सूरतसे लौटनेपर शिवाजीको शाहजीके मरनेका समाचार मिला। यह ठीक है कि शिवाजीके यशने शाहजीके यशको ढक लिया है, परन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं कि शाहजी एक साधारण आदमी था। शाहजीसे पहले हिन्दू रईस मुसलमान शासकोंके सहायक समझे जाते थे। कमसे कम दक्षिणमें उनकी स्वाधीन सत्ता नहीं रही थी। बीजापुर या गोलकुण्डाकी रियासतोंकी फौजोंमें पाँच हज़ारीकी पदवी मिल जानेसे उनका जीवन धन्य हो जाता था। परन्तु शाहजीने एक नई शान पैदा की। वह बड़ेसे बड़े मुसलमान सेनापतियोंसे टक्कर लेने लगा। शाहको गद्दीसे उतारने और गद्दीपर बिठानेवाले राज-कर्त्ताओंमें उसका नाम आ गया। वह दक्षिणके कुछेक भाग्य-विधाताओंमें गिना जाता था। कहा जा सकता है कि शाहजीने शिवाजीके लिए स्वाधीनताका मार्ग तलाश किया। यदि वह मार्ग तैयार न करता, तो शिवाजी सरपट न भाग सकता।

पिताकी मृत्युने पुत्रको बहुत दुःखित किया, परन्तु वह दुःख जीजाबाईके पति-विरहजन्य दुःखके सामने कुछ नहीं था। यद्यपि

मानिनी जीजाबाईने दूसरी पत्नीके आजानेपर शाहजीके पास रहना छोड़ दिया था, तो भी उसका सती-धर्म तो अटूट ही था। वह पतिके साथ चितारोहणके लिए तैयार हो गई, परन्तु शिवाजीने आँसुओंकी झड़ीसे माताके पाँव धोते हुए प्रार्थना की कि जैसे अब तक तुमने संरक्षिका देवी बनकर स्वाधीनताके कार्यमें मेरी रक्षा की है, वैसे ही आगे भी करती रहो। तेजस्विनी क्षत्राणी वीर-पुत्रकी प्रार्थनाको न टाल सकी। वह पुत्रके लिए संरक्षिका देवी बनी रहनेके लिए जीवित रहकर सच्ची सतीकी पदवीको प्राप्त हुई।

शाहजीके पूर्व पुरुष मालोजीको अहमदनगरकी ओरसे 'राजा' की उपाधि मिली हुई थी। शाहजीके मरनेपर शिवाजीने उस उपाधिको अपने नामके साथ लगा लिया, और रायगढ़में एक टकसालकी स्थापना की, जहाँसे 'राजा शिवाजी' के नामसे सिक्के प्रचारित होने लगे।

२१—शेर पिंजरेसे कैसे छूटा?

शाइस्ताखाँकी अपमानजनक हारका समाचार अभी ठंडा नहीं हुआ था कि लूटकी खबर औरंगज़ेबके दरबारमें पहुँच गई। इस खबरने तो आलमगीरके क्रोधका पारा कई डिग्री चढ़ा दिया। उसने शिवाजीके दमनका दृढ़ निश्चय कर लिया।

औरंगज़ेबने शिवाजीको दण्ड देनेके लिए साम्राज्यकी पूरी शक्तिका संग्रह किया। सेनाकी अध्यक्षताके लिए मिर्ज़ा राजा जयसिंह और दिलेरखाँको चुना गया। यह सर्वसम्मत बात थी कि औरंगज़ेबके पास राजा जयसिंहकी अपेक्षा अधिक समझदार और अनुभवी दूसरा सेनापति नहीं था। राजा जयसिंह नीतिज्ञ भी था और वीर भी। दिलेरखाँ एक बहादुर और अनुभवी योद्धा था। उन दोनोंको शिवाजीके शासनके लिए नियुक्त किया गया।

सेना और धनके द्वार खोल दिये गये कि जितना चाहो उतना लो।

राजा जयसिंहने शिवाजीको दबानेके लिए बड़ी चतुरतासे तैयारी आरम्भ की। साम दान दण्ड और भेद—सभी नीतिके अंगोंको काममें लाकर शिवाजीके सब शत्रुओंको अपने पक्षमें खेंच लिया। बीजापुरको भयसे, हिन्दू जागीरदारोंको लोभसे, और शिवाजीके कुछ सरदारोंको रिश्वतसे अपनी ओर मिलाकर या निकम्मा बनाकर जयसिंहने १४ मार्चके दिन आक्रमण प्रारम्भ किया।

इतने दुश्मनोंसे लड़ना कठिन था। चारों ओरसे नई रियासत-पर शत्रुओंकी घटासी चढ़ रही थी। फिर भी शिवाजीने हिम्मत नहीं हारी। युद्ध आरम्भ किया। जयसिंहने पूनाको केन्द्र बनाकर चारों ओर सेनाओंका जाल फैला दिया। शिवाजीने मैदानको छोड़कर पहाड़ी किलोंपर लड़ना ही उचित समझा और वह पुरन्द-रके किलेको विशेष यत्नसे सुरक्षित करके शत्रुके आक्रमणकी प्रतीक्षा करने लगा। जयसिंहने भी एक बहादुर सेनापतिकी भाँति शेरके गढ़पर चढ़ाई करनेका संकल्प किया। पुरन्दर ही संग्रामका केन्द्र बन गया। मुग़ल-सेनाओंने अपनी संपूर्ण शक्तिका संग्रह करके पुरन्दरको घेर लिया। दोनों ओरसे असाधारण वीरता दिखाई गई। मराठे जी तोड़कर लड़े। मुग़ल-सेना धन और जनकी उपेक्षा करके मोर्चेपर मोर्चा लेती गई। मराठा-सेनाओंने चारों ओर फैलकर पुरन्दरपर आक्रमण करनेवाली सेनाओंको दिक करने और घेरेको छोड़ भागनेके लिए बाधित करनेमें कोई कसर न छोड़ी; परन्तु राजा जयसिंहके हाथमें मराठोंसे कई गुना अधिक फौजी शक्ति थी। मुग़ल-सेनाकी टुकड़ियाँ भी मैदानों और पर्वतोंपर फैल गईं, और मराठा-सेनाओंको आश्रय ढूँढ़नेके लिए बाधित करने लगीं। इधर पुरन्दरकी रक्षाका सबसे ज़बर्दस्त मोर्चा, जिसका नाम वज्रगढ़ था, दिलेरखाँके हाथ आ गया। पुर-न्दरकी रक्षा करना असम्भवसा प्रतीत होने लगा। तब किलेके

सेनापति मुरार बाजी प्रभुने प्राणोंकी बाज़ी लगाकर किलेकी रक्षा करनेका निश्चय किया। केवल ७०० चुने हुए सिपाहियोंको साथ लेकर वह वीर दिलेरख़ाँके ५,००० सिपाहियोंपर भूखे बाघकी तरह टूट पड़ा। वह पाँच हजार सिपाही उन मुट्ठीभर मराठोंके वेगको न रोक सके। तलवारोंकी धारसे रास्ता साफ़ करते हुए, और मरे हुए शत्रुओंके ढेरपर पाँव रखते हुए वह बहादुर आगे ही आगे बढ़ते गये, यहाँतक कि दिलेरख़ाँके डेरेके सामने जा पहुँचे। उन सबके आगे वीरशिरोमणि बाजी प्रभुकी तलवार चमक रही थी। उनका रास्ता सैकड़ों शत्रुओंकी लाशोंसे भरपूर था।

चारों ओरसे मुग़ल-सेनाओंके शस्त्र बरस रहे थे, मराठे सिपाही कट-कटके गिर रहे थे, परन्तु बचे हुए वीर आगे ही आगे बढ़ते जाते थे। दिलेरख़ाँ बहादुर था। उसने जब खूनसे रँगी हुई तलवार हाथमें लिए बाजी प्रभुको अपनी ओर झपटते देखा, तब ललकारकर कहा कि 'ऐ बहादुर सरदार, अगर तू अपनी तलवार रख दे तो मैं तेरी प्राण रक्षा करूँगा, और ऊँचे दर्जेकी नौकरी दिलवा दूँगा।' बाजी प्रभुने इस ललकारका जवाब तलवारसे दिया, और दिलेरको ताककर वार किया, परन्तु तलवार दिलेर तक पहुँचती, इससे पूर्व ही दिलेरके छोड़े हुए तीरसे घायल होकर अमर वीर बाजी प्रभु भूमिपर गिर पड़ा। उसके साथ ३०० मावले उसी स्थानपर धराशायी हुए।

बाजी प्रभुकी मृत्युका समाचार शीघ्र ही किलेकी रक्षक सेनामें पहुँच गया। किसी किसीने कायरताकी सलाह देते हुए किलेको शत्रुके अर्पण कर देनेकी बात कही, परन्तु सर्व साधारण वीरोंका यही उत्तर था कि क्या हुआ अगर एक बाजी प्रभु मर गये, हम सभी बाजी प्रभुके स्थानापन्न बननेको तैयार हैं, किलेपर शत्रुका अधिकार न होने देंगे।

सिपाही वीरतासे लड़ते रहे, परन्तु शिवाजीकी तीव्र आँखोंने देख लिया था कि अब अड़ना व्यर्थ है। पुरन्दरपर शत्रुका क़ब्ज़ा होनेमें दिनोंकी ही देर थी। जयसिंहके सरदार चारों ओर फैले

हुए थे, और मराठा सेनाओंको दिक़ कर रहे थे। लड़ाईको देरतक चलाना असम्भव था। तब शिवाजीने जयसिंहके पास सुलहका सन्देश भेजा। पहले तो जयसिंह अनसुनी करता रहा, परन्तु जब शिवाजीके दूतने उसे विश्वास दिलाया कि शिवाजीके हृदयमें कोई छल नहीं है, और जयसिंह एक हिन्दू होनेसे अफज़लखाँ या शाइस्ताखाँकी कोटिमें नहीं आ सकता, तो जयसिंह शिवाजीसे सुलहकी बातचीत करनेके लिए तैयार हो गया।

शिवाजीको हार माननी पड़ी। औरंगज़ेबकी बन आई। उसने बहुत कड़ी शर्तें पेश कीं। मिर्ज़ा जयसिंहने बीचमें पड़कर किसी तरह मामलेको सुलझा दिया। शिवाजीने वह सब किले जो मुग़लोंसे या अहमदनगरसे जीते थे, मुग़लोंको वापिस कर दिये। केवल १२ किले उसके पास रहे। इस निर्णयके अनुसार ३२ किलोंपर फिरसे मुग़लोंका झण्डा फहराने लगा। शिवाजीने बीजापुरसे जो कुछ छीना था, वह उसीके पास रहा, और उसे अधिकार दिया गया कि वह आगे भी बीजापुरसे इलाके जीत सकता है, और उन इलाकोंसे चौथ और सरदेसमुखी वसूल कर सकता है। शिवाजीने बीजापुरको जीतनेमें जयसिंहकी सहायता करनेका वादा किया। शिवाजीका पुत्र सम्भाजी मुगल-सेनामें पाँच हज़ारीकी पदवीका सरदार बनाया गया। शिवाजीकी अधीनतासे प्रसन्न होकर बादशाहने खिलअत भेजी, और पुराने अपराधोंकी माफीका विश्वास दिलाया।

इस सन्धिके पीछे कुछ समय तक शिवाजीने बीजापुरपर आक्रमण करनेमें राजा जयसिंहका साथ दिया, परन्तु आक्रमणमें पूरी सफलता न हुई, इस कारण सब आक्रमणकारी एक दूसरेपर दोष फेंकने लगे। राजा जयसिंहने भी समझा कि जब तक शिवाजीका हृदय पूरी तरह मुग़लोंके साथ न होगा, तब तक उससे किसी प्रकारकी सहायता पूर्ण रूपसे मिलना असम्भव है। औरंगज़ेबको फुसलाकर और शिवाजीको समझाकर जयसिंहने यह निश्चय किया कि शिवाजी दिल्ली जाकर मुग़ल-दरबारमें हाज़िर

हो, और मित्रताके वन्धनको दृढ़ करे। शिवाजीके हृदयमें जय-सिंहके लिए वीरोचित मान था। वीर वीरको खूव समझता है। औरंगज़ेवकी दाहिनी भुजा मिर्ज़ा जयसिंह चतुर भी था, और वीर भी। शिवाजीने उसे पहिचान लिया था, और समझ लिया था कि जयसिंहके साथ खेला नहीं जा सकता। जिस समय जय-सिंह महाराष्ट्रपर चढ़ाई करके आया, शिवाजीने फारसीमें उसे एक कवितामय पत्र लिखा था। वह पत्र ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। वह एक प्रकारसे शिवाजीकी उस समयकी मनोवृत्तिका परिचायक है। दोनों वीरोंके परस्पर सम्वन्धोंको प्रकट करनेके लिए हम उसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत करते हैं। प्रारम्भ इस प्रकार है—

"ऐ सरदारोंके सरदार, राजाओंके राजा, भारतोद्यानकी क्यारि-योंके माली, ऐ रामचन्द्रके चैतन्य हृदयांश, तुझसे राजपूतोंकी गर्दन उन्नत है, तुझसे वावरके वंशकी महिमा वढ़ रही है, सौभाग्य तेरा साथ देता है। ऐ सौभाग्यशाली वुज़ुर्ग वीर, शिवाजीका प्रणाम तथा आशीर्वाद स्वीकार कर।

"मैंने सुना है कि तू मुझपर आक्रमण करने आया है, और दक्षिणको विजय करेगा। हिन्दुओंके हृदय तथा रक्तसे तू संसारके सामने रक्त-वर्ण हुआ चाहता है। पर तुझे यह मालूम नही कि यह लाली नही, कालिमा है, क्योंकि इससे देश तथा धर्मपर आफत आ रही है।

"यदि तू अपने लिए दक्षिणको जीतने आता, तो मेरा सिर और आँखें तेरा विछौना हो जाते।.........पर तू तो भले मानु-सोंको धोखा देनेवाले औरंगज़ेवके वहकावेमें पड़कर आया है। अव मै नही जानता कि तेरे साथ कौन खेल खेलूँ। यदि मै तुझसे मिल जाऊँ, तो मर्दानगी नहीं।...........और अगर मैं तलवार तथा कुठारसे काम लेता हूँ, तो दोनों ओर हिन्दुओंको हानि पहुँचती है।.................।यह नहीं चाहिए कि तू हम लोगोंसे युद्ध करे, और हिन्दुओंको धूलमें मिलावे।...........यदि तेरी

तीव्र कृपाण पैनी है, और यदि तेरे कूदनेवाले घोड़ेमें दम है, तो तुझे चाहिए कि धर्मके शत्रुपर आक्रमण करे, इस्लामकी जड़को खोदे।......................मैं चाहता हूँ कि हम लोग परस्पर बातचीत कर लें, जिसमें कि व्यर्थ दुःख तथा श्रम न झेलें। यदि तू चाहे तो तुझसे साक्षात् करने आऊँ और तेरी बातोंका भेद श्रवण-गोचर करूँ।"

इस पत्रसे शिवाजीका हृदय प्रतिबिम्बित होता है। वह जय-सिंहके गुणोंको स्वीकार करता है, और उसे अपनी ओर लाना चाहता है। जयसिंह और शिवाजीके परस्पर सम्बन्धोंमें यही विशेषता है कि दोनों एक दूसरेका आदर करते है, दोनों एक दूसरेसे डरते हैं, और दोनों ही एक दूसरेको अपनी ओर खेंचना चाहते है। जयसिंहने जब शिवाजीको सलाह दी कि वह औरंग-ज़ेबके दरबारमें हाज़िर हो जाय, तो केवल लिहाज़से उसे दिलपर पत्थर रखकर मानना पड़ा। शिवाजी आगरे जानेके लिए तैयार हो गया। जयसिंहने उसे राजपूतका वचन दिया कि औरंगज़ेबके दरबारमें उसका बाल भी बाँका न होगा, और अपनी बातपर विश्वास जमानेके लिए अपने पुत्र रामसिंहको साथ कर दिया। कुछ सप्ताहकी यात्राने शिवाजीको आगरेके समीप पहुँचा दिया। वहाँ औरंगज़ेबकी ओरसे मुख़लिसख़ाँ नामके एक घटिया अफ़स-रने शिवाजीका स्वागत किया। जयसिंहने शिवाजीको आशा दिलाई थी कि उसका दरबारमें वैसा ही स्वागत होगा, जैसा एक राजाका होना चाहिए। मुख़लिसख़ाँद्वारा स्वागत घोर अपमानके समान था। शिवाजीने अपमानको अनुभव किया, परन्तु उसे कड़वा घूँट समझकर पी लिया, और वह दरबारके लिए रवाना हो गया। वहाँ जानेपर देखा कि दूसरा अपमान तैयार है। शिवाजीने दरबारमें हाज़िर होकर ३० हज़ार मुहरोंकी भेंट की। औरंगज़ेबने भेंट स्वीकार करते हुए शिवाजीको पाँच हज़ारियोंमें बैठनेका हुक्म दिया। शिवाजी एक देशका स्वतन्त्र राजा था, कई पाँच हज़ारी उसके नौकर थे, उसका लड़का सम्भाजी इससे पहले ही पाँच हज़ारी

बनाया जा चुका था, ऐसी दशामें पराजयसे लाभ उठाकर उसे पाँच हज़ारियोंमें भेजना जान-बूझकर तिरस्कार करनेके अतिरिक्त कुछ नही था। मानी हृदय मृत्युको तिरस्कारसे कहीं वेहतर समझते है। शिवाजीका अन्तःकरण मानो नेज़ेसे छिद गया हो, उसने दरबारमें ही रामसिंहको उलहना सुना दिया। औरंगज़ेब पहलेहीसे उद्यत था। शिवाजीके क्रोधपूर्ण शब्दोंको समस्त दरबारने सुना। इसी बहानेसे विना कोई खिलअत दिये औरंगज़ेबने मराठा सरदारको दरबारसे रवाना कर दिया, और शहरसे बाहिर ताजमहलमें सिपाहियोंके ज़बर्दस्त पहरेमें रखनेका हुक्म दिया। शिवाजी एक प्रकारसे मुग़ल बादशाहका कैदी हो गया। थोड़ी देरके लिए शिवाजीने जो औरंगज़ेबका विश्वास कर लिया, उसका परिणाम कारागार हुआ। ऐसी ही घटनायें है, जो मनुष्यके हृदयको अविश्वासी वनाती हैं।

अब तो मानो दो कूट-नीतिज्ञोंकी चतुराईकी दौड़ आरम्भ हो गई। औरंगज़ेबकी धूर्तता तो प्रसिद्ध ही थी, शिवाजीने भी हिन्दू शासकोंमें एक नये सम्प्रदायका आविष्कार किया था। शिवाजीसे पूर्व हिन्दू शासक लड़ना तो जानते थे, परन्तु धूर्तताका जवाब धूर्ततासे देना नही जानते थे। शिवाजी 'कण्टकेनैव कण्टकम्' के उसूलके माननेवाले थे। उन्हें धूर्ततासे वन्दी वनाया गया, उन्होंने धूर्ततासे ही उत्तर देनेका निश्चय किया। शिवाजीके जेलसे छूटनेका किस्सा इतिहासके अद्भुत चतुराईके किस्सोंमेंसे एक है।

शिवाजीने औरंगज़ेबसे प्रार्थना की कि यदि मुझे जेलमें रखना मंजूर है, तो कमसे कम मेरी सेनाओंको देश वापिस जानेकी अनुमति दे दी जाय। औरंगज़ेबने इस प्रार्थनाको ग़नीमत समझा। वह शिवाजीको निःसहाय कर देना चाहता था। सेनाओंको महाराष्ट्र लौट जानेकी आज्ञा मिल गई। अब शिवाजी अपने मुसलमान जेलर फ़ौलादख़ाँसे कहने लगे कि अब मै बहुत खुश हूँ, वापिस नहीं जाना चाहता। औरंगज़ेब बहुत सन्तुष्ट हो गया, और शिवाजीपर पहरेकी कड़ाई कम हो गई। कुछ दिन पीछे

शिवाजीने औरंगज़ेबको उदारतापूर्ण सलूकके लिए बहुत बहुत धन्यवाद दिये और प्रार्थना की कि परिवारको भी आगरे आनेकी इजाज़त दे दी जाय। औरंगज़ेबका दिल और भी हलका हो गया।

कुछ दिन पीछे औरंगज़ेबको ख़बर मिली कि शिवाजी बहुत सख्त बीमार है। वैद्य और हकीमोंका ताँता लग गया। एक एक दिनमें कई कई हकीम आकर नब्ज़ देखने लगे। उनमेंसे बहुतसे हकीम वेषधारी मराठे भी थे। औरंगज़ेब दिलमें प्रसन्न हुआ कि चलो अच्छा हुआ, पहाड़ी चूहा यों ही निबट जाय तो अच्छा है, परन्तु कुछ दिनों बाद उसे समाचार मिला कि शिवाजी आहिस्ता आहिस्ता नीरोग हो रहा है। इसी सिलसिलेमें फ़ौलादख़ाँकी मार्फत बादशाहके पास यह प्रार्थना पहुँची कि शिवाजीको नीरोग होनेकी प्रसन्नतामें नगरवासी मित्रोंके पास मिठाई फल आदिके टोकरे भेजनेका अधिकार दिया जाय। बादशाहने इजाज़त दे दी, परन्तु फ़ौलादख़ाँको ख़ास हिदायत कर दी कि टोकरोंको बहुत सावधानतासे देखकर भेजा जाय। कई सप्ताह तक मिठाइयों और फलोंकी टोकरियोंका आना जाना जारी रहा। जेलरने पहले तो बहुत कड़ा निरीक्षण किया, परन्तु पीछेसे ढीला कर दिया।

इसी बीचमें एक दिन प्रातःकाल पहरेदारोंको ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे घरमें कुछ सुनसान है। अन्दर जाकर देखा तो शिवाजी और सम्भाजीकी चारपाइयोंको घिरा हुआ पाया। यह समझकर कि शायद क़ैदी फिर बीमार हो गया, पहरेदार वापिस चले गये। दिन चढ़ आया; पर निःस्तब्धताका भंग न हुआ। तब तो सन्देह पैदा होने लगा। अन्दर जाकर देखा तो न शिवाजी हैं, और न सम्भाजी। रातके समय मिठाईके जो टोकरे शहरमें भेजे गये थे, उनमें बैठकर पिता-पुत्र फरार हो गये।

औरंगज़ेबपर तो मानो वज्रपात हो गया। दुश्मन चुंगलमें फँसकर निकल गया। चतुराईके संग्राममें मुग़ल बादशाहको हार माननी पड़ी। पक्षी पिंजरेसे उड़ गया। चारों ओर हरकारे भगाये गये, रास्ते रोक दिये गये, परन्तु आसामी हाथ न आया। शिवा-

जीके सहायक चारों ओर फैले हुए थे। फलोंके टोकरे शहरपना-हके बाहिर ले जाकर रख दिये गये। शिवाजी और सम्भाजी उसमेंसे निकलकर पहलेसे तैयार घोड़ोंपर सवार होकर मथुरा पहुँच गये। वहाँ उनके कई साथी पहलेसे प्रतीक्षा कर रहे थे। पिता-पुत्र और तीन अन्य सहायकोंने साधुओंके कपड़े पहिन लिये, राख रमा ली। फकीरोंकी मण्डलीमें शामिल होकर पाँचों जने चलनेको तैयार हो गये, तो सम्भाजीकी बाल्यावस्थापर ध्यान गया। उसके साथ जानेमें पहिचाने जानेका ख़तरा था। इस कारण उसे कृष्णाजी विश्वनाथके घर छोड़कर शिवाजी और उसके साथी बनारस, प्रयाग और बंगाल होते हुए दक्षिणकी ओर रवाना हुए। कई महिनोंकी भाग-दौड़के पीछे आखिर यह मण्डली दक्षिणके एक ग्राममें पहुँची, जिसे शिवाजीके सिपाहियोंने क्रोधमें आकर जला दिया था। एक झोपड़ीमें साधुओंकी मण्डलीको आश्रय मिला। झोपड़ीकी बुढ़ियाने रूखा-सूखा अन्न अतिथियोंके सामने पेश करते हुए डाकू शिवाजी और उसके सिपाहियोंको खूब कोसा। शिवाजीने उस समय सब पी लिया, परन्तु दूसरी बार उधरसे गुज़रते हुए उस बुढ़ियाके परिवारको बुलाकर मालामाल कर दिया।

सुदीर्घ यात्राके पीछे शिवाजी रायगढ़के द्वारपर पहुँच गये। उस समय भी वह साधु-वेषमें थे। माता जीजाबाई अन्तःपुरमें बैठी पुत्रके सम्बन्धमें चिन्ता कर रही थी, जब द्वारपालने आकर सूचना दी कि कुछ वैरागी द्वारपर खड़े हैं। जीजाबाईने उन्हें अन्दर आनेकी आज्ञा दे दी। सामने पहुँचकर जहाँ शिवाजीके साथी नीराजीपन्तने वैरागीकी शानसे आशीर्वाद दिया, वहाँ शिवाजी अभिनय न कर सके, और माताके चरणोंमें लोट गये। माताको आश्चर्य हो रहा था कि यह सन्यासी पैरोंमें क्यों गिर रहा है कि सन्यासीके सिरका कपड़ा लुढ़क गया, और माताने पुत्रके सिरको झट पहिचान लिया। माताके हर्षाश्रुओंके साथ क्षणभरमें ही प्रजाका हर्षोन्माद सम्मिलित हो गया। सिपाहियोंके

जयजयनादका समर्थन दुर्गोंपर लगी हुई तोपोंके निनादने किया। सह्याद्रिकी गुफायें उस निनादसे गूँजने लगीं। वह शब्द पर्वतकी चोटियोंसे प्रतिक्षिप्त हुआ, तो आगरेके महलोंकी दीवारोंसे जा टकराया, जिससे औरंगज़ेबका हृदय कम्पायमान हो गया।

औरंगज़ेब जन्मभर इस पराजयपर झुँझलाता रहा। उसका क्रोधरूपी वज्र विशेषतया राजा जयसिंह और उसके पुत्र रामसिंहपर गिरा। औरंगज़ेबको उसके दरबारियोंने यह विश्वास दिला दिया कि शिवाजीकी मुक्ति रामसिंहकी मददसे हुई है। पहले तो औरंगज़ेबने उसका दरबारमें आना बन्द कर दिया, फिर उसे ओहदेसे गिरा दिया। औरंगज़ेबका रोष राजा जयसिंहपर भी टूटा। इस घटनाके पश्चात् मिर्ज़ा राजाका मान मुग़ल-दरबारमें नीचे ही नीचे जाने लगा।

२२—गढ़ आला, पण सिंह गेला

गढ़ आ गया, परन्तु सिंह चला गया

रायगढ़में पहुँचकर शिवाजीने मशहूर कर दिया कि सम्भाजी रास्तेमें मर गया है। समाचार दिल्ली और आगरेतक पहुँच गया। औरंगज़ेबकी नज़र जरा ढीली पड़ गई। उससे लाभ उठाकर विश्वस्त कर्मचारी राजकुमारको मथुरासे घुमाते फिराते रायगढ़ ले आये। इस प्रकार निश्चिन्त होकर शिवाजीने मुग़लोंके पंजेसे अपने किलोंको निकालनेका उपक्रम कर दिया, और कोंकणपर कब्ज़ा जमाकर देशकी ओर घुड़सवारोंके मुँह मोड़ दिये।

उधर मुगलोंकी कठिनाइयाँ बढ़ रही थीं। राजा जयसिंहको बीजापुर और गोलकुण्डा दोनोंसे लड़ना पड़ रहा था। बीजापुरको मरणासन्न देखकर गोलकुण्डाके शासकने विचार किया कि यदि पड़ोसी मर गया, तो दूसरा वार हमपर होगा। उसने बीजापुरकी

सहायताके लिए सेना भेज दी। मुग़ल-सेनापति दोनोंको सँभालनेकी चेष्टा कर रहा था, कि मराठा सेनायें चारों ओरसे बढ़ती नज़र आने लगीं। तीनों ओरसे घिरकर राजा जयसिंहने पीछे कदम रखना ही उचित समझा।

औरंगज़ेबके गुणरूपी चन्द्रमापर दो ज़बर्दस्त राहु हमेशा सवार रहते थे। वह दो दुर्गुण थे। एक था धार्मिक पक्षपात, और दूसरा अविश्वास। धार्मिक पक्षपातके कारण उसने उलझनोंकी बाढ़का दरवाज़ा खोल लिया, तो अपनों और परायोंपर अविश्वासके कारण वह उन उलझनोंको सुलझानेमें असमर्थ रहा। प्रतीत होता है कि अपने शाह और पिताके साथ जो विश्वासघात उसने किया था, उसका भूत सदा उसकी आँखोंके सामने नाचता रहता था। वह अपने पुत्रोंको दुश्मन समझता था, और सेनापतियोंको नमकहराम। यही कारण था कि वह शायद ही कभी किसी अकेले सेनापतिको किसी लड़ाईका सरदार बनाता हो। वह दो या दोसे अधिक सेनापतियोंको युद्ध-क्षेत्रमें भेजता था, ताकि दोनों एक दूसरेपर निरीक्षक, या रुकावटका काम दे सकें। यहाँतक कि युवराज या राजकुमारोंतकपर दूसरे सेनापतियोंकी नज़र रखी जाती थी। औरंगज़ेबका अविश्वासी हृदय शक्तिसे काँपता रहता था।

राजा जयसिंहके सम्बन्धमें अब औरंगज़ेबका निश्चय हो गया था कि शिवाजीको आगरेसे भगानेमें राजाका सबसे अधिक हिस्सा है। रामसिंहको दरबारमें आनेकी मनाही कर दी गई, और जयसिंहको आगरे लौट आनेका हुक्म भेज दिया गया। बेचारा जयसिंह जीवनका सुन्दर भाग मुग़ल-दरबारकी सेवामें व्यतीत कर चुका था। उसका दिल बादशाहके इस कृतघ्नतायुक्त व्यवहारसे रो दिया। धक्का बहुत ज़बर्दस्त था। बूढ़ा शरीर उसे बर्दाश्त न कर सका, और औरंगज़ेबका सबसे अधिक भक्त और शक्त सेनापति शासकोंकी कृतघ्नताकी दुहाई देता हुआ आगरा

पहुँचनेसे पहले ही इस शरीरको त्यागकर दासताके बन्धनोंसे मुक्त हो गया।

औरंगज़ेबने दक्षिणकी विजयके लिए राजा जयसिंहके स्थानपर राजकुमार मुअज्ज़म और राजा जसवन्तसिंहको नियुक्त किया। दोनोंको उतनी ही कामयाबी हुई जितनी दो नेताओंद्वारा शासित सेनाको हो सकती थी। राजा जसवन्तसिंह कभी भी शिवाजीका कट्टर दुश्मन नहीं हुआ। उसके हृदयके किसी गम्भीर कोनेमें हिन्दू-धर्मके रक्षक मराठा सरदारके लिए श्रद्धाका भाव छुपा हुआ था। मुअज्ज़म कोई बड़ा सिपाही नहीं था। दोनोंने सन्तोष-की साँस ली जब उन्हें शिवाजीकी ओरसे सुलहका सन्देश मिला। १६६८ में मुग़लोंके साथ शिवाजीकी सन्धि हो गई, जिसके द्वारा शिवाजीको राजाकी उपाधि दी गई, पूनाका इलाका वापिस मिल गया, चाकण और सूपापर कब्ज़ा हो गया, और बरारमें कुछ नया इलाका भी प्राप्त हुआ। बदलेमें शिवाजीने बीजापुरपर आक्रमण करनेमें मुग़लोंकी सहायता करनेका वादा किया।

लगभग तीन वर्ष तक शिवाजीकी और मुग़लोंकी सन्धि रही। प्रतापराव गूजर शिवाजीकी घुड़सवार सेनाका यशस्वी नायक था। वह एक हजार सेनाके साथ राजकुमार मुअज्ज़मके पास औरंगाबादमें रहकर सुलहको प्रमाणित करता रहा। वह तीन वर्ष दक्षिणके इतिहासमें असाधारण शान्तिके इतिहास हैं। क्यों कि अपनी निर्बलताका अनुभव करके बीजापुरके शासक अली आदिल-शाहने भी मुग़लोंसे सन्धि कर ली थी।

परन्तु औरंगज़ेबके अशान्त हृदयको चैन कहाँ? दक्षिणकी प्रत्यक्ष शान्तिकी ओटमेंसे उसे साजिशकी बू आने लगी। उसके दिलमें सन्देह उत्पन्न होने लगे कि मुअज्ज़म और शिवाजी आप-समें लड़ते क्यों नहीं? वह अवश्य मेरे विरुद्ध कोई न कोई षड्-यन्त्र तैयार कर रहे हैं। मुअज्ज़मके विरोधी दलने विषके बीजको चुगलीके जलसे सींचकर अंकुरित करना आरम्भ कर दिया। औरंगज़ेबके अविश्वासी हृदयने एक ही पत्थरसे दो चिड़ियाँ मार-

नेका निश्चय करके मुअज्ज़मको गुप्त आज्ञा भेजी कि वह प्रतापराव गूजर और उसके साथियोंको धोखा देकर औरंगाबादमें कैद कर ले। इससे वह जहाँ एक शिवाजीको हानि पहुँचाना चाहता था, वहीं साथ ही मुअज्ज़मका इम्तिहान भी लेना चाहता था। मुअज़्ज़मको बादशाहका सहकारी फरमान पहुँचनेसे पहिले ही उसकी खबर लग गई थी। उसने भी धूर्तताका जवाब धूर्ततासे दिया। फरमान पहुँचनेसे पूर्व ही उसने प्रतापरावके सहायक नीराजी रावजीको बुलाकर भाग जानेका इशारा दे दिया। फरमान औरंगाबादमें पहुँचे, उससे बहुत पूर्व प्रतापराव और उसके सिपाही औरंगाबादसे कोसों दूर निकल गये थे।

शिवाजी स्वयं भी सुलहसे असन्तुष्ट हो रहा था। उसे अपने राज्यको नियममें लाने, और उसका शासन मज़बूत करनेके लिए जितना समय चाहिए था, उतना मिल चुका था। इधर औरंगज़ेबने उत्तरीय भारतमें मन्दिरोंके ध्वंसका दौर फिरसे जारी कर दिया था। औरंगाबादसे जब यह समाचार मिला कि औरंगज़ेबने मराठा-सेनापतिकी गिरिफ्तारीका हुक्म भेजा है; तो शिवाजीने सन्तोषका साँस लिया। मराठा-राज्यके दुर्गोंमें युद्धकी चहल पहल प्रारम्भ हो गई।

सोमवारका प्रभातकाल था। शिवाजीका डेरा रायगढ़में था, और माता जीजाबाई प्रतापगढ़में थी। माता प्रभातकालमें हाथीदाँतके कंघेसे बाल सँवार रही थीं, कि खिड़कीमेंसे पहाड़की चोटीपर चमकता हुआ सिंहगढ़का मस्तक दिखाई दिया। मानिनी माताके दिलमें एक बर्छीसी चुभ गई। सिंहगढ़ मुग़लोंके हाथोंमें! क्या यह एक क्षत्राणीको सह्य हो सकता था? माताने उसी दम एक दूतको रायगढ़ रवाना किया। रायगढ़ पहुँचकर दूतने शिवाजीको सन्देश दिया कि माताने आज्ञा दी है, इसी समय चले आओ। आज्ञापालक पुत्र भोजन कर रहा था। माताकी आज्ञा सुनकर उसने मस्तक झुकाया, खाना बीचहीमें छोड़ दिया, हाथ धोये बिना ही शस्त्रोंसे सजकर वह घोड़ेपर सवार हो गया, और वायु-

वेगसे प्रतापगढ़के द्वारपर पहुँच गया। जीजाबाई प्रतीक्षा ही कर रही थी। शिवाजीने अन्दर घुसकर देखा कि पासोंके खेलका सामान तैयार पड़ा है। आज्ञा हुई कि बाज़ी लगाओ। विस्मित परन्तु नम्र हृदयसे, विना कोई प्रश्न पूछे, शिवाजी पासे फेंकने लगे। माताने भवानीका ध्यान करके खेलना आरम्भ किया और शीघ्र ही शिवाजीको परास्त कर दिया। शिवाजीने मातासे कहा कि आप मेरा कोई भी किला माँग सकती हैं। जीजाबाईने झटसे उत्तर दिया कि मुझे सिंहगढ़ चाहिए। शिवाजी अब समझे। सिंहगढ़को दुश्मनसे लेना आसान नहीं था। उसका किलेदार उदयभानु पूरा दैत्य था। एक दिनमें १ गाय, २ भेड़ें और २० सेर चावल खा जाना उसके लिए साधारण बात थी। उदयभानुकी १८ स्त्रियाँ थीं, और १२ पुत्र थे, जो पितासे भी अधिक बलवान् समझे जाते थे। किलेमें एक खूनी हाथी था, जिसका नाम चन्द्रावलि था और एक लड़ाकू था, जिसका नाम सिदी हिलाल था। इन दोनोंको जीतनेवाला वीर मिलना कठिन था। ऐसे रावणद्वारा सुरक्षित किलेको लेना लोहेके चने चबानेसे भी अधिक कठिन था। परन्तु जैसे क्षत्राणी अपने आदेशको वापिस नहीं ले सकती, वैसे क्षत्रिय भी बचनको नहीं हार सकता। शिवाजीने सिंहगढ़का किला जीतकर माताके चरणोंमें रखनेकी प्रतिज्ञा की।

प्रतिज्ञा तो कर ली, पर 'म्याऊँ' का ठौर कौन पकड़े? वीर सेनापतिद्वारा सुरक्षित उस किलेपर कौन आक्रमण करे? बहुत विचारके पीछे शिवाजीकी अँगुली अपने बाल्यसखा तानाजी मालुसरेपर पड़ी। तानाजी मालुसरे शिवाजीकी सम्पत्ति और विपत्ति दोनोंका साथी था। वह विख्यात पराक्रमी था। शिवाजीने इस सन्देशके साथ तीव्रगामी दूत भेजा कि तानाजी मालुसरे तीन दिनके अन्दर १२ हज़ार सिपाहियोंके साथ राजगढ़में पहुँच जाय। जब दूत तानाजीके पास पहुँचा, तो वह अपने पुत्र रायबाके विवाहकी तैयारीमें लगा हुआ था। प्रभुकी आज्ञा पहुँचते ही उत्सवका वाद्य बन्द कर दिया गया और तीन दिन पूरा होनेके पूर्व

१२ हज़ार सिपाहियोंको साथ लेकर तानाजी रायगढ़के द्वारपर आ पहुँचा। शिवाजी प्रतीक्षा ही कर रहा था। ज्यों ही उसने मराठा-सेनाकी ध्वजायें देखी, त्यों ही वह बाहिर आकर तानाजीसे गले लगकर मिला। तानाजीने शिवाजीको उलहना दिया कि तुमने मुझे पुत्रके विवाहोत्सवसे क्यों बुलाया? शिवाजीने उत्तर दिया कि तुम्हें मैंने नहीं, माताने बुलाया है। माता जीजाबाई हाथमें दीपक लिये पहलेसे तैयार खड़ी थी। उसने तानाजीके सिरके चारों ओर दीपककी परिक्रमा की, माथेको चूमा और जयमाल पहिनाकर तिलक लगाया। विघ्नोंके नाशके लिए जीजाबाईने हाथकी अँगुलियाँ चटकाकर अला-बलाको भागनेका आशीर्वाद दिया।

तानाजीने आशीर्वाद ग्रहण करते हुए जीजाबाईके सामने झुककर सिंहगढ़को जीतनेकी प्रतिज्ञा की। रातका अन्धेरा होनेके साथ ही मराठा-सेनायें सिंहगढ़की तलैटियोंमें घूमने लगीं। तानाजीने स्वयं देहातीका भेस भरकर दुर्गकी परिक्रमा की, और जानने योग्य बातोंका पता लगा लिया। रातके घोर अन्धकारमें, जब कि सिंहगढ़के रक्षक गहरी नींदमें सो रहे थे, तानाजी चुने हुए सिपाहियोंके साथ कल्याणद्वारके नीचे पहुँच गया। किला एक ऊँची चोटीपर बना हुआ है। ऊपर चढ़ना अत्यन्त दुष्कर था। सन्दूकचीमेंसे शिवाजीके प्रसिद्ध घोरपड 'यशवन्त' को निकालकर तानाजीने उसके माथेपर चन्दन लगाया, गलेमें माला पहिनाई और कमरमें कमन्द बाँधकर उसे ऊपर फेंका। ऊँचाईके अधिक होनेसे वह स्थानपर न पहुँच सका, और वापिस आ गया। तब तानाजीने यह धमकी देते हुए कि यदि इस बार भी यशवन्त लौट आया, तो इसे मारकर खा जाऊँगा, फिर उसे पूरे ज़ोरसे ऊपर फेंका। अबके उसने चोटीपर अपने पंजे गाड़ दिये। कमन्दके सहारे मराठा सिपाही धड़ाधड़ ऊपर चढ़ने लगे। चढ़नेवालोंमें सबसे पहला नम्बर तानाजीका था। तलवारको दाँतोंमें थामकर, और जानको हथेलीमें लेकर, वह वीर दुश्मनके दाँतों तक चढ़ गया। ५०

सिपाही चोटीपर जा चुके थे, जब कमन्द बीचमेंसे टूट गई। ऊपरके सिपाही ऊपर और नीचेके सिपाही नीचे रह गये।

असली नेता वही है, जिसका दिमाग़ कठिनाईके समयमें शान्त रहे। तानाजीके एक ओर दुश्मनोंसे भरा हुआ दुर्ग था, और दूसरी ओर भयानक खाई थी। विचार-शक्तिको कायम रखते हुए मराठा-सेनापतिने किलेपर धावा करनेका ही निश्चय किया। दबे पाँव जाकर उन लोगोंने कल्याणद्वार और अन्य दो द्वारोंके बाहिर जो सिपाही पहरा दे रहे थे, उन्हें मार गिराया। उदयभानु उस समय शराब और अफीमके नशेमें मस्त होकर अन्तःपुरमें जा रहा था। उसे शत्रुके आनेका समाचार मिला, तो उसने पहले चन्द्रावलि हाथीको और फिर सीदी हिलालको आगे बढ़नेका हुक्म दिया। तानाजी अपने समयका प्रसिद्ध तलवार चलानेवाला था। हाथी और हिलालके सूँड़ और सिर उसकी तलवारकी भेंट हो गये। तब उदयभानुने अपने १२ लड़कोंको मैदानमें भेजा। वह भी काम आ गये, तब उसकी नींद टूटी। अपनी १८ औरतोंको अपने हाथसे मारकर, और हाथमें नंगी तलवार लेकर पठानोंकी फौजके साथ उदयभानु किलेसे बाहिर निकला, और ५० मराठोंपर टूट पड़ा। वह आक्रमण बड़ा वेगवान् था। दोनों सेनापति आमने सामने आकर भिड़ गये। उदयभानुकी तलवार तानाजीपर और तानाजीकी तलवार उदयभानुपर एक ही समयमें गिरीं। दोनों वीर एक ही समयमें धराशायी हो गये। उदयभानुकी मृत्युने किलेवालोंका दम तोड़ दिया, परन्तु मराठे बेहिम्मत न हुए। तानाजीके भाई सूर्याजीके सेनापतित्वमें मराठा सिपाही 'हर, हर, महादेव' की ध्वनिसे आकाशको गुंजाते हुए किलेपर टूट पड़े। द्वारपर क़ब्ज़ा कर लिया, और शीघ्र ही सिंहगढ़की चोटीपर महाराष्ट्रका भगवाँ झण्डा फहराने लगा। सिपाहियोंने किलेके बाहिर घुड़शालके कुछ छप्परोंमें आग लगाकर शिवाजीको सिंहगढ़-विजयकी सूचना दे दी।

इशारा पाते ही शिवाजी घोड़ेपर सवार होकर सिंहगढ़ पहुँच गया, और उसने कल्याणदुर्गके मार्गसे अन्दर प्रवेश किया। चारों ओरसे जयध्वनि उठ रही थी। उस जयध्वनिके मध्यमें उसने देखा कि तानाजीका लाश पड़ी है। बाल-सखा वीर तानाजीकी मृत्युने शिवाजीके हृदयपर ओससी डाल दी। लोग उसे सिंहगढ़के जीतने-पर बधाई देने लगे, तो उसने उत्तर दिया कि—

'गढ़ आला, पण सिंह गेला।'

गढ़ आ गया, परन्तु सिंह चला गया।

२३—मुग़लोंका पराजय

इधर शिवाजीके सेनापति जानकी बाज़ी लड़ाकर किलोंपर क़ब्ज़ा कर रहे थे, और उधर औरंगज़ेबके सेनापति आपसमें लड़-झगड़कर मुग़ल-साम्राज्यकी बुनियादें हिला रहे थे। मुग़ल-राजकुमारोंने गद्दीके लिए जो महाभारत लड़ा था, वह फल ला रहा था। औरंगज़ेबकी सन्देहशील प्रकृति पराक्रम और दूरदर्शिताद्वारा स्थापित शासनपर हड़ताल फेर रही थी। चिर-कालतक हुकूमत करनेसे जो विलासिता पैदा हो गई थी, वह भी अपने रंग दिखा रही थी। जिस संग्राममें एक ओर तो एक प्रति-भाशाली महापुरुषकी प्रतिभा पूरे ओजके साथ दैदीप्यमान हो, और दूसरी ओर परस्पर ईर्ष्यासे जले हुए सेनापतियोंकी हृदय-हीन उछल-कूदके सिवा कुछ न हो, उसके परिणामकी कल्पना कुछ कठिन नहीं है। शिवाजी अपने घर और अपने विश्वासके लिए लड़ रहा था, औरंगज़ेबके सेनापति पैसों और बादशाहके कृपा-कटाक्षोंके लिए लड़ रहे थे। ऐसी लड़ाईका परिणाम होना चाहिए था, वही हुआ।

राजा जयसिंहके चले जानेपर दक्षिणकी बागडोर राजकुमार मुअज़्ज़म और राजा जसवन्तसिंहके हाथमें सौंप दी गई थी।

दिलेरखाँ पहलेसे मौजूद था। उसे नये मालिकोंका आना बहुत अखरा। यह एक नये झगड़ेका सूत्रपात हुआ। मुअज़्ज़म और दिलेरखाँमें खूब खटपट चली। दिलेरखाँको राजकुमारने पेशीमें हाजिर होनेका हुक्म भेजा। उसके दिलमें राजकुमारका ऐसा डर बैठा हुआ था कि कई बार घोड़ेपर सवार होकर भी वह आगे न बढ़ सका। उसे डर था कि कहीं धोखेसे गिरफ्तार न कर लिया जाऊँ। मुअज़्ज़म और जसवन्तसिंहने दिलेरखाँकी शिकायत भेज दी। उधर दिलेरखाँ बादशाहके पास यह शिकायत भेज चुका था कि राजकुमार शिवाजीके साथ मिल गया है, और असम्भव नहीं कि राजगद्दी लेनेका प्रयत्न करे। औरंगज़ेबका सन्देहशील हृदय मुअज़्ज़मके बारेमें डावाँडोल हो रहा था। उसे अपने विद्रोहकी स्मृति डरा रही थी। दक्षिणके नामसे ही उसे कँपकँपी छूट जाती थी। जिस दक्षिणसे आकर उसने अपने पिताको कैद किया था, अन्दरसे आवाज़ उठती थी कि वही दक्षिण तेरी भी कब्र सिद्ध होगा।

मुअज़्ज़म, जसवन्तसिंह, और दिलेर इन तीन सेनापतियोंकी उपस्थितिसे सन्तुष्ट न होकर औरंगज़ेबने अपने खान-ए-समन इफ्तिखार खाँको दक्षिणकी ओर रवाना किया कि वह ठीक परिस्थितिकी रिपोर्ट दे। इफ्तिखार खाँ आकर राजकुमारसे भी मिला और मुअज़्ज़मसे भी। उसने दोनोंका जोर तुला हुआ देखा, और किसीसे भी बिगाड़ना उचित न समझा। एक अंग्रेज़ सिपाहीने इफ्तिखारके बारेमें लिखा है कि "उसने दुतर्फ़ा हाँकी। राजकुमारसे कहा कि दिलेर तुम्हारा दुश्मन है, और दिलेरखाँके पास जाकर कहा कि यदि तुम राजकुमारके पास जाओगे तो वह तुम्हें पकड़ लेगा।" जो हजरत आग बुझानेको भेजे गये थे, उन्होंने स्वयं चिनगारीका काम किया, जिससे सेनापतियोंका परस्पर विरोध चरम सीमातक जा पहुँचा।

दिलेरखाँको मुअज़्ज़मकी मुखालिफत करते हुए दक्षिणमें ठहरना कठिन दिखाई देने लगा। वह जान बचाकर आगरेकी ओर भागा। राजकुमारने इसे स्पष्ट विद्रोह समझा, और दिलेरके

गिरफ्तार करनेके लिए सेना इकट्ठी करनी आरम्भ की। यह भी ख़बर उड़ी कि राजकुमारने दिलेरख़ाँके विरुद्ध शिवाजीसे भी सहायता माँगी थी। दिलेरख़ाँ जी तोड़कर भागा जा रहा था, और राजकुमार तथा जसवन्तसिंह उसे पकड़नेके लिए लपक रहे थे। तापती नदी तक यह दौड़ जारी रही। जब यह खबर औरंगज़ेब तक पहुँची, तब वह घबराया। उसे मुअज्ज़मकी मूर्ति अपने रूपमें दिखाई देने लगी। उसने शीघ्रगामी दूतोंसे मुअज्ज़मको हुक्म भेजा कि जिस रास्तेसे आये हो, उसी रास्तेसे दक्षिणको वापिस चले जाओ, वरना विद्रोही समझे जाओगे।

मुग़ल-सेनापतियोंकी इस छीना-झपटीसे लाभ उठानेमें शिवाजीने कोई कसर न छोड़ी। सिंहगढ़के पीछे पुरन्दरका किला जीत लिया। १६७० में महूलीका दुर्ग शिवाजीके क़ब्ज़ेमें आ गया। उसी वर्ष शिवाजीने दूसरी बार सूरतको लूटा। इस लूटके समय योरपके व्यापारियोंने शिवाजीके साथ सन्धि कर ली। सूरत और आसपासके ग्रामोंसे लगभग ६६ लाखका माल महाराष्ट्रके राजकोषमें पहुँचाया गया।

सूरतसे लौटते हुए दाऊदख़ाँने मराठा-सेनाओंका रास्ता रोकनेका यत्न किया। मुग़ल-सेनाओंमें दाऊदख़ाँके बराबर जानपर खेलनेवाला दूसरा सिपाही नहीं था। केवल दो हज़ार सिपाहियोंको लेकर उसने २० हज़ारका रास्ता रोक दिया। भयंकर संग्राम हुआ। बहुत सी हत्यायें हुईं। अन्तमें मुग़ल-सेनाओंके पाँव उखड़ गये, और शिवाजी सूरतका माल लेकर कुशलपूर्वक रायगढ़ पहुँच गया।

सूरतके दूसरे धावेके पीछे मराठा घुड़सवार बे-रोक-टोक मुग़ल-सीमाओंमें घुसकर चौथ वसूल करने लगे। बरार और बगलानामें कई बड़े बड़े शहर लूट लिये गये। क्रमशः औंध, पट्टा, त्र्यम्बक तथा साल्हेरके दुर्ग शिवाजीके क़ब्ज़ेमें आ गये।

औरंगज़ेब तक यह समाचार पहुँचे तो वह आगबबूला हो गया। दोष तो औरंगज़ेबका था, क्यों कि वह युद्ध-क्षेत्रमें सदा

एकसे अधिक सेनापति रखता था, जिससे दोनों ही एक दूसरेके असरको जाया कर देते थे; परन्तु जब कभी निष्फलता होती, तब वह सेनापतियोंपर बरस पड़ता। २८ नवम्बर १६७० के दिन उसने महाबतख़ाँको दक्षिणका प्रधान सेनापति नियुक्त किया, परन्तु इससे पूर्व कि वह सेनाकी बाग़डोर सँभालता, ८ जनवरी १६७१ को गुजरातके शासक बहादुरख़ाँको हुक्म मिला कि वह भी दक्षिणमें पहुँचे। दिलेरख़ाँको बहादुरख़ाँका सहायक बनाया गया। दाऊद्ख़ाँ और अमरसिंह चन्दावत रातदिन शिवाजीका पीछा करनेके लिए छोड़ दिये गये। आगरेसे पुष्कळ ख़ज़ाना रवाना किया गया, और इस तरह उठते हुए मराठा-राज्यको कुचलनेका पूरा उद्योग कर दिया गया।

वह उद्योग भी उतना ही सफल हुआ, जितना उससे पहलेका। औरंगज़ेबके भेजे हुए दर्जनों सेनापति कुछ समय तो परस्पर झगड़नेमें गुज़ारते थे, और शेष समय विषय-भोगमें। महाबतख़ाँका पहला आक्रमण चांदवड़के समीप अहिवल नामक दुर्गपर हुआ। एक महीनेके कठिन परिश्रमके पीछे वह छोटासा किला सर किया गया, परन्तु क्योंकि दाऊद्ख़ाँने खाईके रास्तेसे घुसकर किलेपर क़ब्ज़ा किया, इस लिए महाबतख़ाँ जल उठा। एक पाँच हजारीको विजयका श्रेय मिले, यह महाबतख़ाँके लिए कैसे सह्य हो सकता था। उसने दरबारमें दाऊद्ख़ाँकी शिकायत भेज दी, जिसका नतीजा यह हुआ कि उस साहसिक सिपाहीको दरबारमें हाज़िर होनेका हुक्म हो गया।

ऊपरसे सह्याद्रिकी बरसात आ पहुँची। अहमदनगरसे २० मीलकी दूरीपर परनीर नामका एक स्थान था। महाबतख़ाँने वर्षा ऋतुके लिए वहीं डेरा जमाया। उस वर्ष वृष्टि बहुत अधिक हुई। सेनामें बीमारी फैल गई, जिससे मनुष्य और पशु मरने लगे, परन्तु महाबतख़ाँको इससे क्या? उसके कैम्पमें ४०० नर्तकियाँ थीं, जिनका संग्रह अफ़गानिस्थान और पंजाबसे किया गया था। सेनापतियोंका समय उन्हींकी परिचर्यामें व्यतीत होता था।

वर्ष भर व्यतीत होनेसे पूर्व ही औरंगज़ेब महावतख़ाँसे असन्तुष्ट हो गया। सेनापतिकी गद्दीपर गुजरातके शासक बहादुरख़ाँको बिठा दिया गया। दिलेरख़ाँ सहायकके तौरपर बहादुरख़ाँके साथ रहा। बहादुरख़ाँ और दिलेरख़ाँ दोनों ही बहादुर सिपाही थे, तीन वर्षतक शिवाजीमें और उनमें खूब रस्साकशी रही। दिलेर ख़ाँ एक कट्टर मुसलमान था। उसने धर्मान्धताके घोड़ोंकी लगामें खुली छोड़ दीं। १६७२ में जब पूनापर उसका क़ब्ज़ा हुआ, तब कत्ले आमकी आज्ञा दी गई, जिसमें ९ वर्षसे ऊपरकी आयुके सब पुरुष तलवारके घाट उतार दिये गये।

तीन वर्षतक बहादुरख़ाँकी अध्यक्षतामें मुग़ल-सेनायें शिवाजीके विजय-प्रवाहको रोकनेका यत्न करती रहीं। भाग्यलक्ष्मी दोलायमान होती रही। वह कभी इधर झुकती, तो कभी उधर। १६७२ में बगलानामें मुग़ल-सेनापतियोंको हार खाकर पीछे लौटना पड़ा, परन्तु शिवनेरके किलेपर मराठा-सेनाओंको सफलता नहीं हुई। कभी दायें और कभी बायें, कभी आगे और पीछे, लड़ाईकी झपटें होती रहीं—जिनमें यद्यपि पूर्ण विजय किसीकी न हुई, तो भी यह कहना ठीक होगा कि विजयश्रीका अधिक झुकाव शिवाजीकी ओर रहा।

१६७४ में दो घटनायें ऐसी हो गईं, जिन्होंने युद्धके परिणामका निश्चय कर दिया। दिलेरख़ाँने कोंकणपर आक्रमण करके शिवाजीके पार्श्वको छिन्न-भिन्न कर देनेका संकल्प किया, और वह कुछ दूर तक आगे बढ़ गया। शिवाजीकी आँखें चौबीसों घण्टे खुली रहती थीं। उसे सोते हुए पकड़ना कठिन था। दिलेरख़ाँ कोंकणकी ओर कुछ दूर तक आगे बढ़ तो गया, परन्तु उसके लिए अपने आपको संभालना कठिन हो गया। रास्ते टूटे पड़े थे; खेत बरबाद कर दिये गये थे, मुग़ल-सेनाके लिए जीवनके साधन मिलने भी कठिन थे। कठिनाइयोंसे परास्त होकर जब मुग़ल-सेनापतिने पीछे मुड़नेका यत्न किया, तो चारों ओर मराठा-सेनाओंको घेरा डाले हुए पाया

युद्ध हुआ, जिसमें दिलेरखाकी बहुत हानि हुई। उसकी कमर टूट गई।

इधर मुग़ल-सेनायें दिल तोड़ रही थीं, उधर उत्तर-सीमा-प्रान्तपर ख़ैबरके पठानोंने छेड़छाड़ शुरू कर दी। ख़तरा इतना बढ़ा कि स्वयं औरंगज़ेबको दिल्ली छोड़कर हसन अब्दालकी ओर जाना पड़ा। दूसरे महीने दिलेरखाँको दक्षिणसे पंजाबकी ओर रवाना होनेका हुक्म हो गया। बहुतसी सेना और युद्ध-सामग्री दक्षिणके युद्ध-क्षेत्रसे उत्तरीय युद्ध-क्षेत्रकी ओर भेज दी गई। कुछ समयके लिए दक्षिणमें शिवाजीको बिल्कुल खुली रंगस्थली मिल गई, जिसमें दख़ल देनेवाला कोई न रहा। बीजापुरके साथ कुछ स्थानोंपर संघर्ष अवश्य हुआ था, परन्तु पूनाका छोटासा जागीरदार बढ़ता बढ़ता इतना अवश्य बढ़ गया था कि बीजापुर जैसी रियासतकी दुश्मनीकी उपेक्षा कर सकता था। जो शिवाजी भूमण्डलमें विख्यात मुग़ल-सम्राट्की छातीपर तलवारकी नोंक रख रहा था, वह बीजापुरकी नन्हीं सी शक्तिकी क्या पर्वा करता?

२४—राज-तिलक

मुग़ल-सेनाका अधिकांश पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तकी ओर चला गया, और बहादुरखाँ शिवाजीके भेजे हुए उपहारोंसे बँधकर सुखकी नींद सोने लगा। बेफ़िक्रीका अवसर पाकर शिवाजीने मैदानको विरोधियोंसे साफ़ कर देना उचित समझा। बीजापुरके सेनापति अब्दुल करीमने उस अभागी रियासतके भाग्योंको चमकानेकी चेष्टा की। पहली लड़ाईमें उसे मराठा घुड़सवारोंके विजयी सेनापति प्रतापराव गूजरने बुरी तरह परास्त किया, परन्तु झुककर क्षमा माँगनेपर स्वाधीन छोड़ दिया। शिवाजीको इस अनुचित क्षमापर बहुत दुःख हुआ, और उसने प्रतापरावको मीठी झिड़की दी। थोड़े ही समय पीछे अब्दुल करीम फिर चढ़ आया, और पन्हालापर आक्रमण करनेकी तैयारी करने

लगा। शिवाजीने प्रतापरावको कहला भेजा कि जाओ, अब्दुल करीमको परास्त करो। यदि परास्त न कर सको, तो मुझे मुँह न दिखाना। इस कड़वी आज्ञाने प्रतापरावको ऐसा उत्तेजित कर दिया कि वह अब्दुल करीमकी सेनामें अन्धाधुन्ध घुस गया, और बहुतसे अन्य साथियों सहित मारा गया। मुसलमान-सेनाके आक्रमणको सरदार-हीन महाराष्ट्र-सेना न सँभाल सकी, और पीठ दिखाकर भागने लगी। मुसलमान-सेनाने उनका पीछा किया, और दूरतक धकेल दिया, परन्तु इस भाग-दौड़में मुसलमान सिपाही भी तितर वितर हो गये। गड़बड़से लाभ उठाकर हासाजी मोहितेके ५ हज़ार मराठा घुड़सवारोंने मुसल्मान सेनाके पार्श्वपर आक्रमण कर दिया। मुसलमान सेनाको लेनेके देने पड़ गये। उन्हें मैदान छोड़कर भागनेके सिवा कुछ न सूझा। विजय पराजयमें परिणत हो गई। अब्दुल करीमका दिल ऐसा टूटा कि उसने वीजापुरमें ही जाकर शरण ली।

इस प्रकार रंगस्थली निष्कंटक बनाकर शिवाजीने राज्यश्रीसे परिणय करनेका निश्चय किया। अभी तक वह केवल एक जागीरदार था। विस्तृत मराठा-राज्य पूनाकी जागीरका विस्तार मात्र था। शिवाजीका छत्रपतियोंमें कोई स्थान नहीं था। मित्रोंकी सलाहसे शिवाजीने विधिपूर्वक राजपदवीको ग्रहण करने और सिंहासनपर आसीन होनेका निश्चय किया।

भोंसला-वंश क्षत्रियोंकी गिन्तीमें नहीं आता था। क्षत्रिय लोग भोंसला-वंशके सरदारोंको अपनेसे नीचा, शूद्र समझते थे। राजतिलकसे पूर्व यह आवश्यक समझा गया, कि शिवाजीके क्षत्रिय होनेकी घोषणा कर दी जाय। उस समय भी हिन्दू-धर्मके विद्वानोंका केन्द्र बनारसमें था। गागा भट्ट अपने समयके सर्वोत्कृष्ट विद्वान् समझे जाते थे। वह वेद-वेदांग-पारंगत होनेके साथ साथ वाग्मी भी थे। शिवाजीने अपनी ओरसे पण्डितोंकी एक मण्डली भेटके साथ गागा भट्टके पास भेजी। मण्डलीने भोंसला-वंशके क्षत्रिय होने न होनेके सम्बन्धमें सम्मति माँगी। गागा भट्टने वंशा-

वलीको देखकर व्यवस्था दी कि शिवाजीके वंशका उद्भव उदय-पुरके महाराणाओंसे है।

राज-तिलककी तैयारी जोरसे होने लगी। गागा भट्टको उत्सव-का प्रधान पुरोहित या ब्रह्मा नियुक्त करके दक्षिणमें सादर निम-न्त्रित किया गया। अतिथियोंके लिए रायगढ़में कई नये सभाभवन और निवासगृह बना दिये गये। लगभग ५० हज़ार ब्राह्मण नर-नारी उत्सवके निमित्त एकत्र हो गये। रायगढ़में उस समय लगभग २ लाख मनुष्य केवल उस उत्सवको देखनेके लिए आये थे। शिवा-जीके गुरु समर्थ रामदास और माता जीजाबाई आशीर्वाद देनेके लिए उपस्थित थीं। बनारसके पं० गागा भट्ट शिष्यमण्डली-सहित पधारे थे। राज-तिलकका उत्सव उन्हींके आदेशानुसार किया जा रहा था।

उत्सवके प्रारम्भमें शिवाजीने गुरु रामदास स्वामी और माता जीजाबाईके चरणोंमें प्रणाम किया। यह मातृहृदय ही समझ सकता है कि उस समय जीजाबाईका हृदय कैसे उल्लाससे फूल रहा होगा। वह मानिनी स्त्री जिस मानकी खातिर पतिदेवसे अलग हो गई थी, वह मान पुत्रद्वारा उसपर मानो मूसलधारसे बरस गया। उस समय वह एक जागीरदारकी परित्यक्ता स्त्री थी, आज वह एक यशस्वी विजेताकी पूजिता जननी थी। उसकी कोख धन्य थी, जिसने शिवाजी जैसे महापुरुषको उत्पन्न किया। मानो इसी दिवसको देखनेके लिए वह जी रही थी, क्योंकि ८० वर्ष तक जीकर उत्सवके १२ दिन पीछे ही जीजाबाईका प्राणान्त हो गया।

राज-तिलकसे पूर्व शिवाजीका क्षत्रिय रूपमें उद्घोषित किया जाना आवश्यक था। पंडितोंने पहले इतने वर्षोंकी शूद्रताके धोनेके लिए प्रायश्चित्त कराया, और फिर विधिपूर्वक संस्कार किया गया। प्रारम्भमें शिवाजीको स्नान कराया गया, फिर यज्ञो-पवीत देकर गायत्रीका उपदेश किया गया। वह वेदमन्त्र, जिनमें राजाके धर्म बतलाये गये हैं, शिवाजीके सामने स्वरसहित पढ़े

जाते, परन्तु रायगढ़में एकत्रित ब्राह्मणोंने एक तूफ़ान खड़ा करके अपनी कूपमण्डूकता और अदूरदर्शिताका ऐसा परिचय दिया कि गागा भट्टको वह विचार छोड़ना पड़ा। अगले रोज शिवाजीको तौला गया। दूसरे पलड़ेमें क्रमशः सोना, चाँदी, तांवा, टीन-सीसा, लोहा, कपूर, नमक, मक्खन, आदि धातु और खाद्य पदार्थ डाले गये, और ब्राह्मणोंको दिये गये। प्रत्येक प्रायश्चित्त और विधिमें ब्राह्मणोंको भरपेट दान दिया गया।

राज-तिलकका उत्सव धूमधामसे मनाया गया। उसमें न सोने चाँदीकी कमी थी, और न मोती हीरोंकी। मुग़ली ठाठसे प्रत्येक विधानको पूरा किया गया। दिल खोलकर दान दिया गया, और गरीबोंमें लुटाया गया। १ करोड़ और ४२ लाख हुन अर्थात् ६ करोड़के लगभग रुपया व्यय हुआ। यह राशि उस समयकी पैसेकी कीमतको देखते हुए बहुत बड़ी थी।

राज-तिलकके उपलक्ष्यमें शासन-प्रणालीमें भी कई सुधार किये गये, उनमेसे एक यह भी था, कि मन्त्रिमण्डलके नाम, जो पहले फारसीमें थे, वह संस्कृतमें परिवर्तित कर दिये गये।

जिस समय शिवाजी अपने शासनकी जड़ोंको मज़बूत करनेके लिए हिन्दू प्रजामें अपनी परिस्थितिको दृढ़ बना रहा था, और महाराष्ट्रका भवन राजाके प्रति श्रद्धारूपी सीमंटके वज्रलेपसे अभेद्य हो रहा था, उस समय मुग़ल-सेनापति बहादुरख़ाँ पीनकके मज़े ले रहा था। दिलेरख़ाँ एक बहादुर सेनापति था। मराठे उसका आदर करते थे। वह सीमाप्रान्तके युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए चला गया, तो सारा बोझ बहादुरख़ाँ-पर पड़ गया। मराठे उसे गाजर मूली ही समझते थे। राजतिल-कके कारण शिवाजीका खज़ाना ख़ाली हो गया। उसे भरना आवश्यक था। शिवाजीको मुग़ल-सेनापतिसे बढ़िया कोई शिकार न सूझा। अभी वर्षा ऋतुके झोंके सह्याद्रिके वक्षःस्थलको पुल-कित ही कर रहे थे कि महाराष्ट्र-सेनायें बहादुरख़ाँके डेरेके चारों ओर मँडराने लगीं। २ हजार मराठे सिपाहियोंकी एक टुकड़ीने

मुग़ल-कैम्पके समीप शरारतें आरम्भ कर दीं, जिससे नाराज़ होकर बहादुरखाँ सम्पूर्ण सेनासहित लगभग ५० मील आगे निकल गया, पर उन नाटे घुड़सवारोंको न पा सका। निराश होकर पीछे लौटा, तो क्या देखता है कि शिवाजीकी सेनाने सारा कैम्प बरबाद कर दिया है। एक करोड़ रुपया, २०० बढ़िया घोड़े और बहुतसी युद्ध-सममग्री शिवाजीके हाथ आई। वह ७,००० सिपाहियोंके साथ पास ही प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों ही बहादुरखाँ कैम्पसे दूर निकला कि शिवाजीने आक्रमण कर दिया। जो माल लूटा गया, उसे लूटकर शेष सामानको अग्निदेवके अर्पण कर दिया गया। बहादुरशाह अपनासा मुँह लेकर रह गया।

इस समय दक्षिणमें शिवाजीके दो दुश्मन थे—एक मुग़ल, दूसरा बीजापुर। शिवाजी दोनोंसे इच्छानुसार खेल रहा था। बहादुरखाँ बहुत आसानीसे बेवक़ूफ़ बन गया। १६७५ के मई मासमें शिवाजी और मुग़ल-सेनापतिमें सुलहकी बातचीत शुरू हुई। सुलहकी शर्तें सुनकर मुगल-सेनापतिके मुँहमें पानी भर आया। शिवाजी अपने १७ दुर्ग औरंगज़ेबके अधिकारमें दे देगा, शम्भाजीको मुगल-दरबारमें ६ हज़ारीके पदपर नियुक्त करके रखा जायगा, भीमासे दाहिने तीरका सारा प्रदेश शिवाजीके पास रहेगा। इन शर्तोंको सुनकर बहादुरखाँ लट्टू हो गया। उसने औरंगज़ेबके पास सिफारिशी चिट्ठी भेज दी। तीन महीनों तक पत्रव्यवहार होता रहा, जिसके कारण लड़ाई बन्द रही। इस विरामसे लाभ उठाकर शिवाजीने अपने किलोंको मज़बूत कर लिया, मुग़लोंसे मेलकी धमकी दिखाकर बीजापुरसे रुपया ऐंठ लिया, और उत्तरीय सीमापर फोण्डे नामक दुर्गपर क़ब्ज़ा कर लिया।

औरंगज़ेबने सुलहकी शर्तोंको स्वीकार करके एक राजदूत भेज दिया कि किलोंपर क़ब्ज़ा कर ले। जिस समय इसके सम्बन्धका सन्देश शिवाजीके पास पहुँचा तब उसका यह उत्तर मिला कि—

"तुम लोगोंने मुझपर ऐसा क्या दबाव डाला है कि मैं ऐसी हीन सन्धि मंजूर करूँ? यहाँसे भाग जाओ, नहीं तो अपमानित होकर जाना पड़ेगा।"

इस प्रकार बहादुरखाँ सुलहकी तलाशमें बेवकूफ़ बना। औरंगज़ेबने उसे बहुत झाड़ा, और आगे बढ़कर लड़नेकी आज्ञा दी। बहादुरखाँने भी कल्याण और अन्य कुछ शहरोंपर आक्रमण किया, परन्तु कुछ अधिक सफलता नहीं हुई। इधर बीजापुरमें शरू संग्राम जारी हो गया। दक्खिनी और अफगान-पार्टियोंकी खेंचातानी देरतक चली, जिसके अन्तमें अफगान-पार्टीकी जीत हुई। इस परिस्थितिसे शिवाजीने लाभ उठाया, और अफगान-पार्टीसे मुग़लोंके विरुद्ध सुलह कर ली। बीजापुर सरकारने शिवाजीको ३ लाख रुपया एक बार और १ लाख हून प्रति वर्ष देना स्वीकार कर लिया। बहादुरखाँने नाराज़ होकर बीजापुरपर भी धावा बोल दिया। मुग़ल-सेनापतिके इस कार्यने शिवाजीके हाथोंको और भी मज़बूत कर दिया। उसे एक मित्र मिल गया, और मुग़लोंको एक दुश्मन। यद्यपि थोड़े ही दिनोंमें बीजापुरके साथ शिवाजीकी फिर खटपट हो गई, परन्तु कुछ समयके लिए उसका काम चल गया। उसे दुर्गोंकी मज़बूती, और सेनाके सन्नाहके लिए विश्रामका समय मिल गया।

२५—समुद्र-तटके लिए खेंचातानी

अब तक हमने इस इतिहासमें एक ऐसे प्रसंगको भुला रखा है जिसका मुग़ल-साम्राज्यके नाशके साथ गहरा सम्बन्ध है। यहाँ तक हम उसकी ओर निर्देश किये बिना ही आ गये हैं, परन्तु इससे आगे चलनेसे पूर्व हमें उस लम्बे और नीरस संग्रामका सरसरी निरीक्षण करना होगा, जिसकी ओर उपेक्षादृष्टि रखनेमें मुग़ल बादशाहोंने एक भयंकर और घातक भूल की। भारतका आधेसे अधिक सीमाप्रान्त समुद्रोंसे घिरा हुआ है। जहाँ उत्तरसे आनेवाले ख़तरेकी ओर मुग़ल शाहोंकी टकटकी हमेशा लगी रहती, वहाँ दक्षिण पश्चिम और पूर्वकी दिशाओंसे समुद्रकी लहरोंपर सवार होकर उमड़नेवाले ख़तरोंकी घोर उपेक्षा की। शिवाजी

इस अंशमें मुगलोंकी अपेक्षा अधिक दूरदर्शी सिद्ध हुआ। उसने ख़तरेको देखा और उससे लड़नेकी चेष्टा की। मुग़ल-साम्राज्यने अपनी भूलोंका फल पाया, और शिवाजीके उत्तराधिकारियोंने उसकी दूरदर्शितासे लाभ उठाया।

कोंकण-विजयका परिणाम यह हुआ कि शिवाजीके राज्यकी सीमा पश्चिमीघाटके समुद्र-तटको छूने लगी। समुद्रके उस भाग-में जंजीरा नामका एक पहाड़ी द्वीप था, जो वर्तमान बम्बईसे लगभग ४५ मीलकी दूरीपर था। उसपर उस समय अबीसीनि-याके सीदी लोगोंका अधिकार था। जंजीराका शासक बीजापुर-की रियासतका सामन्त था, उसे बीजापुरके शाहकी ओरसे वज़ीरकी उपाधि मिली हुई थी। अबीसीनियन सिपाही अपने समयके प्रसिद्ध नाविक थे। वह समुद्रके खिलाड़ी थे। जंजीराके शासकके पास लड़ाकू जहाज़ोंका एक बेड़ा था। पश्चिमी तटपर उनका सामना करनेकी शक्ति किसी दूसरे राज्यमें नहीं थी।

शिवाजीके राज्यकी सीमा समुद्र-तटका स्पर्श कर रही थी। सीदी लोग समुद्रके स्वामी थे। उनके लिए किनारेपर उतरकर लूट-मार करना बहुत आसान था। शिवाजीके लिए केवल दो ही मार्ग थे—या तो वह जंजीराको जीत ले, या सीदी सरदारको अपना सहायक बना ले, अन्यथा उसका तटस्थ प्रदेश रात दिन ख़तरेमें था। इस कारण १६४८ से शिवाजीने जंजीराकी ओर अपनी विजयिनी सेनाका मुँह मोड़ा। कुछ किले ले भी लिये, परन्तु जंजीराका मुख्य रक्षास्थान 'दंडा-राजपुरी' सीदियोंके कब्ज़ेमें ही था। सीदी शासक फतेहख़ाँ दिलचला सिपाही था। उसने कई वर्षोंतक मराठा-सेनाओंका मार्ग रोका, परन्तु १६६१ में शिवाजीको दंडा-राजपुरीके लेनेमें सफलता हुई, जिससे जंजीरा-पर सीधे आक्रमणका मार्ग खुल गया। अभी मराठोंके पास तोप-ख़ानेकी कमी थी, इस कारण जंजीरा तो न सर किया जा सका, परन्तु फतेहख़ाँने हार मानकर राजपुरीतकका प्रदेश शिवाजीके सेनापतिके सुपुर्द कर दिया। कुछ समयतक सीदी लोगोंने समुद्र-

तटपर लूट-मार बन्द भी कर दी, परन्तु जंजीराकी चट्टानोंमें अन्न कहाँ था, लूट-मारके बिना उन लोगोंका जीना कठिन हो गया। तब उन्होंने फिरसे किनारेके ग्रामोंपर छापे मारने प्रारम्भ कर दिये। अन्तमें तंग आकर शिवाजीने अपनी स्वतन्त्र सामुद्रिक सेना तैयार करनेका निश्चय किया।

थोड़े ही समयमें शिवाजीने एक मज़बूत बेड़ा तैयार कर लिया। उस समयके मराठा लेखकोंका कथन है कि शिवाजीने दो दो सौ किश्तियोंके बेड़े तैयार किये। समुद्र-तटके हिन्दू मल्लाहोंके अतिरिक्त कुछ सीदी मुसलमान मल्लाह भी बेड़ेमें भर्ती किये गये। बेड़ेके सुपुर्द शिवाजीने दो कार्य किये—सीदी लुटेरोंसे समुद्रतटकी रक्षा, और कनाड़ा और गोआके समुद्र-तटके गाँवोंपर आक्रमण। जब कभी मराठा बेड़ेकी सीदी बेड़ेसे टक्कर लगती, तब प्रायः सीदी बेड़ेका हाथ ऊँचा रहता, परन्तु फिर भी मराठा बेड़ेका डर सीदी-आक्रमणोंको रोकनेके लिए काफ़ी था। बेड़ेके ज़ोरपर ही शिवाजीने विदेशोंके साथ व्यापार प्रारम्भ कर दिया था। फारस बसरा आदिकी बन्दरगाहोंपर मराठा जहाजोंका खुला जाना आना और व्यापार करना सूचित करता है कि समुद्रके वक्षःस्थलपर शिवाजीका अधिकार जम गया था।

परन्तु जंजीरापर शिवाजीका कब्ज़ा न हो सका—इस कारण रात-दिनकी नोक-झोंक तो रहती ही थी। पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार शिवाजीको मुग़ल-बादशाहकी ओरसे यह अधिकार मिल गया कि यदि वह जंजीरापर कब्ज़ा कर सके, तो कर ले। १६६९ में फिरसे मराठा-सेनाओंने जंजीरापर आक्रमण कर दिया। बड़ी कुशलतासे आक्रमणका नक़शा तैयार किया गया था, और सेनाओंका संग्रह भी पर्याप्त था, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। उसके दो कारण थे। एक तो शिवाजीको रास्तेमें धोखेकी आशंका हो गई, और दूसरे मराठा बेड़ा पुर्तगालके बेड़ोंसे लड़ गया, जिसमें मराठोंकी बहुत हानि हुई। उधर औरंगज़ेबने शिवाजीकी शक्तिका दमन करनेके लिए अबीसीनियन बेड़ेको सहायता भेजी, जिसने

मराठा बेड़ेका बहुतसा हिस्सा नष्ट कर दिया। परन्तु शिवाजीने लड़ाई बन्द न की, और सीदियोंकी शक्तिको कम करनेका प्रयत्न जारी रखा। १६७५ में शिवाजीको यहाँतक सफलता हुई कि मराठा बेड़े और सेनाओंने जंजीराको चारों ओरसे घेर लिया और किनारेके कई मोर्चे ले भी लिए, परन्तु औरंगज़ेबने सीदी कासिमकी अध्यक्षतामें एक सेना जंजीराकी रक्षाके लिए भेजी, जिसने मराठा सेनाओंके घेरेको तोड़ दिया, और उस समय जंजीराको बचा दिया।

जंजीराको लेनेमें असफल होकर शिवाजीने खांदेरी नामक बन्दरगाहपर कब्ज़ा करनेका निश्चय किया। वह अंग्रेज़ोंके हाथमें था। उसके लिए मराठा बेड़ेकी अंग्रेज़ कम्पनीके जहाज़ोंके साथ कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें अंग्रेज़ जहाज़ोंकी उत्कृष्टताके कारण शिवाजीको पूरी सफलता न हुई, तो भी अंग्रेज़ोंको हार मानकर खांदेरीका टापू छोड़ देना पड़ा।

इस प्रकार शिवाजीने थोड़े ही वर्षोंमें जहाज़ी बेड़ा बनाकर उसे इतना मज़बूत बना दिया कि वह मुग़ल, सीदी, अंग्रेज़ और पुर्तगीज़ जातियोंके बेड़ोंसे टक्कर ले सके। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस दूरदर्शी महापुरुषकी कल्पनाने देख लिया था कि हिन्दुस्तानका भविष्य-निर्णय मैदानपर नहीं—समुद्रपर होगा। यदि भावी मराठे शासक भी इसी दूरदर्शिता और शक्तिसे काम लेते, तो निश्चय ही भारतका भविष्य दूसरे ही प्रकारका होता।

२६—दक्षिण-विजय

राज-तिलकके कुछ दिन पीछे राजमाता जीजाबाईका देहान्त हो गया। वह आदर्श वीर माता थी। उसका दौर्भाग्य ही परम सौभाग्यका जन्मदाता बना। शाहजीने दूसरी शादी कर ली थी। मानिनी इस अपमानको न सह सकी और पतिसे अलग पूनाकी छोटीसी जागीरमें रहने लगी। उस

एकान्तमें बालक शिवाजीको स्वाधीन राज्यकी स्थापनाके स्वप्न लेनेका अवसर मिला। वीर माताने स्वाधीनताके बीजको गहरे प्रयत्नसे सींचकर वृक्षरूपमें परिणत किया। थोड़ी ही माताओंको यह सौभाग्य मिलता है कि वह जीवन-कालमें ही सन्तानके सम्बन्धमें बाँधी हुई आशालताओंको इस पूर्णतासे सफल और हरा-भरा होता देखें। जीजाबाईने अपने होनहार पुत्रको जागीरदारके छूटे हुए पुत्रकी हैसीयतसे उठकर छत्रधारी यशस्वी विजेताकी पदवीतक पहुँचते देखा। इस विजय-यात्रामें वह अपने पुत्रकी गुरु, मन्त्री, और जीवन-शक्ति बन कर रही। वह शिवाजीके लिए देवी भवानीकी प्रतिमूर्ति थी। वह साक्षात् स्वाधीनताका अवतार थी। मानो वह पुत्रके सिरपर राजमुकुट देखनेके लिए ही इतने समयतक जीवित थी।

१६७६ में कई मासतक शिवाजी मियादी बुखारसे पीड़ित रहे। शरीरके रोगकी दशामें भी उनका दिमाग़ काम करता रहा। चारपाईपर पड़े पड़े शिवाजीने विजयकी एक विशाल स्कीम तैयार की, और रोगसे मुक्त होते ही स्कीमको काममें लाना आरम्भ कर दिया।

शिवाजीने दक्षिणके विजयका संकल्प किया। उत्तरमें मुग़ल-साम्राज्यका भीषण दुर्ग खड़ा था। उधर पाँव फैलानेके लिए जितनी शक्ति दरकार थी, महाराष्ट्रके नवीन राज्यमें अभी उसका अभाव था। शिवाजी खूब समझते थे कि अन्तमें महाराष्ट्रशाहीकी टक्कर मुग़ल-शाहीसे होगी, परन्तु अभी वह समय टल रहा था। औरंगज़ेब अब तक भी मराठा रियासतको एक जागीरदारकी जागीर ही समझे हुए था। उसे निश्चय था कि इस भनभनानेवाले मच्छरको जिस दिन चाहूँगा चुटकीमें मसल डालूँगा। शिवाजी औरंगज़ेबकी इस भ्रान्तिसे लाभ उठाकर अपने पाँवको मज़बूत जमा लेना चाहते थे। दक्षिणके राज्य मुग़लोंकी चोटसे बहुत कुछ सुरक्षित थे। विजयनगरकी रियासतने चिरकालतक मुसलमान रियासतोंकी सम्मिलित शक्तिका सामना किया

था। बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगरकी रियासतें मुगल-साम्राज्यकी चोटपर चोट सहकर भी अपनी स्थितिको कायम रख रही थीं। शिवाजीने भी अपने राज्यके पाँव दृढ़ करनेके लिए दक्षिणमें फैलाव करनेका निश्चय किया।

दक्षिणमें शिवाजीका बड़ा भाई व्यंकोजी एक छोटीसी रियासत-पर शासन करता था। वह रियासत शाहजीसे व्यंकोजीको प्राप्त हुई थी। व्यंकोजीका वृद्ध मन्त्री रघुनाथपन्त हनुमन्ते संस्कृतका उद्भट विद्वान् था। वह शिवाजीकी कीर्ति सुनकर मुग्ध होता था, और व्यंकोजीको भी विजयके लिए उत्साहित किया करता था। व्यंकोजी भाईकी प्रशंसाको बर्दाश्त न कर सकता। इसीपर मन्त्री और राजाकी लड़ाई हो गई। अन्तको यहाँतक नौबत पहुँची और रघुनाथपन्तने यह कहते हुए व्यंकोजीकी नौकरी छोड़ दी कि तुम्हें अपने अविनयका फल शीघ्र ही भोगना पड़ेगा। रघुनाथ पन्त जब शिवाजीके दरबारमें पहुँचा, तो उसका शानदार स्वागत हुआ। दोनोंके मिलापका फल यह हुआ कि शिवाजीने पिताकी रियासतमेंसे आधे हिस्सेपर दावा किया, और अपने दावेको प्रमाणित करनेके लिए सेनासहित दक्षिणके लिए प्रस्थान किया।

शिवाजीकी दक्षिण-विजय-यात्रा महाराष्ट्र-राज्यके इतिहास-में विशेष स्थान रखती है। उस यात्राने शिवाजीके सब क्षत्रियो-चित गुणोंको प्रकाशित कर दिया। विदेशी आलोचकों तकको मानना पड़ा है कि कर्नाटक-विजयने शिवाजीका नाम संसारके प्रसिद्ध सेनानायकोंकी सूचीमें लिख दिया। प्रलोभन तो यही होता है कि उस विजयका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा जाय, परन्तु इस ग्रन्थके मुख्य उद्देश्यके साथ उसका गौण सम्बन्ध है। मुग़ल साम्राज्यके इतिहासके साथ कर्नाटक-विजयका केवल इतना सम्बन्ध है कि यदि शिवाजी इस समय दक्षिणमें मराठा-राज्यके हाथ पाँव न फैला देते, तो उस भावी जीवन-मरण-संग्राममें, जो मुग़ल और मराठा-राज्योंके मध्यमें हुआ, मराठा-राज्य बहुत कम-ज़ोर रहता। उसे सिर छुपानेके लिए कोई स्थान न मिलता।

औरंगज़ेब (वृद्धावस्था)

विस्तारमें जानेके प्रलोभनको छोड़कर हम दक्षिण-विजयकी मुख्य घटनाओंके निर्देशपर ही सन्तोष करेंगे।

अपने राज्यकी सीमासे बाहिर जानेसे पूर्व यह ज़रूरी था कि दुश्मनोंकी ओरसे बेफिक्री हो जाती। यह काम आसानीसे ही हो गया। मुग़ल-सेनापति बहादुरख़ाँ लोभका पुतला था। उसे हमेशा पैसेने मारा। शिवाजीने एक बड़ी रकम उसकी भेंट चढ़ा दी, और कुछ धन बादशाहके पास भेजनेके लिए दे दिया।

गोलकुण्डाके शासनकी बाग़डोर उन दिनों दो ब्राह्मण भाइयों-के हाथोंमें थी। वहाँके शासक अबू हसनका मादन्ना और आकन्ना-पर गहरा विश्वास था। शिवाजी जब ७० हज़ार सेनाके साथ दक्षिण-यात्राके रास्तेमें गोलकुण्डाकी सीमाके पास पहुँचा, तो अबूहसनकी ओरसे दूतने पहुँचकर उसे हैदराबाद पधारनेका निमन्त्रण दिया। शिवाजीने उस मित्रतापूर्ण निमन्त्रणका सहर्ष स्वीकार कर लिया। हैदराबाद पहुँचनेपर शिवाजी और अबू हसनमें सन्धि हो गई। शिवाजीने वादा किया कि यदि मुग़लों या बीजापुरकी ओरसे गोलकुण्डापर आक्रमण होगा, तो वह गोल-कुण्डाकी मदद करेगा। गोलकुण्डाने बदलेमें शिवाजीको बहुतसा धन, और तोपख़ाना देनेके अतिरिक्त वादा किया कि वह मराठा-राज्यके विस्तारके मार्गमें काँटे न बखेरेगा। बीजापुर या दक्षिणकी हिन्दू रियासतोंके विरुद्ध लड़नेमें शिवाजी स्वाधीन होंगे।

इस प्रकार राज्यकी पीठ और पार्श्वको मज़बूत करके शिवाजीने दक्षिणकी ओर वायु-वेगसे प्रयाण किया।

१६७६ ई० के अन्तिम भागमें दक्षिण-विजयकी यात्रा आरम्भ हुई। उसे निर्विघ्न विजयोंकी लड़ी कहें, तो अत्युक्ति नहीं। जिंजीका किला थोड़ेसे यत्नसे जीत लिया गया, वेलोरने १६७६ के सित-म्बर मासमें आत्मसमर्पण कर दिया। अपने भाई व्यंकोजीसे शिवाजी लड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने बहुत यत्न किये कि व्यंकोजी सुलहसे ही आधी रियासत छोड़ दे, परन्तु मुसलमान

सरदारोंने उसे भड़काकर भाईसे भिड़ा दिया। लड़ाईमें व्यंकोजी क्या ठहरता। शीघ्र ही रियासतका अधिकांश शिवाजीके हस्तगत हो गया। व्यंकोजी परास्त होकर झुँझलाहटमें न जाने क्या कर बैठता, यदि उसकी बुद्धिमती स्त्री दीपाबाई उसे नेक सलाह न देती। उस दूरदर्शिनी महिलाने अपने पतिको समझाया कि भाईसे भाईकी लड़ाई अनुचित है, शिवाजीके तेजके सामने ठहरना असम्भव है, ऐसी दशामें यही उत्तम है कि पुराने मन्त्री रघुनाथ हनुमन्तको बीचमें डालकर शिवाजीसे सुलह कर ली जाय। व्यंकोजीको यह सलाह पसन्द आई और भाई-भाईमें सुलह हो गई। तंजौर और उसके आसपासकी जागीर व्यंकोजीको दी गई। बंगलोरकी जागीर बुद्धिमती दीपाबाईके नाम कर दी गई, और शेष रियासत शिवाजीके कब्ज़ेमें आ गई।

इस प्रकार अपने मार्गको निष्कंटक बनाकर शिवाजी आगे बढ़े, और दोआबपर आक्रमण किया। बीजापुरके सेनापति यूसुफ़-ख़ाँने आक्रमणकी बाढ़को रोकनेका भरसक यत्न किया, परन्तु मराठा-सैन्यकी गतिको वह न रोक सका। थोड़े ही समयमें शिवाजीने शत्रुकी सेनाओंको कृष्णा नदीके उस पार धकेलकर सारे दोआबपर कब्ज़ा कर लिया।

शिवाजीकी दक्षिण-विजय-यात्रा १८ मासमें समाप्त हुई। मराठा-सेनाओंको अपने राज्यकी सीमासे ७०० मीलकी दूरीपर जाकर शत्रुसे जूझना पड़ा। मार्गके दोनों ओर शत्रु थे। एक भी पराजयका अन्त सर्वनाशमें हो सकता था। जो लोग शिवाजीको केवल एक लुटेरा समझते हैं, उनका मुँहतोड़ उत्तर कर्णाटक-विजयसे मिल सकता है। इस विजयने शिवाजीको संसारके मूर्द्धन्य योद्धाओंकी श्रेणीमें खड़ा कर दिया है। १८ महीनेमें शिवाजीने अपने राज्यके विस्तारको दुगना कर लिया, और कमसे कम तीन राज्योंको नीचा दिखाया।

शिवाजीने दक्षिण-विजयका कार्य समाप्त ही किया था कि नया शत्रु उसका द्वार खटखटाने लगा। बीजापुरका वर्तमान

भाग्यविधाता अबुल करीम जातिका पठान था। उधर बहादुरख़ाँका प्रधान सहायक दिलेरख़ाँ भी पठान था। दोनों दोस्त थे। बहादुरख़ाँ चुपचाप शिवाजीके दक्षिण-विजयका तमाशा देखता रहा—इसकी शिकायत दिलेरख़ाँने औरंगज़ेब तक पहुँचाई। औरंगज़ेब सदा ही कानोंका कच्चा रहा। उसने बहादुरख़ाँको दक्षिणसे बुला लिया और उसके स्थानपर दिलेरख़ाँको प्रधान सेनापति नियुक्त किया।

दिलेरख़ाँ और अबुल करीमने मिलकर शिवाजीके मित्र गोलकुण्डा-नरेशपर धावा कर दिया। प्रारम्भमें साथियोंको कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, परन्तु शीघ्र ही गोलकुण्डाकी सेनायें सँभल गईं। अबू हसन और उसके मन्त्रियोंकी तयार की हुई शक्ति अभेद्य साबित हुई। अबुल करीम और दिलेरख़ाँको वापिस लौट जाना पड़ा। अबुल करीमकी सेनाका असन्तोष तो यहाँतक बढ़ा कि वह विद्रोह करनेको तैयार हो गई। तब घबराकर अबुल करीमने रियासतकी बागडोर सीदी मसूद नामके अबसीनियनके हाथोंमें दे दी। परन्तु सीदी मसूद ख़ाली खजानेको लेकर क्या करता? सेनाओंको तनख़्वाह न दी जा सकी, जिससे उन्होंने बीजापुरकी नौकरी छोड़कर भागना शुरू कर दिया।

बीजापुरकी इस विषम-दशाको देखकर मुग़ल-बादशाहके मुँहमे पानी आ गया। दिलेरख़ाँको अविश्वासपात्र समझकर, दाक्षिणका प्रधान सेनापति राजकुमार मुअज़्ज़म बना दिया गया, और मुग़ल-सेनाओंको बीजापुरपर धावा करनेका हुक्म हुआ। सीदी मसूद रियासतपर मुसीबत आई देखकर शिवाजीकी शरणमें आ गया। शिवाजी भी समझते थे कि दक्षिणकी मुसलमान रियासतोंका मुग़लोंके हाथमें चला जाना अच्छा नहीं। जब तक वह महाराष्ट्रके राज्यमें सम्मिलित नहीं होतीं, तब तक उनका बने रहना ही अच्छा है। यदि दक्षिणकी मुसलमान रियासतोंको मुग़ल-साम्राज्य खा जायगा, तो मराठा-राज्य भी न बच सकेगा। बीजा-

पुरकी ओरसे सहायताकी माँग आते ही शिवाजीने 'तथास्तु' कहला भेजा, और अपनी सेनाओंको साथ लेकर मुग़लोंका मार्ग रोक दिया। युद्ध महीनोंतक जारी रहा। विजयलक्ष्मी डावाँडोल होती रही। कभी इधर झुकती तो कभी उधर। दिलेरख़ाँकी सेनायें बीजापुर रियासतकी राजधानीतक चढ़ गईं। सीदी मसूद्के नेतृत्वमें बीजापुर-निवासियोंने खूब वीरतासे नगरकी रक्षा की। उधर शिवाजीके सेनापतियोंने औरंगाबादतक तलवारके हाथ दिखाये, और मुग़ल-शहरोंको लूटा। अन्तमें मुग़ल-सेनापतिको हार माननी पड़ी, और बीजापुरका राज्य कुछ समयके लिए बच गया।

२७—अवसान

शिवाजी इस समय अपने गौरवके शिखरपर पहुँच चुके थे। वह दक्षिणके भाग्य-विधाता थे। मुग़ल-सम्राट्की महत्त्वाकांक्षा वहीं आकर टकराती थी। गोलकुण्डा और बीजापुर आत्मरक्षाके लिए नाटे नाटे मराठा घुड़-सवारोंकी तलवारोंका ही भरोसा रखते थे। एकके पीछे दूसरा मुग़ल सेनापति आया, आनेवालोंमें राजकुमार भी थे; सब बड़ी आशा बाँधकर आये, परन्तु निष्फलताकी बदनामी लेकर वापिस गये। महाराष्ट्रके राज्यकी दक्षिण सीमा कृष्णा नदीके तटको चूम रही थी। दूसरी ओर औरंगाबादकी बस्तियाँ रातदिन मराठा घुड़-सवारोंके डरसे काँपती रहती थीं। पराधीन हिन्दू जातिको एक प्रतापी नेता और रक्षक मिल गया था, जिसमें नये राज्यकी स्थापनाके योग्य साहस और स्थापित राज्यकी रक्षा करने योग्य बुद्धिमत्ता विद्यमान थी।

किसी भी विजयाभिलाषी वीरको इस सफलतापर सन्तोष हो सकता था। शिवाजी भी हृदयमें सन्तोषका अनुभव करते होंगे, परन्तु राणा प्रतापकी भाँति शिवाजीका अन्तिम समय भविष्यकी

चिन्ताओंसे अन्धकारमय हो गया था। युवराज सम्भाजी वीरता और उदारतामें अपने पिताकी प्रतिमूर्ति होता हुआ भी चारित्र और स्वभावमें पितासे सर्वथा विपरीत था। जहाँ अमीरीके वातावरणमें पैदा होनेसे सम्भाजीके अन्दर अभिमान और क्रोधकी मात्रा बहुत अधिक थी, वहाँ कुछ समय तक मुग़ल-दरबारमें रहनेसे शराब और विषयासक्तिकी कुटेवने भी घर कर लिया था। शिवाजी प्रायः मराठा-राज्यके भावी शासकको समझाते और ताड़ते रहते थे। कुछ समयसे दण्डके तौरपर उसे पन्हालाके किलेमें क़ैद कर दिया गया था। अदूरदर्शी युवराज चिढ़ गया, और जिस समय शिवाजी बीजापुरकी ओरसे मुग़लोंके साथ जूझ रहे थे, वह मुग़ल सेनापति दिलेरख़ाँकी उत्तेजना पाकर अपने पक्षको छोड़ शत्रुपक्षमें चला गया। औरंगाबादसे दिल्लीतक मुग़लोंके शिविरोंमें इस समाचारने घीके चिराग़ जला दिये। औरंगज़ेबने सम्भाजीको सात हज़ारीकी पदवी देकर सेनापतिके रूपमें दिलेरख़ाँकी अध्यक्षतामें लड़नेकी इजाज़त दे दी। सम्भाजीने खूब वीरतासे लड़कर भूपालगढ़के दुर्जय किलेको मराठा किलेदारके हाथसे छीन लिया। किलेदार फिरंगोजी शिवाजीके पुत्रसे लड़नेकी ताव न लाकर भाग निकला, और अपनी 'लड़ूँ या न लड़ूँ' की शंका लेकर शिवाजीके दरबारमें पहुँचा। इस बीचमें किलेपर सम्भाजीका क़ब्ज़ा हो गया। युद्धमें झूठा धर्म-संकट मानकर मैदान छोड़नेवाले सिपाहीको जो सज़ा मिलनी चाहिए थी, शिवाजीने फिरंगोजीको वही सज़ा दी। उसे तोपके मुँहपर बाँधकर गोलेसे उड़ा दिया गया।

सम्भाजीको भी अपने द्रोहका फल शीघ्र ही मिल गया। औरंगज़ेबका अविश्वासी हृदय भला शिवाजीके पुत्रपर कैसे विश्वास कर सकता था। शीघ्र ही मुग़ल-सेनापतिको हुक्म आ गया कि सम्भाजीपर कड़ी नज़र रखी जाय। दिलेरख़ाँने बादशाहको सलाह दी थी कि सम्भाजीको महाराष्ट्रका राजा मानकर दुश्मनको दो टुकड़ोंमें बाँट दिया जाय। पहले तो औरंगज़ेबने यह सलाह मान ली, परन्तु उसके हृदयपर शिवाजीकी नीतिज्ञताकी ऐसी धाक

बँधी हुई थी कि सम्भाजीके द्रोहमें भी उसे कोई चाल नज़र आई। उसे सन्देह हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि सम्भाजी मुग़ल-सेनामें विद्यमान हिन्दू सरदारोंको बहकाकर भाग निकले। मुग़ल-सेना-पतिको हुक्म भेजा गया कि सम्भाजीको क़ैद करके दिल्ली रवाना किया जाय।

दिलेरख़ाँ एक बहादुर सिपाही था। वह मित्र-द्रोहके लिए तैयार न हो सका। बादशाहकी आज्ञा मिलनेपर उसने गुप्तरूपसे सम्भा-जीको भागनेका इशारा दे दिया। सम्भाजीका शिवाजीने प्रेमसे स्वागत किया, परन्तु पूरी तरह विश्वासयोग्य न समझकर दण्ड-के तौरपर उसे पन्हालाके किलेमें क़ैद कर दिया।

एक यही चिन्ता काफी थी, उसके साथ जब बहुविवाहसे पैदा होनेवाली चिन्तायें आ मिलीं, तब तो छत्रपतिका हृदय बहुत ही चिन्ताकुल रहने लगा। उस समय हिन्दुओंमें भी मुस-लमानोंकी तरह बहुविवाह प्रचलित था। शिवाजीके तीन विवाह पहली उमरमें हो चुके थे। ४७ सालकी उम्रमें उसने ३ और शादियाँ कीं। यह तीनों विवाह एक प्रकारसे राजनीतिक विवाह थे। उनका उद्देश्य सरदारोंको रिश्तेदार बनाकर अपने अन्तरंग साथी बनाना था। वह उद्देश्य तो सिद्ध हो गया, परन्तु पारिवा-रिक सुखके साथ साथ राज्यकी शान्तिका भी भंग हो गया। अन्तःपुरकी कलहने विस्तृत रूप धारण किया। औरतोंने ज्योति-षियों, वैद्यों और कजबुकियोंकी सहायतासे अलग अलग पार्टियाँ खड़ी कर लीं, और ढलती हुई उम्रके पतिपर प्रभाव जमानेके उद्योग होने लगे। पहली स्त्री साईबाईका देहान्त हो चुका था, और उसका पुत्र युवराज सम्भाजी उद्धत स्वभावके कारण क़ब्ज़ेसे बाहिर जा रहा था। दूसरी स्त्री सोयराबाई अपने पुत्र राजारामके भविष्यके लिए चिन्तित हो रही थी। तीन युवती सौतिनोंके आने-पर तो वह बहुत व्याकुल हो उठी, और इधर उधर हाथ पाँव मारने लगी। शिवाजीका घर कूट-नीतिका दंगल बन गया। छत्र-

पतिका हृदय व्याकुल रहने लगा। व्याकुलताको दूर करनेके लिए शिवाजीने एक वार यह विचार भी किया कि राज्यके दो विभाग करके सम्भाजी और राजाराममें बाँट दें, परन्तु यह विचार देर तक न रहा।

१६८० के मार्च मासमें शिवाजी एक लड़ाईसे वापिस आनेपर वीमार हो गये। उनके घुटनेपर सूजन हो आई। वहुतसे इलाज किये गये, परन्तु कोई उपाय कारगर न हुआ। ७ दिन तक रोगी रहकर ३ अप्रैल १६८० को महाराष्ट्रका सूर्य अस्ताचलगामी हुआ। विश्वविख्यात मुग़ल-साम्राज्यसे टक्कर लेनेवाला वीर अकालमें ही कालका शिकार वन गया।

शिवाजीकी अन्तिम वीमारीका समाचार सम्भाजीको पन्हालाके किलेमें मिला। उसने पिताके दर्शनोंका संकल्प करके एक तेज़ जानेवाली सांडनीपर रायगढ़के लिए प्रस्थान किया। रात-दिन सफर करके भी युवराज समयपर न पहुँच सका। पहाड़ीके नीचे पहुँचनेसे पूर्व ही शिवाजीके प्राण-पखेरू उड़ गये थे। सम्भाजीको जव यह समाचार मिला तो उसके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने म्यानसे तलवार निकालकर एक ही झटकेमें सांडनीके दो टुकड़े कर दिये। इतनेसे भी सन्तुष्ट न होकर उसने हुक्म दिया कि सांडनीके धड़की मूर्ति उस जगह वनाई जाय, ता कि आगेसे ऊँटोंको चेतावनी मिल जाय। सम्भाजीकी उग्र प्रकृतिका वह स्मारक अवतक भी उसी जगह कायम है।

२८—इतिहासमें शिवाजीका स्थान

महाराष्ट्र-केसरीके चरितकी चर्चा करनेके लिए लेखनी लालायित हो रही है। ऐसा प्रतापी और मनोरंजक विषय वेचारी जड़ लेखनीको कव कव मिलेगा। किसी पक्षीको पिंजरेसे, और जातिको पराधीनतासे छूटते देखना संसारके सवसे अधिक

पवित्र पुण्योंमेंसे है। महाराष्ट्रको स्वाधीनता देनेवाले वीर-पुरुषका कीर्त्तन करनेसे जिह्वा और कलम दोनों पवित्र होते हैं—इस लिए जी चाहता है कि लिखें, और खूब लिखें, परन्तु इतिहास-लेखकका कार्य बहुत कठिन और कठोर है। उसे लेखनीकी उड़ान प्रस्तुत विषयके वायुमण्डल तक ही परिमित रखनी चाहिए। हमें भी शिवाजीके कारनामों और महाराष्ट्रके उत्थान और पतनकी कहानीसे वहीं तक सरोकार रखना होगा, जहाँ तक उनका मुग़ल-राज्यके उत्थान या पतनके साथ सम्बन्ध है। हार्दिक लालसाके विरुद्ध, इसी कारण हमें लेखनीके मुँहमें लगाम लगानी पड़ती है, और शिवाजीके मुर्दोंको जिला देनेवाले बहुतसे वीरतापूर्ण युद्धों, और महापुरुषताके सूचक उदार कार्योंकी चर्चाका गहरा प्रलोभन छोड़कर आगे चलना पड़ता है।

इस परिच्छेदमें हम यह देखना चाहते हैं कि मुग़ल-साम्राज्यके इतिहासपर शिवाजीके कार्योंका क्या प्रभाव पड़ा और दोनोंकी एक दूसरेपर क्या प्रतिक्रिया हुई। इन प्रश्नोंका उत्तर एक दूसरे प्रश्नके उत्तरपर अवलम्बित है। शिवाजीके युद्धोंका और राज्य-स्थापनाका लक्ष्य क्या था और शिवाजीको उस लक्ष्यकी पूर्तिमें कहाँ तक सफलता हुई, इस प्रश्नका उत्तर मिल जानेपर हम उस प्रभावकी मात्राको परख सकेंगे, जो महाराष्ट्रके उत्थानका औरंगज़ेबद्वारा शासित साम्राज्यपर हुआ।

यह कहना कठिन है कि कार्यके प्रारम्भमें और मृत्युके समय शिवाजीका लक्ष्य हरेक अंशमें एक ही सा था। मुद्रापर छपे हुए मूलमन्त्रके अनुसार शिवाजीका लक्ष्य भी 'प्रतिपच्चन्द्रलेखा' की भाँति वृद्धिशील था। जिस समय मराठा युवकने कुछ मावलियों और दोस्तोंकी मददसे पहले पहल तोरणाके दुर्गपर आक्रमण किया था, सम्भवतः उस समय उसके हृदयमें भारतव्यापी महाराष्ट्र हिन्दू-राज्य बनानेकी भावना विद्यमान न हो, परन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि उस छोटीसी सेनाकी नन्हीसी चढ़ाईमें भी बीजरूपमें विजय-कामनाके सब अंश विद्यमान थे, जिनका

पीछेसे इतना भारी विस्तार हुआ। हरेक विजेताके हृदयमें विजय-कामनाका होना आवश्यक है। उसे हम महापुरुषताका व्यक्तिगत अंश कहेंगे। संसारमें जितने प्रसिद्ध योद्धा या विजयी हुए हैं, उनमेंसे निन्यानवे फी सदीके हृदयमें व्यक्तिगत विजयकी भावना रहती है-भेद केवल इतना है कि उनमेंसे जिस योद्धाके हृदयमें वह भावना अन्य सब भावनाओंसे ऊपर रहे, वह चंगेज़खाँ तैमूर-लंग आदिकी तरह संसारमें महामारीकी भाँति बदनाम हो जाता है, परन्तु जिस योद्धाकी व्यक्तिगत विजय-कामना किसी अन्य सार्वजनिक भावनाकी सहायक हो, वह महापुरुषकी पदवीको प्राप्त कर लेता है। शिवाजीके हृदयमें विजयाभिलाषाके साथ साथ हिन्दू-धर्मकी रक्षा और हिन्दू-राष्ट्रकी स्थापनाका विचार पहलेसे ही विद्यमान था। प्रारम्भसे ही शिवाजीका लक्ष्य एक ऐसे राज्यकी स्थापना करना था, जिसके द्वारा हिन्दू-धर्मकी रक्षा हो सके। ज्यों ज्यों सफलता होती गई, त्यों त्यों विजयका क्षेत्र बढ़ता गया, और लक्ष्य विस्तृत और स्पष्ट होता गया।

अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें शिवाजीको कहाँतक सफलता प्राप्त हुई, इस प्रश्नका उत्तर इन पृष्ठोंमें दिया जा चुका है। एक व्यक्ति, छोटीसी जागीरके भरोसेपर, बिना प्रारम्भिक साधनोंके, ५३ वर्षों-के समयमें जो कुछ कर सकता है, शिवाजीने उससे अधिक कर दिखाया। शिवाजीका राज्य मृत्युके समय वर्तमान बम्बईप्रान्तके अधिकांशमें फैला होनेके अतिरिक्त दक्षिणमें कर्णाटकतक पहुँच चुका था। यह देश शिवाजीको किसी वारसेमें नहीं मिला था, और न किसी बने बनाये राज्यपर कब्ज़ा करनेसे ही प्राप्त हुआ था। इस राज्यको शिवाजीने एक एक ईंट चुनकर बनाया था। मुग़ल-साम्राज्य, बीजापुर और गोलकुण्डा जैसी विरोधी शक्तियोंसे लड़कर, और उनके अंगके टुकड़े काट-काटकर महाराष्ट्रका शरीर बनाया गया था। सदियोंकी गुलामीके पीछे, एक निर्धन और प्रसुप्त जातिको उठाकर खड़ा कर देना, और जगत्प्रसिद्ध मुग़ल-साम्राज्यसे भिड़कर स्वाधीन राज्यका स्वामी बना देना, एक

साधारण कार्य नहीं था। यदि यह सफलता नहीं, तो फिर संसारमें सफलता शब्दका कोई वाच्य ही नहीं मिल सकता।

यह तो शिवाजीकी सफलताका स्थूल रूप था। परन्तु महाराष्ट्र-केसरीके कारनामोंकी परख केवल स्थूल रूपसे ही नहीं की जा सकती। वह कुछ आदर्शोंका पुतला था। एक प्रकारसे वह औरंगज़ेबकी धर्मान्ध नीतिका उत्तर था। संसारमें क्रिया-प्रतिक्रियाका उसूल अटल रूपसे काम करता है। दीवारपर गेंदको मारो—वह लौट कर आयगी। जितने ज़ोरसे मारोगे, उतने ही ज़ोरसे वापिस आयगी। औरंगज़ेबकी धर्मान्ध नीतिने भी देशके हरेक कोनेमें प्रतिक्रिया पैदा की थी, स्थान स्थानपर विद्रोह और क्रान्तिकी ज्वालायें भड़क उठी थीं, जिनकी चर्चा इससे पूर्वके परिच्छेदोंमें हो चुकी है। प्रतिक्रियारूपमें पैदा हुई उन सब ज्वालाओंमेंसे प्रचण्डतम ज्वाला वह थी, जिसे सह्याद्रिके जंगलोंमें वीर शिवाजीने प्रज्वलित किया था। शिवाजी एक धर्मान्ध मुसलमान बादशाहकी अदूरदर्शितापूर्ण नीतिका जीता जागता प्रतिवाद था। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्र और हिन्दू-धर्मकी प्रसुप्त शक्तिको जगा कर अत्याचारके प्रति व्यापी विद्रोहका भाव पैदा करनेमें शिवाजीको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। हिन्दुओंका मस्तक ऊँचा हो गया, उन्हें अनुभव होने लगा कि भारत-भूमि गौ ब्राह्मण और शिखासूत्रके रक्षकसे शून्य नहीं है। वह अपनी शक्तिको अनुभव करने लगे। अवतारवादके विश्वासी जीव धर्मके रक्षक शिवाजीको शिवजीका अवतार समझने और पूजने लगे।

शिवाजी और औरंगज़ेब दोनों ही अपने अपने क्षेत्रमें असाधारण पुरुष थे। दोनोंमें कुछ समानतायें थीं। दोनों ही तीव्र प्रतिभासे विभूषित थे, दोनों ही युद्धकलामें निपुण थे, दोनों ही जीतना जानते थे, और हारको जीतमें परिणत करना भी जानते थे। दोनोंको अपने अपने धर्मपर गहरी श्रद्धा थी। औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान था, तो शिवाजी पक्का हिन्दू। इन समानताओंके होते हुए भी दोनों एक दूसरेसे इतने भिन्न थे, जितने आग और पानी।

दोनोंके प्रारम्भ कितने अलग थे। औरंगज़ेब भूतलविख्यात मुग़ल-सम्राट्का पुत्र था, वह मोती हीरोंमें पैदा हुआ और लक्ष्मीकी गोदमें पला। शिवाजी एक साधारण जागीरदारका छोड़ी हुई माके साथ रहनेके कारण छोड़ा हुआ पुत्र था। उसके पास न ओहदा था, और न नाम, न सेनायें थीं, और न ख़ज़ाना। एक जन्मसे बादशाह था, दूसरा जन्मसे साधारण व्यक्ति। कुछ वर्षों पश्चात् दोनोंकी टक्कर हुई। पूनाके नन्हेसे जमीनदारके बेटेने मुग़ल-बादशाहके फ़ौलादी किलेपर ठोकर लगाई। उस समय एक अद्भुत समस्या पैदा हुई। कौन जीतेगा? शाह या कंगाल? समयने उत्तर दिया। शाहने वारपर वार किये, रेलेपर रेला भेजा, पर वह नन्हेसे ज़मीनदारके बेटेका मर्दन न कर सका। शिवाजीका सितारा चढ़ता ही गया। तीन तीन मुसलमान रियासतोंने मिलकर आक्रमण किये, तो भी ज्वाला शान्त न हुई। भारतविजयी औरंगज़ेबकी तलवार शिवाजीपर कारगर न हुई।

इसका क्या कारण था? इसका कारण तलाश करनेके लिए हमें उन दोनों असाधारण पुरुषोंके चरित्रकी समानताओंको छोड़कर असमानताओंपर दृष्टि डालनी चाहिए।

औरंगज़ेब साम्राज्यका उत्तराधिकारी बनकर पैदा हुआ था, और शिवाजी ग़रीबीमें। एकका भविष्य उत्पन्न होनेसे पूर्व ही बहुत कुछ बन चुका था, दूसरेके लिए एक एक कदमपर लड़ाई थी। यही कारण था कि यद्यपि औरंगज़ेब मुग़ल बादशाहोंमें अन्य सबसे अधिक मेहनती और कर्तव्यपरायण था, तो भी उसे अधिकतया अपने नौकरों और लड़कोंपर ही आश्रित रहना पड़ता था। शिवाजीकी लड़ाई मुग़ल बादशाहसे नहीं, उसके दुमछल्लों खुशामदियोंसे ही होती रही। शिवाजीका स्वात्मावलम्ब उसका सबसे बड़ा सहायक, और औरंगज़ेबका नौकरोंके अधीन होना ही उसकी सबसे बड़ी कामयाबी था। शिवाजीकी मृत्युके पीछे ज्यों ही औरंगज़ेबने स्वयं मैदान सँभाला कि मराठा-शक्ति

कमसे कम प्रत्यक्ष रूपमें क्षीण हो गई। उसे सामयिक हार माननी पड़ी।

दोनों असाधारण पुरुषोंमें दूसरा भेद यह था कि जहाँ शिवाजी अपने सहायकोंको प्रेमपूर्ण विश्वासद्वारा विश्वासके योग्य बना लेता था, वहाँ औरंगज़ेबकी स्वाभाविक अविश्वासिता उसके बड़ेसे बड़े मददगारोंको बेदिल कर देती थी। एक दिन आता था कि बादशाहके पुराने सेवकके सामने दोमेंसे एक ही रास्ता रह जाता था—या तो वह विद्रोही बनकर मुग़ल-सम्राट्से लड़ाई करे, या उदासीन होकर किसी अदृश्य कोनेमें छुप जाय। परन्तु अविश्वासी बनकर—और वह भी बादशाहकी दृष्टिमें—एक कोनेमें बैठ जाना प्रायः विद्रोहसे भी अधिक भयानक हो जाया करता है। औरंगज़ेबके हरेक पुत्र और सेवकके सिरपर नज़रबन्दी, जेल और फाँसीकी सम्भावना नंगी तलवारकी तरह लटकती रहती थी। औरंगज़ेबकी असामान्य शक्तियोंकी असफलताका एक मुख्य कारण उसके हृदयकी अविश्वासिता थी।

दोनों असाधारण पुरुषोंमें तीसरा भेद यह था कि जहाँ दोनोंहीके लिए, धर्म, कार्यरूपी नदीका स्रोत था—उनके कार्योंमें एक मुख्य प्रेरक कारण था—वहाँ शिवाजीकी धार्मिकदृष्टि उसकी स्वभावसिद्ध उदारताकी सहचरी थी, और औरंगज़ेबकी धार्मिकदृष्टि अनुदारताकी सखी बनकर धर्मान्धताके रूपमें परिणत हो गई थी। इस एक भेदसे दोनोंके चरित्रमें दिन और रातका भेद हो गया। शिवाजीके हृदयमें धर्मका भाव कितना प्रबल था, यह उसके चरित्रके प्रत्येक अंगसे प्रकट है। हिन्दू-धर्मकी रक्षा उसके जीवनका प्रधान लक्ष्य था, परन्तु विदेशी और विधर्मी लेखकोंने भी गवाही दी है कि शिवाजीने कभी अन्य धर्मोंके साथ अन्याय नहीं किया। उसके कोषसे कई पीर पलते थे, और कई मसज़िदें बनाई गईं। राजकार्यके लिए मुसलमान रियासतोंसे मिलने या मुसलमान सेनापतियोंसे काम लेनेमें उसने कभी संकोच नहीं किया। एक बार एक मुसलमान सरदारकी स्त्रियाँ शिवाजीके यहाँ बन्दी

रूपमें पेश हुई। मुसलमान विजेताओंके नियमके अनुसार तो उन्हें हरममें डाल लेना चाहिए था, परन्तु शिवाजीने बड़े आदर भावसे सुरक्षित रूपमें उन्हें घर भिजवा दिया। छत्रपतिकी धर्मदृष्टि कभी धर्मान्धतामें परिणत नहीं हुई।

दूसरी ओर धर्मान्धता औरंगज़ेबका सबसे बड़ा अपराध था। उसने बादशाहके सब गुणोंको कुण्ठित कर दिया था। इस इतिहासके पृष्ठोंमें इसके पर्याप्त प्रमाण दिये जा चुके है।

दोनों असाधारण पुरुषोंमें अन्तिम और मौलिक भेद यह था कि जहाँ औरंगज़ेबने अकबरकी उदार नीतिको त्यागकर मुग़ल-सल्तनतको बलात्कारका प्रतिनिधि बना दिया था, वहाँ शिवाजी उठती हुई स्वाधीनताकी चाहका प्रतिनिधि था। एक जर्जरित शरीरकी मूर्ति था, दूसरा उठती हुई जवानीकी उमंगका रूप था। एक ओर हुक्म था, दूसरी ओर नवीन स्वाधीनताकी अभिलाषा। यही कारण था कि औरंगज़ेब डूबते हुए और शिवाजी उदित होते हुए सूर्यका प्रतिनिधि बना।

शिवाजीने दो कार्य किये—महाराष्ट्र-राज्यकी स्थापना की, और हिन्दुओंके हृदयोंमें आत्मसम्मान और स्वाधीनताकी उमंग पैदा की। मुग़ल-साम्राज्यके लिए औरंगज़ेबकी धर्मान्ध और अविश्वासी प्रकृतिने जो दुश्मन पैदा किये, उनमेंसे सबसे अधिक बलिष्ठ और घातक दुश्मन मराठा-राज्य था।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि शिवाजीके स्थापित किये हुए राज्यमें निर्बलताका कोई अंश नहीं था। यदि उसमें निर्बलताके अंश न होते, तो आगामी शताब्दियोंका इतिहास कुछ और ही होता, पश्चिमके व्यापारियोंके संगठित आक्रमणोंके सामने मराठा-साम्राज्यका भवन न गिर जाता। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि शिवाजीका स्थापित किया हुआ राज्य मुग़ल-राज्यकी अपेक्षा कई अंशोंमें दृढ़ था। समय और परिस्थितिको देखते हुए कह सकते हैं कि शिवाजी युद्ध-कला और शासन-

कला—दोनोंमें ही प्रवीण थे। वह केवल विजेता नहीं थे-उन्हें राजनीतिज्ञ विजेताकी उपाधिसे विभूषित करना ही उचित होगा। मराठा-राज्यका प्रबन्ध यद्यपि एक राजाकी सत्तापर अवलम्बित था, तो भी शिवाजीकी प्रतिभाने मन्त्रिमण्डलकी पद्धतिका निर्माण करके शासनका बोझ कई कन्धोंपर डाल दिया था। राज्यके प्रधान सचिवको पेशवा कहते थे। उसके साथ काम करनेवालोंके नाम इस प्रकार थे—मन्त्री, सुमन्त, सेनापति, सचिव, धर्माध्यक्ष या पंडितराव, न्यायाधीश, अमात्य। यह आठ अष्ट प्रधानके नामसे कहे जाते थे। शासनके सब विभाग इन्हीं लोगोंके अधीन थे। शिवाजीके आगरा और कोंकणमें जानेके कारण अनुपस्थिति होनेपर भी यदि मराठा-राज्य शान्तिसे चलता रहा, तो उसका उपर्युक्त संगठन ही कारण था। नये प्रान्तों और किलोंके प्रबन्धमें, मालगुज़ारीकी वसूलीमें, और सेनाके नियमनमें शिवाजीने अद्भुत दूरदर्शितासे काम लिया था। सब कुछ देखते हुए हम कह सकते हैं कि क्या युद्धमें और क्या शासनमें—शिवाजीका आसन संसारके महापुरुषोंमें बहुत ऊँचा है।

एक ही समयमें भारत-भूमिने दो असाधारण पुरुष पैदा किये-एक दिल्लीके राजसी प्रासादमें, दूसरा पूनाकी झोपड़ीमें। एक धन-जन-सुरक्षित साम्राज्यका स्वामी था-दूसरा केवल अपनी तलवारका। दोनोंके कारनामोंकी ऐसी टक्कर हुई कि भारतका नक़्शा पलट गया। एक ऐसा द्वन्द्वयुद्ध आरम्भ हुआ, जिसने भारत-भूमिको एक ओरसे दूसरे छोर तक हिला दिया। अन्तिम परिणाम क्या हुआ, और क्यों हुआ, यह जाननेके लिए इस इतिहासके तीसरे और चौथे भागोंकी प्रतीक्षा कीजिए। १३-८-३१